श्रीरामकृष्णवचनामृत

(तृतीय भाग)

श्री 'म'

श्रीरामकृष्ण आश्रम

धन्तोली, नागपुर - १.

श्रीरामकृष्णवचनामृत

तृतीय भाग

(श्री 'म')

अनुवादक——पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(तृतीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर-१

अनुक्रमणिका

भगवान श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्णवचनामृत

परिच्छेद १

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का जन्म-महोत्सव

(१)

नरेन्द्र आदि भक्तों के साथ कीर्तनानन्द में

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में उत्तर-पूर्व वाले लम्बें बरामदे में गोपी-गोष्ठ तथा सुबल-मिलन-कीर्तन सुन रहे हैं। नरोत्तम कीर्तन कर रहे हैं। आज शुक्लाष्टमी है, रविवार २२ फरवरी १८८५ ई०। भक्तगण उनका जन्म-महोत्सव मना रहे हैं। गत सोमवार फाल्गुन शुक्ल द्वितीया के दिन उनकी जन्मतिथि थी। नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम, भवनाथ, सुरेन्द्र, गिरीन्द्र, विनोद, हाजरा, रामलाल, राम, नृत्यगोपाल, मणि मल्लिक, गिरीश, सींती के महेन्द्र वैद्य आदि अनेक भक्तों का समागम हुआ है। प्रातःकाल आठ बजे का समय होगा। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने पास बैठने का इशारा किया।

कीर्तन सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गए हैं। श्रीकृष्ण को गौएँ चराने के लिए आने में विलम्ब हो रहा है। कोई ग्वाला कह रहा है, 'यशोदा माई आने नहीं दे रही हैं।' बलराम ज़िद करके कह रहे हैं, 'मैं सींग बजाकर कन्हैया को ले आऊँगा।' बलराम का प्रेम!

कीर्तनकार फिर गा रहे हैं। श्रीकृष्ण बंसरी बजा रहे हैं। गोपियाँ और गोप बालकगण बंसरी की ध्वनि सुन रहे हैं और

उनमें अनेकानेक भाव उठ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठकर कीर्तन सुन रहे हैं। एकाएक नरेन्द्र की ओर उनकी दृष्टि पड़ी। नरेन्द्र पास ही बैठे थे। श्रीरामकृष्ण खड़े होकर समाधिमग्न हो गए। नरेन्द्र के घुटने को एक पैर से छूकर खड़े हैं।

श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ होकर फिर बैठे। नरेन्द्र सभा से उठकर चले गए। कीर्तन चल रहा है।

श्रीरामकृष्ण ने बाबूराम से धीरे धीरे कहा, 'कमरे में खीर है, जाकर नरेन्द्र को दे दो।'

क्या श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के भीतर साक्षात् नारायण का दर्शन कर रहे थे?

कीर्तन के बाद श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में आये हैं और नरेन्द्र को प्यार के साथ मिठाई खिला रहे हैं।

गिरीश का विश्वास है कि ईश्वर श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

गिरीश—(श्रीरामकृष्ण के प्रति) —आपके सभी काम श्रीकृष्ण की तरह हैं। श्रीकृष्ण जैसे यशोदा के पास तरह तरह के ढोंग करते थे।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, श्रीकृष्ण अवतार जो हैं। नरलीला में उसी प्रकार होता है। इधर गोवर्धन पहाड़ को धारण किया था, और उधर नन्द के पास दिखा रहे हैं कि पीढ़ा उठाने में भी कष्ट हो रहा है!

गिरीश—समझा। आपको अब समझ रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हैं। दिन के ११ बजे का समय होगा। राम आदि भक्तगण श्रीरामकृष्ण को नवीन वस्त्र

पहनाएँगे। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "नहीं, नहीं।" एक अंग्रेजी पढ़े हुए व्यक्ति को दिखाकर कह रहे हैं, "वे क्या कहेंगे?" भक्तों के बहुत ज़िद करने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "तुम लोग कह रहे हो, अच्छा लाओ, पहन लेता हूँ।"

भक्तगण उसी कमरे में श्रीरामकृष्ण के भोजन आदि की तैयारी कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को ज़रा गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र गा रहे हैं।

संगीत– (भावार्थ)– "माँ, घने अन्धकार में तेरा रूप चमकता है। इसीलिए योगी पहाड़ की गुफा में निवास करता हुआ ध्यान लगाता है। अनन्त अन्धकार की गोदी में, महानिर्वाण के हिल्लोल में चिर शान्ति का परिमल लगातार बहता जा रहा है। महाकाल का रूप धारण कर, अन्धकार का वस्त्र पहन, माँ, समाधि-मन्दिर में अकेली बैठी हुई तुम कौन हो? तुम्हारे अभय चरण-कमलों में प्रेम की विजली चमकती है; तुम्हारे चिन्मय मुखमण्डल पर हास्य शोभायमान है।"

नरेन्द्र ने जब गाया, 'माँ, समाधि-मन्दिर में अकेली बैठी हुई तुम कौन हो?'— उसी समय श्रीरामकृष्ण बाह्यज्ञान-शून्य होकर समाधिमग्न हो गए। बहुत देर बाद समाधि भंग होने पर भक्तों ने श्रीरामकृष्ण को भोजन के लिए आसन पर बैठाया। अभी भाव का आवेश है। भात खा रहे हैं, परन्तु दोनों हाथ से! भवनाथ से कह रहे हैं, "तू खिला दे!" भाव का आवेश अभी है, इसीलिए स्वयं खा नहीं पा रहे हैं। भवनाथ उन्हें खिला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण ने बहुत कम भोजन किया। भोजन के बाद राम कह रहे हैं, "नृत्यगोपाल आप की जूठी थाली में खाएगा।"

श्रीरामकृष्ण– मेरी जूठी थाली में?

राम– क्यों क्या हुआ ?

नृत्यगोपाल को भावमग्न देखकर श्रीरामकृष्ण ने एक दो कौर खिला दिए ।

कोन्नगर के भक्तगण नाव पर सवार होकर आए हैं। उन्होंने कीर्तन करते करते श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रवेश किया। कीर्तन के बाद जलपान करने के लिए बाहर गए । नरोत्तम कीर्तनकार श्रीरामकृष्ण के कमरे में बैठे हैं । श्रीरामकृष्ण नरोत्तम आदि से कह रहे हैं, "इनका मानो नाव चलानेवाला गाना ! गाना ऐसा होना चाहिए कि सभी नाचने लगें । इस प्रकार का गाना गाना चाहिए ।

संगीत–(भावार्थ)–"ओ रे! गौर-प्रेम के हिलोर से सारा नदिया शहर झूम रहा है ।"

(नरोत्तम के प्रति)– उसके साथ यह कहना होता है :

संगीत–(भावार्थ)– "ओ रे ! हरिनाम कहते ही जिनके आँसू झरते हैं, वे दोनों भाई आए हैं। ओ रे! जो मार खाकर प्रेम देना चाहते हैं, वे दो भाई आए हैं । ओ रे, जो स्वयं रोकर जगत् को रुलाते हैं, वे दो भाई आए हैं। ओ रे! जो स्वयं मतवाले बनकर दुनिया को मतवाली बनाते हैं, वे दो भाई आए हैं! ओ रे! जो चण्डाल तक को गोदी में उठा लेते हैं, वे दो भाई आए हैं ! !"

फिर यह भी गाना चाहिए—

संगीत– (भावार्थ)– "हे प्रभो, गौर निताई तुम दोनों भाई परम दयालु हो । हे नाथ, यही सुनकर मैं आया हूँ, सुना है कि तुम चण्डाल तक को गोदी में उठा लेते हो, और गोदी में उठाकर उसे हरि-नाम करने को कहते हो ।"

(२)

जन्मोत्सव में भक्तों के साथ वार्तालाप

अब भक्तगण प्रसाद पा रहे हैं। चिउड़ा मिठाई आदि अनेक प्रकार के प्रसाद पाकर वे तृप्त हुए। श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं, "मुखर्जियों को नहीं कहा था। सुरेन्द्र से कहो, बाउलों (गवैयों) को खिला दें।"

श्री बिपिन सरकार आए हैं। भक्तों ने कहा, "इनका नाम बिपिन सरकार है।" श्रीरामकृष्ण उठकर बैठे और विनीत भाव से बोले, "इन्हें आसन दो और पान दो।" उनसे कह रहे हैं, "आपके साथ बात न कर सका, आज बड़ी भीड़ है।"

गिरीन्द्र को देखकर श्रीरामकृष्ण ने बाबूराम से कहा, "इन्हें एक आसन दो।" नृत्यगोपाल को जमीन पर बैठा देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा "उसे भी एक आसन दो।"

सींती के महेन्द्र वैद्य आए हैं। श्रीरामकृष्ण हँसते हुए राखाल को इशारा कर रहे हैं, "हाथ दिखा लो।"

रामलाल से कह रहे हैं, "गिरीश घोष के साथ प्रेम कर, तो थिएटर देख सकेगा।" (हँसी)

नरेन्द्र हाजरा महाशय से बरामदे में बहुत देर तक बातचीत कर रहे थे। नरेन्द्र के पिता के देहान्त के बाद घर में बड़ा ही कष्ट हुआ है। अब नरेन्द्र कमरे के भीतर आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण–(नरेन्द्र के प्रति)–तू क्या हाजरा के पास बैठा था? तू विदेशी है, और वह विरही! हाजरा को भी डेढ़ हजार रुपयों की आवश्यकता है। (हँसी)

"हाजरा कहता है, 'नरेन्द्र में सोलह आना सतोगुण आ गया है, परन्तु रजोगुण की ज़रा लाली है। मेरा विशुद्ध सत्व,

सत्रह आना ।' (सभी की हँसी)

"मैं जब कहता हूँ, 'तुम केवल विचार करते हो, इसीलिए शुष्क हो,' तो वह कहता है, 'सूर्य की सुधा पीता हूँ, इसीलिए शुष्क हूँ ।'

"मैं जब शुद्धा भक्ति की बात कहता हूँ, जब कहता हूँ कि शुद्धा भक्ति रुपया-पैसा, ऐश्वर्य कुछ भी नहीं चाहती, तो वह कहता है, 'उनकी कृपा की बाढ़ आने पर नदी तो भर जाएगी ही, फिर गढ़े-नाले तो अपने आप ही भर जाएँगे । शुद्धा भक्ति भी होती है और षडैश्वर्य भी होते हैं। रुपये-पैसे भी होते हैं।'"

श्रीरामकृष्ण के कमरे में जमीन पर नरेन्द्र आदि अनेक भक्त बैठे हैं, गिरीश भी आकर बैठे ।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश के प्रति)– मैं नरेन्द्र को आत्मा मानता हूँ । और मैं उसका अनुगत हूँ ।

गिरीश– क्या कोई ऐसा है जिसके आप अनुगत नहीं भी हैं ?

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– उसका है मर्द का भाव (पुरुषभाव) और मेरा औरत-भाव (प्रकृतिभाव) । नरेन्द्र का ऊँचा घर, अखण्ड का घर है ।

गिरीश तम्बाकू पीने के लिए बाहर गए ।

नरेन्द्र– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– गिरीश घोष के साथ वार्तालाप हुआ, बहुत बड़े आदमी हैं । आपकी चर्चा हो रही थी ।

श्रीरामकृष्ण– क्या चर्चा ?

नरेन्द्र– आप लिखना-पढ़ना नहीं जानते हैं, हम सब पण्डित हैं, यही सब बातें हो रही थीं । (हँसी)

मणि मल्लिक– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– आप बिना पढ़े पण्डित हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र के प्रति)– सच कहता हूँ, मुझे इस बात का ज़रा भी दुःख नहीं होता कि मैंने वेदान्त आदि शास्त्र नहीं पढ़े। मैं जानता हूँ, वेदान्त का सार है 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है'। फिर गीता का सार क्या है? गीता का दस बार उच्चारण करने पर जो होता है, अर्थात् त्यागी, त्यागी!

"शास्त्र का सार श्रीगुरु-मुख से जान लेना चाहिए। उसके बाद साधन-भजन। एक आदमी ने पत्र लिखा था। पत्र पढ़ा भी न गया था कि खो गया। तब सब मिलकर ढूँढ़ने लगे। जब पत्र मिला, पढ़कर देखा, लिखा था–– 'पाँच सेर सन्देश और एक धोती भेज दो।' पढ़कर पत्र को फेंक दिया और पाँच सेर सन्देश और एक धोती का प्रबन्ध करने लगा। इसी प्रकार शास्त्रों का सार जान लेने पर फिर पुस्तकें पढ़ने की क्या आवश्यकता? अब साधन-भजन।"

अब गिरीश कमरे में आए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश के प्रति)– हाँ जी, मेरी बात तुम लोग सब क्या कह रहे थे? मैं खाता-पीता रहता हूँ।

गिरीश– आपकी बात और क्या कहूँगा? आप क्या साधु हैं?

श्रीरामकृष्ण– साधु-वाधु नहीं। सच ही तो मेरा साधु-बोध नहीं है।

गिरीश– मजाक में भी आप से हार गया।

श्रीरामकृष्ण– मैं लाल किनारी की धोती पहनकर जयगोपाल सेन के बगीचे में गया था। केशव सेन वहाँ पर था। केशव ने लाल किनारी की धोती देखकर कहा, 'आज तो लाल किनारी की बड़ी बहार है!' मैंने कहा, 'केशव का मन भुलाना होगा, इसीलिए बहार लेकर आया हूँ।'

अब फिर नरेन्द्र का संगीत होगा। श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से तानपूरा उतार देने के लिए कहा। नरेन्द्र बहुत देर से तानपूरे को बाँध रहे हैं। श्रीरामकृष्ण तथा सभी लोग अधीर हो गए हैं।

विनोद कह रहे हैं, "आज बाँधना होगा, गाना किसी दूसरे दिन होगा!" (सभी हँसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं और कह रहे हैं "ऐसी इच्छा हो रही है कि तानपूरे को तोड़ डालूँ। क्या 'टंग टंग'— फिर 'ताना नाना तेरे नुम्' होगा।"

भवनाथ– संगीत के प्रारम्भ में ऐसी ही तंगी मालूम होती है।

नरेन्द्र–(बाँधते-बाँधते)– न समझने से ही ऐसा होता है।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– देखो, हम सभी को उड़ा दिया!

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे सुन रहे हैं। नृत्यगोपाल आदि भक्तगण जमीन पर बैठे सुन रहे हैं।

संगीत (भावार्थ)

(१) ओ माँ, हृदय में अन्तर्यामिनी जाग रही है, रात-दिन मुझे गोदी में ले बैठी है।

(२) गाना गाओ रे आनन्दमयी का नाम, ओ मेरे प्राणों को आराम देनेवाली एकतन्त्री।

(३) माँ, गहरे अन्धकार में तेरा रूप चमकता है, इसीलिए योगी गुफा में रहकर ध्यान करता रहता है।

श्रीरामकृष्ण भावविभोर होकर नीचे उतर आए हैं और नरेन्द्र के पास बैठे हैं। भावविभोर होकर बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– गाना गाऊँ? नहीं, नहीं। (नृत्यगोपाल के प्रति) तू क्या कहता है? उद्दीपन के लिए सुनना चाहिए। उसके बाद क्या आया और क्या गया!

"उसने आग लगा दी, सो तो अच्छा है। उसके बाद चुप। अच्छा, तो मैं भी चुप हूँ, तू भी चुप रह।

"आनन्द-रस में मग्न होने से वास्ता!

"गाना गाऊँ? अच्छा, गाया भी जा सकता है। जल स्थिर रहने से भी जल है, और हिलने-डुलने पर भी जल है।"

नरेन्द्र को शिक्षा—ज्ञान-अज्ञान से परे रहो

नरेन्द्र पास बैठे हैं। उनके घर में कष्ट है, इसीलिए वे सदा ही चिन्तित रहते हैं। वे मामूली तौर से कभी-कभी ब्राह्म समाज में आते-जाते हैं। अभी भी सदा ज्ञान-विचार करते हैं, वेदान्त आदि ग्रन्थ पढ़ने की बहुत ही इच्छा है। इस समय उनकी आयु २३ वर्ष की है। श्रीरामकृष्ण एकदृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर नरेन्द्र के प्रति)– तू तो 'ख' (आकाश) की तरह है, परन्तु यदि टैक्स (अर्थात् घर की चिन्ता) न रहता! (सभी की हँसी)

"कृष्णकिशोर कहा करता था, मैं 'ख' हूँ। एक दिन उसके घर जाकर देखता हूँ तो वह चिन्तित होकर बैठा है। अधिक बात नहीं कर रहा है। मैंने पूछा, 'क्या हुआ जी, इस तरह क्यों बैठे हो?' उसने कहा, 'टैक्सवाला आया था, कह गया, यदि रुपये न दोगे, तो घर का सब सामान नीलाम कर लेंगे। इसीलिए मुझे चिन्ता हुई है।' मैंने हँसते हँसते कहा, 'यह कैसी बात है जी, तुम तो 'ख' (आकाश) की तरह हो। जाने दो, सालों को सब सामान ले जाने दो, तुम्हारा क्या?'

"इसीलिए तुझे कहता हूँ, तू तो 'ख' है—इतनी चिन्ता क्यों कर रहा है? जानता है, श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'अष्टसिद्धि में से एक सिद्धि के रहते कुछ शक्ति हो सकती है, परन्तु मुझे न

पाओगे।' सिद्धि द्वारा अच्छी शक्ति, बल, धन ये सब प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

"एक और बात। ज्ञान-अज्ञान से परे रहो। कई कहते हैं, अमुक बड़े ज्ञानी हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। वशिष्ठ इतने बड़े ज्ञानी थे परन्तु पुत्रशोक से बेचैन हुए थे। तब लक्ष्मण ने कहा, 'राम, यह क्या आश्चर्य है! ये भी इतने शोकार्त हैं!' राम बोले, 'भाई, जिसका ज्ञान है, उसका अज्ञान भी है; जिसको आलोक का बोध है, उसे अन्धकार का भी है; जिसे सुख का बोध है, उसे दुःख का भी है; जिसे भले का बोध है, उसे बुरे का भी है। भाई, तुम दोनों से परे चले जाओ, सुख-दुःख से परे जाओ, ज्ञान-अज्ञान से परे जाओ।' इसीलिए तुझे कहता हूँ, ज्ञान-अज्ञान से परे चला जा।"

(३)

गृहस्थ तथा दानधर्म। मनोयोग तथा कर्मयोग

श्रीरामकृष्ण फिर छोटे तखत पर आकर बैठे हैं। भक्तगण अभी जमीन पर बैठे हैं। सुरेन्द्र उनके पास बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण उनकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं और बातचीत के सिलसिले में उन्हें अनेकों उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सुरेन्द्र के प्रति)– बीच बीच में आते जाना। नागा कहा करता था, लोटा रोज रगड़ना चाहिए, नहीं तो मैला पड़ जाएगा। साधुसंग सदैव ही आवश्यक है।

"संन्यासी के लिए कामिनी-कांचन का त्याग, तुम्हारे लिए वह नहीं। तुम लोग बीच-बीच में निर्जन में जाना और उन्हें व्याकुल होकर पुकारना। तुम लोग मन में त्याग करना।

"भक्त, वीर हुए बिना भगवान तथा संसार दोनों ओर

ध्यान नहीं रख सकता। जनक राजा साधन-भजन के बाद सिद्ध होकर संसार में रहे थे। वे दो तलवारें घुमाते थे—ज्ञान और कर्म।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं—'यह संसार आनन्द की कुटिया है'—आदि।

"तुम्हारे लिए चैतन्यदेव ने जो कहा था, जीवों पर दया, भक्तों की सेवा और नाम का संकीर्तन।

"तुम्हें क्यों कह रहा हूँ? तुम एक व्यापारी की दूकान में काम कर रहे हो। अनेक काम करने पड़ते हैं, इसलिए कह रहा हूँ।

"तुम आफिस में झूठ बोलते हो, फिर भी तुम्हारी चीज़ें क्यों खाता हूँ? तुम दान, ध्यान जो करते हो। तुम्हारी जो आमदनी है उससे अधिक दान करते हो। बारह हाथ ककड़ी का तेरह हाथ बीज!

"कंजूस की चीज़ मैं नहीं खाता हूँ। उनका धन इतने प्रकारों से नष्ट हो जाता है—मामला-मुकदमा में, चोर-डकैतों से, डाक्टरों में, फिर बदचलन लड़के सब धन उड़ा देते हैं, यही सब है।

"तुम जो दान, ध्यान करते हो, बहुत अच्छा है। जिनके पास धन है उन्हें दान देना कर्तव्य है। कंजूस का धन उड़ जाता है। दाता के धन की रक्षा होती है, सत्कर्म में जाता है। कामारपुकुर में किसान लोग नाला काटकर खेत में जल लाते हैं। कभी कभी जल का इतना वेग होता है कि खेत का बाँध टूट जाता है और जल निकल जाता है, अनाज बरबाद हो जाता है; इसीलिए किसान लोग बाँध के बीच बीच में सूराख बनाकर रखते हैं; इसे 'घोघी' कहते हैं। जल थोड़ा थोड़ा करके घोघी में से होकर निकल जाता है, तब जल के वेग से बाँध नहीं टूटता

और खेत पर की मिट्टी नरम हो जाती है। उससे खेत उर्वर बन जाता है और बहुत अनाज पैदा होता है। जो दान, ध्यान करता है वह बहुत फल प्राप्त करता है, चतुर्वर्ग फल।"

भक्तगण सभी श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से दानधर्म की यह कथा एक मन से सुन रहे हैं।

सुरेन्द्र– मैं अच्छा ध्यान नहीं कर पाता। बीच-बीच में 'माँ माँ' कहता हूँ। और सोते समय 'माँ माँ' कहते कहते सो जाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण–ऐसा होने से ही काफी है। स्मरण-मनन तो है न?

"मनोयोग और कर्मयोग। पूजा, तीर्थ, जीवसेवा आदि तथा गुरु के उपदेश के अनुसार कर्म करने का नाम है कर्मयोग। जनक आदि जो कर्म करते थे, उसका नाम भी कर्मयोग है। योगी लोग जो स्मरण-मनन करते हैं उसका नाम है मनोयोग।

"फिर काली-मन्दिर में जाकर सोचता हूँ 'माँ, मन भी तो तुम हो!' इसीलिए शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा एक ही चीज़ हैं।"

सन्ध्या हो रही है। अनेक भक्त श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर घर लौट रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण पश्चिम के बरामदे में गए हैं। भवनाथ और मास्टर साथ हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भवनाथ के प्रति)– तू इतनी देर में क्यों आता है?

भवनाथ– (हँसकर)– जी, पन्द्रह दिनों के बाद दर्शन करता हूँ। उस दिन आपने स्वयं ही रास्ते में दर्शन दिया। इसलिए फिर नहीं आया।

श्रीरामकृष्ण– यह कैसी बात है रे! केवल दर्शन से क्या

होता है ? स्पर्शन, वार्तालाप ये सब भी तो चाहिए ।

(४)

गिरीश आदि भक्तों के साथ प्रेमानन्द में

सायंकाल हुआ। धीरे धीरे मन्दिर में आरती का शब्द सुनाई दे रहा है। आज फाल्गुन की शुक्ला अष्टमी तिथि; ६–७ दिनों के बाद पूर्णिमा के दिन होली महोत्सव होगा।

देवमन्दिर का चूड़ा, प्रांगण, बगीचा, वृक्षों के ऊपर के भाग चन्द्रकिरण में मनोहर रूप धारण किए हुए हैं। गंगाजी इस समय उत्तर की ओर बह रही हैं, चांदनी में चमक रही हैं, मानो आनन्द से मन्दिर के किनारे से उत्तर की ओर प्रवाहित हो रही हैं। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तखत पर बैठकर चुपचाप जगन्माता का चिन्तन कर रहे हैं।

उत्सव के बाद अभी तक दो-एक भक्त रह गये हैं। नरेन्द्र पहले ही चले गए।

आरती समाप्त हुई। श्रीरामकृष्ण भावविभोर होकर दक्षिण-पूर्व के लम्बे बरामदे पर धीरे धीरे टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण एकाएक मास्टर को सम्बोधित कर कह रहे हैं, "अहा, नरेन्द्र का क्या ही गाना है!"

मास्टर– जी, 'घने अन्धकार में,' वह गाना ?

श्रीरामकृष्ण– हाँ, उस गाने का बहुत गम्भीर मतलब है। मेरे मन को मानो अभी तक खींचकर रखा है।

मास्टर– जी, हाँ !

श्रीरामकृष्ण– अन्धकार में ध्यान, यह तंत्र का मत है। उस समय सूर्य का आलोक कहाँ है ?

श्री गिरीश घोष आकर खड़े हुए। श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं।

संगीत– (भावार्थ)– "ओ रे ! क्या मेरी माँ काली है ? ओ रे ! कालरूपी दिगम्बरी हृत्पद्म को आलोकित करती है ।"

श्रीरामकृष्ण मतवाले होकर खड़े खड़े गिरीश के शरीर पर हाथ रखकर गाना गा रहे हैं ।

संगीत– (भावार्थ)– "गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है"— इत्यादि ।

संगीत– (भावार्थ)– "इस बार मैं ठीक समझ गया हूँ; अच्छे भाववाले से भाव सीखा है । माँ, जिस देश में रात्रि नहीं है, उस देश का एक आदमी पाया हूँ; क्या दिन और क्या शाम— मैं कुछ भी नहीं जानता । नूपुर में ताल मिलाकर उस ताल का एक गाना सीखा है; वह ताल 'ताध्रिम ताध्रिम' रव से बज रहा है । मेरी नींद खुल गई है, क्या मैं फिर सोता हूँ ? योग-याग में मैं जाग रहा हूँ ! माँ, योगनिद्रा तुझे देकर मैंने नींद को सुला दिया है । प्रसाद कहता है, मैंने भुक्ति और मुक्ति इन दोनों को सिर पर रखा है । काली ही ब्रह्म है इस मर्म को जानकर मैंने धर्म और अधर्म दोनों को त्याग दिया है ।"

गिरीश को देखते देखते मानो श्रीरामकृष्ण के भाव का उल्लास और भी बढ़ रहा है । वे खड़े खड़े फिर गा रहे हैं—

संगीत– (भावार्थ)– "मैंने अभय पद में प्राणों को सौंप दिया है"— आदि ।

श्रीरामकृष्ण भाव में मस्त होकर फिर गा रहे हैं— (भावार्थ)— "मैं देह को संसाररूपी बाजार में बेचकर श्रीदुर्गा नाम खरीद लाया हूँ ।"

(गिरीश आदि भक्तों के प्रति)–

" 'भाव से शरीर भर गया, ज्ञान नष्ट हो गया ।'

परिच्छेद २

गिरीश के मकान पर

(१)

ज्ञान-भक्ति-समन्वय कथा

श्रीरामकृष्ण गिरीश घोष के बसुपाड़ावाले मकान में भक्तों के साथ बैठकर ईश्वर सम्बन्धी वार्तालाप कर रहे हैं। दिन के तीन बजे का समय है, मास्टर ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। आज बुधवार है—शुक्ला एकादशी—२५ फरवरी १८८५ ई०। पिछले रविवार को दक्षिणेश्वर मन्दिर में श्रीरामकृष्ण का जन्ममहोत्सव हो गया है। श्रीरामकृष्ण गिरीश के घर होकर स्टार थिएटर में 'वृषकेतु' नाटक देखने जायेंगे।

श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर पहले ही पधारे हैं। कामकाज समाप्त करके आने में मास्टर को थोड़ा विलम्ब हुआ। उन्होंने आकर ही देखा, श्रीरामकृष्ण उत्साह के साथ ब्रह्मज्ञान और भक्तितत्त्व के समन्वय की चर्चा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–(गिरीश आदि भक्तों के प्रति)–जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—जीव की ये तीन स्थितियां होती हैं।

"जो लोग ज्ञान का विचार करते हैं वे तीनों स्थितियों को उड़ा देते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्म तीनों स्थितियों से परे है—स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों से परे है; सत्व, रज, तम—तीनों गुणों से परे है। सभी माया है, जैसे दर्पण में परछाई पड़ती है, प्रतिबिम्ब कोई वस्तु नहीं है। ब्रह्म ही वस्तु है, बाकी सब अवस्तु।

"ब्रह्मज्ञानी और भी कहते हैं, देहात्म-बुद्धि रहने से ही

दो दिखते हैं। परछाई भी सत्य प्रतीत होती है। वह बुद्धि लुप्त होने पर 'सोऽहम्' 'मैं ही वह ब्रह्म हूँ' यह अनुभूति होती है।"

एक भक्त– तो फिर, क्या हम सब बुद्धि-विचार का मार्ग ग्रहण करें?

श्रीरामकृष्ण– विचार-पथ भी है— वेदान्तवादियों का पथ। और एक पथ है— भक्तिपथ। भक्त यदि ब्रह्मज्ञान के लिए व्याकुल होकर रोता है, तो वह उसे भी प्राप्त कर लेता है। ज्ञानयोग और भक्तियोग।

"दोनों पथों से ब्रह्मज्ञान हो सकता है; कोई कोई ब्रह्मज्ञान के बाद भी भक्ति लेकर रहते हैं— लोकशिक्षा के लिए, जैसे अवतार आदि।

"देहात्मबुद्धि, 'मैं'-बुद्धि आसानी से नहीं जाती। उनकी कृपा से समाधिस्थ होने पर जाती है— निर्विकल्प समाधि, जड़ समाधि।

"समाधि के बाद अवतार आदि का 'मैं' फिर लौट आता है— विद्या का 'मैं,' भक्त का 'मैं'। इस विद्या के 'मैं' से लोकशिक्षा होती है। शंकराचार्य ने विद्या के 'मैं' को रखा था।

"चैतन्यदेव इसी 'मैं' द्वारा भक्ति का आस्वादन करते थे, भक्तिभक्त लेकर रहते थे, ईश्वर की बातें करते थे, नाम-संकीर्तन करते थे।

"'मैं' तो सरलता से नहीं जाता, इसीलिए भक्त जाग्रत, स्वप्न आदि स्थितियों को उड़ा नहीं देते। सभी स्थितियों को मानते हैं, सत्व-रज-तम तीन गुण भी मानते हैं। भक्त देखता है, वे ही चौबीस तत्त्व बने हुए हैं। फिर देखो, साकार चिन्मय

रूप में वे दर्शन देते हैं।

"भक्त विद्यामाया की शरण लेता है। साधुसंग, तीर्थ, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य—इन सबकी शरण लेकर रहता है। वह कहता है, यदि 'मैं' सरलता से चला न जाय, तो रहे साला 'दास' बनकर, 'भक्त' बनकर।

"भक्त का भी एकाकार ज्ञान होता है। वह देखता है, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। स्वप्न की तरह नहीं कहता, परन्तु कहता है, वे ही ये सब बने हुए हैं। मोम के बगीचे में सभी कुछ मोम का है। परन्तु है अनेक रूप में।

"परन्तु पक्की भक्ति होने पर इस प्रकार बोध होता है। अधिक पित्त जमने पर पीला रोग होता है। तब मनुष्य देखता है कि सभी पीले हैं। श्रीमती राधा ने श्यामसुन्दर का चिन्तन करते करते सभी श्याममय देखा और अपने को भी श्याम समझने लगीं। सीसा यदि अधिक दिन तक पारे के तालाब में रहे तो वह भी पारा बन जाता है। 'कुमुड़' कीड़े को सोचते सोचते झींगुर निश्चल हो जाता है, हिलता नहीं, अन्त में 'कुमुड़' कीड़ा ही बन जाता है। भक्त भी उनका चिन्तन करतें करते अहंशून्य बन जाता है। फिर देखता है 'वह ही मैं हूँ, मैं ही वह हूँ।'

"झींगुर जब 'कुमुड़' कीड़ा बन जाता है, तब सब कुछ हो गया। तभी मुक्ति होती है।

"जब तक उन्होंने मैं-पन को रखा, तब तक एक भाव का सहारा लेकर उन्हें पुकारना पड़ता है—शान्त, दास्य, वात्सल्य—ये सब।

"मैं दासीभाव में एक वर्ष तक था—ब्रह्ममयी की दासी।

औरतों का कपड़ा, ओढ़ना आदि यह सब करता था, फिर नथ भी पहनता था। औरतों के भाव में रहने से काम पर विजय प्राप्त होती है।

"उसी आद्याशक्ति की पूजा करनी होती है, उन्हें प्रसन्न करना होता है। वे ही औरतों का रूप धारण करके वर्तमान हैं; इसीलिए मेरा मातृभाव है।

"मातृभाव अति शुद्ध भाव है। तन्त्र में वामाचार की बात भी है; परन्तु वह ठीक नहीं; उससे पतन होता है। भोग रखने से ही भय है।

"मातृभाव मानो निर्जला एकादशी है; किसी भोग की गन्ध नहीं है। दूसरी है फल-मूल खाकर एकादशी; और तीसरी, पूरी मिठाई खाकर एकादशी। मेरी निर्जला एकादशी है, मैंने मातृभाव से सोलह वर्ष की कुमारी की पूजा की थी। देखा, स्तन मातृस्तन हैं, योनि मातृयोनि है।

"यह मातृभाव— साधना की अन्तिम बात है। 'तुम माँ हो, मैं तुम्हारा बालक हूँ।' यही अन्तिम बात है।

"संन्यासी की निर्जला एकादशी है; यदि संन्यासी भोग रखता है; तभी भय है। कामिनी-कांचन भोग हैं। जैसे थूककर फिर उसी थूक को चाट लेना। रुपये-पैसे, मान-इज्जत, इन्द्रियसुख— ये सब भोग हैं। संन्यासी का स्त्रीभक्त के साथ बैठना या वार्तालाप करना भी ठीक नहीं है— अपनी भी हानि और दूसरों की भी हानि। दूसरे लोगों की शिक्षा नहीं होती। संन्यासी का शरीर-धारण लोक-शिक्षा के लिए है।

"औरतों के साथ बैठना या अधिक देर तक वार्तालाप करना— इसे भी रमण कहा है। रमण आठ प्रकार के हैं। कोई

औरतों की बातें सुन रहा है; सुनते सुनते आनन्द हो रहा है,—— यह एक प्रकार का रमण है। औरतों की बात कह रहा है (कीर्तन में)—— यह एक प्रकार का रमण है; औरतों के साथ एकान्त में गुपचुप बातचीत कर रहा है—— यह एक प्रकार का रमण है, औरतों की कोई चीज़ पास रख ली है, आनन्द हो रहा है—— यह एक प्रकार है; स्पर्श करना भी एक प्रकार है, इसीलिए गुरुपत्नी यदि युवती हो तो पादस्पर्श नहीं करना चाहिए। संन्यासियों के ये सब नियम हैं।

"संसारियों की अलग बात है; दो-एक पुत्र होने पर भाई-बहन की तरह रहें। उनका अन्य सात प्रकार के रमण से उतना दोष नहीं है।

"गृहस्थ के ऋण हैं। देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण; फिर स्त्रीऋण भी है; एक दो बच्चे होना और सती हो तो उसका प्रतिपालन करना।

"संसारी लोग समझ नहीं सकते कि कौन अच्छी स्त्री है और कौन खराब स्त्री; कौन विद्याशक्ति और कौन अविद्याशक्ति; जो अच्छी स्त्री है—— विद्याशक्ति—— उसमें काम, क्रोध, आदि कम होता है, नींद कम होती है। जो विद्याशक्ति है उसमें स्नेह, दया, भक्ति, लज्जा आदि होते हैं। वह सभी की सेवा करती है, वात्सल्य भाव से; और पति की भगवान में भक्ति बढ़ाने का यत्न करती है। अधिक खर्च नहीं करती, कहीं पति को अधिक श्रम न करना पड़े, कहीं ईश्वर के चिन्तन में विघ्न न हो।

"फिर मर्दानी स्त्रियों के भी लक्षण हैं। खराब लक्षण—— टेढ़ी, दबी हुई आँखें, बिल्ली जैसी आँखें, हड्डियाँ उभरी हुई, गाय के बछड़े जैसे गाल।"

गिरीश– हमारे उद्धार का उपाय क्या है?

श्रीरामकृष्ण– भक्ति ही सार है। फिर भक्ति का सत्व, भक्ति का रज, भक्ति का तम भी है।

"भक्ति का सत्व है दीन-हीन भाव; भक्ति का तम मानो डाका पड़ने का भाव; मैं उनका काम कर रहा हूँ, मुझे फिर पाप कैसा? तुम मेरी अपनी माँ हो, दर्शन देना ही होगा।"

गिरीश– (हँसते हुए)– भक्ति का तम आप ही तो सिखाते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– परन्तु उनका दर्शन करने का लक्षण है,समाधि होती है। समाधि पाँच प्रकार की है। १. चींटी की गति, महावायु उठती है, चींटी की तरह। २. मछली की गति। ३. तिर्यक् गति। ४. पक्षी की गति–– जिस प्रकार पक्षी एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाता है। ५. कपि की तरह, बन्दर की गति, मानो महावायु कूदकर माथे पर उठ गई और समाधि हो गई।

"और भी दो प्रकार की समाधि है। एक–– स्थित समाधि, एकदम बाह्यशून्य; बहुत देर तक, सम्भव है, कई दिनों तक रहे। और दूसरी–– उन्मना समाधि, एकाएक मन को चारों ओर से ऊपर लाकर ईश्वर में लगा देना।

(मास्टर के प्रति) "तुमने यह समझा है?"

मास्टर– जी हाँ।

गिरीश– क्या साधना द्वारा उन्हें प्राप्त किया जा सकता है?

श्रीरामकृष्ण– लोगों ने अनेक प्रकार से उन्हें प्राप्त किया है। किसी ने अनेक तपस्या, साधन-भजन करके प्राप्त किया है, साधनसिद्ध। कोई जन्म से सिद्ध हैं, जैसे नारद, शुकदेव आदि। इन्हें कहते हैं नित्यसिद्ध। दूसरे हैं एकाएक सिद्ध, जिन्होंने

एकाएक प्राप्त कर लिया है; पहले कोई आशा न थी। फिर कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं कि लोगों ने ईश्वर की कृपा से स्वप्न में ही ईश्वर-प्राप्ति कर ली।

(२)

गिरीश का शान्तभाव; कलि में शूद्र की भक्ति और मुक्ति

श्रीरामकृष्ण– और कुछ लोग हैं स्वप्नसिद्ध और कृपासिद्ध।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर होकर गाना गा रहे हैं।

संगीत– (भावार्थ)– "क्या श्यामारूपी धन को सभी लोग प्राप्त करते हैं! अबोध मन नहीं समझता है, यह क्या बात है!"— इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर भावाविष्ट हैं। गिरीश आदि भक्तगण सामने बैठे हैं। कुछ दिन पूर्व स्टार थिएटर में गिरीश ने अनेक बातें बताई थीं; इस समय शान्त भाव है।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश के प्रति)– तुम्हारा यह भाव बहुत अच्छा है— शान्तभाव। माँ से इसीलिए कहा था, 'माँ, उसे शान्त कर दो, मुझे ऐसा-वैसा न कहे।'

गिरीश– (मास्टर के प्रति)– न जाने किसने मेरी जीभ को दबाकर पकड़ लिया है; मुझे बात करने नहीं दे रहा है।

श्रीरामकृष्ण अभी भी भावमग्न हैं, अन्तर्मुख। बाहर के व्यक्ति, वस्तु, धीरे-धीरे मानो सभी को भूलते जा रहे हैं। ज़रा स्वस्थ होकर मन को उतार रहे हैं। भक्तों को फिर देख रहे हैं। (मास्टर को देखकर) "ये सब वहाँ पर (दक्षिणेश्वर में) जाते हैं,— जाते हैं तो जायँ, माँ सब कुछ जानती हैं। (पड़ोसी बालक के प्रति)— हाँ जी, तुम क्या समझते हो? मनुष्य का क्या कर्तव्य है?"

सभी चुप हैं। क्या श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं कि ईश्वर की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य है ?

(नारायण के प्रति)– क्या तू पास होना नहीं चाहता ? अरे सुन, जो पाशमुक्त हो जाता है वह शिव बन जाता है और जो पाशबद्ध रहता है वह जीव है।

श्रीरामकृष्ण अभी भावमग्न हैं। पास ही ग्लास में जल रखा था, उन्होंने उसका पान किया। वे अपने आप कह रहे हैं, 'कहाँ, भाव में तो मैंने जल पी लिया !'

अभी सायंकाल नहीं हुआ। श्रीरामकृष्ण गिरीश के भाई अतुल के साथ बातचीत कर रहे हैं। अतुल भक्तों के साथ सामने ही बैठे हैं। एक ब्राह्मण पड़ोसी भी बैठे हैं। अतुल हाईकोर्ट में वकील हैं।

श्रीरामकृष्ण– (अतुल के प्रति)– आप लोगों से यही कहता हूँ, आप दोनों करें, संसार धर्म भी करें और जिससे भक्ति हो वह भी करें।

ब्राह्मण पड़ोसी– क्या ब्राह्मण न होने पर मनुष्य सिद्ध होता है ?

श्रीरामकृष्ण– क्यों ? कलियुग में शूद्र की भक्ति की कथाएँ हैं। शबरी, रैदास, गुहल चण्डाल,–– ये सब हैं।

नारायण– (हँसते हुए)– ब्राह्मण शूद्र सब एक हैं।

ब्राह्मण– क्या एक जन्म में होता है ?

श्रीरामकृष्ण– उनकी दया होने पर क्या नहीं होता ! हजार वर्ष के अन्धकारपूर्ण कमरे में बत्ती लाने पर क्या थोड़ा थोड़ा करके अन्धकार चला जाता है ? एकदम रोशनी हो जाती है।

(अतुल के प्रति)–"तीव्र वैराग्य चाहिए––जैसी नंगी तलवार! ऐसा वैराग्य होने पर स्वजन काले साँप जैसे लगते हैं; घर

कुआँ सा प्रतीत होता है।

"और अन्तर से व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। अन्तर की पुकार वे अवश्य सुनेंगे।"

सब चुपचाप हैं। श्रीरामकृष्ण ने जो कुछ कहा, एकाग्र चित्त से सुनकर सभी उस पर चिन्तन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (अतुल के प्रति)– क्यों, वैसी दृढ़ता––व्याकुलता नहीं होती ?

अतुल– मन कहाँ ईश्वर में रह पाता है ?

श्रीरामकृष्ण– अभ्यासयोग ! प्रति दिन उन्हें पुकारने का अभ्यास करना चाहिए। एक दिन में नहीं होता। रोज पुकारते पुकारते व्याकुलता आ जाती है।

"रात-दिन केवल विषय-कर्म करने पर व्याकुलता कैसे आएगी? यदु मल्लिक शुरू शुरू में ईश्वर की बातें अच्छी तरह सुनता था, स्वयं भी कहता था। आजकल अब उतना नहीं कहता। रात-दिन चापलूसों को लेकर बैठा रहता है, केवल विषय की बातें !"

सायंकाल हुआ। कमरे में बत्ती जलाई गई है। श्रीरामकृष्ण देवताओं के नाम ले रहे हैं, गाना गा रहे हैं और प्रार्थना कर रहे हैं।

कह रहे हैं, 'हरि बोल' 'हरि बोल' 'हरि बोल'; फिर 'राम' 'राम' 'राम'; फिर 'नित्यलीलामयी', 'ओ माँ ! उपाय बता दे, माँ !' 'शरणागत' 'शरणागत' 'शरणागत'।

गिरीश को व्यस्त देखकर श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर चुप रहे। तेजचन्द्र से कह रहे हैं, 'तू ज़रा पास आकर बैठ।'

तेजचन्द्र पास बैठे। थोड़ी देर बाद मास्टर से कान में कह रहे हैं, 'मुझे जाना है।'

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– क्या कह रहा है ?

मास्टर– घर जाना है–– यही कह रहा है ।

श्रीरामकृष्ण– उन्हें (बालभक्तों को) इतना क्यों चाहता हूँ ? वे निर्मल पात्र हैं–– विषयबुद्धि प्रविष्ट नहीं हुई है । विषयबुद्धि रहने पर उपदेशों को धारण नहीं कर सकते । नये बर्तन में दूध रखा जा सकता है, दही के बर्तन में दूध रखने से खराब हो जाता है ।

" जिस बर्तन में लहसुन घोला हो, उस बर्तन को चाहे हजार वार धो डालो, लहसुन की गन्ध नहीं जाती ! "

(३)

श्रीरामकृष्ण स्टार थिएटर में–– वृषकेतु नाटक; नरेन्द्र आदि के साथ

श्रीरामकृष्ण वृषकेतु नाटक देखेंगे । बीडन स्ट्रीट पर जहाँ बाद में मनोमोहन थिएटर हुआ, पहले वहाँ स्टार थिएटर था । श्रीरामकृष्ण थिएटर में आकर बॉक्स में दक्षिण की ओर मुँह करके बैठे । मास्टर आदि भक्तगण पास ही बैठे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– नरेन्द्र आया है ?

मास्टर– जी हाँ ।

अभिनय हो रहा है । कर्ण और पद्मावती ने आरी को दोनों ओर से पकड़कर वृषकेतु का बलिदान किया । पद्मावती ने रोते रोते मांस को पकाया । वृद्ध ब्राह्मण अतिथि आनन्द मनाते हुए कर्ण से कह रहे हैं, " अब आओ, हम एक साथ बैठकर पका हुआ मांस खाएँ । " कर्ण कह रहे हैं, " यह मुझसे न होगा । पुत्र का मांस खा न सकूँगा । "

एक भक्त ने सहानुभूति प्रकट करके धीरे से आर्तनाद किया । श्रीरामकृष्ण ने भी दुःख प्रकट किया ।

खेल समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण रंगमंच के विश्रामगृह

में आकर उपस्थित हुए। गिरीश, नरेन्द्र आदि भक्तगण बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण कमरे में जाकर नरेन्द्र के पास खड़े हुए और बोले, " मैं आया हूँ। "

श्रीरामकृष्ण बैठे हैं। अभी वाद्यों का शब्द सुना जा रहा है।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों के प्रति)– यह बाजा सुनकर मुझे आनन्द हो रहा है। वहाँ पर (दक्षिणेश्वर में) शहनाई बजती थी, मैं भावमग्न हो जाता था। एक साधु मेरी स्थिति देखकर कहा करता था, ' ये सब ब्रह्मज्ञान के लक्षण हैं। '

वाद्य बन्द होने पर श्रीरामकृष्ण फिर बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश के प्रति)– यह तुम्हारा थिएटर है या तुम लोगों का ?

गिरीश– जी, हम लोगों का।

श्रीरामकृष्ण– ' हम लोगों का ' शब्द ही अच्छा है। ' मेरा ' कहना ठीक नहीं। कोई कोई कहता है 'मैं खुद आया हूँ। ' ये सब बातें हीनबुद्धि अहंकारी लोग कहते हैं।

नरेन्द्र– सभी कुछ थिएटर है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, हाँ, ठीक। परन्तु कहीं विद्या का खेल है, कहीं अविद्या का।

नरेन्द्र– सभी विद्या के खेल हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, हाँ; परन्तु यह तो ब्रह्मज्ञान से होता है। भक्ति और भक्त के लिए दोनों ही हैं, विद्यामाया और अविद्यामाया। तू ज़रा गाना गा।

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं––

संगीत– (भावार्थ)– "चिदानन्द समुद्र के जल में प्रेमानन्द की लहरें हैं। अहा ! महाभाव में रासलीला की क्या

ही माधुरी है! नाना प्रकार के विलास, आनन्द-प्रसंग, कितनी ही नई नई भाव-तरंगें नए नए रूप धारणकर डूब रही हैं, उठ रही हैं और तरह तरह के खेल कर रही हैं। महायोग में सभी एकाकार बन गए। देश-काल की पृथक्ता तथा भेदाभेद मिट गए और मेरी आशा पूर्ण हुई। मेरी सभी आकांक्षाएँ मिट गईं। अब हे मन, आनन्द में मस्त होकर, दोनों हाथ उठाकर 'हरि हरि' बोल।"

नरेन्द्र जब गा रहे हैं, 'महायोग में सब एकाकार हो गए,'-- तो श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'यह ब्रह्मज्ञान से होता है। तू जो कह रहा था,-- सभी विद्या है।'

नरेन्द्र जब गा रहे हैं, "हे मन! आनन्द में मस्त होकर दोनों हाथ उठाकर 'हरि हरि' बोल"-- तो श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से कह रहे हैं, 'इसे दो बार कह।'

संगीत समाप्त होने पर भक्तों के साथ वार्तालाप हो रहा है।

गिरीश- देवेन्द्र बाबू नहीं आये हैं। वे अभिमान करके कहते हैं, 'हमारे अन्दर तो कुछ सार नहीं है, हम आकर क्या करेंगे!'

श्रीरामकृष्ण- (विस्मित होकर)- कहाँ, पहले तो वे वैसी बातें नहीं करते थे?

श्रीरामकृष्ण जलपान कर रहे हैं, नरेन्द्र को भी कुछ खाने को दिया।

यतीन देव- (श्रीरामकृष्ण के प्रति)- आप 'नरेन्द्र खाओ' 'नरेन्द्र खाओ' कह रहे हैं, और हम लोग क्या कहीं से बहकर आए हैं!

यतीन को श्रीरामकृष्ण बहुत चाहते हैं। वे दक्षिणेश्वर में

जाकर बीच-बीच में दर्शन करते हैं। कभी-कभी रात भी वहीं बिताते हैं। वह शोभाबाजार के राजाओं के घर का (राधाकान्त देव के घर का) लड़का है।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र के प्रति हँसते हुए)– देख, यतीन तेरी ही बात कर रहा है।

श्रीरामकृष्ण ने हँसते हँसते यतीन की ठुड्डी पकड़कर प्यार करते हुए कहा, "वहाँ जाना, जाकर खाना।" अर्थात् 'दक्षिणेश्वर में जाना।' श्रीरामकृष्ण फिर 'विवाहविभ्राट' नाटक का अभिनय देखेंगे। बॉक्स में जाकर बैठे। नौकरानी की बात सुनकर हँसने लगे।

थोड़ी देर सुनकर उनका मन दूसरी ओर गया। मास्टर के साथ धीरे-धीरे बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– अच्छा, गिरीश जो कह रहा है (अर्थात् अवतार) क्या वह सत्य है?

मास्टर– जी, ठीक बात है। नहीं तो सभी के मन में क्यों लग रही है?

श्रीरामकृष्ण– देखो, अब एक स्थिति आ रही है, पहले की स्थिति उलट गई है। अब धातु की चीजें छू नहीं सकता हूँ।

मास्टर विस्मित होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– यह जो नवीन स्थिति है, इसका एक बहुत ही गुप्त रहस्य है।

श्रीरामकृष्ण धातु छू नहीं सक रहे हैं। सम्भव है, अवतार माया के ऐश्वर्य का कुछ भी भोग नहीं करते, क्या इसीलिए श्रीरामकृष्ण ये सब बातें कह रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– अच्छा, मेरी स्थिति कुछ बदल रही है, देखते हो?

मास्टर– जी, कहाँ ?

श्रीरामकृष्ण– कर्म में ?

मास्टर– अब कर्म बढ़ रहा है–– अनेक लोग जान रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– देख रहे हो! पहले जो कुछ कहता था, अब सफल हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर चुप रहकर एकाएक कह रहे हैं– "अच्छा, पल्टू का अच्छा ध्यान क्यों नहीं होता ?"

अब श्रीरामकृष्ण के दक्षिणेश्वर जाने की व्यवस्था हो रही है।

श्रीरामकृष्ण ने किसी भक्त के पास गिरीश के सम्बन्ध में कहा था, "पीसे हुए लहसुन की बाटी को हजार बार धोओ, पर लहसुन की गन्ध क्या सम्पूर्ण रूप से जाती है ?" गिरीश ने भी इसीलिए मन ही मन प्रेम-कोप किया है। जाते समय गिरीश श्रीरामकृष्ण से कुछ कह रहे हैं।

गिरीश– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– लहसुन की गन्ध क्या जाएगी ?

श्रीरामकृष्ण– जाएगी।

गिरीश– तो आप कह रहे हैं–– जाएगी ?

श्रीरामकृष्ण– कटोरी में अगर लहसुन की गन्ध आ रही हो तो उसे आँच पर रख देने से गन्ध चली जाती है और बर्तन शुद्ध हो जाता है।

"जो कहता है 'मेरा नहीं होगा,' उसका नहीं होता। मुक्ति का अभिमान करनेवाला मुक्त ही हो जाता है और बद्ध-अभिमानी बद्ध ही रह जाता है। जो ज़ोर से कहता है 'मैं मुक्त हूँ,' वह मुक्त ही हो जाता है! पर जो दिनरात कहता है, 'मैं बद्ध हूँ' वह बद्ध ही हो जाता है।"

परिच्छेद ३

श्रीरामकृष्ण तथा भक्तियोग

(१)

दक्षिणेश्वर में भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण कमरे में छोटे तखत पर समाधिमग्न बैठे हुए हैं। सब भक्त जमीन पर बैठे हुए टकटकी लगाये उन्हें देख रहे हैं। महिमाचरण, रामदत्त, मनमोहन, नवाई चैतन्य, मास्टर आदि कितने ही लोग बैठे हुए हैं। आज होली है, महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव का जन्मदिन है। रविवार, १ मार्च १८८५।

भक्तगण एकटक देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की समाधि छूटी। इस समय भी भाव पूर्ण मात्रा में है। श्रीरामकृष्ण महिमाचरण से कह रहे हैं-- "बाबू हरिभक्ति की कोई कथा---"

महिमाचरण– आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्। नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥ अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्। नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥ विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्स। व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥ लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्। भवनिगड-निबन्धच्छेदनीं कर्तरीं च॥

"नारद– पंचरात्र में है कि नारद जब तपस्या कर रहे थे, यह दैववाणी उसी समय हुई थी।"

श्रीरामकृष्ण– जीवकोटि और ईश्वरकोटि, दो हैं। जीवकोटि की भक्ति वैधी भक्ति है-- इतने उपचार से पूजा की जाएगी, इतना जप और इतना पुरश्चरण किया जाएगा--- इस वैधी भक्ति के बाद है ज्ञान। इसके बाद है लय। इस लय के बाद

फिर जीव नहीं लौटता ।

"ईश्वरकोटि की और बात है— जैसे अनुलोम और विलोम । 'नेति-नेति' करके वह छत पर पहुँचकर जब देखता है, तो छत जिन चीज़ों की बनी हुई है— चूना, सुरखी और ईंटों की— सीढ़ी भी उन्हीं चीज़ों की बनी हुई है, तब वह चाहे तो छत में रह जाय, चाहे चढ़ना-उतरना जारी रखे । वह दोनों ही कर सकता है ।

"शुकदेव समाधिस्थ थे । निर्विकल्प समाधि— जड़ समाधि हो गई थी । भगवान ने नारद को भेजा, परीक्षित को भागवत सुनाना था । उधर शुकदेव जड़ की तरह बाह्य चेतना से रहित बैठे हुए थे । तब नारद वीणा बजाते हुए श्रीभगवान के रूप का चार श्लोकों में वर्णन गाने लगे । जब वे पहला श्लोक गा रहे थे, तब शुकदेव को रोमांच हुआ । क्रमशः आँसू बहने लगे । भीतर— हृदय में— चिन्मयस्वरूप के दर्शन करने लगे । जड़ समाधि के पश्चात् फिर रूप के दर्शन भी हुए । शुकदेव ईश्वर-कोटि के थे ।

"हनुमान ने साकार और निराकार, दोनों के दर्शन कर लेने के पश्चात् श्रीराम की मूर्ति पर अपनी निष्ठा रखी थी । श्रीराम की वह मूर्ति सच्चिदानन्द की मूर्ति है ।

"प्रह्लाद कभी तो 'सोऽहम्' देखते थे और कभी दासभाव में रहते थे । भक्ति न लें तो क्या लेकर रहें ? इसीलिए सेव्य और सेवक का भाव लेना पड़ता है,— तुम प्रभु हो, मैं दास— यह भाव, हरि-रसास्वादन के लिए । रस-रसिकों का यह भाव है— हे ईश्वर, तुम रस हो, मैं रसिक हूँ ।

"भक्ति के 'मैं' में, विद्या के 'मैं' तथा बालक के 'मैं' में

दोष नहीं। शंकराचार्य ने विद्या का 'मैं' रखा था—लोकशिक्षा के लिए। बालक के 'मैं' में दृढ़ता नहीं है। बालक गुणातीत है—वह किसी गुण के वश नहीं। अभी अभी वह गुस्सा हो गया। थोड़ी ही देर में कहीं कुछ नहीं। देखते ही देखते उसनें खेलने के लिए घरौंदा बनाया, फिर तुरन्त ही उसे भूल भी गया। अभी तो खेलनेवाले साथियों को वह प्यार कर रहा है, फिर कुछ दिनों के लिए अगर उन्हें न देखा तो सब भूल भी गया। बालक सत्व, रज और तम किसी गुण के वश नहीं है।

"तुम भगवान हो, मैं भक्त हूँ, यह भक्तों का भाव है,—यह 'मैं' भक्ति का 'मैं' है। लोग भक्ति का 'मैं' क्यों रखते हैं? इसका कुछ अर्थ है। 'मैं' मिटने का तो है ही नहीं, तो 'मैं' दास बना हुआ पड़ा रहे—'भक्त का मैं' होकर।

"लाख विचार करो, पर 'मैं' नहीं जाता। 'मैं' कुम्भ का स्वरूप है, और ब्रह्म है समुद्र, चारों ओर जल राशि। कुम्भ के भीतर भी जल है, बाहर भी जल। जब तक कुम्भ है, 'मैं' और 'तुम' हैं, तब तक तुम भगवान हो, मैं भक्त हूँ; तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ; यह भी है। विचार चाहे लाख करो, परन्तु इसे छोड़ने की शक्ति नहीं। कुम्भ अगर न रहे, तो और बात है।"

(२)

नरेन्द्र के प्रति संन्यास का उपदेश

नरेन्द्र आए और उन्होंने प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से बातचीत कर रहे हैं। बातचीत करते हुए जमीन पर आकर बैठे। जमीन पर चटाई बिछी हुई है। इतने में कमरा भी आदमियों से भर गया। भक्तगण भी हैं और बाहर आदमी भी आए हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से) – तेरी तबियत अच्छी है न ? सुना है, तू गिरीश घोष के यहाँ प्रायः जाया करता है ?

नरेन्द्र– जी हाँ, कभी कभी जाया करता हूँ।

इधर कुछ महीनों से श्रीरामकृष्ण के पास गिरीश आया-जाया करते हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, गिरीश का विश्वास इतना जबरदस्त है कि पकड़ में नहीं आता। उन्हें जैसा विश्वास है, वैसा ही अनुराग भी है। घर में सदा ही श्रीरामकृष्ण की चिन्ता में मस्त रहा करते हैं। नरेन्द्र प्रायः वहाँ जाते हैं। हरिपद, देवेन्द्र तथा और भी कई भक्त प्रायः उनके यहाँ जाया करते हैं। गिरीश उनके साथ श्रीरामकृष्ण की ही चर्चा किया करते हैं। गिरीश संसारी हैं; इधर श्रीरामकृष्ण देखते हैं, नरेन्द्र संसार में न रहेंगे,—वे कामिनी-कांचन त्यागी होंगे, अतएव नरेन्द्र से कह रहे हैं—

"तू गिरीश घोष के यहाँ क्या बहुत जाया करता है ?

"परन्तु लहसुन के कटोरे को चाहे जितना धोओ, कुछ न कुछ बू तो रहेगी ही। ये लड़के शुद्ध आधार हैं, कामिनी और कांचन का स्पर्श अभी उन्होंने नहीं किया; बहुत दिनों तक कामिनी और कांचन का उपभोग करने पर लहसुन की तरह बू आने लगती है।

"जैसे कौए का काटा हुआ आम। देवता पर चढ़ ही नहीं सकता, अपने खाने में भी सन्देह है। जैसे नई हण्डी और दही जमाई हण्डी—दही जमाई हण्डी में दूध रखते हुए डर लगता है। अक्सर दूध खराब हो जाता है।

"गिरीश जैसे गृहस्थ एक दूसरी श्रेणी के हैं। वे योग भी चाहते हैं और भोग भी। जैसा भाव रावण का था— नाग-कन्याओं

और देवकन्याओं को हथियाना चाहता था, उधर राम की प्राप्ति की भी आशा रखता था।

"असुर सब अनेक प्रकार के भोग भी करते हैं और नारायण के पाने की भी इच्छा रखते हैं।"

नरेन्द्र– गिरीश घोष ने पहले का संग छोड़ दिया है।

श्रीरामकृष्ण– बूढ़ा बैल बधिया बनाया गया है। मैंने बर्दवान में देखा था, एक बधिया एक गाय के पीछे लगा हुआ था। देखकर मैंने पूछा, यह कैसा?— यह तो बधिया है। तब गाड़ीवान ने कहा— 'महाराज, बड़ा हो जाने पर यह बधिया किया गया था। इसीलिए पहले के संस्कार नहीं गए।'

"एक जगह अनेक संन्यासी बैठे हुए थे। उधर से एक औरत निकली। सब के सब ईश्वर-चिन्तन कर रहे थे। उनमें से एक ने ज़रा नज़र तिरछी करके उसे देख लिया। तीन लड़के हो जाने के बाद उसने संन्यास लिया था।

"एक कटोरे में अगर लहसुन पीसकर घोल दिया जाय, तो क्या लहसुन की बू जाती है? इमली के पेड़ में क्या कभी आम फलते हैं? यह हो सकता है कि अगर विभूति का बल किसी को हुआ, तो वह इमली में भी आम लगा देता है, परन्तु क्या विभूति सभी के पास रहती है?

"संसारी आदमियों को अवसर कहाँ? एक ने एक भागवत-पाठी पण्डित चाहा था। उसके मित्र ने कहा— 'एक बड़ा अच्छा भागवती पण्डित है, परन्तु कुछ अड़चन है। वह यह कि उसे खुद अपने घर की खेती का काम संभालना पड़ता है, उसके चार हल चलते हैं और आठ बैल हैं। सदा उसे अपने काम की देख-रेख करनी पड़ती है। इसलिए अवकाश नहीं है।' जिसे पण्डित की

ज़रूरत थी, उसने कहा, 'मुझे इस तरह के भागवती पण्डित की ज़रूरत नहीं है, जिसे अवकाश ही न हो। हल और बैल वाले भागवती पण्डित की तलाश मैं नहीं करता, मैं तो ऐसा पण्डित चाहता हूँ जो मुझे भागवत सुना सके।'

"एक राजा प्रतिदिन भागवत सुनता था, पाठ समाप्त करके पण्डितजी रोज कहते थे, महाराज, आप समझे? राजा भी रोज कहता, पहले तुम खुद समझो। पण्डित घर जाकर रोज सोचता था, 'राजा ऐसी बात क्यों कहता है कि पहले तुम खुद समझो?' वह पण्डित भजन-पूजन भी करता था, क्रमशः उसे होश हुआ। तब उसने देखा, ईश्वर का पादपद्म ही सार वस्तु है और सब मिथ्या। संसार से विरक्त होकर वह निकल गया। एक आदमी को उसने राजा के पास इतना कहने के लिए भेज दिया कि 'राजा, अब वह समझ गया है।'

"परन्तु क्या मैं इन्हें घृणा करता हूँ? नहीं, मैं उन्हें ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से देखता हूँ। वे ही सब कुछ हुए हैं— सब नारायण है। सब योनियों को मातृयोनि मानता हूँ, तब वेश्या और सती लक्ष्मी में कोई भेद नहीं दीख पड़ता।

"क्या कहूँ, देखता हूँ, सब के सब मटर की दाल के ग्राहक हैं। कामिनी और कांचन नहीं छोड़ना चाहते। आदमी स्त्रियों के रूप पर मुग्ध हो जाते हैं, रुपये और ऐश्वर्य का लालच करते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि ईश्वर के रूप का दर्शन करने पर ब्रह्मपद भी तुच्छ हो जाता है।

"रावण से किसी ने कहा था, तुम इतने रूप बदलकर तो सीता के पास जाते हो; परन्तु श्रीरामचन्द्र का रूप क्यों नहीं धारण करते? रावण ने कहा, 'राम का रूप हृदय में एक बार

भी देख लेने पर रम्भा और तिलोत्तमा चिता की खाक जान पड़ती हैं। ब्रह्मपद भी तुच्छ हो जाता है— पराई स्त्री की तो बात ही दूर रही।'

"सब के सब मटर की दाल के ग्राहक हैं। शुद्ध आधार के हुए बिना ईश्वर पर शुद्धा भक्ति नहीं होती— एक लक्ष्य नहीं रहता, कितनी ही ओर मन दौड़ता फिरता है।

(मनोमोहन से) "तुम गुस्सा करो और चाहे जो करो, राखाल से मैंने कहा, तू अगर ईश्वर के लिए गंगा में डूबकर मर जाय, तो यह बात मैं सुन लूँगा, परन्तु तू किसी की गुलामी करता है, ऐसी बात न सुनूँ। नेपाल से एक लड़की आई थी। इसराज बजाकर उसने बहुत अच्छा गाया। भजन गाती थी। किसी ने पूछा, क्या तुम्हारा विवाह हो गया है? उसने कहा, 'अब और किसकी दासी बनूँ— एक ईश्वर की दासी हूँ।'

"कामिनी और कांचन के भीतर रहकर कैसे कोई सिद्ध हो? वहाँ अनासक्त होना बहुत ही मुश्किल है। एक ओर बीबी का गुलाम, दूसरी ओर रुपये का गुलाम, तीसरी ओर मालिक का गुलाम— उसकी नौकरी बजानी पड़ती है।

"एक फकीर जंगल में कुटी बनाकर रहता था। तब अकबर शाह दिल्ली के बादशाह थे। फकीर के पास बहुत से आदमी आया-जाया करते थे। अतिथि-सत्कार की उसे बड़ी इच्छा हुई। एक दिन उसने सोचा, बिना रुपये-पैसे के अतिथि-सत्कार कैसे हो सकता है? इसलिए एक बार अकबर शाह के दरबार में चलूँ। साधु-फकीर के लिए सब जगह द्वार खुला रहता है। जब फकीर वहाँ पहुँचा, तब अकबर शाह नमाज़ पढ़ रहे थे। फकीर मसज़िद में उसी जगह पर जाकर बैठ गया। उसने सुना कि

नमाज़ पूरी करके अकबर शाह खुदा से कह रहे थे, 'ऐ खुदा, मुझे तू दौलतमन्द कर, खुश रख'— तथा और भी इसी तरह की कितनी ही इच्छाएँ पूरी करने के लिए खुदा से दुआएँ माँगते थे। उसी समय फकीर ने वहाँ से उठ जाना चाहा। अकबर शाह ने बैठने के लिए इशारा किया। नमाज़ पूरी करके बादशाह ने आकर पूछा, 'आप बैठे थे, फिर चले कैसे?' फकीर ने कहा, 'यह शाहंशाह कें सुनने लायक बात नहीं है, मैं जाता हूँ।' बादशाह के ज़िद करने पर फकीर ने कहा, 'मेरे यहाँ बहुत से आदमी आया करते हैं, इसीलिए मैं कुछ रुपए माँगने आया था।' अकबर ने पूछा, 'तो आप चले क्यों जा रहे हैं?' फकीर ने कहा, 'मैंने देखा, तुम भी दौलत के कंगाल हो, और सोचा कि यह भी तो फकीर ही है, फकीर से क्या माँगू ? माँगना ही है तो खुदा से ही माँगूँगा।'"

नरेन्द्र— गिरीश घोष इस समय बस ऐसी ही चिन्ताएँ करते हैं।

श्रीरामकृष्ण की सत्वगुण की अवस्था

श्रीरामकृष्ण— यह तो बहुत ही अच्छा है; परन्तु इतनी गालियाँ क्यों दिया करता है? मेरी वह अवस्था नहीं है। जब बिजली गिरती है, तब मोटी चीज़ें उतनी नहीं हिलतीं, परन्तु झरोखे की झंझरिया हिल जाती हैं। मेरी वह अवस्था नहीं है, सतोगुण की अवस्था में शोर-गुल नहीं सहा जाता। हृदय इसीलिए चला गया, माँ ने उसे नहीं रखा। पिछले दिनों में बड़ी बढ़ा-चढ़ी करने लगा था। मुझे गालियाँ देता था, हल्ला मचाता था।

"गिरीश घोष जो कुछ कहता है, वह तेरे साथ कहीं कुछ मिला भी?"

नरेन्द्र— मैंने कुछ कहा नहीं, वे ही कहा करते हैं, उन्हें अवतार

पर विश्वास है। मैंने कुछ कहा नहीं।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु खूब विश्वास है, देखा है न?

भक्तगण एकदृष्टि से देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण नीचे ही चटाई पर बैठे हैं। पास मास्टर हैं, सामने नरेन्द्र, चारों ओर भक्त मण्डली।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप रहकर एकदृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं।

कुछ देर बाद नरेन्द्र से कहा, 'भैया, कामिनी और कांचन के बिना छूटे कुछ न होगा।' कहते ही कहते श्रीरामकृष्ण भावमग्न हो गए। दृष्टि करुणा से मिली हुई सस्नेह हो रही है। साथ ही भाव में मस्त होकर गाने लगे।

(भावार्थ) "बात करते हुए भी मुझे भय होता है, और कुछ नहीं बोलता तो भी भय होता है। मेरे हृदय में यह सन्देह है कि कहीं तुम्हारे जैसे धन को मैं खो न बैठूँ। हम जानते हैं, तेरा मन जैसा है, तुझे हम वैसा ही मन्त्र देंगे, फिर तो तेरा मन तेरे पास है ही। हम लोग जिस मन्त्र के बल से विपत्तियों से त्राण पाते हैं, उसी मन्त्र से दूसरों को भी उत्तीर्ण कर देते हैं।"

श्रीरामकृष्ण को जैसे भय हो रहा हो कि नरेन्द्र किसी दूसरे का हो गया। नरेन्द्र आँखों में आँसू भरे हुए देख रहे हैं।

बाहर के एक भक्त श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आए हुए थे। वे भी पास बैठे हुए सब कुछ देख-सुन रहे थे।

भक्त– महाराज, कामिनी और कांचन का अगर त्याग ही करना है तो गृहस्थ फिर कहाँ जाय?

श्रीरामकृष्ण– तुम गृहस्थी करो न! हम लोगों के बीच में एक ऐसी ही बात हो गई।

महिमाचरण चुपचाप बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (महिमा से)– बढ़ जाओ, और भी आगे बढ़ जाओ। चन्दन की लकड़ी मिलेगी; और भी आगे बढ़ जाओ, चांदी की खान मिलेगी; और भी आगे बढ़ जाओ, सोने की खान पाओगे; और भी आगे बढ़ो तो हीरे और मणि मिलेंगे; बढ़े जाओ।

महिमा– पर जी खींचता रहता है, आगे बढ़ने देता ही नहीं।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– क्यों, लगाम काट दो। उनके नाम के प्रभाव से काट डालो। उनके नाम के प्रभाव से कालपाश भी छिन्न हो जाता है।

पिता के निधन के बाद से संसार में नरेन्द्र को बड़ा कष्ट हो रहा है। उन पर कई आफतें गुज़र चुकीं। बीच-बीच में श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "तू चिकित्सक तो नहीं बना ?—

"शतमारी भवेद्वैद्यः सहस्रमारी चिकित्सकः।" (सब हँसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण का शायद यह अर्थ है कि नरेन्द्र इतनी ही उम्र में बहुत कुछ देख चुका—सुख और दुःख के साथ उसका बहुत परिचय हो चुका।

नरेन्द्र ज़रा मुस्कराकर रह गए।

(३)

गृहस्थों के प्रति अभयदान

नवाई चैतन्य गा रहे हैं। भक्तगण बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए हैं। एकाएक उठे। कमरे के बाहर गए। भक्त सब बैठे ही रहे। गाना हो रहा है। मास्टर श्रीरामकृष्ण के साथ-साथ गए। श्रीरामकृष्ण पक्के आंगन से होकर कालीमन्दिर की ओर जा रहे हैं। पहले श्रीराधाकान्त के मन्दिर में गए।

भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करते हुए देख मास्टर ने भी प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण के सामनेवाली थाली में अबीर रखा हुआ था। आज होली है, श्रीरामकृष्ण भूले नहीं। थाली से अबीर लेकर श्रीराधाकान्तजी पर चढ़ाया। फिर उन्हें प्रणाम किया।

अब कालीमन्दिर जा रहे हैं। पहले सातों सीढ़ियों पर चढ़कर चबूतरे पर खड़े हुए, माता को प्रणाम किया, फिर मन्दिर में गए। माता पर अबीर चढ़ाया। प्रणाम करके कालीमन्दिर से लौट रहे हैं। कालीमन्दिर के चबूतरे पर मूर्ति के सामने खड़े होकर मास्टर से उन्होंने कहा, 'बाबूराम को तुम क्यों नहीं ले आए?'

श्रीरामकृष्ण फिर आंगन से कमरे की ओर जा रहे हैं। साथ में मास्टर हैं और अबीर की दूसरी थाली हाथ में लिए हुए आ रहे हैं। कमरे में आकर श्रीरामकृष्ण ने सब चित्रों पर अबीर चढ़ाया—दो-एक चित्रों को छोड़कर,—उनमें एक उनका अपना चित्र था और दूसरी ईशु की तस्वीर। अब आप बरामदे में आए। कमरे में प्रवेश करते ही जो बरामदे का भाग है, वहीं नरेन्द्र बैठे हुए हैं। किसी-किसी भक्त के साथ उनकी बातचीत हो रही है। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र पर अबीर छोड़ा। कमरे में आप लौट रहे थे, उसी समय मास्टर भी जा रहे थे, आपने मास्टर पर भी अबीर छोड़ा।

कमरे में जितने भक्त थे, सब पर आपने अबीर डाला। सब के सब प्रणाम करने लगे।

दिन का पिछला पहर हो चला। भक्तगण इधर-उधर घूमने लगे। श्रीरामकृष्ण मास्टर से धीरे-धीरे बातचीत करने लगे। पास कोई नहीं है। बालक-भक्तों की बात कह रहे हैं। कह रहे

हैं, "अच्छा, सब तो कहते हैं कि ध्यान खूब होता है, परन्तु पल्टू का ध्यान क्यों नहीं होता ?

"नरेन्द्र के लिए तुम्हारे मन में क्या विचार उठता है ? बड़ा सरल है; परन्तु उस पर संसार की बड़ी बड़ी आफतें गुजर चुकी हैं, इसीलिए कुछ दबा हुआ है। यह भाव रहेगा भी नहीं।"

श्रीरामकृष्ण रह रहकर बरामदे में चले जाते हैं। नरेन्द्र एक वेदान्तवादी से विचार कर रहे हैं।

क्रमशः भक्तगण फिर इकट्ठे हो रहे हैं। महिमाचरण से अब पाठ करने के लिए कहा गया। वे महा-निर्वाण तन्त्र के तृतीय उल्लास में लिखी हुई ब्रह्म की स्तुतियाँ कह रहे हैं—

"हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं
हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
जननमरणभीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपं
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीड़े ॥"

और भी दो एक स्तुतियाँ कहकर महिमाचरण श्रीशंकराचार्य की स्तुति कर रहे हैं। उसमें संसार-कूप और संसार-गहनता की बात है। महिमाचरण स्वयं संसारी और भक्त हैं।

"हे चन्द्रचूड़ मदनान्तक शूलपाणे
स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शंभो।
भूतेश भीतिभयसूदन मामनाथं
संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥
हे पार्वती-हृदयवल्लभ चन्द्रमौले
भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप।
हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे,
संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥"

श्रीरामकृष्ण– (महिमा से)– संसार कूप है, संसार गहन है, यह सब क्यों कहते हो ? पहले पहल इस तरह कहा जाता है : उन्हें पकड़ने पर फिर क्या भय है ? तब यह संसार मौज की कुटिया हो जाता है । मैं खाता-पीता हूँ और आनन्द करता हूँ ।

" भय क्या है ? उन्हें पकड़ो । काँटों का जंगल है, तो क्या हुआ ? जूते पहनकर उसे पार कर जाओ । भय क्या है ? जो पाला छू लेता है, क्या वह भी कभी चोर हो सकता है ?

" राजा जनक दो तलवारें चलाते थे । एक ज्ञान की और दूसरी कर्म की । पक्के खिलाड़ी को किसी का डर नहीं रहता । "

इसी तरह की ईश्वरी बातें हो रही हैं । श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी चारपाई पर बैठे हुए हैं । चारपाई की बगल में मास्टर बैठे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– उसने जो कुछ कहा है, उसी ने उसे खींच रखा है ।

श्रीरामकृष्ण महिमाचरण की बातें कह रहे हैं । नवाई चैतन्य तथा अन्य भक्त फिर गाने लगे । अब श्रीरामकृष्ण उनमें मिल गए और भावमग्न होकर संकीर्तन की मण्डली में नृत्य करने लगे ।

कीर्तन हो जाने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, " यही इतना काम हुआ और सब मिथ्या था । प्रेम और भक्ति, यही वस्तु है और सब अवस्तु । "

(४)

गुह्य कथा

दिन का पिछला पहर हो गया । श्रीरामकृष्ण पंचवटी गए हुए हैं । मास्टर से विनोद की बातें पूछते हैं । विनोद मास्टर के स्कूल में पढ़ते हैं । ईश्वर का चिन्तन करते हुए कभी-कभी विनोद को भावावेश हो जाता है । इसीलिए श्रीरामकृष्ण उन्हें प्यार करते हैं ।

अब श्रीरामकृष्ण मास्टर से बातचीत करते हुए कमरे की ओर लौट रहे हैं। बकुलतल्ले के घाट के पास आकर उन्होंने कहा, "अच्छा, यह जो कोई कोई (मुझे) अवतार कहते हैं, इस पर तुम्हारा क्या विचार है ?"

बातचीत करते हुए श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में आ गए। चट्टी उतारकर उसी छोटे तखत पर बैठ गए। तखत के पूर्व की ओर एक पाँवपोश रखा हुआ है। मास्टर उसी पर बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने वही बात फिर पूछी। दूसरे भक्त कुछ दूर बैठे हुए हैं। ये सब बातें उनकी समझ में नहीं आईं।

श्रीरामकृष्ण– तुम क्या कहते हो ?

मास्टर– जी, मुझे भी यही जान पड़ता है, जैसे चैतन्यदेव थे।

श्रीरामकृष्ण– पूर्ण या अंश या कला ?—तौल कर कहो।

मास्टर– जी, तौल मेरी समझ में नहीं आती। इतना कह सकता हूँ, भगवान की शक्ति अवतीर्ण हुई है। वे तो आप में हैं ही।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, चैतन्यदेव ने शक्ति के लिए प्रार्थना की थी।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप रहे। फिर कहा– 'परन्तु वे षड्भुज थे।'

मास्टर सोच रहे हैं, चैतन्यदेव को षड्भुज रूप में उनके भक्तों ने देखा था ज़रूर, परन्तु श्रीरामकृष्ण ने किस उद्देश्य से इसकी चर्चा की ?

भक्तगण पास ही कमरे में बैठे हुए हैं। नरेन्द्र विचार कर रहे हैं। राम (दत्त) बीमारी से उठकर ही आए हैं, वे भी नरेन्द्र के साथ घोर तर्क कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–(मास्टर से)– मुझे ये सब विचार अच्छे नहीं लगते। (राम से) बन्द करो—एक तो तुम बीमार थे। अच्छा,

धीरे-धीरे। (मास्टर से) मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं रोता था और कहता था, 'माँ, एक कहता है— ऐसा नहीं, ऐसा है; दूसरा कुछ और बतलाता है। सत्य क्या है, तू मुझे बतला दे।'

परिच्छेद ४

भक्तों के प्रति उपदेश

(१)

राखाल, भवनाथ, नरेन्द्र, बाबूराम

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक बैठे हुए हैं। बाबूराम, छोटे नरेन्द्र, पल्टू, हरिपद, मोहिनीमोहन आदि भक्त जमीन पर बैठे हुए हैं। एक ब्राह्मण युवक दो-तीन दिन से श्रीरामकृष्ण के पास हैं, वे भी बैठे हुए हैं। आज शनिवार है, ७ मार्च १८८५, दिन के तीन बजे का समय होगा। चैत की कृष्णा सप्तमी है।

श्रीमाताजी * भी आजकल नौबतखाने में रहती हैं—श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए। मोहिनीमोहन के साथ उनकी स्त्री, नवीन बाबू की माँ, गाड़ी पर आई हुई हैं। औरतें नौबतखाने में श्रीमाताजी के दर्शन कर वहीं पर रह गईं। भक्तों के ज़रा हट जाने पर श्रीरामकृष्ण को आकर प्रणाम करेंगी। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए भक्त बालकों को देख रहे हैं और आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

राखाल इस समय दक्षिणेश्वर में नहीं रहते। कई महीने बलराम के साथ वृन्दावन में थे; वहाँ से लौटकर इस समय घर पर रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– राखाल इस समय पेन्शन ले रहा है। वृन्दावन से लौटकर घर पर रहता है। घर में उसकी स्त्री है। परन्तु उसने कहा है, 'हजार रुपया तनख्वाह देने पर भी नौकरी न करूँगा।'

"यहाँ लेटा हुआ कहता था, तुम्हें भी देखकर जी को प्रसन्नता नहीं होती; उसकी ऐसी एक अवस्था हुई थी।

---

* श्रीसारदादेवी— श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी।

"भवनाथ ने विवाह किया है; परन्तु रात भर स्त्री के साथ धर्म की ही चर्चा करता है। दोनों ईश्वरी प्रसंग लेकर रहते हैं। मैंने कहा, 'अपनी स्त्री से कुछ आमोद-प्रमोद भी किया कर,' तब गुस्से में आकर उसने कहा था, 'हम लोग भी आमोद-प्रमोद लेकर रहेंगे ?'

(भक्तों से) "परन्तु नरेन्द्र के लिए मुझे जितनी व्याकुलता हुई थी, उतनी उसके (छोटे नरेन्द्र के) लिए नहीं हुई।

(हरिपद से)"क्या तू गिरीश घोष के यहाँ जाया करता है ?"

हरिपद– हमारे घर के पास ही उनका घर है। प्रायः जाया करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– क्या नरेन्द्र भी जाता है ?

हरिपद– हाँ, कभी कभी तो देखता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– गिरीश जो कुछ (मेरे अवतारत्व के सम्बन्ध में) कहता है, उस पर उसकी क्या राय है ?

हरिपद– नरेन्द्र तर्क में हार गए हैं।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, उसने (नरेन्द्र ने) कहा, 'गिरीश घोष को जब इतना विश्वास है, तो उस पर मैं कुछ क्यों कहूँ ?'

जज अनुकूल मुखोपाध्याय के जामाता के भाई आए हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– तुम नरेन्द्र को जानते हो ?

जामाता के भाई– जी हाँ, नरेन्द्र बुद्धिमान लड़का है।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– ये अच्छे आदमी हैं, जब इन्हीं ने नरेन्द्र की तारीफ की। उस दिन नरेन्द्र आया था। त्रैलोक्य के साथ उस दिन उसने गाया भी; परन्तु उस दिन गाना अलोना लग रहा था।

श्रीरामकृष्ण बाबूराम की ओर देखकर बातचीत कर रहे हैं।

मास्टर जिस स्कूल में पढ़ाते हैं, बाबूराम उसी स्कूल की प्रवेशिका कक्षा में पढ़ते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (बाबूराम से)– तेरी पुस्तकें कहाँ हैं? तू लिखे-पढ़ेगा या नहीं? (मास्टर से) वह दोनों ओर संभालना चाहता है।

"बड़ा कठिन मार्ग है। उन्हें ज़रा सा समझ लेने से क्या होगा? वशिष्ठ कितने बड़े थे, उन्हें भी पुत्रों के लिए शोक हुआ था। लक्ष्मण ने उन्हें शोक करते हुए देख आश्चर्य में आकर राम से पूछा। राम ने कहा, 'भाई, इसमें आश्चर्य क्या है? जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। भाई, तुम ज्ञान और अज्ञान दोनों को पार कर जाओ।' पैर में काँटा लगता है, तो एक और काँटा खोज लाना पड़ता है। उसी काँटे से पहला काँटा निकाला जाता है, फिर दोनों ही काँटे फेंक दिये जाते हैं। इसीलिए अज्ञानरूपी काँटे को निकालने के लिए ज्ञानरूपी काँटा संग्रह करना पड़ता है; फिर ज्ञान और अज्ञान के पार जाया जाता है।"

बाबूराम– (हँसकर) – मैं यही चाहता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– अरे, दोनों ओर रक्षा करने से क्या वह बात होती है? उसे अगर तू चाहता है, तो चला आ निकलकर!

बाबूराम– (हँसकर)– आप ले आइये।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– राखाल रहता था, वह बात और थी— उसमें उसके बाप की भी स्वीकृति थी। पर इन लड़कों के रहने पर तो गड़बड़ होगा।

(बाबूराम से) "तू कमज़ोर है। तुझमें हिम्मत कम है। देख तो, छोटा नरेन्द्र कैसे कहता है, मैं जब आऊँगा, तब एकदम चला

आऊँगा।"

अब श्रीरामकृष्ण भक्त-बालकों के बीच में चटाई पर आकर बैठे। मास्टर उनके पास बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– मैं कामिनी-कांचन-त्यागी खोज रहा हूँ। सोचता हूँ, यह काम शायद रह जाएगा। सब के सब कोई न कोई अड़ंगा लगा देते हैं।

"एक भूत अपना साथी खोज रहा था। शनि या मंगलवार को अपघात-मृत्यु होने पर मनुष्य भूत होता है। इसलिए वह भूत जब कभी देखता कि कोई छत पर से गिरकर बेसुध हो गया है, तब वहाँ वह यह सोचकर दौड़ा हुआ जाता कि इसकी अपघात-मृत्यु हुई, अब यह भूत होकर मेरा साथी होगा; परन्तु उसका ऐसा दुर्भाग्य कि सब के सब बच जाते थे! उसे कोई साथी नहीं मिलता था। इसी तरह देखो न, राखाल भी 'बीबी-बीबी' कर रहा है, कहता है, मेरी बीबी का क्या होगा। नरेन्द्र की छाती पर मैंने हाथ रखा तो वह बेहोश हो गया और चिल्लाया, 'अजी, यह तुम क्या कर रहे हो? मेरे बाप-माँ जो हैं!'

"मुझे उन्होंने इस अवस्था मे क्यों रखा है? चैतन्यदेव ने संन्यास धारण किया, इसलिए कि सब लोग प्रणाम करेंगे; जो लोग एक बार प्रणाम करेंगे, उनका उद्धार हो जाएगा।"

श्रीरामकृष्ण के लिए मोहिनीमोहन बाँस की टोकरी में संदेश लाए हैं।

श्रीरामकृष्ण– ये सन्देश कौन लाया है?

बाबूराम ने मोहिनीमोहन की ओर उंगली उठाकर इशारा किया।

श्रीरामकृष्ण ने प्रणव का उच्चारण करके सन्देशों को छुआ और उसमें से थोड़ा सा ग्रहण करके प्रसाद कर दिया। फिर भक्तों को थोड़ा थोड़ा बाँटने लगे। छोटे नरेन्द्र को, और भी दो एक भक्त-बालकों को खुद खिला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण-- (मास्टर से)-- इसका एक अर्थ है। शुद्धात्माओं के भीतर नारायण का प्रकाश अधिक है। कामारपुकुर में जब मैं जाता था, तब वहाँ किसी किसी लड़के को खुद खिला देता था। चीने शाँखारी कहता था, 'ये हमें क्यों नहीं खिलाते?' मैं किस तरह खिलाता? वे दुराचारी जो थे। भला उन्हें कौन खिलाएगा?

(२)

सन्ध्योपासना तथा गंगास्नान

शुद्धात्मा भक्तों को प्राप्त कर श्रीरामकृष्ण आनन्द में मग्न हो रहे हैं। अपने छोटे तखत पर बैठे हुए कीर्तन गानेवाली के नाज़-नखरे दिखा दिखाकर उन्हें हँसा रहे हैं। कीर्तन गानेवाली सजधजकर अपने साथियों के साथ गा रही है। वह हाथ में रंगीन रूमाल लिये हुए खड़ी है; बीच बीच में खाँसने का ढोंग कर रही है और नथ उठाकर थूक रही है। गाते समय अगर किसी विशिष्ट मनुष्य का आना होता है, तो वह गाते हुए ही उसकी अभ्यर्थना के लिए, 'आइए-बैठिए' आदि शब्दों का प्रयोग करती है। फिर कभी कभी हाथ का कपड़ा हटाकर बाजू और अनन्त (गहने) दिखाती है।

उनका यह अभिनय देखकर भक्तगण ठहाका मारकर हँस रहे हैं। पल्टू तो हँसते हँसते लोटपोट हो रहे हैं। श्रीरामकृष्ण पल्टू की ओर देखकर मास्टर से कह रहे हैं, "बच्चा है न, इसीलिए लोटपोट हुआ जा रहा है।" (पल्टू से, हँसकर) ये सब बातें अपने

बाप से न कहना। तो फिर जो कुछ लगन (मेरे पास आने के लिए) है, वह न रह जाएगी। एक तो ऐसे ही वे लोग इंग्लिशमैन हैं !

(भक्तों से) "बहुतेरे तो सन्ध्योपासना करते हुए ही दुनिया भर की बातें करते हैं, परन्तु बातचीत करने की मनाही है, इसलिए ओठ दबाये हुए ही इशारा करते हैं। यह ले आओ—वह ले आओ— ऊँ— हूँ— हूँ— यही सब किया करते हैं।

(सब हँसते हैं)

"और कोई कोई ऐसे हैं कि माला जपते हुए ही मछलीवाली से मछली का मोल-तोल करते हैं। जप करते हुए कभी उंगली से इशारा करके बतला देते हैं कि वह मछली निकाल। जितना हिसाब है, सब उसी समय होता है। (सब हँसते हैं)

"स्त्रियाँ गंगा नहाने के लिए आती हैं, तो उस समय ईश्वर की चिन्ता करना तो दूर रहा, उसी समय दुनिया भर की बातें करने लग जाती हैं। पूछती हैं, 'तुम्हारे लड़के का विवाह हुआ, तुमने कौन-कौन से गहने दिये ?' 'अमुक को कठिन बीमारी है।' 'अमुक आदमी अपनी ससुराल से आया नहीं', 'अमुक आदमी लड़की देखने गया था, वह खूब देगा और खर्च भी खूब करेगा,' 'हमारा हरीश मुझसे इतना हिला हुआ है कि मुझे छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकता', 'माँ, मैं इतने दिनों तक इसलिए नहीं आ सकी कि अमुक की लड़की के 'देखुआ' आए थे—अब की बार विवाह पक्का होनेवाला था, इसलिए मुझे फुरसत नहीं मिली।'

"देखो न, कहाँ तो गंगा नहाने के लिए आई हैं, और कहाँ दुनिया भर की बातें !"

श्रीरामकृष्ण छोटे नरेन्द्र को एकदृष्टि से देख रहे हैं। देखते

ही देखते समाधिमग्न हो गए। भक्तगण निर्निमेष नयनों से वह समाधिचित्र देख रहे हैं। इतना हँसी-मज़ाक हो रहा था, सब वन्द हो गया, जैसे कमरे में एक भी आदमी न हो। श्रीरामकृष्ण का शरीर निःस्पन्द है, दृष्टि स्थिर है। हाथ जोड़कर चित्रवत् वैठे हुए हैं।

कुछ देर बाद समाधि छूटी। श्रीरामकृष्ण की वायु स्थिर हो गई। अब उन्होंने एक लम्बी साँस छोड़ी। क्रमशः मन बाह्य संसार में आ रहा है। भक्तों की ओर वे देख रहे हैं।

अब भी भावमग्न हैं। अब भक्तों को सम्बोधित करके, किसे क्या होगा, किसकी कैसी अवस्था है, संक्षेप में कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (छोटे नरेन्द्र से)–तुझे देखने के लिए मैं व्याकुल हो रहा था। तेरी बन जाएगी। कभी कभी आया कर। अच्छा, तू क्या चाहता है— ज्ञान या भक्ति ?

छोटे नरेन्द्र– केवल भक्ति।

श्रीरामकृष्ण– बिना जाने तू किसकी भक्ति करेगा ? (मास्टर को दिखाकर, सहास्य) इन्हें अगर तू जाने ही नहीं, तो इनकी भक्ति कैसे कर सकेगा ? (मास्टर से) परन्तु शुद्धात्मा ने जब कहा है कि केवल भक्ति चाहिए तो इसका अर्थ भी अवश्य है। आप ही आप भक्ति का आना संस्कार के बिना नहीं होता? यह प्रेमाभक्ति का लक्षण है। ज्ञान-भक्ति है विचार के बाद होनेवाली भक्ति।

(छोटे नरेन्द्र से) "देखूँ तेरी देह, कुर्ता उतार तो ज़रा, छाती खूब चौड़ी है— तो काम सिद्ध है। कभी कभी आना।"

श्रीरामकृष्ण अब भी भावस्थ हैं। दूसरे भक्तों में हरएक को सम्बोधित करके स्नेहपूर्वक कह रहे हैं।

(पल्टू से) "तेरी भी मनोकामना सिद्ध होगी; परन्तु कुछ समय लगेगा।

(बाबूराम से) "तुझे इसलिए नहीं खींचता हूँ कि अन्त में कहीं गुलगपाड़ा न मच जाय। (मोहिनीमोहन से) और तुम्हारे बारे में सब कुछ ठीक ही है। केवल थोड़ी कसर बाकी है। जब वह भी पूर्ण हो जाएगी तब कुछ शेष न रह जाएगा। न कर्तव्य, न कर्म; और न खुद संसार ही। क्यों, सभी कुछ से छुटकारा पा जाना अच्छा है!"

यह कहकर उनकी ओर सस्नेह एक निगाह से देख रहे हैं, जैसे उनके अन्तरतम प्रदेश के सब भाव देख रहे हों। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने फिर कहा, "भागवत पण्डित को एक पाश देकर ईश्वर रख देते हैं,—नहीं तो भागवत फिर कौन सुनावे! रख देते हैं लोकशिक्षा के लिए, माता ने इसीलिए संसार में रखा है।"

अब ब्राह्मण युवक से कह रह हैं—

श्रीरामकृष्ण– (युवक से)– तुम ज्ञान की चर्चा छोड़ो,—भक्ति लो—भक्ति ही सार है। आज क्या तुम्हें तीन दिन हो गए?

ब्राह्मण युवक– (हाथ जोड़कर)– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– विश्वास करो— उन पर निर्भरता लाओ— तो तुम्हें कुछ भी न करना होगा— माँ काली सब कुछ कर लेंगी।

"सदर दरवाजे तक ही ज्ञान की पहुँच है। भक्ति घर के भीतर भी जाती है।

"शुद्धात्मा निर्लिप्त होते हैं। उनमें (ईश्वर में) विद्या और अविद्या दोनों हैं परन्तु वे निर्लिप्त हैं। वायु में कभी सुगंध मिलती है, कभी दुर्गंध; परन्तु वायु निर्लिप्त है। व्यासदेव यमुना पार

कर रहे थे। वहाँ गोपियाँ भी थीं। वे भी पार जाना चाहती थीं,—दही, दूध और मक्खन बेचने के लिए। वहाँ नाव न थी, सब सोचने लगीं, कैसे पार जायँ। इसी समय व्यासदेव ने कहा, मुझे बड़ी भूख लगी है। तब गोपियाँ उन्हें दही, दूध, मक्खन, रबड़ी, सब खिलाने लगीं। व्यासदेव लगभग सब साफ कर गए।

"फिर व्यासदेव ने यमुना से कहा—'यमुने, अगर मैंने कुछ भी नहीं खाया, तो तुम्हारा जल दो भागों में बट जाय, बीच से राह हो जाय और हम लोग निकल जायँ।' ऐसा ही हुआ। यमुना के दो भाग हो गए, उस पार जाने की राह बीच से बन गई। उसी रास्ते से गोपियों के साथ व्यासदेव पार हो गये।

"मैंने नहीं खाया, इसका अर्थ यह है कि मैं वही शुद्धात्मा हूँ; शुद्धात्मा निर्लिप्त है, प्रकृति के परे है। उसे न भूख है, न प्यास; न जन्म है, न मृत्यु; वह अजर, अमर और सुमेरुवत् है।

"जिसे यह ब्रह्मज्ञान हुआ हो, वह जीवन्मुक्त है। वह ठीक समझता है कि आत्मा अलग है और देह अलग। ईश्वर के दर्शन करने पर फिर देहात्मबुद्धि नहीं रह जाती। दोनों अलग अलग हैं। जैसे नारियल का पानी सूख जाने पर भीतर का गोला और ऊपर का खोपड़ा अलग अलग हो जाते हैं। आत्मा भी उसी गोले की तरह मानो देह के भीतर खड़खड़ाती हो। उसी तरह विषयबुद्धिरूपी पानी के सूख जाने पर आत्मज्ञान होता है। तब आत्मा एक अलग चीज़ जान पड़ती है और देह एक अलग चीज़। कच्ची सुपारी, कच्चे बादाम के भीतर का गूदा—ये छिलके से अलग नहीं किये जा सकते।

"परन्तु जब पक्की अवस्था होती है, तब सुपारी और बादाम छिलके से अलग हो जाते हैं। पक्की अवस्था में रस सूख जाता

है। ब्रह्मज्ञान के होने पर विषय-रस सूख जाता है।

"परन्तु वह ज्ञान होना बड़ा कठिन है। कहने से ही किसी को ब्रह्मज्ञान नहीं हो जाता। कोई ज्ञान होने का ढोंग करता है। (हँसकर) एक आदमी बहुत झूठ बोलता था। इधर यह भी कहता था कि मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है। किसी दूसरे के तिरस्कार करने पर उसने कहा, 'क्यों जी, संसार तो स्वप्नवत् है ही, अतएव सब अगर मिथ्या हो गया तो सच बात ही कहाँ से सही होगी? झूठ भी झूठ है और सच भी झूठ ही है!'" (सब हँसते हैं)

(३)

अवतारलीला तथा योगमाया आद्या-शक्ति

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ जमीन पर चटाई पर बैठें हुए हैं। भक्तों से कह रहे हैं, मेरे पैरों में ज़रा हाथ तो फेर दो। भक्तगण उनके पैर दाब रहे हैं। (मास्टर से हँसकर) "इसके (पैर दाबने के) बहुत से अर्थ हैं।"

फिर अपने हृदय पर हाथ रखकर कह रहे हैं, इसके (अपने को) भीतर अगर कुछ है तो (सेवा करने पर) अज्ञान, अविद्या, सब दूर हो जाएँगे।

एकाएक श्रीरामकृष्ण गम्भीर हो गए, जैसे कोई गूढ़ विषय कहने वाले हों।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– यहाँ दूसरा कोई आदमी नहीं है। उस दिन यहाँ हरीश था–– मैंने देखा–– गिलाफ को (देह* को) छोड़कर सच्चिदानन्द बाहर हो आया; निकलकर उसने कहा, 'हरएक युग में मैं ही अवतार कहलाता हूँ।' तब मैंने

* श्रीरामकृष्ण की देह।

सोचा, यह मेरी ही कोई कल्पना होगी। फिर चुपचाप देखने लगा।—तब मैंने देखा, वह स्वयं कह रहा है, 'शक्ति की आराधना चैतन्य को भी करनी पड़ी थी।'

सब भक्त आश्चर्यचकित होकर सुन रहे हैं। कोई कोई सोच रहे हैं, क्या सच्चिदानन्द भगवान श्रीरामकृष्ण का रूप धारण कर हमारे पास बैठे हैं? भगवान क्या फिर अवतीर्ण हुए हैं? श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से कहा, "मैंने देखा, इस समय पूर्ण आविर्भाव है, परन्तु ऐश्वर्य सत्त्व गुण का है।

(मास्टर से) "अभी अभी मैं माँ से कह रहा था, माँ, अब मुझसे बका नहीं जाता और कह रहा था, एक बार छू देने पर ही जैसे आदमी को चैतन्य हो। योगमाया की महिमा भी ऐसी है कि वह गोरखधन्धे में डाल देती है। वृन्दावन की लीला के समय योगामाया ने वैसा ही किया। और उसी के बल से सुबोल ने श्रीकृष्ण से श्रीमती को मिला दिया था। जो आद्याशक्ति हैं, उस योगमाया में एक आकर्षण शक्ति है। मैंने उसी शक्ति का आरोप किया था।

"अच्छा जो लोग आते हैं, उन्हें कुछ होता है?"

मास्टर– जी हाँ, होता क्यों नहीं?

श्रीरामकृष्ण– तुम्हें मालूम कैसे हुआ?

मास्टर– (सहास्य)– सब कहते हैं, उनके पास जो जाते हैं, वे लौटते नहीं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)–एक बड़ा मेंढक मटियाले साँप के पाले पड़ा था। साँप न उसे निगल सकता था, न छोड़ सकता था! मेंढक भी आफत में पड़ा; लगातार टें टें कर रहा था और साँप की भी जान आफत में थी। परन्तु वह मेंढक अगर गोखुरा

साँप के पाले पड़ता तो दो ही एक पुकार में उसे ठण्डा हो जाना पड़ता! (सब हँसते हैं।)

(किशोर भक्तों से) "तुम लोग त्रैलोक्य की पुस्तक--- भक्तिचैतन्यचन्द्रिका--- पढ़ना। उससे एक किताब माँग लेना। उसमें चैतन्य की बड़ी अच्छी बातें लिखी हैं।"

एक भक्त– क्या वे देंगे?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– क्यों, खेत में अगर बहुत सी ककड़ियाँ हुई हों, तो मालिक दो तीन मुफ्त ही दे सकता है। (सब हँसते हैं।) मुफ्त देगा क्यों नहीं,--- तू कहता क्या है?

(पल्टू से) "यहाँ एक बार आना।"

पल्टू– हो सका तो आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– मैं कलकत्ते में जहाँ जाऊँ, वहाँ तू जाएगा या नहीं?

पल्टू– जाऊँगा; कोशिश करूँगा।

श्रीरामकृष्ण– यह पटवारी बुद्धि है।

पल्टू– 'कोशिश करूँगा', यह अगर न कहूँ तो बात झूठ हो सकती है।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– इनकी बातों को मैं झूठ में शामिल नहीं करता, क्योंकि वे स्वाधीन नहीं हैं।

(हरिपद से) "महेन्द्र मुखर्जी क्यों नहीं आता?"

हरिपद– मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता।

मास्टर– (सहास्य)– वे ज्ञानयोग कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, उस दिन प्रह्लाद-चरित्र दिखाने के लिए उसने गाड़ी भेजने के लिए कहा था, परन्तु फिर भेज नहीं सका, शायद इसीलिए आता भी नहीं।

मास्टर– एक दिन महिम चक्रवर्ती से मुलाकात हुई थी, बातचीत भी हुई थी। जान पड़ता है, वे (महेन्द्र) उनके पास आया-जाया करते हैं।

श्रीरामकृष्ण– क्यों, महिम तो भक्ति की बातें भी करता है। वह तो कहता भी है खूब— 'नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।'

मास्टर– (हँसकर)– आप कहलाते हैं, इसीलिए वह कहता है।

श्रीयुत गिरीश घोष श्रीरामकृष्ण के पास पहले पहल आने-जाने लगे हैं। आजकल वे सदा श्रीरामकृष्ण की ही बातों में रहते हैं।

हरि– गिरीश घोष आजकल कितनी ही तरह के दर्शन करते हैं। यहाँ से लौटने पर सर्वदा ईश्वरी भाव में रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– यह हो सकता है, गंगा के पास जाओ तो कितनी ही तरह की चीज़ें दीख पड़ती हैं— नाव, जहाज़— कितनी चीज़ें।

हरि– गिरीश घोष कहते हैं, 'अब सिर्फ कर्म लेकर रहूँगा, सुबह को घड़ी देखकर दवात-कलम लेकर बैठूँगा और दिन भर वही काम (पुस्तकें लिखना) किया करूँगा।' इस तरह कहते हैं, पर कर नहीं सकते। हम लोग जाते हैं तो बस यहीं की बातें किया करते हैं। आपने नरेन्द्र को भेजने के लिए कहा था; गिरीश बाबू ने कहा, नरेन्द्र को किराए की गाड़ी कर दूँगा।

पाँच बजे हैं, छोटे नरेन्द्र घर जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण उत्तर-पूर्व वाले लम्बे बरामदे में खड़े हुए एकान्त में उन्हें अनेक प्रकार के उपदेश दे रहे हैं। कुछ देर बाद प्रणाम कर वे बिदा हुए; और भी कितने ही भक्तों ने बिदाई ली।

श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए मोहिनीमोहन से बातचीत कर रहे हैं। लड़के के गुज़र जाने पर उनकी स्त्री एक तरह से पागल-

सी हो गई है। कभी रोती है, कभी हँसती है। श्रीरामकृष्ण के पास आकर बहुत कुछ शान्त हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारी स्त्री इस समय कैसी है?

मोहिनी०– यहाँ आने ही से शान्त हो जाती है, वहाँ तो कभी-कभी बड़ा उत्पात मचाती है, अभी उस दिन मरने पर तुली हुई थी।

श्रीरामकृष्ण सुनकर कुछ देर सोचते रहे। मोहिनीमोहन ने विनयपूर्वक कहा, 'आप दो-एक बातें बता दीजिए।'

श्रीरामकृष्ण– भोजन न पकवाना। इससे सिर और भी गरम हो जाता है, और साथ-साथ आदमी रखे रहना।

(४)

श्रीरामकृष्ण की अद्भुत संन्यासावस्था

शाम हो गई, श्रीठाकुर-मन्दिर में आरती के लिए तैयारी हो रही है। श्रीरामकृष्ण के कमरे में दिया जला दिया गया और धूनी भी दी जा चुकी। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए जगन्माता को प्रणाम कर मधुर स्वर से उनका नाम ले रहे हैं। कमरे में और कोई नहीं है, सिर्फ मास्टर बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण उठे। मास्टर भी खड़े हो गए। श्रीरामकृष्ण ने कमरे के पश्चिम और उत्तर के दरवाजों को दिखाकर उन्हें बन्द कर देने के लिए कहा। मास्टर दरवाजे बन्द कर बरामदे में श्रीरामकृष्ण के पास आकर खड़े हुए।

श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'अब मैं कालीमन्दिर जाऊँगा।' यह कहकर मास्टर का हाथ पकड़ उनके सहारे कालीमन्दिर के सामने मन्दिर के चबूतरे पर जाकर बैठे। बैठने के पहले कह रहे हैं, "तुम उसे बुला तो लो।" मास्टर ने बाबूराम को बुला दिया।

श्रीरामकृष्ण काली के दर्शन कर उस बड़े आँगन से होकर अपने कमरे की ओर लौट रहे हैं। मुख से 'माँ! माँ! राजेश्वरी!' कहते जा रहे हैं।

कमरे में आकर अपने छोटे तखत पर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण की एक विचित्र अवस्था है। किसी धातु की वस्तु को छू नहीं सकते। उन्होंने कहा था, 'माँ अब ऐश्वर्य की बातें शायद मन से बिलकुल हटा रही हैं।' अब वे केले के पत्ते में भोजन करते हैं। मिट्टी के बर्तन में पानी पीते हैं। गड़ुआ नहीं छू सकते। इसीलिए भक्तों से मिट्टी का बर्तन ले आने के लिए कहा था। गड़ुए या थाली में हाथ लगाने से हाथ में झुनझुनी-सी चढ़ जाती है, दर्द होने लगता है,—जैसे सिंगी मछली का काँटा चुभ गया हो।

प्रसन्न कुछ बर्तन ले आए हैं, परन्तु वे बहुत छोटे हैं। श्रीरामकृष्ण हँसकर कह रहे हैं, "ये बर्तन बहुत छोटे हैं। लड़का बड़ा अच्छा है। मेरे कहने पर मेरे सामने नंगा होकर खड़ा हो गया! कैसा लड़कपन है!"

बेलघर के तारक एक मित्र के साथ आए। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए हैं, कमरे में दिया जल रहा है। मास्टर तथा दो एक और भक्त बैठे हुए हैं।

तारक ने विवाह किया है। उनके माँ-बाप उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास आने नहीं देते। कलकत्ते के बहूबाजार के पास उनके घरवाले किराए के मकान में रहते हैं, तारक भी वहीं रहा करते हैं। तारक को श्रीरामकृष्ण चाहते भी बहुत हैं। उनके साथ का लड़का ज़रा तमोगुणी जान पड़ता है। धर्म-विषय और श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में उसका कुछ व्यंग भाव-सा है। तारक की उम्र लगभग बीस साल

की होगी। तारक ने भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– (तारक के मित्र से)– ज़रा मन्दिर देख लो न।

मित्र– यह सब देखा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, तारक यहाँ आता है। क्या यह बुरा है?

मित्र– यह तो आप ही जानें।

श्रीरामकृष्ण– ये (मास्टर) हेडमास्टर हैं।

मित्र– ओ:।

श्रीरामकृष्ण तारक से कुशल-प्रश्न पूछ रहे हैं और उनसे बहुत सी बातें कर रहे हैं। अनेक प्रकार की बातें करके तारक ने बिदा होना चाहा। श्रीरामकृष्ण उन्हें अनेक विषयों में सावधान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (तारक से)– साधो! सावधान रहो। कामिनी और कांचन से सावधान रहो। स्त्री की माया में एक बार भी डूब गए तो बाहर आने की सम्भावना नहीं है। विशालाक्षी नदी का भँवर है, जो एक बार भी फँसा वह फिर नहीं निकल सकता। और यहाँ कभी-कभी आना।

तारक– घरवाले नहीं आने देते।

एक भक्त– अगर किसी की माँ कहे कि तू दक्षिणेश्वर न जाया कर, और कसम खाए कि जो तू वहाँ जाय, तो तू मेरा खून पिये, तो?––

श्रीरामकृष्ण– जो ऐसी बात कहे, वह माँ नहीं है,–– वह अविद्या की मूर्ति है। उस माँ की बात अगर न मानी जाय तो कोई दोष नहीं। वह माँ ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में विघ्न डालती है। ईश्वर के लिए गुरुजनों की बात का उल्लंघन किया जाय तो इसमें कोई दोष नहीं होता। भरत ने राम के लिए कैकेयी

की बात नहीं मानी।

"गोपियों ने श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए पति की मनाई नहीं सुनी। प्रह्लाद ने ईश्वर के लिए बाप की बात पर ध्यान नहीं दिया। बलि ने ईश्वर की प्रीति के लिए अपने गुरु शुक्राचार्य की बात नहीं सुनी। बिभीषण ने राम को पाने के लिए अपने बड़े भाई रावण की बातों पर ध्यान नहीं दिया।

"परन्तु 'ईश्वर के मार्ग पर न जाना' इस बात को छोड़ और सब बातें मानो।"

'देखूँ तो तेरा हाथ,' यह कहकर श्रीरामकृष्ण तारक के हाथ का वजन परख रहे हैं। कुछ देर बाद कह रहे हैं, "कुछ (बाधा) है, परन्तु वह न रह जाएगी। उनसे ज़रा प्रार्थना करना, और यहाँ कभी-कभी आना— वह दूर हो जाएगी। क्या कलकत्ते के बहूबाज़ार में तूने मकान किराए से लिया है?"

तारक– जी, मैंने नहीं लिया, उन लोगों ने लिया है।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– उन लोगों ने लिया है या तूने? बाघ के डर से न? (श्रीरामकृष्ण कामिनी को बाघ कह रहे हैं।)

तारक प्रणाम करके बिदा हुए। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर लेटे हुए हैं,— तारक के लिए सोच रहे हों। एकाएक मास्टर से कहने लगे, 'इन लोगों के लिए मैं इतना व्याकुल क्यों होता हूँ?'

मास्टर चुपचाप बैठे हुए हैं, जैसे उत्तर सोच रहे हों।

श्रीरामकृष्ण फिर पूछ रहे हैं, और कहते हैं, 'कहो जी।'

इधर मोहिनीमोहन की स्त्री श्रीरामकृष्ण के कमरे में आकर उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठी हुई हैं। श्रीरामकृष्ण तारक के साथी की बात मास्टर से कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– तारक क्यों उसे अपने साथ ले आया?

मास्टर– रास्ते में साथ के विचार से ले आया होगा। दूर तक चलना पड़ता है।

इस बात के बीच में श्रीरामकृष्ण एकाएक मोहिनीमोहन की स्त्री से कहने लगे, "अपघात-मृत्यु के होने पर स्त्री प्रेतनी होती है। सावधान रहना! मन को समझाना। इतना देख-सुनकर भी अन्त में क्या यह चाहती हो?"

मोहनीमोहन अब विदा होने लगे। श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं। उनकी स्त्री ने भी प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के उत्तर तरफवाले दरवाजे के पास आकर खड़े हुए। मोहिनीमोहन की पत्नी कपड़े से सिर ढाँककर श्रीरामकृष्ण से कुछ कह रही हैं।

श्रीरामकृष्ण– यहाँ रहोगी?

पत्नी– कुछ दिन यहाँ आकर रहूँगी, नौबतखाने में माँ हैं; उनके पास।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा तो है, परन्तु तुम मरने की बात जो कहती हो, इसी से भय होता है और गंगाजी भी पास ही हैं!

परिच्छेद ५

बलराम बसु के घर में

(१)

श्रीरामकृष्ण तथा त्याग की पराकाष्ठा

आज फाल्गुन की कृष्णा दशमी है, बुधवार, ११ मार्च, १८८५। आज दस बजे के लगभग दक्षिणेश्वर से आकर बलराम बसु के यहाँ श्रीरामकृष्ण ने जगन्नाथजी का प्रसाद ग्रहण किया। उनके साथ लाटू आदि भक्त भी हैं।

बलराम के यहाँ श्रीरामकृष्ण अक्सर आते हैं। कलकत्ते में वही एक तरह से उनका प्रधान केन्द्र है। आज बलराम का घर श्रीरामकृष्ण का प्रधान कार्य-क्षेत्र हो रहा है। उस समय मधुर नृत्य और कोमल कण्ठ से ईश्वर-प्रेम की उस सरल वाणी को सुनकर कितने ही भक्त आकर्षित हो रहे हैं!

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में बैठे हुए रोते हैं, अपने अन्तरंगों को देखने के लिए व्याकुल हो जाते हैं, कहते हैं— 'माँ, उसे बड़ी भक्ति है, उसे तुम खींच लो; माँ, उसे यहाँ ले आओ, अगर वह न आ सके तो माँ, मुझे ही वहाँ ले चलो, मैं उसे देख लूँ।' इसीलिए श्रीरामकृष्ण बलराम के यहाँ दौड़ आते हैं। लोगों से कहा करते हैं, बलराम के यहाँ श्रीजगन्नाथजी की सेवा होती है, उसका अन्न बड़ा शुद्ध है। जब आते हैं तब बलराम से न्योता देने के लिए कहते हैं; कहते हैं—'जाओ, नरेन्द्र को, भवनाथ को, राखाल को न्योता दे आओ, इन्हें खिलाने से नारायण को खिलाना होता है। ये ऐसे-वैसे नहीं हैं, ये ईश्वरांश से पैदा हुए हैं। इन्हें खिलाने पर तुम्हारा बहुत कल्याण होगा।'

बलराम के ही यहाँ गिरीश घोष के साथ पहले पहल बैठकर बातचीत हुई थी। यहीं रथ के समय कीर्तनानन्द हुआ करता है। यहीं कितने ही बार प्रेम का दरबार लगा और आनन्द की हाट जमी।

मास्टर पास ही के विद्यालय में पढ़ाते हैं। उन्होंने सुना है, आज दस बजे श्रीरामकृष्ण बलराम के यहाँ आएँगे। बीच में पढ़ाई से अवकाश मिलने पर दोपहर के समय वे वहाँ गए। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद बैठकखाने में ज़रा विश्राम कर रहे हैं। बीच बीच में थैली से मसाला निकालकर खा रहे हैं। कुछ कम उम्रवाले लड़के उन्हें चारों ओर से घेरे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सस्नेह)– तुम यहाँ आए, स्कूल नहीं है?

मास्टर–स्कूल से आ रहा हूँ। इस समय वहाँ विशेष काम नहीं है।

एक भक्त– नहीं महाराज, स्कूल से भाग आए हैं। (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण कुछ चिन्तित-से हो रहे हैं। फिर मास्टर को पास बैठाकर अनेक प्रकार की बातें करने लगे। कहा,— "मेरा गमछा ज़रा निचोड़ तो दो और कुर्ता धूप में डाल दो। पैर झनझना रहा है। क्या उस पर ज़रा हाथ फेर दे सकोगे?" मास्टर सेवा करना नहीं जानते, इसीलिए श्रीरामकृष्ण उन्हें सेवा करना सिखा रहे हैं। मास्टर हकपकाकर एक एक करके वे सब काम कर रहे हैं। फिर वे पैरों पर हाथ फेरने लगे। श्रीरामकृष्ण उन्हें उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–(मास्टर से)– क्यों जी, कुछ दिनों से लगातार मुझे ऐसा क्यों हो रहा है? धातु के किसी बरतन को मैं छू नहीं सकता।

एक बार कटोरे में हाथ लगाया तो ऐसा हो गया जैसे सिंगी मछली ने हाथ में काँटा मार दिया हो। हाथ में झुनझुनी-सी चढ़ गई और दर्द होने लगा। गडुए को बिना छुए तो काम चल ही नहीं सकता, इस ख्याल से मैंने सोचा, ज़रा गमछे से ढककर तो देखूँ, उठा सकता हूँ या नहीं। यह सोचकर ज्योंही उसे छुआ कि हाथ में झुनझुनी चढ़ गई और बहुत दर्द होने लगा। अन्त में माता से प्रार्थना की, 'माँ, अब ऐसा काम न करूँगा, अब की बार माँ, क्षमा करो।'

(मास्टर से) "क्यों जी, छोटा नरेन्द्र आया-जाया करता है, घरवाले क्या कुछ कहेंगे ? बिलकुल शुद्ध है, अभी स्त्री-संग कभी नहीं किया।"

मास्टर– और उच्च आधार है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, और कहता है, ईश्वरी बातें एक बार सुन लेने से मुझे याद रहती हैं। कहता है, बचपन में मैं रोया करता था, ईश्वर दर्शन नहीं दे रहे हैं इसलिए।

मास्टर के साथ छोटे नरेन्द्र के सम्बन्ध में बहुत सी बातें हुईं। इस समय भक्तों में से किसी ने कहा, 'मास्टर महाशय, क्या आप स्कूल नहीं आएँगे ?'

श्रीरामकृष्ण– क्या बजा है ?

भक्त– एक बजने को दस मिनट है।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)–तुम जाओ, तुम्हें देर हो रही है। एक तो काम छोड़कर आये हो। (लाटू से) राखाल कहाँ है?

लाटू– घर चला गया है।

श्रीरामकृष्ण– मुझसे मुलाकात बिना किये ही ?

(२)

अवतारवाद तथा श्रीरामकृष्ण

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर मास्टर ने आकर देखा, श्रीरामकृष्ण बलराम के बैठकखाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। मुख पर हास्य की रेखा है और वही हास्य भक्तों के मुख पर भी प्रतिबिम्बित हो रहा है। मास्टर को लौटकर आते हुए देख, उनके प्रणाम करने के पश्चात्, श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने पास बैठने का इशारा किया। श्रीयुत गिरीश घोष, सुरेश मित्र, बलराम, लाटू, चुन्नीलाल आदि भक्त उपस्थित हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– तुम एक बार नरेन्द्र के साथ विचार करके देखना कि वह क्या कहता है।

गिरीश– (हँसकर)– नरेन्द्र कहता है, ईश्वर अनन्त हैं। जो कुछ हम लोग देखते या सुनते हैं–– वस्तु या व्यक्ति––सब उनके अंश हैं। इतना भी कहने का हमें अधिकार नहीं है। Infinity (अनन्तता) जिसका स्वरूप है, उसका फिर अंश कैसे हो सकता है? अंश नहीं होता।

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर अनन्त हों अथवा कितने ही बड़े हों, वे अगर चाहें तो उनके भीतर का सार पदार्थ आदमी के भीतर से प्रकट हो सकता है, और होता भी है। वे अवतार लेते हैं, यह उपमा के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। इसका अनुभव होना चाहिए। इसे प्रत्यक्ष करना चाहिए। उपमा के द्वारा कुछ आभास मात्र मिलता है। गौ का सींग अगर कोई छू ले, तो गौ को ही छूना हुआ, पैर या पूँछ के छूने पर भी छूना ही है; परन्तु हमारे लिए गौ के भीतर का सार भाग दूध है। वह दूध उसके स्तनों से निकलता है। उसी तरह प्रेम और भक्ति की शिक्षा देने के लिए

ईश्वर मनुष्य की देह धारण करके समय समय पर आते हैं।

गिरीश– नरेन्द्र कहता है, उनकी सम्पूर्ण धारणा क्या कभी हो सकती है? वे अनन्त हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– ईश्वर की सब धारणा कर भी कौन सकता है? न उनका कोई बड़ा अंश, न कोई छोटा अंश सम्पूर्ण धारणा में लाया जा सकता है; और सम्पूर्ण धारणा करने की ज़रूरत ही क्या है? उन्हें प्रत्यक्ष कर लेने ही से काम बन गया। उनके अवतार को देखने ही से उन्हें देखना हो गया। अगर कोई गंगाजी के पास जाकर गंगाजल का स्पर्श करता है तो वह कहता है, मैं गंगाजी के दर्शन कर आया। उसे हरिद्वार से गंगासागर तक की गंगा का स्पर्श नहीं करना पड़ता। (सब हँसते हैं)

"तुम्हारे पैर अगर मैं छू लूँ, तो तुम्हें ही छूना हुआ। (हास्य)

"अगर समुद्र के पास जाकर कुछ पानी छू लो तो समुद्र का ही स्पर्श करना होता है। अग्नितत्त्व सब जगह है, परन्तु लकड़ी में अधिक है।"

गिरीश– (हँसते हुए)– जहाँ मुझे आग मिलेगी, मुझे उसी जगह से ज़रूरत है।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– अग्नितत्त्व लकड़ी में अधिक है। अगर तुम ईश्वर की खोज करते हो तो आदमी में खोजो। आदमी में उनका प्रकाश अधिक होता है। जिस आदमी में उर्जिता भक्ति देखोगे–– देखोगे उसमें प्रेम और भक्ति, दोनों उमड़ रहे हैं–– ईश्वर के लिए वह पागल हो रहा है–– उनके प्रेम में मस्त घूमता है–– उस मनुष्य में, निश्चयपूर्वक समझो कि वे अवतीर्ण हो चुके हैं।

(मास्टर को देखकर) "वे तो हैं ही, परन्तु कहीं उनकी शक्ति का प्रकाश अधिक है, कहीं कम। अवतारों में उनकी शक्ति का प्रकाश अधिक है। वही शक्ति कभी कभी पूर्ण भाव से रहती है। अवतार शक्ति का ही होता है।"

गिरीश– नरेन्द्र कहता है, वे अवाङ्मनसगोचरम् हैं।

श्रीरामकृष्ण– नहीं; इस मन से गोचर तो नहीं हैं, परन्तु वे शुद्ध मन के गोचर अवश्य हैं। इस बुद्धि के गोचर नहीं, परन्तु शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी और कांचन पर से आसक्ति गई नहीं कि शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि की उत्पत्ति हुई। तब शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि दोनों एक कहलाते हैं। वे उस शुद्ध मन से दीख पड़ते हैं। क्या ऋषि और मुनियों ने उनके दर्शन नहीं किए? उन लोगों ने चैतन्य के द्वारा चैतन्य का साक्षात्कार किया था।

गिरीश– (हँसकर)– नरेन्द्र तर्क में मुझसे परास्त हो गया है।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, उसने मुझसे कहा है, गिरीश घोष आदमी को अवतार कहकर जब इतना विश्वास करता है, तो इस पर मैं और क्या कहता? इस तरह के विश्वास पर कुछ कहना भी न चाहिए।

गिरीश– (सहास्य)– महाराज! हम लोग तो अनर्गल बातें कर रहे हैं, और मास्टर चुपचाप बैठे हुए हैं—ज़रा भी ज़बान नहीं हिलाते। महाराज! ये क्या सोचते हैं?

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– अधिक बकवाद करनेवाला, अधिक चुप्पी साधनेवाला, कान में तुलसी खोंसनेवाला आदमी, बड़ा लम्बा घूँघट काढ़नेवाली स्त्री, काईवाले तालाब का पानी, इनकी गणना अनर्थकारियों में है। (सब हँसते हैं) (हँसकर) परन्तु ये ऐसे नहीं हैं, ये गम्भीर प्रकृति के हैं। (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण ने जिन्हें अनर्थकारियों में गिनाया, उनके लिए वहाँ उन्होंने एक पद कहा था।

गिरीश– महाराज ! वह पद आपने कैसे कहा ?

श्रीरामकृष्ण– इन आदमियों से सचेत रहना चाहिए। पहले तो वह है जो अधिक बकता हो— अनाप-शनाप; फिर चुपचाप बैठा रहनेवाला— जिसके मन की थाह मिलती ही नहीं— गोताखोर भी मिट्टी न छू पाए; फिर कान में तुलसी के दल खोंसनेवाला, कान में इसलिए तुलसी खोंस लेता है कि लोग समझें, यह बड़ा भक्त है। लम्बा घूँघट काढ़नेवाली औरत, लम्बा घूँघट देखकर आदमी सोचते हैं कि यह बड़ी सती है, परन्तु बात ऐसी नहीं है; और काईवाले तालाब के पानी में नहाने से ही सन्निपात हो जाता है।

चुन्नीलाल– इनके (मास्टर के) नाम पर एक बात फैली है। छोटा नरेन्द्र, बाबूराम, इनके विद्यार्थी हैं। नारायण, पल्टू, पूर्ण, तेजचन्द्र— ये भी इनके विद्यार्थी हैं। बात फैली है कि ये उन्हें यहाँ ले आते हैं और इस तरह उनका लिखना-पढ़ना मिट्टी में मिल रहा है ! इन पर लोग दोषारोपण कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– उनकी बात पर विश्वास कौन करेगा ?

इस तरह बातें हो रही थीं, इतने में नारायण आए और उन्होंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। नारायण का रंग गोरा, उम्र १७–१८ साल की है, स्कूल में पढ़ते हैं, श्रीरामकृष्ण इन्हें बहुत प्यार करते हैं। इन्हें देखने और खिलाने को वे सदा ही व्याकुल रहा करते हैं। इनके लिए दक्षिणेश्वर में बैठे हुए रोते भी हैं। नारायण को वे साक्षात् नारायण देखते हैं।

गिरीश– (नारायण को देखकर)– किसने तुम्हें खबर दी ?

देखते हैं, मास्टर ने सबको साफ कर दिया! (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– बैठो! चुपचाप बैठो! इन्हें (मास्टर को) लोग दोष दे रहे हैं।

फिर नरेन्द्र की बात चली।

एक भक्त– अब उतना क्यों नहीं आते?

श्रीरामकृष्ण– अन्न की चिन्ता भी बड़ी बिकट होती है, बड़ों बड़ों की अक्ल उस समय काम नहीं देती।

बलराम– शिव गुहा के घराने के अन्नदा गुहा के पास नरेन्द्र का आना-जाना खूब है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, एक ऑफिसवाले के यहाँ नरेन्द्र, अन्नदा, ये लोग जाया करते हैं। वहाँ सब मिलकर ब्राह्म समाज करते हैं।

एक भक्त– उनका (ऑफिसवाले का) नाम तारापद था।

बलराम– (हँसते हुए)– कुछ ब्राह्मण कहते हैं, अन्नदा गुहा बड़ा अहंकारी है।

श्रीरामकृष्ण– ब्राह्मणों की इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। उनका हाल तो जानते ही हो, जो नहीं देता वह बदमाश हो जाता है और जो देता है वह अच्छा। (सब हँसते हैं) अन्नदा को मैं जानता हूँ, वह अच्छा आदमी है।

(३)

भक्तों के साथ भजनानन्द में

श्रीरामकृष्ण की गाना सुनने की इच्छा है। बलराम के बैठकखाने के कमरे में आदमी भरे हैं। सब के सब उनकी ओर ताक रहे हैं, उनकी वाणी सुनने के लिए।

श्रीरामकृष्ण की इच्छा-पूर्ति के लिए तारापद गाने लगे–

"केशव कुरु करुणा दीने कुंज-काननचारी ।
माधव मनमोहन मोहनमुरलीधारी ।।
व्रजकिशोर कालीयहर कातर-भयभंजन,
नयनबाँका बाँका शिखिपाखा, राधिका हृदिरंजन ।
गोवर्धनधारण, वनकुसुमभूषण, दामोदर कंसदर्पहारी, श्याम
रासरसविहारी ।।"

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– अहा, बड़ा अच्छा गाना है! सब गानों की रचना तुम्हीं ने की है?

भक्त–जी हाँ, 'चैतन्यलीला' के सब गाने इन्हीं के बनाए हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– यह गाना उतरा भी खूब है। (गानेवाले के प्रति) "निताई का गाना आता है?"

फिर गाना होने लगा, नित्यानन्द ने गाया था– (भावार्थ)–

"किशोरी का प्रेम अगर तुझे लेना है तो चला आ,...प्रेम का ज्वार बहा जा रहा है। अरे, वह प्रेम शत धाराओं में बह रहा है, जो जितना चाहता है, उसे उतना ही मिलता है। प्रेम की किशोरी, स्वयं इच्छा करके प्रेम वितरण कर रही है। राधा के प्रेम में तुम भी 'जय कृष्ण जय कृष्ण' कहो। उस प्रेम से प्राण मस्त हो जाते हैं, उसकी तरंगों पर प्राण नाचने लगते हैं। राधा के प्रेम से 'जय कृष्ण जय कृष्ण' कहता हुआ तू चला आ।"

फिर गौरांग का गाना होने लगा,–

"किसके भाव में आकर गौरांग के वेश में तुमने प्राणों को शीतल कर दिया? प्रेम के सागर में तूफान आ गया है, अब कुल की मर्यादा न रह जाएगी। व्रज में गोपाल का वेश धारण कर तुमने गौएँ चराई थीं, बंसी बजाकर गोपियों का मन मुग्ध कर लिया था, गोवर्धन धारण कर वृन्दावन की रक्षा की थी, गोपियों

के मान करने पर तुम उनके पैरों पड़े थे-- आँसुओं से तुम्हारा चन्द्रानन प्लावित हो गया था।"

सब मास्टर से गाने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। मास्टर स्वभाव के कुछ लजीले हैं, वे धीमे शब्दों में माफी माँगने लगे।

गिरीश- (श्रीरामकृष्ण से हँसकर)-महाराज, मास्टर किसी तरह नहीं गा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण- (विरक्ति के स्वर में)- वह स्कूल में भले ही दाँत दिखाए, मुँह खोले, पर गाने में ही उसे दुनिया भर की लज्जा सवार हो जाती है।

मास्टर चुपचाप बैठे रहे।

श्रीयुत सुरेश मित्र कुछ दूर बैठे थे। श्रीरामकृष्ण उन्हें सस्नेह देखकर श्रीयुत गिरीश की ओर इशारा करके हँसते हुए कह रहे हैं-

"तुम्हीं नहीं, ये (गिरीश) तुमसे भी बढ़े-चढ़े हैं।"

सुरेश- (हँसते हुए)- जी हाँ, मेरे बड़े भाई हैं।

(सब हँसते हैं)

गिरीश- (श्रीरामकृष्ण से)- अच्छा महाराज, बचपन में मैंने न कुछ पढ़ा, न लिखा, फिर भी लोग मुझे विद्वान् कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण- महिम चक्रवर्ती ने शास्त्रावलोकन खूब किया है-- आधार भी उच्च है। (मास्टर से) क्यों जी?

मास्टर- जी हाँ।

गिरीश- क्या? विद्या? यह बहुत देख चुका हूँ, अब इसके चकमे में नहीं आता।

श्रीरामकृष्ण- (हँसते हुए)- यहाँ का भाव क्या है, जानते हो? पुस्तक और शास्त्र ये सब केवल ईश्वर के पास पहुँचने का मार्ग ही बताते हैं। मार्ग-- उपाय-- के समझ लेने पर फिर पुस्तकों और

शास्त्रों की क्या ज़रूरत है? तब स्वयं अपना काम करना चाहिए।

"एक आदमी को एक चिट्ठी मिली। उसको उसके किसी आत्मीय ने कुछ चीज़ें भेजने के लिए लिखा था। जब चीज़ों के खरीदने का समय आया, तब चिट्ठी की तलाश करने पर भी वह नहीं मिल रही थी। मकानमालिक ने बड़ी उत्सुकता के साथ खोजना शुरू किया। बड़ी देर तक कई आदमियों ने मिलकर खोजा। अन्त में वह चिट्ठी मिल गई, तब उसे खूब आनन्द हुआ। मालिक ने बड़ी उत्सुकता के साथ चिट्ठी अपने हाथ में ले ली, और उसमें जो कुछ लिखा हुआ था, पढ़ने लगा, लिखा था— पाँच सेर सन्देश भेजिएगा, एक धोती, तथा कुछ अन्य चीज़ें— न जाने क्या क्या। तब फिर चिट्ठी की कोई ज़रूरत न रही, चिट्ठी फेंककर सन्देश, कपड़े तथा और और चीज़ों की व्यवस्था करने को वह चल दिया। चिट्ठी की ज़रूरत तो तभी तक थी, जब तक सन्देश, कपड़े आदि के विषय में ज्ञान नहीं हुआ था। इसके बाद प्राप्ति की चेष्टा हुई।

"शास्त्रों में तो उनके पाने के उपायों की ही बातें मिलेंगी। परन्तु खबरें लेकर काम करना चाहिए। तभी तो वस्तुलाभ होगा।

"केवल पाण्डित्य से क्या होगा? बहुत से श्लोक और बहुत से शास्त्र पण्डितों के समझे हुए हो सकते हैं, परन्तु संसार पर जिसकी आसक्ति है, मन ही मन कामिनी और कांचन पर जिसका प्यार है, शास्त्रों पर उसकी धारणा नहीं हुई— उसका पढ़ना व्यर्थ है, पंचांग में लिखा है कि इस साल वर्षा खूब होगी, परन्तु पंचांग को दाबने पर एक बूँद भी पानी नहीं निकलता, भला एक बूँद भी तो गिरता, परन्तु उतना भी नहीं गिरता!"

(सब हँसते हैं)

गिरीश– (सहास्य)– महाराज, पंचांग को दाबने पर एक बूँद भी पानी नहीं गिरता? (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– पण्डित खूब लम्बी लम्बी बातें तो करते हैं, परन्तु उनकी नज़र कहाँ है?— कामिनी और कांचन पर— देह-सुख, और रुपयों पर।

"गीध बहुत ऊँचे उड़ता है, परन्तु उसकी नज़र मरघट पर ही रहती है। (हास्य) वह बस मुर्दे की लाश ही खोजता रहता है— कहाँ है मरघट और कहाँ है मरा हुआ बैल!

(गिरीश से) "नरेन्द्र बहुत अच्छा है, गाने-बजाने में, पढ़ने-लिखने में— सब बातों में पक्का है, इधर जितेन्द्रिय भी है, विवेक और वैराग्य भी है, सत्यवादी भी है। उसमें बहुत से गुण हैं।

(मास्टर से) "क्यों जी! कैसा है, अच्छा है न खूब?"

मास्टर– जी हाँ, बहुत अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से अकेले में)– देखो, उसमें (गिरीश में) अनुराग खूब है, और विश्वास भी है।

मास्टर आश्चर्य में आकर एकदृष्टि से गिरीश को देख रहे हैं। गिरीश कुछ ही दिनों से श्रीरामकृष्ण के पास आने लगे हैं; परन्तु मास्टर ने देखा, श्रीरामकृष्ण से मानो उनका बहुत दिनों का परिचय हो— जैसे वे कोई परम आत्मीय हों— जैसे एक ही सूत में पिरोये हुए मणियों में से एक हों।

नारायण ने कहा, "महाराज, क्या गाना न होगा?"

श्रीरामकृष्ण मधुर कण्ठ से माता का नाम और गुणगान करने लगे।

"आदरणीय श्यामा माँ को यत्नपूर्वक हृदय में रखना। ऐ मन, तू देख और मैं देखूँ, कोई और जैसे न देखने पावे। कामादि

को धोखा देकर, ऐ मन, आ, एकान्त में उनके दर्शन करें। रसना को हम लोग साथ रखेंगे, ताकि वह 'माँ माँ' कहकर पुकारती रहे। जितने कुरुचि कुमन्त्री हैं उन्हें पास भी न फटकने देना। ज्ञान के नेत्रों को पहरेदार बनाना और उन्हें सतर्क रहने के लिए होशियार कर देना।"

श्रीरामकृष्ण त्रितापपीड़ित संसारियों का भाव अपने पर आरोपित कर माता से अभिमानपूर्वक कह रहे हैं—

"माँ, आनन्दमयी होकर तुम मुझे निरानन्द न करना। तुम्हारे दोनों चरणों को छोड़ मेरा मन और कुछ भी नहीं जानता। माँ, मुझे यम बदमाश कहता है, मैं उसे क्या जवाब दूँ, तुम्हीं बता दो। मेरे मन की यह इच्छा थी कि 'भवानी' कहकर मैं भव से पार हो जाऊँ। तुम मुझे इस अछोर सागर में डुबो दोगी, यह विचार स्वप्न में भी मुझे न था। मैं दिन-रात तुम्हारा दुर्गा-नाम लिया करता हूँ, फिर भी मेरे इन असंख्य दुःखों का विनाश न हो पाया। ऐ हरसुन्दरी, अब की बार अगर मैं मरा, तो समझ लेना कि तुम्हारा यह दुर्गा-नाम फिर कोई न लेगा।"

फिर वे नित्यानन्दमयी के ब्रह्मानन्द के स्वरूप का कीर्तन करने लगे—

"तुम शिव के साथ सदा ही आनन्द में मग्न हो रही हो। कितने ही रंग दिखा रही हो। माँ, सुधा पान करके लड़खड़ाती हुई भी तुम गिर नहीं पड़ती।"

भक्तगण निस्तब्ध भाव से गाना सुन रहे हैं। वे टकटकी लगाए श्रीरामकृष्ण की इस आत्मविस्मृत प्रमत्त अवस्था का अवलोकन कर रहे हैं।

गाना समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— "आज मेरा

गाना अच्छा नहीं हुआ। जुकाम हो गया है।"

(४)

श्रीरामकृष्ण की प्रार्थना

सन्ध्या हो आई है। समुद्र के वक्षःस्थल पर,——जहाँ अनन्त की नील छाया पड़ रही है, घने जंगलों में, आसमान को छूनेवाले पर्वतों की चोटियों पर, हवा से काँपती हुई नदी के तट पर, दिगन्त के छोर तक फैले हुए प्रान्तर में साधारण मानव का सहज ही भावान्तर हो जाता है। यह सूर्य जो संसार को आलोकित कर रहा था, कहाँ गया? बालक सोच रहा है—— तथा सोच रहे हैं बालक-स्वभाव महापुरुष। सन्ध्या हो गई। कैसा आश्चर्य है! किसने ऐसा किया? चिड़ियाँ डालियों पर बैठी हुई चहक रही हैं, मनुष्यों में जिन्हें चैतन्य हो गया है, वे भी उस आदिकवि——कारण के कारण पुरुषोत्तम—— का नाम ले रहे हैं।

बातचीत करते हुए सन्ध्या हो गई। भक्तों में, जो जिस आसन पर बैठा था, वह उसी पर बैठा रहा। श्रीरामकृष्ण मधुर नाम ले रहे हैं। सब लोग उत्सुकता से दत्तचित्त हो सुन रहे हैं। इस तरह का मधुर नाम उन लोगों ने कभी नहीं सुना, मानो सुधावृष्टि हो रही है। इस तरह प्रेम से भरे हुए बालक का 'माँ-माँ' कहकर पुकारना उन लोगों ने कभी नहीं सुना। आकाश, पर्वत, महासागर, वन, इन सबको देखने की अब क्या ज़रूरत है? गौ के सींग, पैर और शरीर के दूसरे अंगों को देखने की अब क्या ज़रूरत है? श्रीरामकृष्ण ने गौ के जिन स्तनों की बात कही है, इस कमरे में हम वही तो नहीं देख रहे हैं? सब के अशान्त मन को कैसे शान्ति मिली? निरानन्द का संसार आनन्द की धारा में कैसे प्लावित हो गया? भक्तों को आनन्दमग्न और शान्तिपूर्ण क्यों

देख रहा हूँ? ये प्रेमिक संन्यासी क्या सुन्दर रूपधारी अनन्त ईश्वर हैं? दूध के पिपासुओं को क्या यहीं दूध मिल सकेगा? अवतार हों या कोई भी हों, मन तो इन्हीं के श्रीचरणों में बिक गया, अब और कहीं जाने की शक्ति नहीं रही। इन्हीं को अपने जीवन का ध्रुवतारा बना लिया है। देखूँ तो सही, इनके हृदय-सरोवर में वे आदिपुरुष किस तरह प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

भक्तों में से कोई कोई इस तरह का चिन्तन कर रहे हैं और श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से निकले हुए हरि का नाम और देवी का नाम सुन-सुनकर कृतार्थ हो रहे हैं। नामगुण-कीर्तन के पश्चात् श्रीरामकृष्ण प्रार्थना करने लगे; मानो साक्षात् भगवान प्रेम का शरीर धारण कर जीवों को शिक्षा दे रहे हैं कि कैसे प्रार्थना करनी चाहिए। कहा—"माँ, मैं तुम्हारी शरण में हूँ—शरणागत हूँ! माँ, मैं देह-सुख नहीं चाहता, अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ नहीं चाहता, केवल यह कहता हूँ कि तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो—निष्काम, अमला, अहेतुकी भक्ति। और माँ, जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ—जैसे तुम्हारी माया के संसार के कामिनी-कांचन पर कभी प्यार न हो। माँ, तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। मैं भजनहीन हूँ, साधनाहीन हूँ, ज्ञानहीन हूँ, भक्तिहीन हूँ, कृपा करके अपने श्रीपादपद्मों में मुझे भक्ति दो।"

मणि सोच रहे हैं—'तीनों काल में जो उनका नाम ले रहे हैं—जिनके श्रीमुख से निकली हुई नामगंगा तैलधारा की भाँति निरवच्छिन्ना है, फिर उनके लिए संध्या-वन्दना का क्या प्रयोजन?' मणि ने बाद में समझा कि लोकशिक्षा के लिए ही श्रीरामकृष्ण ने मानव शरीर धारण किया है—"हरि ने स्वयं ही आकर

योगी के वेश में नाम का संकीर्तन किया।"

गिरीश ने श्रीरामकृष्ण को न्योता दिया। उसी रात को जाना है।

श्रीरामकृष्ण– रात न होगी ?

गिरीश– नहीं, आप जब चाहें, आइएगा। मुझे आज थिएटर जाना होगा, उन लोगों में लड़ाई हो रही है, उसका निपटारा करना है।

(५)

श्रीरामकृष्ण का अद्‌भुत भावावेश

गिरीश का न्योता है, रात ही को जाना होगा। इस समय रात के नौ बजे हैं। श्रीरामकृष्ण को खिलाने के लिए बलराम भी भोजन का प्रबन्ध करा रहे थे। कहीं बलराम को कष्ट न हो, इसलिए श्रीरामकृष्ण ने गिरीश के यहाँ जाते समय बलराम से कहा, "बलराम, तुम भी भोजन भेजवा देना।"

दुमंज़ले से नीचे उतरते हुए श्रीरामकृष्ण भगवद्भावना में मस्त हो रहे हैं, जैसे मतवाला। साथ में नारायण हैं और मास्टर। पीछे राम, चुन्नी आदि कितने ही हैं। एक भक्त पूछ रहे हैं, 'साथ कौन जाएगा?' श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'किसी एक के जाने ही से काम हो जाएगा।' उतरते हुए ही विभोर हो रहे हैं। नारायण हाथ पकड़ने के लिए बढ़े कि कहीं गिर न जायँ। श्रीरामकृष्ण को इससे विरक्ति-सी हुई। कुछ देर बाद नारायण से उन्होंने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा, "हाथ पकड़ने पर लोग मतवाला समझेंगे, मैं खुद चला जाऊँगा।"

बोसपाड़े का तिराहा पार कर रहे हैं—कुछ ही दूर पर गिरीश का घर है। इतने शीघ्र क्यों जा रहे हैं? भक्त सब पीछे रह जाते हैं। हृदय में एक अद्‌भुत दिव्यभाव का आवेश हो रहा

है। वेदों में जिन्हें वाणी और मन से परे कहा है, उन्हीं की चिन्ता करते हुए श्रीरामकृष्ण पागल की तरह लड़खड़ाते हुए चले जा रहे हैं। अभी कुछ ही समय हुआ होगा, उन्होंने बलराम के यहाँ कहा था, वे वाणी और मन से परे नहीं हैं, वे शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा के गोचर हैं; शायद वे उस परम पुरुष का साक्षात्कार कर रहे हैं। क्या यही देख रहे हैं-- 'जो कुछ है सो तू ही है?'

नरेन्द्र आ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के लिए पागल रहते हैं। नरेन्द्र सामने आए, परन्तु श्रीरामकृष्ण कुछ बोल न सके। लोग इसी को 'भाव' कहते हैं; क्या श्रीगौरांग को भी ऐसा ही होता था?

कौन इस भावावस्था को समझेगा? गिरीश के घर में जानेवाली गली के सामने श्रीरामकृष्ण आए। भक्त सब साथ हैं। अब आप नरेन्द्र से बोले--

"क्यों भैया, अच्छे हो न? मैं इस समय कुछ बोल नहीं सका।"

श्रीरामकृष्ण के अक्षर-अक्षर में करुणा भरी हुई है। तब भी वे गिरीश के दरवाजे पर नहीं पहुँचे थे।

श्रीरामकृष्ण एकाएक खड़े हो गए। नरेन्द्र की ओर देखकर बोले, "एक बात है, एक तो यह (देह) है और एक वह (संसार)।"

जीव और संसार। वे ही जानें कि भाव में वे यह सब क्या देख रहे थे। अवाक् होकर उन्होंने क्या देखा? दो ही एक बात वे कह सके थे-- जैसे वेदवाक्य या देववाणी। अथवा जैसे कोई समुद्र के तट पर खड़ा हुआ अनन्त तरंगमालाओं से उठते हुए अनाहत नाद की दो ही एक ध्वनि सुनता है, उसी तरह उस अनन्त ज्ञानराशि से निकले हुए दो ही एक शब्द श्रीरामकृष्ण के पास

खड़े हुए भक्तों ने सुने ।

(६)

नित्यगोपाल से वार्तालाप

गिरीश दरवाजे पर से श्रीरामकृष्ण को ले जाने के लिए आए हैं । भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण के बिलकुल निकट आ जाने पर गिरीश दण्ड की तरह श्रीरामकृष्ण के पैरों पर गिर पड़े । आज्ञा पाकर उठे, श्रीरामकृष्ण की पदधूलि ली और उन्हें अपने साथ दुमंज़ले के बैठकखाने में ले जाकर बैठाया । भक्तों ने भी आसन ग्रहण किया । उन्हीं के पास बैठकर उनका वचनामृत पान करने की इच्छा है ।

आसन ग्रहण करते हुए श्रीरामकृष्ण ने देखा, एक संवादपत्र पड़ा हुआ था । संवादपत्र में विषयी मनुष्यों की बातें रहती हैं—— दूसरों की चर्चा, दूसरों की निन्दा, यही सब रहता हैं, अतएव श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में वह अपवित्र है; उन्होंने उसे हटा देने के लिए इशारा किया । कागज़ के हटाने के बाद उन्होंने आसन ग्रहण किया ।

नित्यगोपाल ने प्रणाम किया ।

श्रीरामकृष्ण– (नित्यगोपाल से)– वहाँ ?——

नित्यगोपाल– जी हाँ, दक्षिणेश्वर में नहीं जा सका, शरीर अस्वस्थ था, दर्द है ।

श्रीरामकृष्ण– कैसा है तू ?

नित्यगोपाल– अच्छा नहीं रहता ।

श्रीरामकृष्ण– मन को कुछ निम्न स्तर पर लाना ।

नित्यगोपाल– आदमी अच्छे नहीं लगते । कितनी ही बातें लोग कहा करते हैं—— कभी कभी मुझे भय होता है । कभी कभी साहस

भी खूब होता है।

श्रीरामकृष्ण— होगा क्यों नही ? तेरे साथ रहता कौन है ?

नित्यगोपाल— तारक * हमारे साथ रहता है। उसे भी कभी कभी जी नहीं चाहता।

श्रीरामकृष्ण— नागा कहता था, उसके मठ में एक सिद्ध था, वह आसमान की ओर नज़र उठाये हुए चला जाता था। परन्तु उसका एक साथी चले जाने से उसे बड़ा दु:ख हुआ, वह अधीर हो गया।

क़हते ही कहते श्रीरामकृष्ण का भाव-परिवर्तन हो गया। किसी एक भाव में वे निर्वाक् हो गए। कुछ देर बाद कह रहे हैं, "तू आया है ? मैं भी आया हूँ।" यह बात कौन समझेगा ? क्या यही देवभाषा है ?

(७)

अवतार के सम्बन्ध में विचार

कितने ही भक्त आए हुए हैं। श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए हैं। नरेन्द्र, गिरीश, राम, हरिपद, चुन्नी, बलराम, मास्टर—कितने ही हैं।

नरेन्द्र नहीं मानते कि मनुष्य की देह में कभी अवतार हो सकता है। इधर गिरीश को ज्वलन्त विश्वास है कि प्रत्येक युग में ईश्वर का अवतार होता है,— वे मनुष्य की देह धारण करके संसार में आते हैं। श्रीरामकृष्ण की बड़ी इच्छा है कि इस सम्वन्ध में दोनों विचार करें। श्रीरामकृष्ण गिरीश से कह रहे हैं, "तुम दोनों ज़रा अंग्रेजी में विचार करो, मैं सुनूँगा।"

विचार आरम्भ हुआ। अंग्रेजी में न होकर वंगला में ही होने

* श्री तारकनाथ घोषाल— स्वामी शिवानन्दजी।

लगा—बीच-बीच में अंग्रेजी के दो-एक शब्द निकल जाते थे। नरेन्द्र ने कहा "ईश्वर अनन्त हैं, उनकी धारणा करना क्या हम लोगों की शक्ति का काम है? वे सबके भीतर हैं, केवल किसी एक के ही भीतर वे आए हैं, ऐसी बात नहीं।"

श्रीरामकृष्ण—(सस्नेह)—इसका जो मत है, वही मेरा भी है। वे सब जगह हैं; परन्तु इतनी बात है कि शक्ति की विशेषता है। कहीं तो अविद्याशक्ति का प्रकाश है, कहीं विद्याशक्ति का। किसी आधार में शक्ति अधिक है, किसी में कम, इसीलिए सब आदमी समान नहीं हैं।

राम—इस तरह के वृथा तर्क से क्या फायदा है?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, नहीं; इसका एक खास अर्थ है।

गिरीश—तुम्हे कैसे मालूम हुआ कि वे देह धारण करके नहीं आते?

नरेन्द्र—वे अवाङ्मनसगोंचरम् हैं।

श्रीरामकृष्ण—नहीं, वे शुद्ध-बुद्धि-गोचर हैं। शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा, ये एक ही वस्तु हैं। ऋषियों ने शुद्ध बुद्धि के द्वारा शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार किया था।

गिरीश—(नरेन्द्र से)—मनुष्य में उनका अवतार न हो तो समझाए फिर कौन? मनुष्य को ज्ञान-भक्ति देने के लिए वे देह धारण करते हैं। नहीं तो शिक्षा कौन देगा?

नरेन्द्र—क्यों? वे अन्तर में रहकर समझाएँगे।

श्रीरामकृष्ण—(सस्नेह)—हाँ, हाँ, अन्तर्यामी के रूप से वे समझाएँगे।

फिर घोर तर्क ठन गया। Infinity (अनन्त) के अंश किस तरह होंगे, हैमिल्टन क्या कहते हैं—हर्बर्ट स्पेन्सर क्या कहते

हैं, टिन्डल, हक्सले, क्या कह गए हैं, ये सब बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– देखो, यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता! —– मैं सब वही देख रहा हूँ, विचार अब इस पर क्या करूँ? देख रहा हूँ—– वे ही सब हैं, सब कुछ वे ही हुए हैं। यह भी है, और वह भी। एक अवस्था में अखण्ड में मन और बुद्धि खो जाती है, नरेन्द्र को देखकर मेरा मन अखण्ड में लीन हो जाता है। (गिरीश से) इसके बारे में तुम्हारी क्या राय है?

गिरीश– (हँसते हुए)– आप यह मुझसे क्यों पूछते हैं? इतने ही को छोड़ मानो और सब कुछ मैं जानता हूँ! (सब हँसने लगे)

श्रीरामकृष्ण– दो श्रेणी बिना उतरे मुख से बोला नहीं जाता।

"वेदान्त—– शंकर ने जो कुछ समझाया है, वह भी है और रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद भी है।"

नरेन्द्र– विशिष्टाद्वैतवाद क्या है?

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– विशिष्टाद्वैतवाद रामानुज का मत है। अर्थात् जीव-जगत्-विशिष्ट ब्रह्म। सब मिलकर एक।

"जैसे एक बेल। एक ने उसके खोपड़े को अलग, बीजों को अलग और गूदे को अलग कर लिया था। फिर यह समझने की ज़रूरत हुई कि बेल वजन में कितना था। तब सिर्फ गूदा तौलने पर बेल का वजन कैसे पूरा उतर सकता था? क्योंकि पूरा वजन समझना है तो खोपड़ा, बीज और गूदा तीनों ही एक साथ लेने होंगे। खोपड़े और बीजों को निकालकर गूदे को ही लोग असल चीज़ समझते हैं। फिर विचार करके देखो—– जिस वस्तु का गूदा है, उसी का खोपड़ा भी है और उसी के बीज भी। पहले नेति नेति करके जाना पड़ता है; जीव नेति, जगत् नेति इस तरह का विचार करना चाहिए, ब्रह्म ही वस्तु है और सब अवस्तु; फिर यह

अनुभव होता है-- जिसका गूदा है, खोपड़ा और बीज भी उसके हैं; जिसे ब्रह्म कहते हो, उसी से जीव और जगत् भी हुए हैं। जिसकी नित्यता है, लीला भी उसी की है। इसीलिए रामानुज कहते थे, जीव-जगत्-विशिष्ट ब्रह्म। इसे ही विशिष्टाद्वैतवाद कहते हैं।"

(८)

ईश्वरदर्शन; अवतार प्रत्यक्षसिद्ध

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– मैं यह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, विचार अब और क्या करना है? मैं देख रहा हूँ, वे ही सब कुछ हुए हैं-- वे ही जीव और जगत् हुए हैं।

"परन्तु चैतन्य के हुए बिना चैतन्य को कोई जान नहीं सकता। विचार तो तभी तक है जब तक उन्हें कोई पा नहीं लेता। केवल जबानी जमाखर्च से काम न होगा, मैं देख रहा हूँ, वे ही सब कुछ हुए हैं। उनकी कृपा से चैतन्य लाभ करना चाहिए। चैतन्य लाभ करने पर समाधि होती है, कभी कभी देह भी भूल जाती है, कामिनी और कांचन पर आसक्ति नहीं रह जाती,— ईश्वरी बातों के सिवा और कुछ नहीं सुहाता, विषय की बातें सुनकर कष्ट होता है।

"चैतन्य प्राप्त करके ही मनुष्य चैतन्य को जान सकता है।"

श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं--

"मैंने देखा है, विचार करने पर एक तरह का ज्ञान होता है, और ध्यान करने पर लोग एक दूसरी तरह उन्हें समझते हैं। और वे जब खुद दिखा देते हैं तब वे एक और हैं।

"वे जब खुद दिखलाते हैं कि अवतार इस प्रकार होता है, वे जब अपनी मनुष्यलीला समझा देते हैं, तब विचार करने की ज़रूरत

नहीं रह जाती; किसी के समझाने की आवश्यकता नहीं रहती। किस तरह— जानते हो ?— जैसे अंधेरे कमरे के भीतर दियासलाई घिसने से एकाएक उजाला हो जाता है। उसी तरह एकाएक वे अगर उजाला दे दें तो सब सन्देह आप मिट जाते हैं। इस तरह विचार करके उन्हें कौन जान सकता है ?"

श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को पास बुलाकर बैठाया और कुछ प्रश्न करते हुए बड़े ही प्यार से बातचीत आरम्भ की।

नरेन्द्र– (श्रीरामकृष्ण से)– तीन-चार दिन तो मैंने काली का ध्यान किया, परन्तु कहाँ मुझे तो कहीं कुछ नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण– धीरे-धीरे होगा। काली और कोई नहीं, जो ब्रह्म हैं वही काली भी हैं। काली आद्याशक्ति हैं। जब वे निष्क्रिय रहती हैं, तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं और जब वे सृष्टि, स्थिति और प्रलय करती हैं, तब उन्हें शक्ति कहते हैं, काली कहते हैं। जिन्हें तुम ब्रह्म कह रहे हो, उन्हें ही मैं काली कहता हूँ।

"ब्रह्म और काली अभेद हैं। जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। अग्नि को सोचते ही उसकी दाहिका शक्ति की चिन्ता की जाती है। काली के मानने पर ब्रह्म को मानना पड़ता है और ब्रह्म को मानने पर काली को।

"ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, मैं उन्हें ही शक्ति— काली कहता हूँ।"

अब रात हो रही है। गिरीश हरिपद से कह रहे हैं, "भाई, एक गाड़ी अगर ला दो तो बड़ा उपकार मानूँ— थिएटर जाना है।"

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– देखना, कहीं भूल न जाना।

(सब हँसते हैं)

हरिपद– (हँसकर)– मैं लाने के लिए जा रहा हूँ, तो ले क्यों

नहीं आऊँगा ?

गिरीश– आपको छोड़कर भी थिएटर जाना पड़ रहा है।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, दोनों तरफ की रक्षा करनी चाहिए। राजा जनक दोनों बचाकर– संसार तथा ईश्वर– दूध का कटोरा खाली किया करते थे। (सब हँसते हैं)

गिरीश– सोचता हूँ, थिएटर को उन लड़कों के हाथ में छोड़ दूँ।

श्रीरामकृष्ण– नहीं नहीं, यह अच्छा है। बहुतों का इससे उपकार हो रहा है।

नरेन्द्र– (धीमे स्वर में)–यह (गिरीश) अभी तो ईश्वर और अवतार की वात कर रहे थे, अब इन्हें थिएटर घसीट रहा है!

(९)

ईश्वरदर्शन तथा विचार-मार्ग

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को अपने पास बैठाकर एकदृष्टि से उन्हें देख रहे हैं। एकाएक वे उनके पास और सरककर बैठे। नरेन्द्र अवतार नहीं मानते तो इससे क्या ? श्रीरामकृष्ण का प्यार मानो और उमड़ पड़ा। नरेन्द्र की देह पर हाथ फेरते हुए कह रहे हैं, "'(राधे) तुमने मान किया तो क्या हुआ, हम लोग भी तुम्हारे मान में तुम्हारे साथ ही हैं।'

(नरेन्द्र से) "जब तक विचार है, तब तक वे नहीं मिले। तुम लोग विचार कर रहे थे, मुझे अच्छा नहीं लग रहा था।

"जहाँ न्योता रहता है, वहाँ शब्द तभी तक सुन पड़ता है जब तक लोग भोजन करने के लिए बैठते नहीं। तरकारी और पूड़ियाँ आईं नहीं कि बारह आने गुलगपाड़ा घट जाता है। (सब हँसते हैं) दूसरी चीजें ज्यों ज्यों आती हैं, त्यों त्यों आवाज़

घटती जाती है। दही आया कि बस सपासप आवाज़ रह गई। फिर भोजन हो जाने पर निद्रा।

"जितना ही ईश्वर की ओर बढ़ोगे, विचार उतना ही घटता जाएगा। उन्हें पा लेने पर फिर शब्द या विचार नहीं रह जाते। तब रह जाती है निद्रा—समाधि।"

यह कहकर नरेन्द्र की देह पर हाथ फेरते हुए स्नेह कर रहे हैं और 'हरिः ॐ, हरिः ॐ, हरिः ॐ' कह रहे हैं।

वैसा क्यों कह तथा कर रहे हैं? क्या श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के अन्दर नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं? क्या यही मनुष्य में ईश्वर-दर्शन है? बड़ी आश्चर्य की बात है! देखते ही देखते श्रीरामकृष्ण का बाह्यज्ञान विलीन होने लगा। बहिर्जगत् का होश बिलकुल जाता रहा। शायद यही अर्धबाह्य दशा है जो चैतन्यदेव को हुई थी। अब भी नरेन्द्र के पैर पर श्रीरामकृष्ण का हाथ पड़ा हुआ है मानो किसी बहाने से नारायण का पैर दबा रहे हों—फिर देह पर हाथ फेर रहे हैं। परमात्मा जाने, इस तरह श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को नारायण मानकर उनकी सेवा कर रहे थे या उनमें शक्ति का संचार कर रहे थे।

देखते ही देखते और भी भावान्तर होने लगा। नरेन्द्र के आगे हाथ जोड़कर कह रहे हैं, "एक गाना गा तो मैं अच्छा हो जाऊँगा,—उठूंगा कैसे!—गौरांग के प्रेम में पूरे मतवाले (ऐ निताई)—"

कुछ देर के लिए वे फिर चित्रवत् हो निर्वाक् रह गए। भावावेश में मस्त होकर फिर कहने लगे—"संभाल कर, राधे—यमुना में गिर जाओगी—कृष्ण-प्रेमोन्मादिनी!"

भावविभोर हो फिर कह रहे हैं—"सखी! वह वन कितनी

दूर है जहाँ मेरे श्यामसुन्दर हैं? (श्रीकृष्ण के अंग से सुगन्ध निकल रही है) अब मैं चल नहीं सकती।"

इस समय संसार भूल गया है,-- किसी की याद नहीं है,-- नरेन्द्र सामने हैं, परन्तु उनकी भी याद नहीं है,— कहाँ वे बैठे हैं, इसका कुछ भी ज्ञान नहीं है! इस समय प्राण मानो ईश्वर में लीन हो गया है--"मद्‌गतान्तरात्मा!"

"गौरांग के प्रेम में मस्त!" यह कहते हुए हुंकार देकर श्रीरामकृष्ण एकाएक उठकर खड़े हो गए। फिर बैठकर कहने लगे-- "वह एक उजाला आ रहा है, मैं देख रहा हूँ,—परन्तु किस तरफ से आ रहा है, अभी तक कुछ समझ में नहीं आता।"

अब नरेन्द्र गाने लगे- "दर्शन देकर तुमने मेरे सब दुःख दूर कर दिए। मेरे प्राणों को मुग्ध कर दिया। सप्तलोक तुम्हें पाकर शोक भूल जाता है-- फिर हम जैसे दीनहीन की बात ही क्या है!"

गाना सुनते हुए श्रीरामकृष्ण का बाहरी संसार का ज्ञान छूटता जा रहा है। फिर आँखें बन्द हो गईं, देह निःस्पंद हो गई,— श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए।

समाधि छूटने पर कह रहे हैं— "मुझे कौन ले जाएगा?" बालक जैसे साथी के बिना चारों ओर अंधेरा देखता है, यह वही भाव है।

रात अधिक हो गई है। फागुन की कृष्णा दशमी है। रात अंधेरी है। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-कालीमंदिर जाएँगे। गाड़ी पर बैठे।

भक्त सब गाड़ी के पास खड़े हुए हैं। श्रीरामकृष्ण को वे बड़ी सावधानी से गाड़ी पर चढ़ा रहे हैं। इस समय भी श्रीरामकृष्ण भावोन्मत्त हो रहे हैं।

गाड़ी चली गई। भक्तगण अपने अपने घर जा रहे हैं।

परिच्छेद ६

कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण

(१)

बलराम के घर में भक्तों के साथ

दिन के तीन बज चुके हैं। चैत का महीना, धूप कड़ाके की पड़ रही है। श्रीरामकृष्ण दो-एक भक्तों के साथ बलराम के बैठकखाने में बैठे हुए मास्टर से वार्तालाप कर रहे हैं।

आज ६ अप्रैल, १८८५, कृष्णा सप्तमी है। श्रीरामकृष्ण कलकत्ते में भक्तों के यहाँ आए हुए हैं। वहाँ वे अपने सांगोपांगों को देखेंगे और नीमू गोस्वामी की गली में देवेन्द्र के यहाँ जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण ईश्वर के प्रेम में दिनरात मतवाले रहते हैं। सदा ही भावावेश या समाधि होती रहती है। बाहरी संसार में मन बिलकुल नहीं है। केवल अन्तरंग भक्त जब तक स्वयं को पहचान न सकें, तब तक उनके लिए श्रीरामकृष्ण को व्याकुल ही समझिए,—जैसे माता-पिता अक्षम बालक के लिए रहते है और उसे आदमी बनाने के लिए सदैव ही चिन्तित रहा करते हैं, या जैसे चिड़िया अपने बच्चों का पालनपोषण करने के लिए व्याकुल रहती है।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– मैंने कह दिया था कि तीन बजे आऊँगा, इसीलिए आना पड़ा। परन्तु धूप बड़ी तेज है।

मास्टर– जी हाँ, आपको तो बड़ा कष्ट हुआ होगा।

भक्तगण श्रीरामकृष्ण को पंखा झल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– छोटे नरेन्द्र और बाबूराम के लिए मैं आया। पूर्ण को तुम क्यों नहीं लेते आए ?

मास्टर– सभा में वह नहीं आना चाहता। उसे भय होता है,

आप पाँच आदमियों के बीच तारीफ़ करते हैं, कहीं उसके घरवालों को न मालूम हो जाय।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, यह तो ठीक है; अगर मैं कह भी डालता तो अब न कहूँगा। अच्छा, पूर्ण को तुम धर्म की शिक्षा दे रहे हो, यह बड़ा अच्छा है।

मास्टर– विद्यासागर की पुस्तक में भी यही बात है कि ईश्वर को हृदय और मन से प्यार करो। इसकी शिक्षा देने से लड़कों के अभिभावक अगर नाराज़ हों तो किया क्या जाय ?

श्रीरामकृष्ण– इनकी पुस्तकों में बातें तो बहुत हैं, परन्तु जिन लोगों ने पुस्तकें लिखी हैं, वे खुद धारणा नहीं कर सके। साधु-संग करने पर धारणा होती है। यथार्थ त्यागी साधु अगर उपदेश देता है तो लोगों पर उसका असर अधिक पड़ता है। केवल पण्डितों की लिखी पुस्तकें पढ़कर या उनके उपदेश सुनकर उतनी धारणा नहीं होती। जिसके पास ही गुड़ के घड़े रखे हों, वह अगर रोगी को उपदेश दे कि गुड़ न खाना तो रोगी उसकी बात उतनी नहीं मानता। अच्छा, पूर्ण की अवस्था कैसी देख रहे हो ? क्या उसे भावावेश होता है ?

मास्टर– भाव की अवस्था बाहर से तो मुझे विशेष नहीं दीख पड़ती। एक दिन आपकी वह बात मैंने उससे कही थी।

श्रीरामकृष्ण– कौनसी बात ?

मास्टर–आपने कहा था—छोटा आधार भावावेश को संभाल नहीं सकता, आधार अगर बड़ा हुआ तो उसके भीतर तो भाव खूब होता है, परन्तु बाहर उसके लक्षण प्रकट नहीं होने पाते। जैसा आपने कहा था,— बड़े तालाब में हाथी के उतर जाने पर कुछ भी समझ में नहीं आता, परन्तु वह अगर किसी गड़ही में

उतर जाय तो उथल-पुथल मचा देता है, पानी की हिलोरें तट पर पछाड़ खा खाकर गिरने लगती हैं।

श्रीरामकृष्ण– बाहर उसका भावावेश नहीं दिखेगा, उसका स्वभाव कुछ दूसरा ही है, और और लक्षण तो सब अच्छे हैं न?

मास्टर– आँखें खूब उज्ज्वल तथा विशाल हैं।

श्रीरामकृष्ण– केवल आँखों के उज्ज्वल होने ही से नहीं हो जाता। ईश्वरभाववाली आँखें और होती हैं। अच्छा तुमने उससे क्या पूछा था?–– उसके (श्रीरामकृष्ण से साक्षात् होनें के) बाद उसे कैसा लगा?

मास्टर– जी हाँ, बातें हुई थीं। वह चार-पाँच दिन से कह रहा है, ईश्वर की चिन्ता करने पर, उनका नाम लेने पर, आँखों में आँसू आ जाते हैं,––रोमांच हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण––तो फिर और क्या चाहिए?

श्रीरामकृष्ण और मास्टर चुप हैं। कुछ देर बाद मास्टर बोले–– 'वह खड़ा है––'

श्रीरामकृष्ण– कौन?

मास्टर– पूर्ण। जान पड़ता है, अपने घर के दरवाजे के पास खड़ा है, हममें से कोई जाय तो वह दौड़कर हम लोगों को प्रणाम कर ले।

श्रीरामकृष्ण– आहा! –

श्रीरामकृष्ण तकिये के सहारे विश्राम कर रहे हैं। मास्टर के साथ एक बारह साल का लड़का आया हुआ है। मास्टर के स्कूल में पढ़ता है, नाम है क्षीरोद। मास्टर कहते हैं, यह बड़ा अच्छा लड़का है, ईश्वर के नाम से इसे बड़ा आनन्द होता है।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– आँखें तो हिरण जैसी हैं।

लड़के ने श्रीरामकृष्ण के पैरों पर हाथ रखकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया और बड़े भक्ति-भाव से श्रीरामकृष्ण की पद-सेवा करने लगा। श्रीरामकृष्ण भक्तों के सम्बन्ध में वार्तालाप करने लगे।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– राखाल घर में है। उसका भी शरीर अच्छा नहीं है, उसके फोड़ा हुआ है। मैंने सुना है, उसे एक लड़का होगा।

पल्टू और विनोद सामने बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (पल्टू से, सहास्य)– तूने अपने बाप से क्या कहा ? (मास्टर से) सुना, इसने यहाँ आने की बात पर अपने बाप को जवाब दे दिया। (पल्टू से) क्यों रे, क्या कहा ?

पल्टू– मैंने कहा, हाँ, मैं उनके पास जाया करता हूँ, तो यह कौन सा बुरा काम है ? (श्रीरामकृष्ण और मास्टर हँसे।) अगर ज़रूरत होगी तो और भी इसी तरह की सुनाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य, मास्टर से)– नहीं, क्यों जी, इतनी भी कहीं बढ़ा-चढ़ी होती है ?

मास्टर– जी नहीं, इतनी बढ़ा-चढ़ी अच्छी नहीं।

(श्रीरामकृष्ण हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (विनोद से)– तू कैसा है ? वहाँ, दक्षिणेश्वर, तू नहीं गया ?

विनोद– जी, जा रहा था, फिर डर के मारे नहीं गया। शरीर भी कुछ अस्वस्थ है।

श्रीरामकृष्ण– वहाँ चल तो सही, वहाँ की हवा अच्छी है, चंगा हो जाएगा।

छोटे नरेन्द्र आए। श्रीरामकृष्ण मुँह धोने के लिए जा रहे थे। छोटे नरेन्द्र अंगौछा लेकर श्रीरामकृष्ण को पानी देने के लिए

गए। साथ में मास्टर भी हैं। छोटे नरेन्द्र पश्चिमवाले बरामदे के उत्तर कोने में श्रीरामकृष्ण के हाथपैर धो रहे हैं, पास ही मास्टर भी खड़े हैं।

श्रीरामकृष्ण– बड़ी कड़ी धूप है।

मास्टर– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– तुम किस तरह वहाँ रहते हो! ऊपरवाले कमरे में गरमी नहीं होती?

मास्टर– जी हाँ, बड़ी गरमी होती है।

श्रीरामकृष्ण– एक तो तुम्हारी स्त्री को मस्तिष्क की बीमारी है— उसे ठंडे में रखा करो।

मास्टर– जी हाँ, उसे नीचे के कमरे में सोने के लिए कह दिया है।

श्रीरामकृष्ण बैठकखाने में फिर आकर बैठे। मास्टर से पूछ रहे हैं— 'तुम इस रविवार को क्यों नहीं गए?'

मास्टर– जी, घर में भी तो कोई नहीं है। तिस पर (स्त्री को) मस्तिष्क की बीमारी है। देखनेवाला कोई नहीं था।

श्रीरामकृष्ण गाड़ी पर नीबू गोस्वामी की गली से होकर देवेन्द्र के यहाँ जा रहे हैं। साथ में छोटे नरेन्द्र, मास्टर और भी दो एक भक्त हैं। श्रीरामकृष्ण पूर्ण की बात कर रहे हैं। पूर्ण के लिए वे व्याकुल हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– बहुत बड़ा आधार है। नहीं तो अपने लिए जप कैसे करा लेता! उसे तो ये सब बातें मालूम हैं ही नहीं।

मास्टर और भक्तगण आश्चर्यभाव से सुन रहे हैं, श्रीरामकृष्ण ने पूर्ण के लिए बीजमन्त्र का जप किया।

श्रीरामकृष्ण– आज उसे ले आते, लाए क्यों नहीं ?

छोटे नरेन्द्र को हँसते हुए देखकर श्रीरामकृष्ण भी हँस रहे हैं और भक्तगण भी हँस रहे हैं। श्रीरामकृष्ण आनन्दपूर्वक छोटे नरेन्द्र की ओर संकेत करके मास्टर से कह रहे हैं–– देखो-देखो, किस तरह हँस रहा है, जैसे कुछ भी नहीं जानता, परन्तु उसके मन के भीतर जमीन, जोरू, रुपया कुछ नहीं है। तीनों में से एक भी उसके मन में नहीं है। मन से कामिनी और कांचन के विलकुल गए बिना कभी ईश्वरलाभ नहीं होता।

श्रीरामकृष्ण देवेन्द्र के यहाँ जा रहे हैं। दक्षिणेश्वर में देवेन्द्र से एक दिन आप कह रहे थे, 'इच्छा होती है एक दिन तुम्हारे यहाँ जाऊँ।' देवेन्द्र ने कहा था, 'मैं आपसे यही कहने के लिए आया था, इसी रविवार को जाना होगा।' श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'परन्तु तुम्हारी आमदनी कम है, अधिक आदमियों को न्योता न देना, और गाड़ी का किराया भी बहुत अधिक है।' देवेन्द्र ने कहा था, 'आमदनी कम है तो क्या हुआ ? ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् (ऋण करके भी घी पीना चाहिए)।' श्रीरामकृष्ण यह सुनकर हँसने लगे। हँसी रुकती ही न थी।

कुछ देर बाद घर पहुँचकर श्रीरामकृष्ण ने कहा–– 'देवेन्द्र, मेरे लिए भोजन बहुत थोड़ा बनवाना–– मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है।'

(२)

कामिनीकांचन-त्याग तथा ब्रह्मानन्द

श्रीरामकृष्ण देवेन्द्र के बैठकखाने में भक्तमण्डली में बैठे हुए हैं। बैठकखाना एकमंज़ले पर है। सन्ध्या हो गई। कमरे में दिया जल रहा है। छोटे नरेन्द्र, राम, मास्टर, गिरीश, देवेन्द्र, अक्षय,

उपेन्द्र इत्यादि बहुत से भक्त पास बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण एक बालक-भक्त को देखकर आनन्द में मग्न हो रहे हैं। उसी के सम्बन्ध में भक्तों से कह रहे हैं—

"इसमें जमीन, रुपया, स्त्री तीनों में से एक भी नहीं है जिससे यह इस संसार में बँध जाय। इन तीनों में से एक पर भी मन को रखने से परमात्मा पर मन नहीं जाता, मन का योग नहीं होता। इसने कुछ देखा भी था! (भक्त से) क्यों रे, बता तो, क्या देखा था तूने?"

भक्त– (हँसकर)– मैंने देखा, विष्ठा के कुछ ढेर पड़े हुए हैं। कोई कोई उसके ऊपर बैठे हुए हैं, कोई उससे कुछ दूर पर।

श्रीरामकृष्ण– संसारी मनुष्यों की यही दशा है, जो ईश्वर को भूले हुए हैं; इसीलिए इसके मन से सब छूटा जा रहा है। कामिनी और कांचन से मन अगर हट जाय तो फिर चिन्ता ही क्या है?

"उः! कितने आश्चर्य की बात है! मेरा तो यह भाव बहुत कुछ जप और ध्यान करने पर दूर हुआ था। एकदम इतनी जल्दी इसका यह भाव दूर कैसे हो गया! काम का नाश हो जाना क्या कुछ साधारण बात है! छः महीने के बाद मेरी छाती में कुछ ऐसा होने लगा था कि पेड़ के नीचे पड़ा हुआ मैं रो रोकर माँ से कहने लगा था— 'माँ, अगर कुछ बुरा हुआ तो मैं गले में छुरी मार लूँगा।'

(भक्तों से) "कामिनी और कांचन ये दोनों अगर मन से दूर हो गए तो फिर बाकी ही क्या रहा? तब तो बस ब्रह्मानन्द ही है।"

शशि उस समय पहले ही पहल श्रीरामकृष्ण के पास आने-जाने

लगे थे। वे उस समय विद्यासागर कालेज में बी. ए. के प्रथम वर्ष में थे। श्रीरामकृष्ण अब उनकी बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– वह जो लड़का आया करता है, कुछ दिन के लिए, देखता हूँ, रुपए की ओर उसका मन कभी कभी चला जाया करेगा; परन्तु कुछ लोगों का मन, देखता हूँ, उधर बिलकुल नहीं जाएगा। कुछ लड़के विवाह करेंगे ही नहीं।

भक्तगण चुपचाप सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– मन से कामिनी और कांचन के गए बिना अवतार को पहचानना मुश्किल है। किसी बैंगनवाले से हीरे का मोल पूछा था। उसने कहा, 'मैं इसके बदले में नौ सेर बैंगन दे सकूँगा। इससे अधिक एक भी नहीं।'

(सब हँसते हैं, छोटे नरेन्द्र ज़ोर से हँसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण ने देखा, छोटे नरेन्द्र बात का मर्म बहुत जल्द समझ गए।

श्रीरामकृष्ण– इसकी बुद्धि कितनी सूक्ष्म है! नागा इसी तरह बहुत जल्द समझ जाता था— गीता, भागवत में जहाँ जो कुछ है, वह समझ लेता था।

"बचपन से ही कामिनी और कांचन का त्याग, यह बड़े आश्चर्य की बात है! परन्तु ऐसा बहुत कम आदमियों में होता है। नहीं तो पत्थर का मारा आम, जैसे न ठाकुरजी की सेवा में आता है, न कोई मनुष्य ही खाने की हिम्मत करता है।

"पहले निर्विचार पाप करके फिर बुढ़ापे में ईश्वर का नाम लेना, यह बुराई की अपेक्षा अच्छा है।

"अमुक मल्लिक की माँ बहुत बड़े घर की लड़की है। वेश्याओं की बात पर उसने पूछा, उनका क्या किसी तरह उद्धार न होगा?

स्वयं पहले उसने बहुत तरह के काम किए थे— इसीलिए उसने पूछा। मैंने कहा, 'हाँ, होगा अगर आन्तरिक प्रेरणा से व्याकुल होकर वे रोवें और कहें, ऐसा काम अब मैं न करूँगी। केवल हरिनाम करने से क्या? हृदय से व्याकुल होकर रोना चाहिए।' "

(३)

कीर्तनानन्द में श्रीरामकृष्ण

अब ढोल करताल लेकर कीर्तनिया संकीर्तन कर रहा है—

"मैंने यह क्या देखा! केशव भारती की कुटी में, एक अपूर्व ज्योति— श्रीगौरांग की मूर्ति मैंने देखी! उनके दोनों नेत्रों से शत शत धाराओं में प्रेम बह रहा है"— इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण को गाना सुनते सुनते भावावेश हो रहा है। कीर्तनिया श्रीकृष्ण के विरह की मारी गोपियों का वर्णन कर रहा है। व्रज की गोपियाँ माधवी कुंजों में श्रीकृष्ण को खोज रही हैं।

"री माधवी! मेरे माधव को निकाल दे! मेरे माधव को मुझे देकर, बिना दामों ही तू मुझे खरीद ले। जल जिस तरह मछलियों का जीवन है, उसी तरह माधव भी मेरे जीवन हैं।"— इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण बीच बीच में जोड़ रहे हैं— "मथुरा कितनी दूर है— जहाँ मेरा प्राणवल्लभ है?"

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हैं, देह निश्चल हो रही है। बड़ी देर से स्थिर हैं।

कुछ देर बाद उनकी प्राकृत अवस्था हुई। परन्तु भावावेश अब भी है। इसी अवस्था में भक्तों की बात कह रहे हैं। बीच-बीच में माता से बातचीत भी कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— (भावस्थ)— माँ, उसे अपनी ओर खींच लो,

मैं अब अधिक उसकी चिन्ता नहीं कर सकता। (मास्टर से) मेरा मन तुम्हारे सम्बन्धी की ओर कुछ खिचा हुआ है।

(गिरीश के प्रति) "तुम गाली-गलौज बहुत करते हो, खैर, यह सब निकल जाना ही अच्छा है। किसी को अधिक बकवाद करने का रोग भी होता है। जितना ही बाहर निकल जाय, उतना ही अच्छा है।

"उपाधि-नाश के समय में ही शब्द होता है। काठ जलाते समय चटाचट शब्द होता है। सब जल जाने पर फिर शब्द नहीं होता।

"तुम दिन पर दिन शुद्ध होओगे। दिन-दिन तुम्हारी उन्नति होगी। लोगों को देखकर आश्चर्य होगा। मैं अधिक न आ सकूँगा, पर इससे क्या, तुम्हारी ऐसे ही बन जाएगी।"

श्रीरामकृष्ण का भाव और भी गहरा होने लगा। फिर माता के साथ बातचीत कर रहे हैं, "माँ, जो खुद अच्छा है, उसे अच्छा करना कौन सी बड़ी बात है? माँ, मरे को मारकर क्या होगा? जो पैर जमाये खड़ा है, उसे अगर मार सको तो तुम्हारी महिमा है।"

श्रीरामकृष्ण कुछ स्थिर होकर कुछ ऊँचे स्वर में कह रहे हैं, "मैं दक्षिणेश्वर से आ रहा हूँ, माँ, मैं अब जाता हूँ।" मानो एक छोटा लड़का दूर से माता की आवाज़ सुनकर जवाब दे रहा है। श्रीरामकृष्ण की देह फिर निःस्पन्द हो गई, समाधिमग्न होकर बैठे हुए हैं। भक्तगण अनिमेष लोचनों से चुपचाप देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण भावावेश में फिर कह रहे हैं—'मैं अब पूड़ी न खाऊँगा।' पड़ोस के दो-एक गोस्वामी आये थे, वे चले गए।

(४)

भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। चैत का महीना, गरमी ज़ोरों की पड़ रही है। देवेन्द्र कुल्फी-बरफ बनवाकर श्रीरामकृष्ण और भक्तों को दे रहे हैं। भक्तों को कुल्फी खाकर प्रसन्नता हो रही है। मणि धीरे धीरे कह रहे हैं—'Encore! Encore!' (अर्थात् कुल्फी और दो)। सब लोग हँस रहे हैं। कुल्फी देखकर श्रीरामकृष्ण को बिलकुल बच्चे की तरह आनन्द हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण–कीर्तन तो बड़ा अच्छा हुआ। गोपियों की दशा का वर्णन अच्छा किया,—'री माधवी! मेरे माधव को दे।' यह गोपियों के प्रेमोन्माद की अवस्था है। कितना आश्चर्य है! कृष्ण के लिए सब पागल हो रही थीं!

एक भक्त एक दूसरे की ओर इशारा करके कह रहे हैं, 'इनका सखीभाव है— गोपीभाव।' राम ने कहा, 'इनके भीतर दोनों भाव हैं। मधुरभाव भी है और ज्ञान का कठोर भाव भी है।'

श्रीरामकृष्ण– क्यों जी ?

श्रीरामकृष्ण अब सुरेन्द्र की बातचीत करने लगे।

राम– मैंने खबर भेजी थी, परन्तु नहीं आया, न जाने क्यों ?

श्रीरामकृष्ण– काम से लौटने पर थक जाता है।

एक भक्त– रामबाबू आपकी बात लिख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– क्या लिखा है ?

भक्त– 'परमहंस की भक्ति' विषय पर उन्होंने लिखा है।

श्रीरामकृष्ण– तो फिर क्या, राम की खूब प्रसिद्धि होगी।

गिरीश– (सहास्य)– इसलिए कि वह आपका चेला है ?

श्रीरामकृष्ण– मेरे चेला-वेला कोई नहीं, मैं तो राम का दासानुदास हूँ।

पड़ोस के कोई कोई आए थे, परन्तु उन्हें देखकर श्रीरामकृष्ण को प्रसन्नता नहीं हुई। श्रीरामकृष्ण ने एक बार कहा, यह कैसा मुहल्ला है? यहाँ देखता हूँ, कोई नहीं है।

देवेन्द्र अब श्रीरामकृष्ण को कमरे के अन्दर लिए जा रहे हैं। वहाँ श्रीरामकृष्ण के जलपान का बन्दोबस्त किया गया है। श्रीरामकृष्ण भीतर गए।

श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक घर के भीतर से वापस आए और बैठकखाने में फिर बैठे। भक्तगण पास बैठे हुए हैं। उपेन्द्र और अक्षय श्रीरामकृष्ण की दोनों ओर बैठे हुए उनकी चरणसेवा कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण देवेन्द्र के यहाँ की औरतों की बातें कह रहे हैं—

"औरतें बड़ी अच्छी हैं, देहात की हैं न? बड़ी भक्ति है।"

फिर वे अपने आप में मस्त होकर गाने लगे। कई गाने उन्होंने गाए।

(१) आदमी जब तक सहज (सीधा) नहीं हो ज़ाता तब तक सहज को वह प्राप्त भी नहीं कर सकता।

(२) दरवेश! तू खड़ा रह, मैं तेरे स्वरूप को ज़रा देख लूँ।

(३) एक ऐसे भाव का फकीर आया है जो हिन्दुओं का देवता और मुसलमानों का पीर है।

गिरीश प्रणाम करके विदा हो गए। श्रीरामकृष्ण ने भी गिरीश को नमस्कार किया।

देवेन्द्र आदि भक्तों ने श्रीरामकृष्ण को गाड़ी पर चढ़ा दिया।

देवेन्द्र ने बैठकखाने के दक्षिण ओर आंगन में आकर देखा, उनके मुहल्ले का एक आदमी उस समय भी सो रहा था। उन्होंने

उसे जगाया। आँखें मलते हुए उठकर उसने पूछा—‘क्या श्रीरामकृष्णदेव आए?’ सब लोग ठहाका मारकर हँसने लगे। यह आदमी श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए उनसे पहले आया था। गरमी लगने के कारण, आंगन में तख्त पर चटाई बिछाकर आराम से सो गया था।

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर जा रहे हैं। गाड़ी पर मास्टर से आनन्दपूर्वक कह रहे हैं, “मैंने खूब कुल्फी खाई। तुम जब दक्षिणेश्वर आना तो चार-पाँच कुल्फियाँ लेते आना।” श्रीरामकृष्ण मास्टर से फिर कह रहे हैं, “इस समय इन्हीं कुछ बालकों की ओर मन खिचता है,— छोटे नरेन्द्र, पूर्ण और तुम्हारे सम्बन्धी की ओर।”

मास्टर– द्विज की ओर?

श्रीरामकृष्ण– नहीं, द्विज तो है ही, उससे बड़ा जो है उसकी ओर।

मास्टर– अच्छा,—

श्रीरामकृष्ण आनन्द से गाड़ी पर जा रहे हैं।

परिच्छेद ७

श्रीरामकृष्ण का महाभाव

(१)

नित्य-लीलायोग

श्रीरामकृष्ण कलकत्ते में भक्तों के साथ बलराम के बैठकखाने में बैठे हुए हैं। गिरीश, मास्टर और बलराम हैं, धीरे-धीरे छोटे नरेन्द्र, पल्टू, द्विज, पूर्ण, महेन्द्र मुखर्जी, आदि कितने ही भक्त आए। ब्राह्मसमाज के त्रैलोक्य सान्याल और जयगोपाल सेन भी आए हैं। स्त्री-भक्तों में भी बहुत सी स्त्रियाँ आई हुई हैं। वे चिक की आड़ में बैठी हुई श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर रही हैं। मोहिनीमोहन की स्त्री भी आई हुई हैं—लड़के के गुज़र जाने पर इनकी पागल जैसी अवस्था हो गई है। वे तथा उनकी तरह शोकसन्तप्त और भी कितनी ही स्त्रियाँ आई हुई हैं,— उन्हें विश्वास है कि श्रीरामकृष्ण के पास अवश्य ही शान्ति मिलेगी।

१२ अप्रैल १८८५। दिन के तीन बजे होंगे।

मास्टर ने आकर देखा, श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए अपनी साधना और आध्यात्मिक अवस्था की बातें कह रहे हैं। मास्टर ने आकर श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया और उनकी आज्ञा पा उनके पास बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– उस समय–– साधना के समय ध्यान करता हुआ मैं देखता था, एक आदमी हाथ में त्रिशूल लिए हुए मेरे पास बैठा रहता था। मुझे डराता था, अगर मैं ईश्वर के चरणकमलों में मन न लगाऊँ तो वह वही त्रिशूल भोंक देगा। मन अगर ठीक न रहा तो छाती में घाव हो जाने का डर था।

"कभी माँ ऐसी अवस्था कर देती थी कि नित्य से उतरकर मन लीला में आ जाता था और कभी लीला से नित्य पर चढ़ जाता था।

"जब मन लीला में उतर आता था, तब कभी-कभी दिनरात मैं सीताराम की चिन्ता किया करता था। और सदा मुझे सीताराम के रूप भी दीख पड़ते थे,—— रामलाला (अष्ट धातुओं से बनी हुई राम की एक छोटी सी मूर्ति) को लिये सदा मैं घूमता था, कभी उसे नहलाता था, कभी खिलाता था। मैं कभी-कभी राधाकृष्ण के भाव में रहता था। उन रूपों के सदा दर्शन भी होते थे। कभी फिर गौरांग के भाव में रहता था। यह दो भावों का मेल था—— पुरुष और प्रकृति के भावों का। इस अवस्था में सदा ही गौरांग के दर्शन होते थे। फिर यह अवस्था बदल गई। तब लीला को छोड़कर मन नित्य में चढ़ गया। सहजन के पत्ते और तुलसी के दल, सब एक जान पड़ने लगे। फिर ईश्वरी रूप देखना अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा, 'तुमसे तो विच्छेद हो जाता है।' तब मैंने उनसे अपना मन निकाल लिया। कमरे में देवी-देवताओं की जितनी तस्वीरें थीं, सब हटा दीं। केवल उस अखण्ड सच्चिदानन्द—— उस आदिपुरुष की चिन्ता करने लगा। स्वयं दासीभाव से रहने लगा—— पुरुष की दासी!

"मैंने सब तरह की साधनाएँ की हैं। साधना तीन तरह की हैं—— सात्विक, राजसिक और तामसिक। सात्विक साधना में उन्हें व्याकुल होकर पुकारा जाता है अथवा केवल उनका नाम मात्र लिया जाता है। कोई दूसरी फलाकांक्षा नहीं रहती। राजसिक साधना में अनेक तरह की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं,—— इतने बार

पुरश्चरण करना होगा, इतने तीर्थ करने होंगे, पंचतप करना होगा, षोड़शोपचारों से पूजा करनी होगी, यह सब। तामसिक साधना तमोगुण का आश्रय लेकर की जाती है। जय काली! क्या तू दर्शन न देगी?-- यह देख गले में छुरी मार लूँगा, अगर तू दर्शन न देगी। इस साधना में शुद्धाचार नहीं है, जैसे तंत्रोक्त साधना।

"उस अवस्था में-- साधनावस्था में-- बड़े विचित्र-विचित्र दर्शन होते थे। आत्मा का रमण मैंने प्रत्यक्ष किया। मेरी ही तरह का एक आदमी मेरी देह में समा गया, और षट्पद्मों के हरएक पद्म में वह रमण करने लगा। छहों पद्म मुँदे हुए थे, उसके रमण के साथ ही हरएक पद्म खुलकर ऊर्ध्वमुख हो जाने लगा। इस तरह मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा सब पद्म खिल गए। और मैंने प्रत्यक्ष देखा, उनके मुख जो नीचे थे, ऊपर हो गए।

"साधना के समय ध्यान करता हुआ मैं अपने पर दीपशिखा के भाव का आरोप करता था,--जब हवा नहीं रहती है तब वह बिलकुल नहीं हिलती,-- इसी भाव का आरोप करता था।

"ध्यान के गम्भीर होने पर बाहरी ज्ञान का नाश हो जाता है। एक व्याध पक्षी मारने के लिए निशाना साध रहा था। उसके पास ही से वर-बराती, गाड़ी-घोड़े, बाजे-कहार, बड़ी देर तक जाते रहे, परन्तु उसे कुछ भी होश न था। वह नहीं समझ सका कि पास से बरात कब निकल गई।

"एक आदमी अकेला एक तालाब के किनारे मछली मारने के लिए बैठा था। बड़ी देर के बाद बंसी का 'शोला' (Float) हिला, कभी-कभी वह पानी में कुछ डूब भी जाता था तब उसने बंसी को झपाटे के साथ खींचने की कोशिश की। इसी समय किसी राहगीर

ने आकर उससे पूछा, 'महाशय, अमुक बनर्जी का घर कहाँ है, क्या आप बतला सकेंगे ?' उत्तर कुछ भी न मिला। यह आदमी उस समय बंसी खींचने की ताक में था। पथिक ने बार बार उच्च स्वर से कहा, 'महाशय, अमुक बनर्जी का घर क्या आप बतला सकेंगे ?' उधर उस आदमी को होश था ही नहीं, उसका हाथ काँप रहा था, बस शोले पर उसकी निगाह थी। तब पथिक नाराज़ हो वहाँ से चला गया। वह जब बड़ी दूर चला गया, तब इधर शोला बिलकुल डूब गया और उस आदमी ने झट बंसी खींचकर मछली को जमीन पर ला गिराया। तब अंगौछे से मुँह पोंछकर पथिक को ऊँची आवाज़ लगाकर उसने बुलाया— 'एजी, सुनो— सुनो।' पथिक लौटना नहीं चाहता था, कई बार के पुकारने पर वह आया। आते ही उसने कहा, 'क्यों महाशय, अब क्यों आप बुलाते हैं ?' तब उसने पूछा– 'तुम मुझसे क्या कह रहे थे ?' पथिक ने कहा, 'उस समय इतनी बार पूछा और अब पूछते हो क्या कहा था ?' उसने कहा, 'उस समय शोला डूब रहा था, इसलिए मैंने कुछ सुना ही नहीं।'

"ध्यान में इस तरह की एकाग्रता होती है, उस समय और कुछ भी नहीं दीख पड़ता, न कुछ सुन पड़ता है। कोई छू भी ले तो समझ में नहीं आता। देह पर से साँप चला जाता है और कुछ पता नहीं चल पाता। जो ध्यान करता है, न वह समझ सकता है और न साँप।

"ध्यान के गहरे होने पर इन्द्रियों के कुल काम बन्द हो जाते हैं। मन बहिर्मुख नहीं रहता, जैसे घर का बाहरी दरवाज़ा बन्द हो जाय। इन्द्रियों के विषय पाँच हैं— रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द,— ये बाहर पड़े रहते हैं।

"ध्यान के समय पहले पहल इन्द्रियों के सब विषय सामने आते हैं-- ध्यान के गम्भीर होने पर वे फिर नहीं आते-- सब बाहर पड़े रहते हैं। ध्यान करते समय, मुझे कितने ही प्रकार के दर्शन होते थे। मैंने प्रत्यक्ष देखा, सामने रुपये की ढेरी थी। शाल था, एक थाली में सन्देश थे और दो औरतें थीं, उनकी नाक में नथ थी। तब मैंने मन से पूछा-- 'मन तू क्या चाहता है? क्या तू कुछ भोग करना चाहता है?' मन ने कहा, 'नहीं, मैं कुछ भी नहीं चाहता, ईश्वर के पादपद्मों को छोड़ मैं और कुछ नहीं चाहता।' स्त्रियों का भीतर-बाहर, सब मुझे दीख पड़ने लगा,-- जैसे शीशे की आलमारियों की कुल चीजें बाहर से दीख पड़ती हैं। उनके भीतर मैंने देखा-- मल, मूत्र, विष्ठा, कफ, लार, आतें, यही सब।"

श्रीयुत गिरीश कभी-कभी कहते थे, 'श्रीरामकृष्ण का नाम लेकर बीमारी अच्छी किया करूँगा।'

श्रीरामकृष्ण-- (गिरीश आदि भक्तों से)-- जो हीन बुद्धि के हैं, वे ही सिद्धियाँ चाहते हैं,-- बीमारी अच्छी करना, मुकद्दमा जिताना, पानी के ऊपर से पैदल चले जाना, यह सब। जो शुद्ध भक्त हैं, वे ईश्वर के पादपद्मों को छोड़कर और कुछ नहीं चाहते। हृदय ने एक दिन कहा, 'मामा, माँ से कुछ शक्ति की प्रार्थना करो-- कुछ सिद्धि माँगो।' मेरा बालक का स्वभाव,-- कालीमन्दिर में जप करते समय माँ से मैंने कहा, 'माँ, हृदय कुछ शक्ति और सिद्धि माँगने के लिए कहता है।' उसी समय माँ ने दिखलाया,-- एक बूढ़ी वेश्या, उम्र चालीस की होगी, सामने से आकर मेरी ओर पीछा करके पाखाना फिरने लगी। माँ ने दिखलाया, विभूति इसी बूढ़ी वेश्या की विष्ठा है। तब मैं हृदय के पास जाकर उसे

डाँटने लगा। कहा, 'तूने क्यों मुझे ऐसी बात सिखलाई? तेरे लिए ही तो मुझे ऐसा हुआ।'

"जिनमें कुछ विभूतियाँ रहती हैं उन्हें ही प्रतिष्ठा, सम्मान, यह सब मिलता है। बहुतों की इच्छा होती है, मैं गुरुआई करूँ,— पाँच आदमी मुझे मानें,— शिष्य सेवा करें,— लोग कहेंगे, गुरुचरण के भाई का समय आजकल निहायत अच्छा है,— कितने ही लोग जाते हैं,—चेले-चपाटे भी बहुत से हो गए हैं,— घर में चीज़ों का ढेर लग रहा है— कितनी चीज़ें लोग ला लाकर दे रहे हैं,— वह चाहे, तो उसमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि कितने ही आदमियों को खिला दे।

"गुरुआई और वेश्यापन दोनों एक हैं— खाक रुपया-पैसा, लोक-सम्मान, शरीर की सेवा,— इन सबके लिए अपने को बेचना!— जिस शरीर, मन और आत्मा के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होती है, उसी शरीर, मन और आत्मा को ज़रा सी वस्तु के लिए इस तरह कर रखना अच्छा नहीं। एक ने कहा था, साबी का यह बड़ा अच्छा समय चल रहा है— इस समय उसकी पाँचों उँगलियाँ घी में हैं,— एक कमरा उसने किराए से लिया है,— गोबर,— कंडे— चारपाई, ये सब अब उसके हैं, चार बासन भी हो गए हैं, बिस्तरा, चटाई, तकिया, सब कुछ है,— कितने ही आदमी उसके वश में हैं,— आते-जाते रहते हैं। अर्थात् साबी अब वेश्या हो गई है, इसीलिए उसके सुख की इति नहीं होती। पहले वह किसी भले आदमी के यहाँ दासी थी; अब वेश्या हो गई है! ज़रा सी वस्तु के लिए अपना सर्वनाश कर डाला।

ब्रह्मज्ञान तथा अभेद-बुद्धि

"साधना के समय ध्यान करते-करते मैं और भी बहुत कुछ

देखता था। बेल के पेड़ के नीचे ध्यान कर रहा था, पाप-पुरुष आकर कितने ही तरह के लोभ दिखाने लगा। लड़ाकू गोरे का रूप धारण करके आया था! रुपया, मान, रमण-सुख, बहुत कुछ उसने देना चाहा। मैं माँ को पुकारने लगा। बड़ी गुप्त बात है। माँ ने दर्शन दिए, तब मैंने कहा, 'माँ, इसे काट डालो।' माता का वह रूप, भुवनमोहन रूप याद आ रहा है। वह कृष्णमयी * का रूप लेकर मेरे पास आई थीं।— परन्तु उसकी दृष्टि के नर्तन के साथ ही मानो संसार हिल रहा है!"

श्रीरामकृष्ण चुप हो रहे। कुछ देर बाद फिर कह रहे हैं— "और भी बहुत कुछ है, न जाने कौन मुँह दबा लेता है, कहने नहीं देता!

"सहजन के पत्ते और तुलसी दल एक जान पड़ते थे। भेद-बुद्धि उसने दूर कर दी थी। बट के नीचे मैं ध्यान कर रहा था, उसने दिखलाया, एक दाढ़ीवाला मुसलमान † तश्तरी में भात लेकर सामने आया। तश्तरी से म्लेच्छों को खिलाकर मुझे भी कुछ दे गया। माँ ने दिखलाया— एक के सिवा दो नहीं हैं। सच्चिदानन्द ही अनेक रूपों से विचर रहे हैं। जीव, जगत्, सब वे ही हुए हैं। अन्न भी वे ही हुए हैं।

(गिरीश, मास्टर आदि से) "मेरा बालक-स्वभाव है। हृदय ने कहा, 'मामा, माँ से कुछ शक्ति के लिए कहो,'— बस मैं भी माँ से कहने के लिए चल दिया। ऐसी अवस्था में उसने रखा है कि जो व्यक्ति पास रहेगा, उसकी बात माननी पड़ती है। छोटा बच्चा जैसे कोई पास न रहने से सब कुछ अन्धकार ही देखता

* बलराम बसु की बालिका कन्या।

† मुहम्मद पैगम्बर।

है, मुझे भी वैसा ही होता था। हृदय जब पास न रहता था, तब जान पड़ता था कि अब जान निकलने ही को है। यह देखो, वही भाव आ रहा है। बातें कहते ही कहते मन उद्दीप्त हो रहा है।"

यह कहते ही कहते श्रीरामकृष्ण को भावावेश होने लगा। देश और काल का ज्ञान मिटा जा रहा है। बड़ी मुश्किल से भाव-संवरण की चेष्टा कर रहे हैं। भावावेश में कह रहे हैं—"अब भी तुम लोगों को देख रहा हूँ,—परन्तु यह भासित होता है कि मानो सदा ही तुम लोग इस तरह बैठे हुए हो,— कब आए हो, कहाँ से आए, यह कुछ याद नहीं।"

श्रीरामकृष्ण कुछ देर स्थिर रहे। कुछ प्रकृतिस्थ होकर कह रहे हैं, 'पानी पीऊँगा।' समाधि-भंग के पश्चात् मन को उतारने के लिए यह बात प्रायः कहा करते हैं। गिरीश अभी नए आए हैं, वे नहीं जानते, इसलिए पानी ले आने के लिए चले। श्रीराम-कृष्ण मना कर रहे हैं, कहा, 'नहीं जी, अभी पानी न पी सकूँगा।'

श्रीरामकृष्ण और भक्तगण कुछ देर तक चुप हैं। अब श्रीराम-कृष्ण मास्टर से बोले— "क्यों जी, मैंने क्या अपराध किया जो ये सब गुप्त बातें कह दीं।"

मास्टर क्या कहते ? वे चुप हैं, तब श्रीरामकृष्ण स्वयं बोले—"नहीं, अपराध क्यों होगा? मैंने तुममें श्रद्धा उत्पन्न होने के लिए कहा है।" कुछ देर बाद जैसे बड़ी प्रार्थना के साथ कह रहे हैं— 'उनके (पूर्ण आदि के) साथ क्या भेंट करा दोगे ?'

मास्टर– (संकुचित होकर)–जी, इसी समय खबर भेजता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– (आग्रह से)– वहीं छोर मिल रहा है।

इसका यह अर्थ है— पूर्ण श्रीरामकृष्ण का सबसे पीछे का भक्त है—अन्तिम छोर है, उसके बाद फिर कोई नहीं।

(२)

श्रीरामकृष्ण का महाभाव

गिरीश और मास्टर आदि के पास श्रीरामकृष्ण अपने महाभाव की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– उस अवस्था के बाद आनन्द भी जितना है उसके पहले कष्ट भी उतना ही है। महाभाव ईश्वर का भाव है। वह इस शरीर और मन को डाँवाडोल कर देता है, जैसे एक बड़ा हाथी कुटिया में समा गया हो। कुटिया डाँवाडोल हो जाती है–– कभी वह नष्ट भी हो जाती है।

"ईश्वर के लिए जो विरहाग्नि होती है, वह बहुत साधारण नहीं होती। इस अवस्था के होने पर रूप सनातन जिस पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, कहते हैं, उस पेड़ की पत्तियाँ भी झुलस जाया करती थीं। इस अवस्था में मैं तीन दिन तक अचेत पड़ा रहा था। हिल-डुल भी नहीं सकता था, एक ही जगह पर पड़ा रहता था। जब होश आया तब ब्राह्मणी (श्रीरामकृष्ण की आचार्या) मुझे पकड़कर नहलाने के लिए ले गई; परन्तु हाथ से देह छूने की हिम्मत न थी— देह मोटी चादर से ढँकी रहती थी। उसी चादर पर से मुझे पकड़कर ब्राह्मणी ले गई थी। देह में जो मिट्टी लगी हुई थी, वह जल गई थी।

"जब वह अवस्था आती थी तब मेरुमज्जा के भीतर से जैसे कोई हल चला देता था। 'अब जी गया, अब जी गया' यही रट लगी रहती थी। परन्तु उसके बाद फिर बड़ा आनन्द होता था।"

भक्तमण्डली आश्चर्यचकित होकर ये बातें सुन रही है।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– तुम्हारे लिए इतने की ज़रूरत नहीं। मेरा भाव केवल उदाहरण के लिए है। तुम लोग अनेक

बातें लेकर रहते हो, मैं सिर्फ एक को ही लेकर। मुझे ईश्वर को छोड़ और कुछ अच्छा लगता नहीं। उनकी इच्छा। (सहास्य) एक डाल वाला पेड़ भी है और पाँच डालियों का पेड़ भी है। (सब हँसते हैं)

"मेरी अवस्था उदाहरण के लिए है। तुम लोग संसार-धर्म का पालन करो, अनासक्त होकर। कीच लग जाएगी, परन्तु उसे 'पाँकाल' मछली की तरह झाड़ डाला करो। कलंक के सागर में तैरो, फिर भी देह में कलंक न छू जाएगा।"

गिरीश– आपका भी तो विवाह हो गया है। (हास्य)

श्रीरामकृष्ण–(सहास्य)– संस्कार के लिए विवाह करना पड़ता है। परन्तु मैं सांसारिक जीवन कैसे व्यतीत कर सकता? ईश्वर-दर्शन के लिए मेरी व्याकुलता इतनी तीव्र थी कि जब जब मेरे गले में जनेऊ डाल दिया जाता था, वह आप ही गिर जाता था।— मैं संभाल नहीं सकता था। एक मत में है— शुकदेव का विवाह संस्कार के लिए हुआ था। एक कन्या भी शायद हुई थी। (सब हँसते हैं)

"कामिनी और कांचन ही संसार है— ईश्वर को भुला देता है।"

गिरीश– कामिनी और कांचन छोड़ें, तब न?

श्रीरामकृष्ण– उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना करो, विवेक के लिए प्रार्थना करो। ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य। इसी को विवेक कहते हैं। छन्ने से पानी छान लेना चाहिए, इस तरह उसका मैल एक तरफ पड़ा रहता है, अच्छा जल एक तरफ आ जाता है। तुम लोग उन्हें जानकर संसार करना। यही विद्या का संसार कहलाता है।

"देखो न, स्त्रियों में कितनी मोहिनी शक्ति है— तिस पर

अविद्या-रूपिणी स्त्रियाँ पुरुषों को मानो एक बेवकूफ पदार्थ बना देती हैं। जब देखता हूँ, स्त्री-पुरुष एक साथ बैठे हुए हैं तब सोचता हूँ, अहा! ये बिलकुल ही गए! (मास्टर की ओर देखकर) हारू इतना अच्छा लड़का है, परन्तु वह प्रेतनी के हाथों पड़ा है! लाख कहो— 'अरे मेरे हारू, तुम कहाँ गये— हारू तुम कहाँ गये!' कहाँ है हारू! लोगों ने देखा चलकर, हारू बट के नीचे चुपचाप बैठा हुआ है; न वह रूप है, न वह तेज, न वह आनन्द! बट की प्रेतनी हारू पर सवार है!

"बीबी अगर कहे, ज़रा चले तो जाओ, बस आप उठकर खड़े हो गये; अगर कहा— बैठो, तो कहने भर की देर होती है, आप बैठ गए!

"एक उम्मीदवार बड़े बाबू के पास जाते-जाते हैरान हो गया। काम किसी तरह न मिला। बाबू आफिस के बड़े बाबू थे। वे कहते थे, 'अभी जगह खाली नहीं है, मिलते रहना।' इस तरह बहुत समय कट गया। उम्मीदवार हताश हो गया। वह अपने एक मित्र से अपना दुःख रो रहा था। मित्र ने कहा, 'तू भी अक्ल का दुश्मन ही है!—— अरे उसके पास क्यों दौड़-धूप कर रहा है? गुलाबजान के पास जा, उससे सिफारिश करा, तो काम हो जाएगा।' गुलाबजान बड़े बाबू की रखेली है। उम्मीदवार उससे मिला, कहा— 'माँ, तुम्हारे बिना किए न होगा —मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ। ब्राह्मण का बच्चा हूँ, कहाँ मारा मारा फिरूँ? माँ, बहुत दिनों से कामकाज कुछ नहीं मिला, लड़के-बच्चे भूखों मर रहे हैं, तुम्हारे एक बार के कहने ही से मेरा मनोरथ सिद्ध हो जाएगा।' गुलाबजान ने उस ब्राह्मण से पूछा, 'बेटा, किससे कहना होगा?' उम्मीदवार ने कहा, 'बड़े

बाबू से ज़रा आप कह दें तो मुझे ज़रूर काम मिल जाय।' गुलाबजान ने कहा, 'मैं आज ही बड़े बाबू से कहकर सब ठीक करा दूँगी।' दूसरे दिन सुबह को उम्मीदवार के पास एक आदमी जाकर हाज़िर हुआ। उसने कहा, 'आप आज ही से बड़े बाबू के आफिस जाया कीजिए।' बड़े बाबू ने साहब से कहा, 'ये बड़े ही योग्य हैं, इन्हें काम पर मैंने रख लिया है, आफिस का काम ये बड़ी तत्परता के साथ कर सकेंगे।'

"इसी कामिनी और कांचन पर सब लोग लट्टू हैं। परन्तु मुझे यह बिलकुल नहीं सुहाता। सच कहता हूँ, राम दुहाई, ईश्वर को छोड़ मैं और कुछ नहीं जानता।"

(३)

सत्य बोलना कलियुग की तपस्या है

एक भक्त– महाराज, सुना है कि एक नया सम्प्रदाय 'नव हुल्लोल' शुरू हुआ है। ललित चटर्जी उसका एक सदस्य है।

श्रीरामकृष्ण– इस संसार में भिन्न भिन्न मत और मार्ग हैं, परन्तु ये सब उसी एक ईश्वर तक पहुँचने के अलग अलग रास्ते हैं, पर आश्चर्य यह है कि हरएक मनुष्य यही सोचता है कि केवल उसी का मत ठीक है; सिर्फ उसी की घड़ी ठीक समय बताती है।

गिरीश– (मास्टर से)– तुम जानते हो, इसके बारे में पोप का क्या कहना है?

"जिस प्रकार हरएक मनुष्य यह समझता है कि उसी की घड़ी ठीक चलती है वैसे ही उसकी धारणा अपने धर्म के बारे में भी होती है यद्यपि मार्ग अलग अलग होते हैं।*"

---

* It is with our judgements as with our watches,
None goes just alike, yet each believes his own.—Pope.

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– इसका क्या अर्थ है?

मास्टर– हरएक व्यक्ति सोचता है कि उसी की घड़ी ठीक समय बताती है, परन्तु यथार्थ बात यह है कि भिन्न-भिन्न घड़ियाँ एक ही समय नहीं बतलातीं।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु घड़ियाँ चाहे जितनी ग़लत क्यों न हों, सूरज कभी ग़लती नहीं करता है। मनुष्य को अपनी घड़ी सूरज से मिला लेनी चाहिए।

एक भक्त– महाराज, अमुक व्यक्ति झूठ बोलता है।

श्रीरामकृष्ण– सत्य बोलना कलियुग की तपस्या है, इस जीवन में अन्य साधनाओं का अभ्यास करना कठिन है, परन्तु सत्य पर दृढ़ रहने से मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा भी है– 'सत्य कथा, ईश्वराधीनता तथा पर-स्त्री को मातृरूप से देखना ये महान् गुण हैं। अगर इनसे हरि न मिले तो तुलसी को झूठा समझो।'

"केशव सेन ने अपने पिता का कर्जा अपने ऊपर ले लिया। कोई और होता तो साफ इन्कार कर जाता। मैं जोड़ासांको में देवेन्द्र के समाज में गया और वहाँ देखा कि केशव मंच पर बैठा ध्यान कर रहा है। उस समय वह तरुण अवस्था का था। उसे देखकर मैंने मथुर बाबू से कहा, 'यहाँ और जितने लोग ध्यान-धारणा कर रहे हैं उन सबमें इसी तरुण युवक का 'शोला' पानी के नीचे बैठ गया है। मछली मानो कटिया में मुँह लगाने लगी है।'

"एक आदमी था– उसका नाम मैं नहीं बताऊँगा। वह दस हज़ार रुपयों के लिए अदालत में झूठ बोल गया। मुकदमा जीतने के लिए उसने काली माँ के पास मुझसे एक भेंट चढ़वाई। मुझसे

बोला, 'पिताजी, कृपा करके यह भेंट माँ को चढ़ा दीजिएगा।' बालक के समान विश्वास करके मैंने वह भेंट चढ़ा दी।"

भक्त– तो सचमुच वह बड़ा अच्छा आदमी रहा होगा ?

श्रीरामकृष्ण– नहीं, बात ऐसी थी, उसकी मुझमें इतनी श्रद्धा थी कि वह जानता था, यदि मैं माता के पास भेंट चढ़ाऊँगा तो माँ उसकी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर लेगी।

ललित बाबू का संकेत करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा, "क्या अहंकार पर विजय प्राप्त कर लेना सरल बात है ? ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अहंकार से रहित हों। हाँ! बलराम ऐसा है। (एक भक्त की ओर इशारा करके) और देखो, यह दूसरा है। इसके स्थान पर कोई और होता तो घमण्ड के मारे फूल जाता। बाल में कंघी करके माँग निकालता तथा अनेक प्रकार के तमोगुण उसमें प्रकट हो जाते। अपनी विद्वत्ता पर उसे घमण्ड हो जाता। उस मोटे ब्राह्मण में (प्राणकृष्ण की ओर संकेत करके) अब भी अहंभाव का कुछ लेश है। (मास्टर से) महिम चक्रवर्ती ने बहुत से ग्रंथ पढ़े हैं न ?"

मास्टर– हाँ महाराज, उसने बहुत कुछ पढ़ा है।

श्रीरामकृष्ण– (मुस्कराकर)– मेरी इच्छा है कि उसकी और गिरीश की भेंट हो जाती। तब हम लोग उनके वादविवाद का थोड़ा मजा देखते।

गिरीश– (मुसकराते हुए)– क्या वह ऐसा नहीं कहता कि साधना के द्वारा सभी लोग भगवान् श्रीकृष्ण के सदृश हो सकते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– नहीं, बिलकुल वैसी बात नहीं, मगर हाँ, कुछ कुछ ठीक है।

भक्त– महाराज, क्या सब श्रीकृष्ण के सदृश हो सकते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर का अवतार अथवा जिसमें अवतार के कुछ चिह्न होते हैं उसे ईश्वर-कोटि कहते हैं। साधारण मनुष्य को जीव या जीव-कोटि कहते हैं। साधना के बल पर जीव-कोटि ईश्वरानुभव कर सकता है, परन्तु समाधि के बाद वह इस जगत् में फिर नहीं लौटता।

" ईश्वर-कोटि मानो एक राजा के लड़के के सदृश होता है। उसके पास मानो सात-मंजिला महल के प्रत्येक कमरे की चाबी रहती है, वह सातों मंज़िलों पर चढ़ सकता है और इच्छानुसार नीचे उतर भी सकता है। जीव-कोटि एक मामूली अफसर के समान होता है। वह उस महल के कुछ ही कमरों में प्रवेश कर सकता है; उतना ही उसका क्षेत्र है।

" जनक ज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान की उपलब्धि साधना द्वारा की। परन्तु शुकदेव तो ज्ञान की मूर्ति ही थे।"

गिरीश– ओह, ऐसी बात है महाराज ?

श्रीरामकृष्ण– शुकदेव ने साधना के द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया।

" शुकदेव के समान नारद को भी ब्रह्मज्ञान था, परन्तु वे लोगों के शिक्षणार्थ अपने में भक्ति को भी बनाए रखे। प्रह्लाद की कभी कभी यह धारणा होती थी, ' मैं ही ईश्वर हूँ––सोऽहम्।' कभी अपने को ईश्वर का दास समझते थे और कभी उसका बालक। हनुमान की भी यही दशा थी।

" ऐसी उच्च अवस्था की चेष्टा सब लोग चाहे भले ही करें, परन्तु उसे सब प्राप्त नहीं कर सकते। कुछ बाँस पोले होते हैं और कुछ अधिक ठोस।"

(४)

कामिनी-कांचन तथा तीव्र वैराग्य

एक भक्त– आपके ये सब भाव तो उदाहरण के लिए हैं, तो हम लोगों को क्या करना होगा ?

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर-प्राप्ति के लिए तीव्र वैराग्य चाहिए। ईश्वर के मार्ग का जिसे विरोधी समझो, उसे उसी समय छोड़ दो। पीछे देंगे, यह सोचकर उसे रखना उचित नहीं। कामिनी और कांचन ईश्वर के मार्ग के विरोधी हैं, उनसे मन को हटा लेना चाहिए।

"धीमे तिताले पर चलते रहने से न बनेगा। एक आदमी गमछा कन्धे पर रखे नहाने जा रहा था। उसकी स्त्री बोली, 'तुम किसी काम के नहीं हो, उम्र बढ़ रही है, अब भी यह सब तुम न छोड़ सके। मुझे छोड़कर तुम एक दिन भी नहीं रह सकते; परन्तु अमुक को देखो, वह कितना त्यागी है।'

'पति– क्यों उसने क्या किया ?

'स्त्री– उसकी सोलह स्त्रियाँ हैं, वह एक एक करके सबको छोड़ रहा है। तुम कभी त्याग न कर सकोगे।

'पति– एक-एक करके त्याग ! अरी पगली, वह त्याग हरगिज़ न कर सकेगा। जो त्याग करता है वह क्या कभी ज़रा-ज़रा-सा त्याग करता है ?

'स्त्री– (हँसकर)– फिर भी वह तुमसे अच्छा है।

'पति– अरी, तू नहीं समझी। वह क्या त्याग करेगा ? त्याग मैं करूँगा; यह देख मैं चला।'

"तीव्र वैराग्य यह है। ज्योंही विवेक आया कि उसी समय उसने त्याग किया। गमछा कन्धे पर डाले हुए ही वह चला गया।

संसार का काम ठीक कर जाने के लिए भी नहीं आया। घर की ओर एक बार मुड़कर उसने देखा भी नहीं।

"जो त्याग करेगा, उसमें मन का बल खूब होना चाहिए। डाका मारने का भाव, डाका डालने के पहले डाकू जिस तरह किया करते हैं—मारो, लूटो, काटो।

"तुम लोग और क्या करोगे?— उनकी भक्ति तथा कुछ प्रेम प्राप्त कर दिन पार करते रहना। कृष्ण के चले जाने पर यशोदा पागल की भाँति श्रीमती के पास गईं। उन्हें दुःखित देखकर श्रीमती ने आद्याशक्ति के रूप से उन्हें दर्शन किया। कहा, 'माँ मुझसे वर की प्रार्थना करो।' यशोदा ने कहा, 'अब और क्या वर लूँ! यह कहो कि मन, वाणी और कर्म से श्रीकृष्ण की सेवा कर सकूँ। इन आँखों से उसके भक्तों के दर्शन हों, जहाँ जहाँ उसने लीला की है, ये पैर वहाँ वहाँ जा सकें, ये हाथ उसकी और उसके भक्तों की सेवा करें, सब इन्द्रियाँ उसी के काम में लगी रहें।'"

यह कहते कहते श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। एकाएक आप ही आप कह रहे हैं— 'संहारमूर्ति काली या नित्यकाली!'

बड़े कष्ट से श्रीरामकृष्ण ने भाव का वेग रोका। उन्होंने कुछ पानी पिया। यशोदा की बात फिर कहने जा रहे हैं कि महेन्द्र मुखर्जी आ पहुँचे। ये तथा उनके छोटे भाई श्रीयुत प्रिय मुखर्जी अभी थोड़े ही दिनों से श्रीरामकृष्ण के पास आने-जाने लगे हैं। महेन्द्र की आटे की चक्की है तथा अन्य व्यवसाय भी हैं। इनके भाई इंजीनियर का काम करते थे। इनका काम कर्मचारी संभालते हैं, इन्हें यथेष्ट अवकाश है। महेन्द्र की उम्र छत्तीस-सैंतीस की होगी और इनके भाई की उम्र चौंतीस-पैंतीस की। ये केदेटी

मौजे में रहते हैं। कलकत्ते के बाग-बाजार में भी इनका एक मकान है। वहीं सब लोग रहते हैं। इनके साथ एक नवयुवक आया-जाया करते हैं, भक्त हैं, नाम हरि है। हरि का विवाह तो हो चुका है, परन्तु श्रीरामकृष्ण पर ये बड़ी भक्ति रखते हैं। महेन्द्र बहुत दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं गए। हरि भी नहीं गए,— आज आए हैं। महेन्द्र ने भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। हरि ने भी प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– क्यों जी, इतने दिनों तक दक्षिणेश्वर क्यों नहीं आए ?

महेन्द्र– जी, मैं केदेटी गया था, कलकत्ते में नहीं था।

श्रीरामकृष्ण– क्यों जी, न तो तुम्हारे लड़के-बच्चे हैं, न किसी की नौकरी करते हो, फिर भी तुम्हें अवकाश नहीं रहता !

भक्त सब चुप हैं। महेन्द्र का चेहरा उतर गया।

श्रीरामकृष्ण–(महेन्द्र से)– तुमसे मैं इसलिए कहता हूँ कि तुम सरल और उदार हो— ईश्वर पर तुम्हारी भक्ति है।

महेन्द्र– जी, आप तो मेरे भले के लिए ही कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– और यहाँ आकर कुछ पूजा भी नहीं चढ़ानी पड़ती। यदु की माँ ने इस पर कहा— 'दूसरे साधु बस लाओ-लाओ किया करते हैं। बाबा, तुममें यह बात नहीं है।' विषयी आदमियों का जी ही निकल आता है अगर उन्हें गाँठ का पैसा खर्च करना पड़े। एक जगह नाटक हो रहा था। एक आदमी को बैठकर सुनने की बड़ी इच्छा थी। उसने झाँककर देखा, तो उसे मालूम हुआ कि यदि कोई बैठकर देखना चाहता है, तो उससे टिकट के दाम लिए जाते हैं, फिर क्या था—वहाँ से चलता बना। एक दूसरी जगह नाटक हो रहा था, वह वहाँ गया।

पूछने पर मालूम हुआ, वहाँ टिकट नहीं लगता। वहाँ बड़ी भीड़ थी। वह दोनों हाथों से भीड़ हटाकर बीच महफिल में पहुँचा। वहाँ अच्छी तरह जमकर मूँछों पर ताव दे-देकर सुनने लगा! (सब हँसते हैं)

"और तुम्हारे लड़के-बच्चे भी नहीं हैं कि कहें, मन दूसरी ओर चला जाएगा। एक डिप्टी है, आठ सौ तनख्वाह पाता है। केशव सेन के यहाँ नाटक देखने गया था। मैं भी गया था। मेरे साथ राखाल तथा और भी कई आदमी गए थे। मैं जहाँ नाटक देखने के लिए बैठा था, वहीं मेरी बगल में वे लोग भी बैठे हुए थे। उस समय राखाल उठकर ज़रा कहीं बाहर गया। डिप्टी साहब वहीं आकर डट गए और राखाल की जगह पर उसने अपने छोटे बच्चों को बैठा दिया। मैंने कहा, 'यहाँ मत बैठाइए।' मेरी ऐसी अवस्था थी कि जो कोई जैसा कहता था, मुझे वैसा करना पड़ता था। इसीलिए मैंने राखाल को वहाँ बैठाया था। जब तक नाटक हुआ, डिप्टी बराबर अपने बच्चे से बातचीत करता रहा। उसने एक बार भी नाटक नहीं देखा, और मैंने सुना है वह बीबी का गुलाम है, उसके इशारे पर उठता-बैठता है; और एक नक-बैठे बन्दर की शक्ल के बच्चे के लिए उसने नाटक नहीं देखा। (महेन्द्र से) तुम ध्यान-धारणा करते हो न?"

महेन्द्र– जी, कुछ कुछ करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– कभी कभी आया करो।

महेन्द्र– (सहास्य) –जी, कहाँ कैसी गिरह पड़ी हुई है, आप जानते ही हैं। जरा देखिएगा।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– पहले आया तो करो।––तब तो दाब-दूबकर देखूंगा, कहाँ गिरह है–– कहाँ क्या है। तुम आते

क्यों नहीं ?

महेन्द्र– महाराज, आजकल काम से फुरसत नहीं मिलती । तिस पर कभी कभी केंदेटी के मकान का इन्तजाम करना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– (महेन्द्र से, भक्तों की ओर इशारे से बतलाकर)– "क्या इनके घर-द्वार नहीं हैं ? या कामकाज नहीं है ? ये किस तरह आया करते हैं ?

(हरि से) "तू क्यों नहीं आता ? तेरी बीबी आई है न ? "

हरि– जी नहीं ।

श्रीरामकृष्ण– तो तू क्यों भूल गया ?

हरि– जी, मैं बीमार हो गया था ।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– हाँ, दुबला तो हो गया है । इसे भक्ति तो कम है नहीं, भक्ति की दौड़ का हाल फिर क्या पूछना !––उत्पाती भक्ति है । (हँस रहे हैं ।)

श्रीरामकृष्ण एक भक्त की स्त्री को 'हाबी की माँ' कहकर पुकारते थे । 'हाबी की माँ' के भाई आए हुए हैं, कालेज में पढ़ते हैं, उम्र कोई बीस साल की होगी । वे क्रिकेट खेलने के लिए जाएँगे, इसलिए उठे, उनके साथ उनके छोटे भाई भी उठे, ये भी श्रीरामकृष्ण के भक्त हैं । कुछ देर बाद द्विज के लौट आने पर श्रीरामकृष्ण ने पूछा–– 'तू नहीं गया ?'

किसी भक्त ने कहा, 'ये गाना सुनेंगे इसीलिए चले आए हैं।' आज ब्राह्म भक्त श्री त्रैलोक्य का गाना होगा । पल्टू भी आ गए । श्रीरामकृष्ण कहते हैं–– 'कौन–– अरे ! पल्टू ?'

एक और नवयुवक भक्त आए। इनका नाम पूर्ण है। श्रीरामकृष्ण के कई बार बुलवाने से तो ये आए हैं । घरवाले इन्हें आने ही नहीं देते थे । मास्टर जिस स्कूल में पढ़ाते हैं, ये वहीं पाँचवीं

कक्षा में पढ़ते हैं। इन्होंने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण उन्हें अपने पास बैठाकर धीरे धीरे बातचीत कर रहे हैं। मास्टर पास बैठे हुए हैं। दूसरे भक्त दूसरे ही विचार में डूबे हैं। गिरीश एक ओर बैठे हुए केशव-चरित पढ़ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (पूर्ण से)– यहाँ आया करो।

गिरीश– (मास्टर से)– यह लड़का कौन है?

मास्टर– (विरक्ति से)– लड़का है और कौन है?

गिरीश– लड़का है यह तो देख ही रहा हूँ।

मास्टर डरे कि कहीं चार आदमी जान गए और लड़के के घर तक खबर फैली तो उनके लिए यह अच्छा न होगा, और इससे मास्टर पर भी दोषारोपण होता है। इसीलिए बच्चे के साथ श्रीरामकृष्ण धीरे धीरे बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– जो कुछ मैंने बतलाया था, सब करते जाना।

बच्चा– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– स्वप्न में कुछ देखते हो?–– अग्नि-शिखा, जलती हुई मशाल, सुहागिन स्त्री, स्मशान?–– यह सब देखना बहुत अच्छा है।

बच्चा– आपको देखा है, आप बैठे हुए कुछ कह रहे थे।

श्रीरामकृष्ण– क्या?–– उपदेश?–– अछा क्या सुना, एक कहो तो ज़रा।

बच्चा– याद नहीं है।

श्रीरामकृष्ण– नहीं याद है तो नहीं सही, यह बहुत अच्छा है। तुम्हारी उन्नति होगी। मुझ पर आकर्षण है न?

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं–– 'क्या वहाँ नहीं जाओगे?' (अर्थात् दक्षिणेश्वर में)। बच्चा कह रहा है, 'मैं यह

नहीं कह सकता ।'

श्रीरामकृष्ण– क्यों ? वहाँ तुम्हारा कोई आत्मीय है न ?

बच्चा– जी हाँ, परन्तु वहाँ जाने की सुविधा नहीं है ।

गिरीश केशव-चरित पढ़ रहे हैं। ब्राह्म समाज के श्रीयुत त्रैलोक्य ने यह पुस्तक लिखी है । इसमें लिखा है, पहले श्रीराम-कृष्णदेव संसार से विरक्त थे, परन्तु केशव से मिलने के बाद उन्होंने अपना मत बदल दिया है । अब श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं कि संसार में भी धर्म होता है । इसे पढ़कर किसी किसी भक्त ने श्रीरामकृष्ण से यह बात कही है। भक्तों की इच्छा है कि त्रैलोक्य के साथ इस विषय पर बातचीत हो । श्रीरामकृष्ण को पुस्तक पढ़कर यह बात सुनाई गई थी ।

गिरीश के हाथ में पुस्तक देखकर श्रीरामकृष्ण गिरीश, मास्टर, राम तथा दूसरे भक्तों से कह रहे हैं–– "वे लोग वही लेकर हैं, इसीलिए संसार-संसार रट रहे हैं। कामिनी और कांचन के भीतर हैं न ! उन्हें पा लेने पर ऐसी बात नहीं निकलती । ईश्वर का आनन्द मिल जाता है, तब संसार तो काकविष्ठावत् जान पड़ता है । मैं पहले सबसे किनाराकशी कर गया था ।–– विषयी लोगों का साथ तो छोड़ा, बीच में भक्तों का संग भी छोड़ दिया था। देखा, सब पटापट कूच कर जाते हैं (मर जाते हैं) और यह सुनकर मेरा कलेजा दहलता था–– इस समय कुछ कुछ तो आदमियों में रहता भी हूँ ।"

(५)

संकीर्तन के आनन्द में

गिरीश घर चले गए । फिर आएँगे ।

श्रीयुत जयगोपाल सेन के साथ त्रैलोक्य आ गए । उन्होंने श्रीराम-

कृष्ण को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण उनसे कुशलप्रश्न कर रहे हैं। छोटे नरेन्द्र ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'क्यों रे, तू शनिवार को तो फिर नहीं आया ?' अब त्रैलोक्य का गाना होगा।

श्रीरामकृष्ण– अहा ! उस दिन तुमने आनन्दमयी माता का गाना गाया, कितना सुन्दर गाना था !—और सब आदमियों के गाने अलोने लगते हैं ! उस दिन नरेन्द्र का गाना भी अच्छा नहीं लगा। ज़रा वही गाना गाओ।

त्रैलोक्य गा रहे हैं— 'जय शचीनन्दन !'

श्रीरामकृष्ण मुँह धोने के लिए जा रहे हैं। स्त्रियाँ चिक के पास व्याकुल भाव से बैठी हुई थीं। उनके पास श्रीरामकृष्ण दर्शन देने के लिए जाएँगे। त्रैलोक्य का गाना हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण कमरे में लौटकर त्रैलोक्य से कह रहे हैं— 'ज़रा आनन्दमयी का गाना गाओ तो।' त्रैलोक्य गा रहे हैं—

"माता, मनुष्य-सन्तानों पर तुम्हारी कितनी प्रीति है ! जब इसकी याद आती है, तब आँखों से प्रेम की धारा बह चलती है। मैं जन्म से ही तुम्हारे श्रीचरणों में अपराधी हूँ, फिर भी तुम मेरे मुख की ओर प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखकर मधुर स्वर से पुकार रही हो। जब यह बात याद आती है, तब दोनों नेत्रों से प्रेम की धारा बह चलती है। तुम्हारे प्रेम का भार अब मुझसे ढोया नहीं जाता। जी विकल होकर रो उठता है, तुम्हारे स्नेह को देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है। माँ, तुम्हारे श्रीचरणों में मैं शरणागत हूँ।"

गाना सुनते ही छोटे नरेन्द्र गम्भीर ध्यान में मग्न हो रहे हैं,— शरीर काष्ठवत् जान पड़ता है। श्रीरामकृष्ण मास्टर से

कह रहे हैं, 'देखो देखो, कितना गम्भीर ध्यान है। बाहरी संसार का ज्ञान बिलकुल नहीं है।'

गाना समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण ने त्रैलोक्य से 'दे माँ पागल करे' गाने के लिए कहा। राम ने कहा, 'कुछ हरिनाम होना चाहिए।' त्रैलोक्य गा रहे हैं, 'मन एक बार हरि कहो।'

मास्टर धीरे धीरे कह रहे हैं— "'निताई-गौर तुम दोनों भाई भाई' यह गाना सुनने की श्रीरामकृष्ण की भी इच्छा है।" त्रैलोक्य के साथ भक्तगण भी मिलकर गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण भी साथ गाने लगे। यह गाना समाप्त होने पर दूसरा गाना शुरू किया गया।— "हरि नाम लेते हुए जिनकी आँखों से आँसू बह चलते हैं, वे दोनों भाई आए हैं। जो मार सहकर भी प्रेमदान देने के लिए तैयार रहते हैं, वे दोनों भाई आए हैं।"

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने स्वयं गाना गाया— "श्रीगौरांग के प्रेम-प्रवाह से नदिया में उथल-पुथल मची हुई है।"

श्रीरामकृष्ण ने फिर गाया— "हरिनाम लेता हुआ यह कौन जा रहा है? ऐ माधाई, तू ज़रा देख तो आ।"

गाना हो जाने पर छोटे नरेन्द्र बिदा हुए।

श्रीरामकृष्ण— तू अपने माँ-बाप पर खूब भक्ति किया कर। परन्तु वे अगर ईश्वर के मार्ग में रोड़े अटकावें, तो उनकी बातें न मानना। खूब दृढ़ता रखना— वह बाप नहीं साला है, अगर ईश्वर के मार्ग में विघ्न खड़ा करता है।

छोटे नरेन्द्र— न जाने क्यों, मुझे भय नहीं होता।

गिरीश घर से लौट आए। श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य से परिचय करा रहे हैं। कह रहे हैं— 'तुम लोग कुछ वार्तालाप करो।' दोनों में कुछ बातचीत हो जाने पर, त्रैलोक्य से कह रहे हैं, "ज़रा

वही गाना एक बार और— 'जय शचीनन्दन।'"

त्रैलोक्य गाने लगे।

(भावार्थ) "हे शचीनन्दन, गुणाकर गौरांग, तुम पारस-पत्थर हो। भाव-रस के सागर हो। तुम्हारी मूर्ति कितनी सुन्दर है! और कनक की आभामयी मनोहर आँखें! मृणाल-निन्दित, आजानु-लम्बित, प्रेम-प्रसारित तुम्हारे कर-युगल भी कितने सुकुमार हैं। प्रेम-रस से भरा, छलकता हुआ रुचिर वदन-कमल, सुन्दर केश, चारु गण्डस्थल भी कितने सुन्दर हैं!— तुम्हारे ईश्वरप्रेम की विकल अवस्था से सर्वांग कितना आकर्षक हो रहा है! तुम महाभाव-मण्डित हो, हरि-रस-रंजित हो रहे हो, आनन्द से तुम्हारा सर्वांग पुलकित हो रहा है। प्रमत्त मातंग की तरह, ऐ हेमकान्ति, तुम्हारे अंग आवेश-विभोर हो रहे हैं— अनुराग से भरे हुए हैं। तुम हरिगुण-गायक हो, अलोक-सामान्य हो, भक्ति-सिन्धु के श्रीचैतन्य हो। अहा! 'भाई' कहकर चाण्डाल को भी तुम प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लेते हो, दोनों बाहुओं को उठाकर हरि-नाम-कीर्तन करते हुए तुम्हारी आँखों से अविरल आँसुओं की धारा बह चलती है। 'मेरे जीवन-धन वे कहाँ हैं,' कहकर जब तुम रोदन करते हो, उस समय महा स्वेद होता है— कम्पन होता है, हुंकार के साथ गर्जना होती है। पुलकित और रोमांचित होकर तुम्हारा सुन्दर शरीर धूलि-लुण्ठित हो जाता है। ऐ हरि-लीलारस-निकेतन! ऐ भक्ति-रस प्रस्रवण! दीन-जन-बांधव ऐ बंग-गौरव! प्रेम-शशिधर ऐ श्री चैतन्य! तुम धन्य हो— तुम धन्य हो!"

'मेरे जीवन-धन वे कहाँ हैं, कहकर तुम रोदन करते हो,' यह सुनकर श्रीरामकृष्ण भावावेश में आकर खड़े हो गए,— बिलकुल

बाह्य ज्ञान जाता रहा!

जब कुछ प्राकृत दशा हुई तब वे त्रैलोक्य से विनयपूर्वक कहने लगे— "एक बार वह गाना भी— 'क्या देखा मैंने केशव भारती के कुटीर में!'" त्रैलोक्य ने वह गाना भी गाया।

गाना समाप्त हो गया। सन्ध्या हो आई। श्रीरामकृष्ण अब भी भक्तों के साथ बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (राम से)– बाजा नहीं है। अगर अच्छा बाजा रहा तो गाना खूब जमता है। (हँसकर) बलराम का बन्दोबस्त क्या है, जानते हो?—ब्राह्मण की गौ!— जो खाय तो कम, पर दूध दे सेरों! (सब हँसते हैं) बलराम का भाव है— आप लोग खूब गाइये-बजाइये! (सब हँसते हैं)

(६)

श्रीरामकृष्ण तथा विद्या का संसार

सन्ध्या हो गई है। बलराम के बैठकखाने और बरामदे में चिराग जल गए। श्रीरामकृष्ण जगन्माता को प्रणाम करके उँगलियों पर बीजमंत्र का जप कर मधुर स्वर से नाम ले रहे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठें हैं। वे मधुर नाम सुन रहे हैं। गिरीश, मास्टर, बलराम, त्रैलोक्य तथा अन्य दूसरे बहुत से भक्त अब भी बैठे हैं। 'केशव-चरित' ग्रन्थ में संसार के लिए श्रीरामकृष्ण के मत-परिवर्तन की जो बात लिखी है, त्रैलोक्य के सामने वह प्रसंग उठाने के लिए भक्तों ने निश्चय किया। गिरीश ने श्रीगणेश किया।

वे त्रैलोक्य से कह रहे हैं— "आपने जो यह लिखा है कि संसार के सम्बन्ध में इनका (श्रीरामकृष्ण का) मत बदल गया है, वास्तव में बात वैसी नहीं, इनका मत परिवर्तित नहीं हुआ है।"

श्रीरामकृष्ण– (त्रैलोक्य और दूसरे भक्तों से)– इधर का आनन्द मिलने पर फिर संसार नहीं सुहाता। ईश्वर का आनन्द मिल गया तो संसार अलोना जान पड़ता है। शाल के मिलने पर फिर बनात अच्छी नहीं लगती।

त्रैलोक्य– जो लोग सांसारिक हैं, मैंने उनकी बात लिखी है। जो लोग त्यागी हैं, मैं उनकी बात नहीं कहता।

श्रीरामकृष्ण– ये सब तुम लोगों की कैसी बातें हैं ? जो लोग 'संसार में धर्म' की रट लगाते हैं, वे लोग एक बार अगर ईश्वर का आनन्द पा जायँ, तो उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। कामों के लिए जो दृढ़ता होती है, वह भी घट जाती है। क्रमशः आनन्द जितना बढ़ता जाता है, उतना ही वे काम करने से थक जाते हैं,— केवल उस आनन्द की ही खोज में रहते हैं। कहाँ ईश्वरानन्द और कहाँ विषयानन्द और रमणानन्द ! एक बार ईश्वर के आनन्द का स्वाद पा जाने पर फिर मनुष्य उसी आनन्द की खोज के लिए तुल जाता है,— संसार रहे, चाहे जाय।

"प्यास के मारे चातक की छाती फटी जाती है, सातों सागर, सारी नदियाँ तथा कुल तालाब पानी से भरे रहते हैं, फिर भी वह उनका जल नहीं पीता। स्वाति की बूंदों के लिए चोंच फैलाए रहता है। स्वाति की बूंदों को छोड़ उसके लिए और सब पानी धूल है।

"कहते हैं, दोनों ओर बचाकर चलेंगे। दुअन्नी भर शराब पीकर आदमी दोनों तरफ की रक्षा चाहे कर ले, परन्तु कसकर शराब पी ले तो कैसे रक्षा हो सकेगी ?

"ईश्वर का आनन्द पा जाने पर फिर कुछ और अच्छा नहीं लगता। तब कामिनी और कांचन की बात हृदय में चोट कर

जाती है। (श्रीरामकृष्ण कीर्तन के स्वर में कह रहे हैं)––'दूसरे आदमियों की और और बातें तो अब अच्छी ही नहीं लगतीं।' जब ईश्वर के लिए मनुष्य पागल होता है तब रुपया-पैसा कुछ अच्छा नहीं लगता।"

त्रैलोक्य– संसार में रहना है तो धन का भी तो संचय चाहिए। दान-ध्यान आदि संसार में लगे ही रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– क्या! पहले धन का संचय करके फिर ईश्वर! और दान-ध्यान-दया भी कितनी! अपनी लड़की के विवाह में तो हजारों रुपयों का खर्च— और पड़ोसी भूखों मरता है, उसे मुट्ठी भर अन्न देते कलेजा चिर जाता है! संसारी मनुष्य दान भी बड़े हिसाब से करते हैं। लोग खाने को नहीं पाते— तो क्या हुआ, साले मरें या बचें,–– मैं और मेरे घरवाले बस अच्छे रहें, बस हो गया! सब जीवों पर दया, उनका ज़बानी जमा-खर्च है।

त्रैलोक्य– संसार में अच्छे आदमी भी तो हैं,— पुण्डरीक विद्यानिधि चैतन्यदेव के शिष्य थे। ये संसार में ही तो थे।

श्रीरामकृष्ण– उसके गले तक शराब आ गई थी। अगर थोड़ी सी और पी ली होती तो फिर संसार में नहीं रह सकता था।

त्रैलोक्य चुप हो गए। मास्टर गिरीश से अकेले में कह रहे हैं–– 'तो इन्होंने जो कुछ लिखा है, वह ठीक नहीं है।'

गिरीश– तो आपने जो कुछ लिखा है, इस सम्बन्ध में, वह ठीक नहीं है। क्यों?

त्रैलोक्य– नहीं क्यों? क्या ये यह नहीं मानते कि संसार में धर्म होता है?

श्रीरामकृष्ण– होता है, परन्तु ज्ञानलाभ के पश्चात् संसार में रहना चाहिए,— ईश्वर को प्राप्त करके तब रहना चाहिए। तब

'कलंक' के समुद्र में तैरते रहने पर भी कलंक देह में नहीं छू जाता। फिर वह कीच के भीतर रहनेवाली मछली की तरह रह सकता है। ईश्वरलाभ के बाद जो संसार है, वह विद्या का संसार है। उसमें कामिनी और कांचन का स्थान नहीं है। है केवल भक्ति, भक्त और भगवान। मेरे भी स्त्री है,— घर में लोटा-थाली भी है,— घुरू और लुच्छू को भोजन भी दे दिया जाता है, और फिर जब 'हाबी की माँ' और ये लोग आते हैं, तब इन लोगों के लिए भी सोचता हूँ।

(७)

श्रीरामकृष्ण तथा अवतार-तत्त्व

एक भक्त– (त्रैलोक्य से)– आपकी पुस्तक में मैंने देखा, आप अवतार नहीं मानते। यह चैतन्यदेव के प्रसंग में पाया।

त्रैलोक्य– उन्होंने स्वयं प्रतिवाद किया है। पुरी में जब अद्वैत और उनके दूसरे भक्त उन्हें ही भगवान कहकर गाने लगे, तब गाना सुनकर चैतन्यदेव ने अपने घर के दरवाजे बन्द कर लिए थे। ईश्वर के ऐश्वर्य की इति नहीं है। ये जैसा कहते हैं, भक्त भगवान का बैठकखाना है, और बात भी यही जँचती है। बैठकखाना खूब सजाया हुआ है, तो क्या उसके अतिरिक्त उनके और कोई ऐश्वर्य नहीं है?

गिरीश– ये कहते हैं, प्रेम ही ईश्वर का सारांश है। जिस आदमी के भीतर से प्रेम का आविर्भाव होता है, हमें उसी की ज़रूरत है। ये कहते हैं, गौ का दूध उसके स्तनों से आता है। अतएव हमें स्तनों की ज़रूरत है। गौ के दूसरे अंगों की आवश्यकता नहीं,— उसके पैरों या सींगों की ज़रूरत नहीं।

त्रैलोक्य– उनका प्रेम-दुग्ध अनन्त मार्गों से होकर निकलता

है ।— उनमें अनन्त शक्ति है ।

गिरीश– उस प्रेम के सामने और दूसरी कौन सी शक्ति ठहर सकती है ?

त्रैलोक्य– परन्तु फिर भी यदि उस सर्वशक्तिशाली ईश्वर की इच्छा हो तो सब कुछ हो सकता है । सब कुछ उनके हाथ में है ।

गिरीश– और सब शक्तियाँ तो उनकी हैं,— परन्तु अविद्या शक्ति ?

त्रैलोक्य– अविद्या भी कोई वस्तु है! वह तो अभावमात्र है । जैसे अंधेरे में उजाले का अभाव । इसमें कोई शक नहीं कि हम प्रेम को बहुत बड़ा मानते हैं । पर साथ ही वह ईश्वर के लिए केवल एक बूंद के समान है, यद्यपि हमारे लिए समुद्रतुल्य । पर यदि तुम यह कहो कि ईश्वर के सम्बन्ध में प्रेम अन्तिम शब्द है, तब तो तुम ईश्वर को सीमित कर देते हो ।

श्रीरामकृष्ण– (त्रैलोक्य तथा दूसरे भक्तों से)– हाँ, हाँ, यह ठीक है; परन्तु थोड़ी सी शराब के पीने पर जब हमें काफी नशा हो जाता है, तो शराबवाले की दूकान में कितनी शराब है, इसके जानने की हमें क्या ज़रूरत ? अनन्त शक्ति की खबर से हमें क्या काम ?

गिरीश– (त्रैलोक्य से)– आप अवतार मानते हैं ?

त्रैलोक्य– भक्त में ही भगवान अवतीर्ण होते हैं, अनन्त शक्ति का आविर्भाव नहीं होता,— न हो सकता है। ऐसा किसी भी मनुष्य में नहीं हो सकता ।

गिरीश– यदि अपने बच्चों को 'ब्रह्मगोपाल' कहकर पूजा की जा सकती है, तो क्या महापुरुष को ईश्वर कहकर पूजा नहीं की जा सकती ? . . . .

श्रीरामकृष्ण– (त्रैलोक्य से)– अनन्त को लेकर क्यों माथापच्ची कर रहे हो ? तुम्हें छूने के लिए क्या तुम्हारे कुल शरीर को छूना होगा ? अगर गंगास्नान करना है तो क्या हरिद्वार से गंगासागर तक गंगा को छू जाना चाहिए ? 'मैं' मरा कि जंजाल दूर हुआ। जब तक 'मैं' है, तभी तक भेद-बुद्धि रहती है। 'मैं' के जाने पर क्या रहता है यह कोई नहीं कह सकता,— मुँह से यह बात नहीं कही जा सकती। जो कुछ है, बस वही है। तब, कुछ प्रकाश यहाँ हुआ है और बचा-खुचा वहाँ,— यह कुछ मुँह से नहीं कहा जाता। सच्चिदानन्द सागर है। उसके भीतर 'मैं' घट है। जब तक घट है तब तक पानी के दो भाग हो रहे हैं। एक भाग घट के भीतर है, एक बाहर। घट फूट जाने पर एक ही पानी है ! यह भी नहीं कहा जा सकता— कहे कौन ?

विचार हो जाने पर श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य के साथ मधुर शब्दों में वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– तुम तो आनन्द में हो ?

त्रैलोक्य– कहाँ ? यहाँ से उठा नहीं कि फिर ज्यों का त्यों। इस समय अच्छी ईश्वर की उद्दीपना हो रही है।

श्रीरामकृष्ण– जूते पहने रहो तो काँटों के बन में कोई भय नहीं रहता। 'ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य', इस बोध के रहने पर कामिनी और कांचन का फिर कोई भय नहीं रह जाता।

त्रैलोक्य को जलपान कराने के लिए बलराम उन्हें दूसरे कमरे में ले गए। श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य और उनके मत के लोगों की अवस्था भक्तों से कह रहे हैं। रात के नौ बजे होंगे।

श्रीरामकृष्ण–(गिरीश, मणि और दूसरे भक्तों से)– ये कैसे हैं, जानते हो ? कुएँ के एक मेंढक ने यह नहीं देखा कि पृथ्वी

कितनी बड़ी है; वह बस कुआँ पहचानता है। इसीलिए वह यह विश्वास करता ही नहीं कि पृथ्वी भी कोई चीज़ है। ईश्वर के आनन्द का पता नहीं मिला, इसीलिए संसार-संसार रट रहा है।

(गिरीश से) "उनके साथ क्यों बकते हो? वे दोनों में हैं। ईश्वर के आनन्द का स्वाद जब तक नहीं मिलता, तब तक उसकी बातें समझ में नहीं आतीं। पाँच साल के लड़के को क्या कोई रमणसुख समझा सकता है? विषयी लोग जो ईश्वर-ईश्वर रटते हैं, वह सुनी हुई बात है। जैसे घर की बड़ी दीदी और चाची को आपस में लड़ाई करते हुए देखकर बच्चे उनसे सीखते हैं— 'मेरे लिए भगवान हैं'— 'तुझे भगवान की कसम है।'

"खैर, उनका दोष कुछ नहीं है। क्या सब लोग कभी उस अखण्ड सच्चिदानन्द को प्राप्त कर सकते हैं? श्रीरामचन्द्र को सिर्फ बारह ऋषियों ने समझा था, सब उन्हें नहीं समझ सके। अवतार को कोई साधारण मनुष्य सोचते हैं— कोई साधु समझते हैं,— दो ही चार आदमी उन्हें अवतार जान सकते हैं।

"जिसके पास जितनी पूँजी है, उतना ही दाम वह एक चीज़ के लिए खर्च करता है। एक बाबू ने अपने नौकर से कहा, 'यह हीरा तू बाजार में ले जा, लौटकर मुझे बतलाना कि कौन कितनी कीमत देता है। पहले बैंगनवाले के पास जाना।' नौकर पहले बैंगनवाले के पास गया। बैंगनाले ने उसे उलट-पुलटकर देखा और कहा, 'भाई, इसके बदले नौ सेर बैंगन मैं दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, ज़रा बढ़ो, भला दस सेर तो दो।' उसने कहा, 'मैं बाजार-दर से ज्यादा कह चुका। इतने में पट जाय तो दे दो।' तब नौकर ने हँसते हुए हीरा लौटाकर बाबू से कहा, 'बैंगनवाला नौ सेर से एक भी बैंगन अधिक नहीं देना चाहता।

उसने कहा, मैं बाजार-दर से ज्यादा कह चुका।'

"बाबू ने हँसकर कहा, 'अच्छा अब की बार कपड़ेवाले के पास ले जा। बैंगनवाला तो बैंगनों में पड़ा रहता है, वह और कहाँ तक समझेगा। कपड़ेवाले की पूँजी कुछ अधिक है, देखें ज़रा— वह क्या कहता है।' नौकर कपड़ेवाले के पास गया और कहा, 'क्यों जी, यह चीज़ लोगे? क्या दोगे?' कपड़ेवाले ने कहा, 'हाँ, चीज़ तो अच्छी है, इससे स्त्रियों का कोई जेवर बन जाएगा। भाई, मैं नौ सौ रुपया दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, कुछ और बढ़ो, तो छोड़ भी दें। अच्छा, हज़ार तो पूरा कर दो।' कपड़ेवाले ने कहा, 'अब कुछ न कहो, मैंने बाजार-दर से ज्यादा कह दिया है। नौ सौ रुपए से अधिक एक भी रुपया मैं न दूँगा।' नौकर लौटकर मालिक के पास हँसते हुए पहुँचा और कहा, 'कपड़ेवाला कहता है— नौ सौ से एक कौड़ी भी ज्यादा न दूँगा। उसने यह भी कहा कि मैंने बाजार-दर से कीमत ज्यादा कह दी।' तब उसके मालिक ने हँसते हुए कहा, 'अब जौहरी के पास जाओ, देखें, वह क्या कहता है।' नौकर जौहरी के पास गया। जौहरी ने ज़रा देखकर ही एकदम कहा— 'एक लाख दूँगा।'

"संसार में इन लोगों का धर्म-धर्म चिल्लाना उसी तरह है, जैसे किसी मकान के सब दरवाजे तो बन्द हों और छत के छेद से ज़रा सी रोशनी आ रही हो। सिर पर छत के रहने पर क्या कोई सूर्य को देख सकता है? ज़रा सा उजाला आया भी तो क्या हुआ? कामिनी-कांचन छत है। छत को गिराए बिना उस दशा में सूर्य को देखना मुश्किल है। संसारी आदमी मानो घरों में कैद हैं।

"अवतार आदि ईश्वर-कोटि हैं। वे खुली जगहों में घूम रहे हैं। वे कभी संसार में नहीं बँधते,— पकड़ में नहीं आते। उनका

कितनी बड़ी है; वह बस कुआँ पहचानता है। इसीलिए वह यह विश्वास करता ही नहीं कि पृथ्वी भी कोई चीज़ है। ईश्वर के आनन्द का पता नहीं मिला, इसीलिए संसार-संसार रट रहा है।

(गिरीश से) "उनके साथ क्यों बकते हो? वे दोनों में हैं। ईश्वर के आनन्द का स्वाद जब तक नहीं मिलता, तब तक उसकी बातें समझ में नहीं आतीं। पाँच साल के लड़के को क्या कोई रमणसुख समझा सकता है? विषयी लोग जो ईश्वर-ईश्वर रटते हैं, वह सुनी हुई बात है। जैसे घर की बड़ी दीदी और चाची को आपस में लड़ाई करते हुए देखकर बच्चे उनसे सीखते हैं— 'मेरे लिए भगवान हैं'— 'तुझे भगवान की कसम है।'

"खैर, उनका दोष कुछ नहीं है। क्या सब लोग कभी उस अखण्ड सच्चिदानन्द को प्राप्त कर सकते हैं? श्रीरामचन्द्र को सिर्फ बारह ऋषियों ने समझा था, सब उन्हें नहीं समझ सके। अवतार को कोई साधारण मनुष्य सोचते हैं— कोई साधु समझते हैं,— दो ही चार आदमी उन्हें अवतार जान सकते हैं।

"जिसके पास जितनी पूँजी है, उतना ही दाम वह एक चीज़ के लिए खर्च करता है। एक बाबू ने अपने नौकर से कहा, 'यह हीरा तू बाजार में ले जा, लौटकर मुझे बतलाना कि कौन कितनी कीमत देता है। पहले बैंगनवाले के पास जाना।' नौकर पहले बैंगनवाले के पास गया। बैंगनाले ने उसे उलट-पुलटकर देखा और कहा, 'भाई, इसके बदले नौ सेर बैंगन मैं दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, ज़रा बढ़ो, भला दस सेर तो दो।' उसने कहा, 'मैं बाजार-दर से ज्यादा कह चुका। इतने में पट ज़ाय तो दे दो।' तब नौकर ने हँसते हुए हीरा लौटाकर बाबू से कहा, 'बैंगनवाला नौ सेर से एक भी बैंगन अधिक नहीं देना चाहता।

उसने कहा, मैं बाजार-दर से ज्यादा कह चुका।'

"बाबू ने हँसकर कहा, 'अच्छा अब की बार कपड़ेवाले के पास ले जा। बैंगनवाला तो बैंगनों में पड़ा रहता है, वह और कहाँ तक समझेगा। कपड़ेवाले की पूँजी कुछ अधिक है, देखें ज़रा— वह क्या कहता है।' नौकर कपड़ेवाले के पास गया और कहा, 'क्यों जी, यह चीज़ लोगे? क्या दोगे?' कपड़ेवाले ने कहा, 'हाँ, चीज़ तो अच्छी है, इससे स्त्रियों का कोई जेवर बन जाएगा। भाई, मैं नौ सौ रुपया दे सकता हूँ।' नौकर ने कहा, 'भाई, कुछ और बढ़ो, तो छोड़ भी दें। अच्छा, हज़ार तो पूरा कर दो।' कपड़ेवाले ने कहा, 'अब कुछ न कहो, मैंने बाजार-दर से ज्यादा कह दिया है। नौ सौ रुपए से अधिक एक भी रुपया मैं न दूँगा।' नौकर लौटकर मालिक के पास हँसते हुए पहुँचा और कहा, 'कपड़ेवाला कहता है— नौ सौ से एक कौड़ी भी ज्यादा न दूँगा। उसने यह भी कहा कि मैंने बाजार-दर से कीमत ज्यादा कह दी।' तब उसके मालिक ने हँसते हुए कहा, 'अब जौहरी के पास जाओ, देखें, वह क्या कहता है।' नौकर जौहरी के पास गया। जौहरी ने ज़रा देखकर ही एकदम कहा— 'एक लाख दूँगा।'

"संसार में इन लोगों का धर्म-धर्म चिल्लाना उसी तरह है, जैसे किसी मकान के सब दरवाजे तो बन्द हों और छत के छेद से ज़रा सी रोशनी आ रही हो। सिर पर छत के रहने पर क्या कोई सूर्य को देख सकता है? ज़रा सा उजाला आया भी तो क्या हुआ? कामिनी-कांचन छत है। छत को गिराए बिना उस दशा में सूर्य को देखना मुश्किल है। संसारी आदमी मानो घरों में कैद हैं।

"अवतार आदि ईश्वर-कोटि हैं। वे खुली जगहों में घूम रहे हैं। वे कभी संसार में नहीं बँधते,— पकड़ में नहीं आते। उनका

'मैं' संसारियों का-सा भद्दा 'मैं' नहीं है। संसारियों का अहंकार—संसारियों का 'मैं' उसी तरह है, जैसे चारों ओर से चारदीवार और ऊपर छत हो। बाहर की कोई वस्तु नज़र नहीं आती। अवतार पुरुषों का 'मैं' बारीक 'मैं' है। इस 'मैं' के भीतर से सदा ही ईश्वर दिखलाई देते हैं। जैसे एक आदमी चारदीवार के एक किनारे पर खड़ा हुआ है, और दीवार के दोनों ओर खुला हुआ खूब लम्बा चौड़ा मैदान पड़ा हुआ है, उस चारदीवार में एक जगह एक छेद है, जिससे दोनों ओर स्पष्ट दीख पड़ता है। छेद अगर कुछ बड़ा हुआ तो इधर-उधर आना-जाना भी हो सकता है। अवतार पुरुषों का 'मैं' वही छेदवाली चारदीवार है। चारदीवार के इधर रहने पर भी वही लम्बा मैदान दिखलाई देता है— इसका अर्थ यह है कि शरीर धारण करने पर भी वे सदा योग में रहते हैं। फिर अगर इच्छा हुई तो बड़े छेद के उधर जाकर समाधिमग्न भी हो जाते हैं और छेद बड़ा रहा तो आना-जाना जारी भी रख सकते हैं। समाधिमग्न होने पर भी उतरकर आ सकते हैं।"

भक्तमण्डली विस्मय और बड़ी लगन के साथ चुपचाप अवतार-तत्त्व सुन रही है।

परिच्छेद ८

बलराम तथा गिरीश के मकान में

(१)

भक्तों के संग में

शुक्रवार, वैशाख शुक्ल दशमी, २४ अप्रैल, १८८५। श्रीरामकृष्ण आज कलकत्ता आए हुए हैं। मास्टर ने दिन के एक बजे के लगभग बलराम के बैठकखाने में जाकर देखा, श्रीरामकृष्ण निद्रा में हैं। दो-एक भक्त पास ही विश्राम कर रहे हैं।

मास्टर एक पंखा लेकर धीरे धीरे हवा करने लगे, श्रीरामकृष्ण की नींद छूटी। ढीली-देह वे उठकर बैठ गए। मास्टर ने भूमिष्ठ हो उन्हें प्रणाम किया और उनकी पदधूलि ली।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से, सस्नेह)–अच्छे हो? न जाने क्यों, मेरे गले की गिलटी फूल गई है, पिछली रात से दर्द होता है। क्यों जी, यह कैसे अच्छी हो? (चिन्तित होकर) आम की खट्टी तरकारी बनी थी, और भी कई चीज़ें बनी थीं, थोड़ी थोड़ी सी सब चीज़ें मैंने खाईं। (मास्टर से) तुम्हारी स्त्री कैसी है? उस दिन उसे देखा था, बहुत कमज़ोर है। कोई ठंडी चीज़ थोड़ी-थोड़ी सी दिया करो।

मास्टर– जी, कच्चा नारियल दिया करूँ?

श्रीरामकृष्ण– हाँ, मिश्री का शरबत पिलाना अच्छा है।

मास्टर– मैं रविवार से घर चला गया।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा किया। घर में रहने पर तुम्हें सुविधा है; बाप भी है, तुम्हें संसार का काम अधिक न देखना होगा।

बातचीत करते हुए श्रीरामकृष्ण का मुँह सूखने लगा। तब वे

बालक की तरह मास्टर से पूछने लगे— 'मेरा मुँह सूख रहा है, क्या सभी का मुँह सूख रहा है ?'

मास्टर– योगीन्द्र बाबू, क्या आपका भी मुँह सूख रहा है ?

योगीन्द्र– नहीं, इन्हें गरमी लगी होगी।

एँड़ेदा के योगीन्द्र श्रीरामकृष्ण के एक अन्तरंग त्यागी भक्त हैं। श्रीरामकृष्ण शिथिल भाव से बैठे हुए हैं। भक्तों में कोई कोई हँस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– मैं मानो दूध पिलाने के लिए बैठा हूँ। (सब हँसते हैं) अच्छा, मुँह सूख रहा है, मैं नासपाती या जमरूल* खाऊँ ?

बाबूराम– हाँ वही ठीक है। मैं जमरूल ले आऊँ ?

श्रीरामकृष्ण– धूप में अब न जा।

मास्टर पंखा झल रहे थे।

श्रीरामकृष्ण– तुम बड़ी देर से तो––

मास्टर– जी, मुझे कोई कष्ट नहीं हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण– (सस्नेह)– नहीं हो रहा है ?

मास्टर पास ही के एक स्कूल में पढ़ाते हैं। वे एक बजे पढ़ाने से ज़रा देर के लिए अवसर लेकर आए हैं। अब स्कूल में फिर जाने के लिए उठे। श्रीरामकृष्ण की पाद-वन्दना की।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– इस समय आओगे ?

एक भक्त– स्कूल की छुट्टी अभी नहीं हुई। ये बीच में ही चले आए थे।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)–जैसे गृहिणी,— सात-आठ बच्चे पैदा कर चुकी— संसार में रातदिन काम करना पड़ता है,—

* एक प्रकार का फल।

परन्तु उसी समय के भीतर एक एक बार आकर पति की सेवा कर जाती हैं। (सब हँसते हैं)

(२)

चार बज जाने पर स्कूल की छुट्टी हो गई। बलराम बाबू के बाहरवाले कमरे में मास्टर ने आकर देखा, श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक बैठे हैं। समाचार पाकर भक्त मण्डली धीरे धीरे एकत्रित हो रही है। छोटे नरेन्द्र और राम आ गए हैं। नरेन्द्र आए हैं। मास्टर ने प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। कमरे के भीतर से बलराम ने थाली में मोहनभोग भेज दिया है, इसलिए कि श्रीरामकृष्ण के गले में गिलटी पड़ गई है। वे कड़ा भोजन न कर सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण— (मोहनभोग देखकर, नरेन्द्र से)— अरे माल आया है—माल-माल ! खा खा ! (सब हँसते हैं)

दिन ढलने लगा। श्रीरामकृष्ण गिरीश के घर जाएँगे। वहाँ आज उत्सव है। श्रीरामकृष्ण बलराम के दुमंज़ले के कमरे से उतर रहे हैं। साथ मास्टर हैं, पीछे और भी दो एक भक्त हैं। ड्योढ़ी के पास आकर उन्होंने एक यू. पी. के भिक्षुक को गाते हुए देखा। रामनाम सुनकर श्रीरामकृष्ण खड़े हो गए, देखते ही देखते मन अन्तर्मुख होने लगा। इसी भाव में कुछ देर खड़े रहे। मास्टर से कहा, इसका स्वर बड़ा अच्छा है। एक भक्त ने भिक्षुक को चार पैसे दिए।

श्रीरामकृष्ण बोसपाड़ा की गली में घुसे। हँसते हुए मास्टर से पूछा, "क्यों जी, क्या कहता है ?—'परमहंस-फौज' आ रही है ? साले कहते क्या हैं।"

(३)

अवतार तथा सिद्ध पुरुष में भेद

श्रीरामकृष्ण गिरीश के घर पधारे। गिरीश ने और भी बहुत से भक्तों को उस उत्सव में बुलाया था। बहुत से लोग आए थे। श्रीरामकृष्ण जब आए तो सब लोगों ने उठकर उनका स्वागत किया। मुसकराते हुए उन्होंने अपना आसन ग्रहण किया। भक्त लोग उनको घेरकर बैठ गए। गिरीश, महिमाचरण, राम, भवनाथ, बाबूराम, नरेन्द्र, योगेन, छोटे नरेन्द्र, चुन्नी, बलराम, मास्टर तथा अन्य भक्तगण श्रीरामकृष्ण के साथ बलराम के ही मकान से आए थे।

श्रीरामकृष्ण– (महिम से)– मैंने गिरीश से तुम्हारे बारे में बातचीत की थी, 'वह बहुत गहरा है, तुम सिर्फ घुटने तक हो।' अच्छा, देखें तो भला जो मैंने कहा वह ठीक है या नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों में बहस हो। पर देखो, आपस में समझौता न कर लेना! (सब हँसते हैं)

गिरीश और महिमाचरण में वाद-विवाद होने लगा। थोड़ी देर में राम ने कहा, "अब काफी हो गया। आइए, अब हम लोगों का कीर्तन हो।"

श्रीरामकृष्ण– (राम से)– नहीं नहीं, इस वाद-विवाद में बड़ा अर्थ है। ये लोग इंग्लिशमैन हैं। मैं सुनना चाहता हूँ कि ये क्या कहते हैं।

महिमाचरण कहते थे कि साधना के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति श्रीकृष्ण हो सकता है। पर गिरीश कहते थे कि श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे और कोई मनुष्य चाहे कितनी भी साधना करे वह कभी अवतार नहीं हो सकता।

महिम– तुम समझे, मैं क्या कहता हूँ ? मैं उदाहरण देकर तुम्हें समझाता हूँ । एक बेल का वृक्ष आम का वृक्ष बन सकता है, केवल यदि उसमें कुछ बाधाएँ हटा दी जायँ । और यह योगाभ्यास द्वारा सम्भव है ।

गिरीश– तुम चाहे जो कुछ कहो, परन्तु ऐसा न तो योग द्वारा हो सकता है और न किसी और ही तरह से । केवल भगवान श्रीकृष्ण ही कृष्ण हो सकते हैं । यदि किसी व्यक्ति में किसी दूसरे व्यक्ति के समस्त भाव हैं, उदाहरणार्थ श्रीराधा के, तो वह व्यक्ति श्रीराधा के सिवाय और कोई हो ही नहीं सकता । वह स्वयं श्रीराधा ही है । इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति में मैं श्रीकृष्ण के समस्त भाव देखूँ तो मैं यही निष्कर्ष निकालूँगा कि मैं साक्षात् श्रीकृष्ण ही को देख रहा हूँ ।

इसके बाद महिमाचरण बहस में कुछ ढीले पड़ गए और अन्त में उन्हें गिरीश का ही मत मान लेना पड़ा ।

महिम– (गिरीश से)– हाँ, दोनों मत ठीक हैं । ईश्वर ने ज्ञान-मार्ग बनाया है और भक्तिमार्ग भी । (श्रीरामकृष्ण की ओर संकेत करके) जैसा आप कहते हैं भिन्न भिन्न पन्थों से अन्त में सब मनुष्य एक ही ध्येय को पहुँच जाते हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (महिम के प्रति)– देखा तुमने ? जो मैंने कहा था वही ठीक निकला ।

महिम– हाँ महाराज! जैसा आप कहते हैं, दोनों मार्ग ठीक हैं ।

श्रीरामकृष्ण –(गिरीश की ओर संकेत करके)– तुमने देखा नहीं इसका विश्वास कितना गहरा है ? वह अपना जलपान करना भी भूल गया । यदि तुम उसका मत स्वीकार न करते तो कुत्ते की तरह वह तुम्हारा गला फाड़ डालता । लेकिन खैर, हम लोगों

को इस वाद-विवाद में आनन्द आ गया। तुम लोगों ने भी एक दूसरे को जान लिया है और मुझे भी कई बातें मालूम हो गईं।

(४)

कीर्तनानन्द में

इतने में गवैये लोग आ पहुँचे और वे लोग कमरे के बीच में बैठ गए। प्रमुख गवैया श्रीरामकृष्ण की ओर देख रहा था कि वे उससे कीर्तन करने का संकेत करें। श्रीरामकृष्ण ने उसे आज्ञा दे दी।

राम– (श्रीरामकृष्ण से)– कृपया उन्हें बता दीजिए कि वे क्या गावें।

श्रीरामकृष्ण– मैं क्या बताऊँ? (कुछ सोचकर) अच्छा, उनसे कहो कि पूर्व-राग (श्रीराधाकृष्ण-मिलन) गावें।

गवैए ने गाना शुरू किया।

"मेरा गोरा (गौरांग), मेरा सर्वस्व जो मनुष्यों में रत्न है, श्रीराधा का नाम उच्चारण करते ही रोने लगता है, जमीन पर लोटने लगता है—असीम प्रेम से युक्त हो पुनः पुनः उन्हीं का नाम जपता है। उसकी प्रेमपूर्ण आँखों से आँसुओं की धारा बह चलती है। वह जमीन पर फिर लोटने लगता है। और उनका नाम उच्चारण करते करते बेहोश हो जाता है। उसे रोमांच हो जाता है। उसके मुँह से केवल एक ही शब्द निकलता है। वसु कहते हैं, गौरांग इतने व्याकुल क्यों हैं?"

कीर्तन जारी रहा।

राधा, कृष्ण से यमुना के किनारे कदम्ब के नीचे मिल चुकी हैं। उनकी सखियाँ अब उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्था का वर्णन करती हैं।

"प्रत्येक क्षण कितने ही बार वह कमरे के भीतर और बाहर जाती हैं, कैसी बेचैन हैं, लम्बी लम्बी साँसें भरती हैं और वही एकटक कदम्ब की ओर दृष्टि लगी है। शंका उत्पन्न होती है— क्या वे अपने बड़े-बूढ़ों के डर से भयभीत हैं अथवा उन्हें कोई विकार हो गया है— कैसी व्याकुल हैं वे! अपने वस्त्रों का भी ध्यान नहीं है। उनके आभूषण इधर-उधर गिर गए हैं। शरीर कम्पायमान हो रहा है और खेद तो यह है कि अभी वे इतनी अल्प-वयस्क हैं। ये एक राजकुमारी रही हैं और किसी की पत्नी भी हैं; ऐसा क्या है जिसके लिए ये लालायित हैं। उनके मन में क्या है— हमें कुछ समझ नहीं आता। हमें तो इतना ही प्रतीत होता है कि वे चन्द्रमा को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा रही हैं। चण्डीदास कहते हैं, राधा, कृष्ण के जाल में फँस गई हैं।"

कीर्तन जारी है।

राधा की सखियाँ उनसे कह रही हैं—

"ऐ सुकुमारि चन्द्रवदनि राधा, हमें यह तो बताओ तुम्हें कौन सी व्यथा है? तुम्हारा मन क्यों, और कहाँ घूम रहा है? तुम जमीन क्यों कुरेद रही हो? हमें बताओ तो सही तुम्हारा यह सुकुमार फूल-सा मुखड़ा क्यों कुम्हला गया है? उसकी कान्ति क्यों फीकी पड़ गई है? उसमें साँवलापन कैसे आ गया है? तुम्हारी लाल चुँदरी भी जमीन पर गिर पड़ी है। सखि राधा, देखो तो, तुम्हारी आँखें रोते रोते लाल हो गई हैं। तुम्हारा कमल-सा मुखड़ा कुम्हला गया है। बताओ तो सही, तुम्हें कौनसा दर्द है और देखो तो, हमारे हृदय भी तो दुःख से विदीर्ण हुए जा रहे हैं।"

राधा अपनी सखियों से कहती है— 'मैं कृष्ण का मुखड़ा देखने

के लिए छटपटा रही हूँ।'

गवैये ने फिर गाया।

"कृष्ण की बाँसुरी सुनते ही राधा बावली हो गई थीं। वे अपनी सखियों से कहती हैं, 'वह कौन जादूगर है जो उस कदम्ब-कुंज में रहता है। उसकी बन्सी की ध्वनि एकाएक मेरे कान में पड़ती है और हृद्-तंत्री को झंकार देती है, मेरी आत्मा को मानो भेद जाती है। मेरा धर्म न जाने कहाँ भूल जाता है और मैं बावली हो जाती हूँ। इस व्यथित मन और तृषित आँखों से मुझे साँस भी तो लेते नहीं बनती। कैसा जादू है उसकी बंसरी में, जिसकी ध्वनि मेरी आत्मा तक को हिला देती है। वह मेरी दृष्टि के बाहर है इससे मेरा हृदय बैठा जाता है। मैं घर पर कैसे ठहर सकती हूँ? मेरी आत्मा उसके लिए छटपटा रही है, कितना दर्द होता है! उसकी एक झलक— बस एक झलक पाने के लिए मैं छटपटा रही हूँ।' उद्धव कहते हैं, 'पर राधा, जानती हो, उसे एक बार देख लेने पर फिर तुम क्या जीवित रह सकती हो?'"

गवैया गाता रहा।

"राधा का हृदय कृष्ण की एक झलक के लिए व्याकुल है। वे अपनी सखियों से कहती हैं, 'पहली बार मैंने उनकी बंसरी की ध्वनि कदम्ब-कुंज से आती हुई सुनी और दूसरे दिन राजगवैये ने भी आकर उनका संदेशा दिया— मेरी आत्मा तो मचल उठी। दूसरे दिन, ऐ मेरी प्यारी सखि, तुमने उनका दिव्य नाम हमारे सामने लिया। आह! कैसा मधुर, कैसा मीठा, कैसा सरस है वह पुण्यनाम— कृष्ण। कितने ही विद्वान् लोगों ने भी मुझसे उनके अगणित गुणों का वर्णन किया, पर हाय, मैं क्या करूँ! मैं एक

सीधी-सादी बलिका हूँ, और फिर घर में बड़े-बूढ़े भी तो हैं। मैं क्या करूँ, उन मेरे प्राणसर्वस्व के लिए मेरा प्रेम बढ़ता जा रहा है। उनके बिना मैं एक क्षण भी कैसे रह सकती हूँ! लेकिन इतने समय के बाद क्या मुझे अब यही दिखेगा कि उनको बिना देखे ही मुझे मर जाना होगा--ये दुखिया अँखियाँ अधखुली रह जाएँगी, ऐ सखि, कोई ऐसा उपाय तो बताओ जिससे मैं एक बार तो उन्हें देख लूँ। एक ही बार सही।' "

श्रीरामकृष्ण ने जैसे ही यह वाक्य सुना--"आह! कैसा मधुर, कैसा मीठा, कैसा सरस है वह पुण्यनाम-- कृष्ण" वे अधिक बैठे नहीं रह सके। वे खड़े हो गए और बाह्यशून्य हो उन्हें गहरी समाधि लग गई। छोटे नरेन्द्र उनकी दाहिनी ओर खड़े हो गए। श्रीरामकृष्ण जब किंचित् प्रकृतिस्थ हुए तो उन्होंने बड़े मधुर स्वर में श्रीकृष्ण का नाम उच्चारण किया। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे और वे फिर बैठ गए।

गवैये का गाना जारी रहा। राधा की एक सखी विशाखा दौड़कर जाती है और श्रीकृष्ण का एक चित्र ले आती है और उसे राधा की आँखों के सामने कर देती है। राधा कहती हैं, 'मैं उन्हीं का चित्र देख रही हूँ जिन्हें मैंने जमुना के किनारे देखा था। तभी से मेरी यह दशा हो गई है।' फिर वे कह रही हैं--

"मैं उन्हीं का चित्र देख रही हूँ जिन्हें मैंने कालिन्दी के तट पर देखा था। जिनका नाम विशाखा ने लिया है वे वही हैं जिनका यह चित्र है। जिन्होंने बाँसुरी बजाई थी वे ही मेरे प्राणों के प्यारे हैं। राजगवैये उनका गुणगान मुझसे कर चुके हैं। उन्होंने मेरे हृदय पर जादू कर दिया है। यह और कोई नहीं,...वे... ही...हैं।" यह कहते ही राधा बेहोश हो गईं। थोड़ी देर बाद

जब उनकी सखियाँ उन्हें होश में लाईं तो उनके मुँह से यही निकला, 'सखियो, मुझे उन्हीं को दिखा दो जिनकी झलक मैंने अपनी आत्मा में देखी है।' सखियों ने वादा किया, 'अच्छा, ज़रूर दिखा देंगी।'

अब श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र तथा अन्य भक्तों के साथ बड़े ऊँचे स्वर में कीर्तन गान करने लगे। उन्होंने गाया—

"देखो, वे दोनों भाई आ गए हैं जो हरि का नाम लेते लेते रोने लगते हैं।"

उन्होंने फिर कहा—

"और देखो, श्रीगौरांग के प्रेम के कारण समस्त नदिया (श्री गौरांग का निवासस्थान) झूम रहा है।"

इतना कहकर फिर श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। समाधि उतरने पर वे अपने आसन पर बैठे गए। 'एम.' की ओर देखकर उन्होंने कहा, 'मुझे स्मरण नहीं कि मैं पहले किस ओर मुँह करके बैठा था।' फिर वे भक्तों से बातचीत करने लगे।

(५)

श्रीरामकृष्ण तथा नरेन्द्र। हाजरा की कथा

नरेन्द्र— (श्रीरामकृष्ण से)— हाजरा अब भला आदमी हो गया है।

श्रीरामकृष्ण— तुम नहीं जानते कि लोग ऐसे भी होते हैं जिनके मुँह में तो रामनाम रहता है पर बगल में छुरी होती है।

नरेन्द्र— महाराज, इस बात में मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। मैंने स्वयं उससे उन बातों की जाँच की जिनके बारे में लोग शिकायत करते हैं, पर उसने साफ़ इन्कार किया।

श्रीरामकृष्ण— वह भक्ति में ज़रूर दृढ़ है। थोड़ा-बहुत जप भी

करता है, पर कभी कभी उसका व्यवहार विचित्र होता है। गाड़ीवाले का भाड़ा नहीं देता।

नरेन्द्र– महाराज, नहीं ऐसी बात नहीं है। वह कहता था, उसने दे दिया है।

श्रीरामकृष्ण– उसके पास पैसा कहाँ से आया ?

नरेन्द्र– रामलाल अथवा और किसी ने दिया होगा।

श्रीरामकृष्ण– क्या तुमने उससे सब बातें विस्तारपूर्वक पूछी थीं ? एक बार मैंने जगदम्बा से प्रार्थना की थी, 'माँ ! यदि हाजरा ढोंगी है, तो बड़ी कृपा होगी यदि तुम यहाँ से उसे हटा दो।' उसके बाद मैंने हाजरा से कह भी दिया था कि मैंने तुम्हारे बारे में माँ से ऐसी प्रार्थना की है। थोड़े दिनों बाद वह फिर आया और मुझसे कहा, 'देखिए, मैं तो अब भी यहाँ बना हूँ।' (श्रीरामकृष्ण तथा अन्य सब हँसे) पर शीघ्र ही कुछ दिनों बाद उसने यहाँ आना बन्द कर दिया।

"हाजरा की बेचारी माँ ने मेरे पास रामलाल द्वारा कहलाया कि मैं हाजरा से कह दूँ कि वह कभी कभी जाकर अपनी बूढ़ी माँ को देख आया करे। वह बेचारी करीब करीब अन्धी ही थी और रोती रहती थी। मैंने हाजरा को तरह तरह से समझाया कि वह जाकर देख आया करे। मैंने उससे कहा, 'देखो, तुम्हारी माँ वृद्धा है, कम से कम उसे एक बार जाकर तो देख आओ।' पर मेरे कहने पर भी नहीं गया। अन्त में वह बेचारी बुढ़िया रोते रोते मर गई।"

नरेन्द्र– पर इस बार वह घर जाएगा।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, हाँ, मुझे मालूम है वह घर जाएगा। वह बड़ा दुष्ट है, धूर्त है, तुम उसे नहीं जानते। गोपाल कहता था कि हाजरा सींती में कुछ दिन रहा था। लोग उसके लिए घी लाते थे, चावल

लाते थे और भी तरह तरह की खाद्य सामग्री उसे लाकर देते थे, पर उसकी उद्दण्डता तो देखो कि वह उन लोगों से कह देता था, 'मैं ऐसा मोटा चावल नहीं खा सकता। मुझे ऐसा खराब घी नहीं चाहिए।' भाटपारा का ईशान भी उसके साथ गया था। उसने ईशान से कहा, 'शौच के लिए पानी ले आओ।' इससे वहाँ के अन्य ब्राह्मण उससे बहुत नाराज हो गए थे।

नरेन्द्र– मैंने उससे वह बात पूछी थी। वह कहता था, ईशान बाबू मेरे लिए खुद पानी लाए थे। और इतना ही नहीं, वह कहता था कि भाटपारा के बहुत से ब्राह्मण लोग भी उसे मान देते हैं और श्रद्धा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मुसकराते हुए)– वह सब उसके जप और तपस्या का फल था। जानते हो, मनुष्य की शारीरिक बनावट भी उसके चरित्र पर अपना बहुत प्रभाव डालती है। नाटा कद और शरीर में इधर-उधर गड्ढे या कूबड़ अच्छे लक्षण नहीं हैं। जिन लोगों के ऐसे लक्षण होते हैं उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने को बहुत समय लगता है।

भवनाथ– खैर महाराज, जाने दीजिए इन बातों को।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, मुझे गलत न समझना। (नरेन्द्र से) तुम कहते हो कि तुम्हें लोगों की पहचान है, इसीलिए यह सब तुम्हें बता रहा हूँ। जानते हो, हाजरा-ऐसे लोगों को मैं किस दृष्टि से देखता हूँ ?

"जिस प्रकार ईश्वर सत्पुरुषों के रूप में अवतार लेता है उसी प्रकार वह धोखेबाज और दुष्टों के रूप में भी अवतीर्ण होता है। (महिमाचरण से) क्यों, तुम्हारी क्या राय है ? वैसे तो सभी ईश्वर हैं।"

महिम– हाँ महाराज, सभी ईश्वर हैं।

(६)

गोपीप्रेम

गिरीश– (श्रीरामकृष्ण से)– महाराज, एकांगी प्रेम क्या चीज़ है ?

श्रीरामकृष्ण– इसका अर्थ है केवल एक ओर से प्रेम। उदाहरणार्थ, पानी वतक को ढूँढ़ने नहीं जाता वरन् बतक ही पानी को चाहता है। प्रेम और भी कई प्रकार के होते हैं, जैसे 'साधारण' 'समंजस' और 'समर्थ'। पहला जो 'साधारण' प्रेम है उसमें प्रेमी केवल अपना ही सुख देखता है। वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि दूसरे व्यक्ति को भी उससे सुख है अथवा नहीं। इस प्रकार का प्रेम चन्द्रावली का श्रीकृष्ण के प्रति था। दूसरा प्रेम जो 'सामंजस्य' रूप होता है उसमें दोनों एक दूसरे के सुख के इच्छुक होते हैं। यह एक ऊँचे दर्जे का प्रेम है, परन्तु तीसरा प्रेम सबसे उच्च है। इस 'समर्थ' प्रेम में प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है, 'तुम सुखी रहो, मुझे चाहे कुछ भी हो।' राधा में यह प्रेम विद्यमान था। श्रीकृष्ण के सुख में ही उन्हें सुख था। गोपियों ने भी यह उच्चावस्था प्राप्त की थी।

"जानते हो गोपियाँ कौन थीं ? श्रीरामचन्द्रजी उस घने जंगल में घूमते थे जिसमें सात हजार ऋषि रहते थे। वे सब श्रीरामजी को देखने के लिए बड़े उत्सुक थे। उन्होंने उन सब पर एक दिव्य दृष्टि डाल दी। कुछ पुराणों का कथन है कि बाद में वे ही सब ऋषि वृन्दावन में गोपियों के रूप में अवतीर्ण हुए।"

एक भक्त– महाराज, अन्तरंग किसे कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– मैं एक उदाहरण देकर समझाता हूँ। एक

सभामण्डप में भीतर भी खंभे होते हैं और बाहर भी। अन्तरंग भीतरवाले खंभों के सदृश हैं। जो सदैव गुरु के समीप रहते हैं वे अन्तरंग कहलाते हैं।

(महिमाचरण से) "ज्ञानी अपने लिए न तो ईश्वर का रूप चाहता है, न अवतार ही। श्रीरामचन्द्रजी जब वन में घूम रहे थे तो उन्होंने कुछ ऋषियों को देखा। ऋषियों ने बड़े स्नेह से उनका अपने आश्रम में स्वागत किया और कहा, 'प्रभो, आज तुम्हारे दर्शन प्राप्त करके हमारा जीवन कृतकृत्य हो गया, पर हम जानते हैं कि तुम दशरथ के पुत्र हो। भरद्वाज तथा अन्य ऋषि तुमको ईश्वरी अवतार कहते हैं, पर हमारा वह दृष्टिकोण नहीं है। हम तो निर्गुण, निराकार सच्चिदानन्द का ध्यान करते हैं।' श्रीराम यह सुनकर प्रसन्न हुए और मुसकरा दिए।

"ओह! मुझे भी कैसी कैसी मानसिक परिस्थितियों में से होकर गुज़रना पड़ा। मेरा मन कभी कभी निराकार परमेश्वर में लीन हो जाता था। कितने ही दिन मैंने इस अवस्था में बिताए। मैंने भक्ति और भक्त का भी त्याग कर दिया था। मैं जड़वत् हो गया था। मुझे अपने सिर तक का ध्यान नहीं था। मैं मरणासन्न हो गया था। तब तो मैंने रामलाल की चाची* को अपने पास रखने का सोचा था। मैंने अपने कमरे से सभी चित्रों को हटाने के लिए कह दिया। जब मुझे बाह्य ज्ञान प्राप्त हुआ और जब मेरा मन उस अवस्था से उतरकर साधारण अवस्था पर आ गया तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो एक डूबते हुए मनुष्य के समान मेरा दम घुट रहा हो। अन्त में मैंने अपने मन में कहा, 'मैं तो लोगों का अपने पास रहना भी नहीं सह सकता हूँ, फिर मैं जीवित कैसे

* श्रीरामकृष्ण की लीला सहधर्मिणी।

रहूँगा ?' तब मेरा मन एक बार फिर भक्ति और भक्त की ओर झुक गया। मैं लोगों से यही लगातार पूछता था कि मुझे क्या हो गया है। भोलानाथ‡ ने मुझसे कहा, 'आपकी इस मानसिक स्थिति का वर्णन महाभारत में है।' समाधि-अवस्था से उतरने के बाद फिर भला मनुष्य कैसे रह सकता है ? निश्चय ही उसे ईश्वर-भक्ति की आवश्यकता होती है तथा ईश्वर-भक्तों का संग। नहीं तो वह अपना मन किस बात में लगाएगा ?"

महिमाचरण– (श्रीरामकृष्ण से)– महाराज, क्या कोई व्यक्ति समाधि की अवस्था से फिर साधारण सांसारिक अवस्था पर आ सकता है ?

श्रीरामकृष्ण– (महिम से, धीरे से)– मैं तुम्हें एकान्त में समझाऊँगा। केवल तुम्हीं इस योग्य हो कि तुमसे कहा जाय।

"कुवर सिंह ने भी मुझसे यही प्रश्न किया था। तुम जानते हो कि जीव और ईश्वर में बड़ा अन्तर है। उपासना तथा तपस्या द्वारा जीव अधिक से अधिक समाधि-अवस्था प्राप्त कर सकता है। पर फिर वह उस अवस्था से वापस नहीं आ सकता। परन्तु जो ईश्वर का अवतार होता है वह समाधि-अवस्था से नीचे उतर भी सकता है। उदाहरणार्थ, जीव उसी प्रकार का है जैसे किसी राजा के यहाँ एक अफसर। वह राजा के सातमंज़िला महल में अधिक से अधिक बाहर के दरबार तक जा सकता है, परन्तु राजा के लड़के की पहुँच सातों मंज़िलों तक होती है, और वह बाहर भी जा सकता है। यह बात हरएक आदमी कहता है कि समाधि की अवस्था से फिर कोई लौट नहीं सकता, अगर ऐसी बात है तो शंकर तथा रामानुज जैसे महात्माओं के बारे में

‡ दक्षिणेश्वर-मन्दिर के एक मुन्शी।

तुम क्या कहोगे ? उन्होंने 'विद्या का मैं' रखा था।"

महिम– हाँ, यह बात सचमुच ठीक है; नहीं तो वे इतने बड़े ग्रन्थ कैसे लिख सकते थे ?

श्रीरामकृष्ण– और देखो, प्रह्लाद, नारद तथा हनुमान जैसे ऋषियों के भी उदाहरण हैं। उन्होंने भी समाधि प्राप्त कर लेने के बाद भक्ति रखी थी।

महिम– हाँ महाराज, यह बात ठीक है।

श्रीरामकृष्ण– बहुत से लोग ऐसे होते हैं कि वे दार्शनिक वाद-विवाद में ही पड़े रहते हैं और अपने को बहुत बड़ा समझते हैं। शायद वे थोड़ा-बहुत वेदान्त भी जान लेते हैं, परन्तु यदि किसी मनुष्य में सच्चा ज्ञान है तो उसमें अहंकार नहीं हो सकता, अर्थात् समाधि-अवस्था में यदि मनुष्य ईश्वर से एकरूप हो जाय तो उसमें अहंकार नहीं रह जाता। समाधि के बिना सच्चा ज्ञान असम्भव है। समाधि में मनुष्य ईश्वर से एक हो जाता है। फिर उसमें अहंकार नहीं रह जाता।

"जानते हो यह किस प्रकार से होता है ? देखो जैसे दोपहर को सूरज बिलकुल ठीक सिर पर होता है। उस समय यदि तुम अपने चारों ओर देखो तो तुम्हें अपनी परछाई नहीं दिखाई देगी। इसी प्रकार तुममें ज्ञान अथवा समाधि प्राप्त कर लेने के बाद अहंकार की परछाई नहीं रह जाती।

"परन्तु यदि तुम किसी में सत्यज्ञान-प्राप्ति के बाद भी अहंकार का भास देखो तो समझ लो कि या तो यह 'विद्या का मैं' है अथवा 'भक्ति का मैं' अथवा 'दास मैं'; वह 'अविद्या का मैं' नहीं होता।

"फिर यह भी समझ लो कि ज्ञान और भक्ति दोनों समानान्तर

मार्ग हैं। इनमें से तुम किसी का भी अनुसरण करो, अन्त में पहुँचोगे ईश्वर को ही। ज्ञानी ईश्वर को एक दृष्टि से देखता है और भक्त दूसरी से। ज्ञानी का ईश्वर तेजोमय होता है और भक्त का रसमय।"

भवनाथ श्रीरामकृष्ण के पास हीं बैठे ये सब बातें सुन रहे थे।

भवनाथ– (श्रीरामकृष्ण से)– महाराज, क्या मैं एक प्रश्न पूछूँ? 'चण्डी' को मैं ठीक से नहीं समझ सका। उसमें ऐसा लिखा है कि जगदम्बा सब जीवों का संहार करती है— इसका क्या अर्थ है?

श्रीरामकृष्ण– यह सब उनकी लीला है। यह विचार मेरे मन में भी आया करता था, पर बाद में मैं समझ गया कि यह सब माया है। उत्पत्ति और संहार ईश्वर की माया है।

गिरीश श्रीरामकृष्ण तथा अन्य भक्तों को ऊपर छत पर ले गए जहाँ भोजन परोसा गया। आकाश में अच्छी चांदनी छिटकी हुई थी। सब भक्त अपने अपने स्थान पर बैठ गए। उन सबके सामने श्रीरामकृष्ण एक आसन पर बैठे। सब लोग बड़े प्रसन्नचित्त थे। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे उनके सामने की पंक्ति में बैठे। बीच-बीच में श्रीरामकृष्ण उनसे पूछते जाते थे, 'कहो क्या हाल है—- आनन्द से होने दो।' श्रीरामकृष्ण भोजन कर ही रहे थे कि बीच में से उठकर वे नरेन्द्र के पास आए और अपनी थाली में से कुछ तरबूज का शरबत और दही लेकर उनको दिया और बड़े मधुर शब्दों में उनसे कहा, 'लो, यह खा लो।' इसके बाद वे फिर अपने आसन पर चले गए।

परिच्छेद ९

नरेन्द्र आदि भक्तों को उपदेश

(१)

नरेन्द्र तथा हाजरा महाशय

श्रीरामकृष्ण बलराम के दुमंज़ले के बैठकखाने में भक्तों के बीच में प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए उनसे वार्तालाप कर रहे हैं। नरेन्द्र, मास्टर, भवनाथ, पूर्ण, पल्टू, छोटे नरेन्द्र, गिरीश, रामबाबू, द्विज, विनोद आदि बहुत से भक्त चारों ओर से घेरकर बैठे हुए हैं।

आज शनिवार है। दिन के तीन बजे होंगे। वैशाख की कृष्णा दशमी है। ९ मई, १८८५।

बलराम घर में नहीं हैं। शरीर अस्वस्थ होने के कारण वायु-परिवर्तन के लिए मुंगेर गए हुए हैं। उनकी बड़ी कन्या ने श्रीरामकृष्ण और भक्तों को बुलाकर महोत्सव किया है। भोजन के पश्चात् श्रीरामकृष्ण ज़रा विश्राम कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण मास्टर से बार बार पूछ रहे हैं, 'बताओ तो सही, क्या मैं उदार हूँ?' भवनाथ ने हँसकर कहा, 'ये और क्या कहेंगे, चुप रहने के सिवा?'

उत्तरप्रदेश का एक भिक्षुक गाने के लिए आया। भक्तों ने दो गाने सुने। गाने नरेन्द्र को अच्छे लगे। उन्होंने गानेवाले से कहा, 'और गाओ।'

श्रीरामकृष्ण– बस बस, अब रहने दो, पैसे कहाँ हैं?––(नरेन्द्र से)–– कह तो दिया तूने!

भक्त– (हँसकर)– महाराज, आपको इसने अमीर समझा है। आप तकिये के सहारे बैठे हुए हैं न–– (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– यह भी तो सोच सकता है कि

बीमार हैं।

हाजरा के अहंकार की बात होने लगी। किसी कारण से दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर से हाजरा को चला जाना पड़ा।

नरेन्द्र– हाजरा अब मानता है कि उसे अहंकार हुआ था!

श्रीरामकृष्ण– इस बात पर विश्वास न करना। दक्षिणेश्वर में फिर से आने के लिए उस तरह की बातें कह रहा होगा। (भक्तों से) नरेन्द्र केवल यही कहता है कि हाजरा तो बड़ा अच्छा है।

नरेन्द्र– मैं अब भी कहता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– क्या इतनी बातें सुनने पर भी?

नरेन्द्र– दोष कुछ ही हैं, परन्तु गुण उसमें बहुत से हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, निष्ठा है। उसने मुझसे कहा—अभी तो मैं तुम्हें नहीं सुहाता, परन्तु पीछे से फिर मुझे खोजना होगा। श्रीरामपुर से अद्वैतवंश का एक गोस्वामी आया हुआ था। दक्षिणेश्वर में दो-एक रात रहने की उसकी इच्छा थी। मैंने उसकी खातिर की और उससे रहने के लिए कहा। हाजरा ने कहा, इसे खजांची के पास भेज दो। उसके इस तरह कहने का मतलब यह था कि कहीं वह गोस्वामी कुछ माँग बैठे तो हाजरा के हिस्से से ही न देना हो! मैंने कहा—'क्यों रे साला, उसे गोस्वामी समझकर में तो लम्बी दण्डवत करता हूँ और तू संसार में रहकर कामिनी और कांचन लेकर अब कुछ जप करके इतना अहंकार कर रहा है?—तुझे लज्जा नहीं आती?'

"सतोगुण से ईश्वर मिलते हैं, रजोगुण और तमोगुण ईश्वर से अलग कर देते हैं। सतोगुण की उपमा सफेद रंग से दी गई है, रजोगुण की लाल और तमोगुण की काले से। मैंने एक दिन हाजरा

से पूछा—‘तुम बताओ, किसमें कितना सतोगुण हुआ है ?’ उसने कहा, ‘नरेन्द्र को सोलह आना और मुझे एक रुपया दो आना।’ मैंने अपने लिए पूछा, ‘मुझमें कितना है ?’ उसने कहा, ‘तुम्हारी तो ललाई अभी हट रही है,—तुम्हें बारह आना है।’ (सब हँसे)

“दक्षिणेश्वर में बैठकर हाज़रा जप करता था और उसी के भीतर से दलाली की भी कोशिश करता था। घर में कुछ हज़ार रुपया कर्ज था—उस कर्ज के अदा करने की फिक्र में था। भोजन पकानेवाले ब्राह्मणों के सम्बन्ध में उसने कहा था, ‘इस तरह के आदमियों से क्या हम कभी बातचीत करते हैं ?’

“बात यह है कि थोड़ी भी कामना के रहते ईश्वर को कोई पा नहीं सकता। धर्म की गति सूक्ष्म है। सुई के छेद में सूत डाल रहे हो, परन्तु अगर ज़रा भी सूत उकसा हुआ हो तो छेद के भीतर कदापि नहीं जा सकता।

“तीस साल तक लोग माला फेरते रहते हैं, फिर भी कुछ नहीं होता—क्यों ?

“विषैला घाव होने पर कंडे की आग से सेंका जाता है। साधारण दवा से आराम नहीं होता।

“कामना के रहते हुए चाहे जितनी साधना करो, सिद्धि नहीं मिल सकती। परन्तु एक बात है, ईश्वर की कृपा होने पर, उनकी दया होने पर क्षण भर में सिद्धि मिलती है; जैसे हज़ार साल का अन्धेरा कमरा—एकाएक अगर कोई दिया ले जाता है तो क्षण भर में प्रकाशित हो जाता है।

“जैसे गरीब का लड़का बड़े आदमी की दृष्टि में पड़ गया हो; उसके साथ उसने अपनी लड़की का विवाह कर दिया। एक साथ ही गाड़ी-घोड़े, दास-दासी, माल-असबाब, घर-द्वार,

सब कुछ हो गया।"

एक भक्त– महाराज, कृपा किस तरह होती है?

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर बालस्वभाव हैं, जैसे कोई लड़का अपनी धोती के पल्ले में रत्न भरे बैठा हो। कितने ही आदमी रास्ते से चले जा रहे हैं। उससे बहुतेरे रत्न माँग रहे हैं, परन्तु वह कपड़े में हाथ डाले हुए कहता है, 'नहीं, मैं न दूँगा।' पर किसी एक ने चाहा ही नहीं, अपने रास्ते चला जा रहा है। उसके पीछे दौड़कर उसने उसकी स्वयं खुशामद करके उसे रत्न दे दिए।

"त्याग के बिना ईश्वर नहीं मिलते।

"मेरी बात कौन लेता है? मैं आदमी खोज रहा हूँ,— अपने भाव का आदमी। जिसे अच्छा भक्त देखता हूँ, उसके लिए सोचता हूँ कि वह शायद मेरा भाव ले सके। फिर देखता हूँ, वह एक दूसरे ढंग का हो जाता है।

"एक भूत अपना साथी खोज रहा था। शनिवार या मंगल को अपघात मृत्यु होने पर भूत होता है। भूत जब कभी देखता था कि शनिवार या मंगल को उसी तरह किसी की मृत्यु होने वाली है तब उसके पास दौड़ जाता था। सोचता था, अब मुझे एक साथी मिला। परन्तु वह उसके पास गया नहीं कि वह आदमी उठकर बैठ जाता था। छत से गिरकर कोई बेहोश हुआ भी इसी तरह होश में आ जाता था।

"मथुर बाबू को भावावेश हुआ। वे सदा मतवाले की तरह रहते थे— कोई काम न कर सकते थे। तब लोग कहने लगे, 'इस तरह रहोगे तो जायदाद कौन संभालेगा? छोटे भट्टाचार्य (श्रीरामकृष्ण) ने ही कोई यंत्र-मंत्र किया होगा।'

"नरेन्द्र जब पहले-पहल आया था, तब इसकी छाती पर हाथ रखते ही यह बेहोश हो गया। फिर होश में आकर रोते हुए कहने लगा— 'अजी, मुझे तुमने ऐसा क्यों कर दिया ?— मेरे बाबूजी हैं— मेरी माँ जो हैं।' 'मेरा-मेरा' करना, यह अज्ञान से होता है।

"गुरु ने शिष्य से कहा, 'संसार मिथ्या है, तू मेरे साथ निकल चल।' शिष्य ने कहा, 'महाराज, ये सब मुझे इतना चाहते हैं— मेरे बाबूजी, मेरी माँ, मेरी स्त्री— इन्हें छोड़कर मैं कैसे जाऊँ ?' गुरु ने कहा, 'तू मेरा-मेरा करता तो है, और कहता है कि ये सब प्यार करते हैं, परन्तु यह सब भूल है। मैं तुझे एक उपाय बतलाता हूँ, उसे करके देख, तो तू समझ जाएगा कि ये लोग तुझे सचमुच प्यार करते हैं या इसमें दिखावट है।' यह कहकर एक दवा उन्होंने उसके हाथ में दी और कहा, 'इसे खा लेना, खाने पर तू मुर्दे की तरह हो जाएगा। तेरा ज्ञान नष्ट न होगा, तू सब देख-सुन सकेगा। फिर मेरे आने पर क्रमशः तेरी पहले की अवस्था हो जाएगी।'

"शिष्य ने ठीक वैसा ही किया। घर में सब रोने लगे। उसकी माता, उसकी स्त्री, सब के सब उल्टी पछाड़ें खाने लगीं। इसी समय एक ब्राह्मण ने आकर पूछा, 'यहाँ क्या हुआ है ?' उन लोगों ने कहा, 'महाराज, इस लड़के को राम ले गए।' ब्राह्मण ने उस मुर्दे का हाथ देखकर कहा, 'यह क्या— यह तो मरा नहीं है। मैं एक दवा देता हूँ, उसके खाने से यह अभी चंगा हो जाएगा।' उस समय डूबते हुए को जैसे सहारा मिल गया,— घरवाले बड़े प्रसन्न हुए। तब ब्राह्मण ने कहा, 'परन्तु एक बात है, पहले एक दूसरे आदमी को दवा खानी पड़ेगी, फिर इसे।

परन्तु पहले जो दवा खाएँगे, उनकी मृत्यु अनिवार्य है। इसके तो अपने आदमी बहुत हैं, कोई न कोई दवा अवश्य ही खा लेगा। इसकी माँ और इसकी स्त्री बहुत रो रही हैं, ये लोग तो अनायास ही दवा खा लेंगी।'

"तब वे सब की सब रोना-धोना बन्द करके चुप हो रहीं। माता ने कहा, 'ऐं, यह इतना बड़ा परिवार, मैं अगर मर गई तो इन सब की देख-रेख के लिए कौन रहेगा?'—यह कहकर वे सोचने-विचारने लगीं। उसकी स्त्री कुछ देर पहले रो रही थी—'अरी मेरी दीदी, मुझे यह क्या हो गया— री—' उसने कहा, 'अरे, उन्हें जो होना था, सो तो हो चुका, मेरे दो-तीन नाबालिग लड़के-बच्चे हैं, मैं अगर मर गई तो फिर इन्हें कौन देखेगा?'

"शिष्य सब देख-सुन रहा था। वह उठकर खड़ा हो गया और कहा, 'गुरुजी, चलिए, आपके साथ चलता हूँ।'

(सब हँसते हैं)

"एक शिष्य और था। उसने अपने गुरु से कहा था, 'मेरी स्त्री मेरी बड़ी सेवा करती है, गुरुजी, मैं उसी के लिए संसार नहीं छोड़ सकता।' वह शिष्य हठयोग करता था। गुरु ने उसे भी एक उपाय बतलाया। एकाएक उसके घर में खूब रोना-धोना मच गया। पड़ोसवालों ने आकर देखा, घर में आसन लगाकर हठयोगी बैठा हुआ था,— देह के पुर्जे-पुर्जे टेढ़े हो गये थे। सब ने समझा, उसके प्राण निकल गए हैं। स्त्री पछाड़ें खा रही थी— 'अरे, मेरे भाग्य में क्या यही लिखा था रे— हम अनाथों को छोड़कर तुम कहाँ चले गए— राम— अरी मेरी दीदी री— ऐसा होगा यह मैं नहीं जानती थी री—' इधर उसके आत्मीय

और मित्र खाट ले आए। उसे घर से निकालने लगे।

"इसी ससय एक अड़चन हुई। सब देह टेढ़ी हो जाने के कारण, लाश कोठरी के द्वार से निकलती न थी। तब एक पड़ोसी दौड़कर कटारी लेकर चौखट काटने लगा। स्त्री अधीर होकर रो रही थी। वह काटने की आवाज़ सुनकर दौड़ी हुई आई। रोते हुए उसने पूछा—'यह क्या करते हो—दा—दा—' उन लोगों ने कहा, 'ये नहीं निकलते इसलिए चौखट काट रहा हूँ।' तब स्त्री ने कहा—'अरे मेरे दादा—ऐसा काम न करो, मैं तो राँड अब हो ही गई हूँ! मेरे घर का संभालने वाला तो अब क़ोई रहा ही नहीं, कुछ नाबालिग बच्चे हैं, उन्हें पालकर आदमी बनाना है! यह दरवाजा चला जाएगा तो दूसरा होने का है ही नहीं, उन्हें जो होना था, सो तो हो ही चुका—उन्हीं के हाथ-पैर काट दो।' तब हठयोगी उठकर खड़ा हो गया। तब दवा का असर जाता रहा था। खड़ा होकर उसने कहा—'क्यों री साली, हाथ-पैर कटाती है?' यह कहकर घर छोड़ गुरु के पास चला गया। (सब हँसते हैं)

"बड़ा ढोंग करके स्त्रियाँ रोती हैं। रोने की खबर मिलती है, तो पहले नथ खोल डालती हैं, फिर और और गहने खोलकर सन्दूक के अन्दर ताला लगाकर सुरक्षित रख देती हैं। फिर पछाड़ खा खाकर रोती हैं—'अरी दीदी—मेरा यह क्या हुआ री—'"

(२)

अवतार का स्वरूप

नरेन्द्र—Proof (प्रमाण) के बिना कैसे विश्वास करूँ कि ईश्वर आदमी होकर आते हैं?

गिरीश– विश्वास ही Sufficient Proof (यथेष्ट प्रमाण) है। यह वस्तु यहाँ है, इसका क्या प्रमाण है? विश्वास ही इसका प्रमाण है।

एक भक्त– External World (बहिर्जगत्) बाहर है, इस बात को क्या कोई Philosopher (दार्शनिक) prove (प्रमाणित) कर सका है? केवल कहा है–– Irresistible Belief (अनिवार्य विश्वास)।

गिरीश– (नरेन्द्र से)– ईश्वर सामने आने पर भी तो तुम विश्वास नहीं करोगे। यदि ईश्वर कहेंगे, 'मैं ईश्वर हूँ, मनुष्य के शरीर में आया हुआ हूँ,' तुम शायद कहोगे कि वे झूठ बोल रहे हैं— धोखा दे रहे हैं।

अब यह बात चली कि देवता अमर हैं।

नरेन्द्र– इसका प्रमाण क्या है?

गिरीश– पर तुम्हारे सामने आने पर भी तो विश्वास नहीं करोगे।

नरेन्द्र– अमर, अतीत काल में थे इसका प्रमाण भी तो चाहिए।

मणि पल्टू से कुछ कह रहे हैं।

पल्टू– (नरेन्द्र से, हँसकर)– अमर के लिए अनादि की क्या ज़रूरत है? होना है तो अनन्त होना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– नरेन्द्र वकील का लड़का है, पल्टू डिप्टी का लड़का है। (सब हँसते हैं)

सब कुछ देर चुप हो रहे।

योगीन्द्र– (गिरीश आदि भक्तों से, सहास्य)– नरेन्द्र की बातों में ये (श्रीरामकृष्ण) अब नहीं आते।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– मैंने एक दिन कहा था, चातक आकाश के पानी के सिवा और पानी नहीं पीता। नरेन्द्र ने कहा,

'चातक यह पानी भी पीता है।' तब मैंने माँ से कहा, 'माँ, ये सब बातें क्या झूठ हो गईं?' मुझे बड़ी चिन्ता थी। एक दिन नरेन्द्र आया। कमरे के भीतर कुछ चिड़ियाँ उड़ रही थीं। देखकर उसने कहा, 'यही है—यही है!' मैंने पूछा, 'क्या?' उसने कहा, 'यही चातक है।' मैंने देखा, कुछ चमगीदड़ उड़ रहे थे! तभी से मैं उसकी बातों को ग्रहण नहीं करता। (सब हँसते हैं)

"यदु मल्लिक के बगीचे में नरेन्द्र ने कहा, 'तुम ईश्वर के रूप जितने देखते हो, सब तुम्हारे मन का भ्रम है।' तब आश्चर्य में आकर मैंने उससे कहा, 'क्यों रे, वे बातचीत जो करते हैं।' नरेन्द्र ने कहा, 'मनुष्य ऐसा ही सोचता है।' तब माँ के पास आकर मैं रोने लगा। कहा, 'माँ, यह क्या हुआ?—क्या सब झूठ है? नरेन्द्र ऐसी बातें कहता है।' तब माँ ने दिखलाया, चैतन्य—अखण्ड चैतन्य—चैतन्यमय रूप। और उन्होंने कहा, 'अगर ये बातें झूठ होंगी, तो ये सब मिलती किस तरह हैं?' तब मैंने नरेन्द्र से कहा, 'साला, तूने अविश्वास पैदा कर दिया था। तू साला अब यहाँ मत आना।'"

फिर विचार होने लगा। नरेन्द्र विचार कर रहे हैं। नरेन्द्र की उम्र इस समय बाईस वर्ष चार मास की है।

नरेन्द्र—(गिरीश, मास्टर आदि से)—शास्त्रों पर भी कैसे विश्वास करूँ? महानिर्वाण तंत्र एक बार तो कहता है, ब्रह्मज्ञान के बिना नरक होगा। फिर कहता है, पार्वती की उपासना को छोड़ और उपाय नहीं है। मनुसंहिता में मनुजी कुछ लिखते हैं—वे उन्हीं की अपनी बातें हैं। Moses (मूसा) लिखते हैं Pentateuch (पेन्टटचूच),—उसमें भी उन्होंने अपनी ही मृत्यु का वर्णन लिखा है।

"सांख्यदर्शन लिखते हैं, 'ईश्वरासिद्धेः,' ईश्वर हैं यह कोई प्रमाणित नहीं कर सकता। फिर कहते हैं, वेद मानना चाहिए, वेद नित्य हैं।

"इससे मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि ये सब नहीं हैं। मैं समझ नहीं सकता, मुझे समझा दो। शास्त्रों का अर्थ जिसके जी में जैसा आया उसने वैसा ही किया है। अब मैं किस किस का ग्रहण करूँ? White light (सफेद रोशनी) red medium (लाल शीशे) के भीतर से आती है तो लाल दीख पड़ती है और green medium (हरे शीशे) के भीतर से आती है तो हरी दीख पड़ती है!"

एक भक्त—गीता भगवान की उक्ति है।

श्रीरामकृष्ण—गीता सब शास्त्रों का सार है। संन्यासी के पास और चाहे कुछ न रहे, परन्तु एक छोटी सी गीता ज़रूर रहेगी।

एक भक्त—गीता श्रीकृष्ण की उक्ति है।

नरेन्द्र—श्रीकृष्ण की उक्ति है या दूसरे किसी की।

श्रीरामकृष्ण निर्वाक् रहकर नरेन्द्र की ये सब बातें सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—ये सब अच्छी बातें हो रही हैं।

"शास्त्रों के दो अर्थ हैं, एक शब्दार्थ और दूसरा मर्मार्थ। ग्रहण मर्मार्थ का ही करना चाहिए, जो अर्थ ईश्वर की वाणी के साथ मिलता हो। चिट्ठी की बातों में, और जिसने चिट्ठी लिखी है उसकी बातों में बड़ा अन्तर है। शास्त्र हैं— चिट्ठी की बातें। ईश्वर की वाणी है— उनके मुख की बातें। मैं उस बात को ग्रहण नहीं करता जो माँ की बात से नहीं मिलती।"

अब अवतार की बात होने लगी।

नरेन्द्र—ईश्वर पर विश्वास होने से ही होगा। फिर वे कहाँ झूल रहे हैं, या क्या कर रहे हैं इससे हमें क्या काम? ब्रह्माण्ड

अनन्त है और अवतार भी अनन्त हैं।

नरेन्द्र की यह बात सुनकर श्रीरामकृष्ण ने हाथ जोड़ उन्हें नमस्कार करके कहा— 'अहा!'

मणि भवनाथ से कुछ कह रहे हैं।

भवनाथ– ये कहते हैं, हाथी को जब हमने नहीं देखा तो वह सुई के छेद के अन्दर से जा सकता है या नहीं, यह हमें कैसे विश्वास हो? ईश्वर को हम जानते नहीं, फिर वे आदमी के रूप में अवतार ले सकते हैं या नहीं, किस तरह हम इसका विचार करके समझें?

श्रीरामकृष्ण– सब कुछ है। वे जादू चला देते हैं। बाजीगर गले में छुरी मार लेता है, उसे फिर निकाल लेता है। कंकड़-पत्थर खा जाता है।

(३)

श्रीरामकृष्ण तथा कर्म

भक्त– ब्राह्मसमाज के आदमी कहते हैं, संसार में कर्म करना ही अपना कर्तव्य है। इस कर्म के त्याग करने से कुछ न होगा।

गिरीश– मैंने देखा, 'सुलभसमाचार' में यही बात लिखी है। परन्तु ईश्वर को जानने के लिए जो कर्म हैं, वे ही तो पूरे नहीं हो पाते, फिर ऊपर से दूसरे कर्म!

श्रीरामकृष्ण ज़रा मुस्कराकर मास्टर की ओर देखकर इशारा कर रहे हैं— 'वह जो कुछ कहता है, वही ठीक है।'

मास्टर समझ गए, कर्मकाण्ड बड़ा ही कठिन है।

पूर्ण आए हैं।

श्रीरामकृष्ण– किसने तुम्हें खबर दी?

पूर्ण– शारदा ने।

श्रीरामकृष्ण– (पास की स्त्री-भक्तों से)– इसे कुछ जलपान करने के लिए देना।

अब नरेन्द्र का गाना होगा। श्रीरामकृष्ण तथा भक्तों की सुनने की इच्छा है। नरेन्द्र गा रहे हैं—

(१) "परवत पाथार। व्योमे जागो रुद्र उद्यत बाज। देव देव महादेव, कालकाल महाकाल, धर्मराज शंकर शिव तारो हर पाप।"

(२) "हे दीनों को शरण देने वाले ! तुम्हारा नाम बड़ा सुन्दर है। ऐ प्राणों में रमण करनेवाले ! अमृत की धारा बह रही है, श्रवण शीतल हो जाते हैं।"

(३) "जो विपत्ति और भय से परित्राण करने वाले हैं, ऐ मन, तुम उन्हें क्यों नहीं पुकारते ? मिथ्या भ्रम में पड़े हुए इस घोर संसार में डूब रहे हो, यह बड़े दुःख की बात है !"

पल्टू– यह गाना आप गाइयेगा ?

नरेन्द्र– कौन सा ?

पल्टू– "देखिले तोमार सेई अतुल प्रेम-आनने।
कि भय संसार शोक घोर विपद शासने।।"

नरेन्द्र गा रहे हैं—

"देखिले तोमार सेई अतुल प्रेम-आनने।
कि भय संसार शोक घोर विपद शासने।।
अरुण उदये आंधार जेमन जाय जगत छाड़िये।
तेमनि देव तोमार ज्योति मंगलमय विराजिले।
भगत हृदय वीतशोक तोमार मधुर सान्त्वने।।
तोमार करुणा तोमार प्रेम हृदये प्रभु भाविले।
उथले हृदये नयन वारि राखे के निवारिये।।

जय करुणामय, जय करुणामय, तोमार प्रेम गाहिये ।
जाय यदि जाक प्राण तोमार कर्म साधने ।। ”

मास्टर के अनुरोध से फिर गा रहे हैं। मास्टर और भक्तगण हाथ जोड़े हुए गाना सुन रहे हैं—

(१) “ऐ मेरे मन! हरि-रस मदिरा का पान करके तुम मत्त हो जाओ। पृथ्वी पर लोटते हुए तुम उनका नाम ले लेकर रोओ।”

(२) “आसमान थाली है, उसमें सूर्य और चन्द्र दिए जल रहे हैं, नक्षत्र मोतियों की तरह चमक रहे हैं। मलयानिल धूप है। पवन चमर डुला रहा है। वन-राजियाँ उसकी जीती-जागती ज्योति हैं। हे भवखण्डन, यह तुम्हारी कैसी सुन्दर आरती हो रही है! अनाहत नाद के द्वारा तुम्हारी भेरी बज रही है।”

(३) “उसी एक पुरुषपुरातन—निरंजन पर तुम अपने चित्त को समाहित करो।”

नारायण के अनुरोध करने पर नरेन्द्र ने फिर गाया।

(भावार्थ) “ऐ हृदयरमा-माँ— प्राणों की पुतली! आओ, तुम हृदय के आसन पर आसीन हो जाओ, मैं दृष्टि को तृप्त करता हुआ तुम्हें देखूँ। जन्म से ही मैं तुम्हारा मुँह जोह रहा हूँ। ऐ माँ, तुम जानती हो, मैं कितना दुःख भोग चुका हूँ। ऐ आनन्दमयी, एक बार तो हृदय-पद्म को विकसित करके वहाँ अपना प्रकाश दिखा दो।”

नरेन्द्र मन ही मन गा रहे हैं

(भावार्थ) “माँ, तेरा अपरूप रूप घोर अंधेरे में चमक रहा है। इसीलिए गिरि-गुहाओं में योगीजन तुम्हारा ध्यान करते हैं।”

समाधि का यह संगीत सुनते ही श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए।

श्रीरामकृष्ण को भावावेश है। उत्तरास्य हो, दीवार के सहारे, पैर लटकाए हुए तकिए पर बैठे हुए हैं। चारों ओर भक्तगण बैठे हैं।

भावावेश में श्रीरामकृष्ण माता से बातें कर रहे हैं। कह रहे हैं—"भोजन करके इस समय चला जाऊँगा। तू आई? पोटली बाँधकर, जहाँ रहेगी वह घर ठीक करके तू आई है क्या?

"अब मुझे कोई नहीं सुहाता।

"माँ, गाना क्यों सुनूँ? उससे तो मन कुछ बाहर चला जाता है।"

क्रमशः श्रीरामकृष्ण को बाह्य संसार का ज्ञान हो रहा है। भक्तों की ओर देखकर उन्होंने कहा,—"हण्डी में पानी भरकर किसी को उसमें मछलियों को रखते हुए देख पहले मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। मैं सोचता था, ये लोग बड़े हत्यारे हैं, अन्त में इन मछलियों को मार डालेंगे। अवस्था जब बदलने लगी, तब मैंने देखा, यह शरीर ऊपर का ढक्कन है। न इसके रहने से कुछ बनता-बिगड़ता है, न जाने से।"

भवनाथ— तो क्या मनुष्यों की हिंसा की जा सकती है? हत्या की जा सकती है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, उस अवस्था में की जा सकती है। वह अवस्था सब की नहीं होती। वह ब्रह्मज्ञान की अवस्था है।

"दो-एक स्तर उतरने पर भक्ति और भक्त अच्छे लगते हैं।

"ईश्वर में विद्या और अविद्या दोनों हैं। यह विद्या-माया जीव को ईश्वर की ओर ले जाती है, अविद्या माया ईश्वर से जीव को दूर बहकाकर ले जाती है। विद्या की क्रीड़ा ज्ञान, भक्ति, दया और वैराग्य हैं। इनका आश्रय लेने पर मनुष्य ईश्वर के पास पहुँच

सकता है।

"एक सीढ़ी और चढ़ने पर ईश्वर मिलते हैं-- ब्रह्मज्ञान होता है। इस अवस्था में सच्चा ज्ञान होता है-- तब वास्तव में समझ पड़ता है कि मैं ठीक देख रहा हूँ, वे ही सब कुछ हुए हैं। उस समय त्याज्य और ग्राह्य नहीं रहते! किसी पर क्रोध करने की जगह नहीं रहती।

"मैं बग्घी पर चला जा रहा था। एक जगह बरामदे के ऊपर देखा, दो वेश्याएँ खड़ी थीं। देखा-- साक्षात् भगवती। देखकर मैंने प्रणाम किया।

"जब पहले पहल यह अवस्था हुई तब काली माई की न मैं पूजा कर सका और न उन्हें भोग ही दे सका। हलधारी और हृदय ने कहा, 'खज़ांची कह रहा है-- भट्टाचार्यजी भोग नहीं देंगे तो और कौन देगा?' उसने कटूक्ति की, यह सुनकर मैं हँसने लगा, मुझे क्रोध नहीं आया। यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके फिर लीला का स्वाद लेते रहो। कोई साधु एक शहर में तमाशा देखता हुआ घूम रहा था। उसी समय एक दूसरे परिचित साधु से भेंट हो गई। उसने पूछा, 'तुम मौज से घूम रहे हो, तुम्हारा सामान कहाँ है? उधर सामान लेकर कोई नौ-दो-ग्यारह तो नहीं हो गया?' पहले साधु ने कहा, 'नहीं महाराज, पहले डेरे की तलाश करके, डेरा-डंडा वहाँ रखकर, ताला बन्द करके फिर शहर का रंग-ढंग देखने कें लिए निकला हूँ।'" (सब हँसते हैं)

भवनाथ-- यह बहुत ऊँची बात है।

मणि-- (स्वगत)-- ब्रह्मज्ञान के बाद लीला का स्वाद लेना,-- समाधि के बाद नीचे उतरना।

श्रीरामकृष्ण-- (मास्टर आदि से)-- अजी! ब्रह्मज्ञान क्या ऐसे

सहज ही हो जाता है ? मन का नाश बिना हुए नहीं होता। गुरु ने शिष्य से कहा था, तुम मुझे मन दो, मैं तुम्हें ज्ञान देता हूँ। नागा कहता था, 'अरे, मन इधर-उधर न लगाना चाहिए।'

"इस अवस्था में केवल ईश्वर की बातें सुहाती हैं और भक्तों का संग।

(राम से) "तुम तो डाक्टर हो, जब खून के साथ मिलकर एक हो जाती है, तभी दवा फायदा करती है— है न? उसी तरह इस अवस्था में भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर हैं। वह देखेगा, वे ही देह, मन, प्राण और आत्मा हैं।

"मन का नाश होने से ही ब्रह्मज्ञान की अवस्था होती है। मन का नाश होने ही से 'अहं' का नाश होता है,— उस 'अहं' का, जो 'मैं-मैं' कर रहा है। यह अवस्था भक्ति के मार्ग से भी होती है और ज्ञान-मार्ग या विचार-मार्ग से भी। 'नेति-नेति' अर्थात् यह सब माया है, स्वप्नवत् है, इस तरह का विचार ज्ञानी करते हैं। यह संसार 'नेति-नेति'—-माया है। संसार जब न रहा, तब बाकी रह गए कुछ जीव—- 'मैं' रूपी घट के भीतर।

"सोचो कि पानी से भरे हुए दस घड़े हैं, उनमें सूर्य का बिम्ब पड़ रहा है। कितने सूर्य दिखलाई देते हैं?"

भक्त– दस प्रतिबिम्ब; और एक यथार्थ सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण– सोचो, तुमने एक घड़ा फोड़ डाला, अब कितने सूर्य दीख पड़ते हैं?

भक्त– नौ, और एक सत्य सूर्य तो है ही।

श्रीरामकृष्ण– आठ और घड़े फोड़ डाले गए। अब कितने सूर्य हैं?

भक्त– एक प्रतिबिम्ब सूर्य और एक सत्य सूर्य।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– उस रहे-सहे घट को भी फोड़ डालो, अब क्या रह जाता है ?

गिरीश– जी, वही सत्य सूर्य ।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, क्या रहता है, वह कोई मुख से नहीं बता सकता । जो है, वही है । प्रतिबिम्बों के बिना रहे, सत्य सूर्य है यह बात मनुष्य कैसे जान सकता है ? समाधि के होने पर अहं-तत्त्व का नाश हो जाता है । समाधिस्थ पुरुष उतरकर कह नहीं सकता कि उसने क्या देखा ।

(४)

ईश्वरदर्शन तथा व्याकुलता

सन्ध्या हुए बड़ी देर हो गई । बलराम के बैठकखाने में दिये जल रहे हैं । श्रीरामकृष्ण अब भी भावमग्न हैं । भावावेश में कह रहे हैं—

"यहाँ और कोई नहीं है, इसीलिए तुम लोगों से कह रहा हूँ, आन्तरिकता के साथ जो मनुष्य ईश्वर को जानना चाहेगा, उसका उद्देश्य अवश्य सफल होगा । जो व्याकुल है, ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं चाहता, वह उन्हें अवश्य ही पावेगा ।

"यहाँ के जितने आदमी थे— जिन्हें-जिन्हें आना था, वे सब आ चुके । इसके बाद जो आएँगे वे बाहर के आदमी हैं । ऐसे लोग कभी कभी आ जाया करेंगे । माँ उन्हें बता दिया करेंगी कि तुम यह करो, वह करो, इस तरह ईश्वर को पुकारो आदि ।

"ईश्वर की ओर मन क्यों नहीं जाता ? ईश्वर से उनमें (महामाया में) बल अधिक है । जज से उसके चपरासी में शक्ति अधिक है । (सब हँसते हैं)

"नारद से राम ने कहा, 'नारद, तुम्हारी स्तुति से मुझे बड़ी

प्रसन्नता हुई है, तुम कोई वर लो।' नारद नें कहा, 'राम! यह करो, तुम्हारे पादपद्मों में मेरी श्रद्धा-भक्ति रहे और तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में न पड़ जाऊँ।' राम ने कहा, 'तथास्तु, कोई वर और लो।' नारद ने कहा, 'राम! और कोई वर मुझे नहीं चाहिए।'

"इस भुवनमोहिनी माया में सभी मुग्ध हो रहे हैं। ईश्वर जब देह धारण करते हैं, तो वे भी मुग्ध हो जाते हैं। सीता के लिए राम कितना रोए थे। 'पंचभूत के पिंजड़े में पड़कर ब्रह्म को रोना पड़ता है।'

"परन्तु एक बात है—ईश्वर जब चाहें तभी मुक्त हो सकते हैं।"

भवनाथ– Guard (गार्ड) अपनी इच्छा से रेलगाड़ी के भीतर अपने को कैद करता है। परन्तु वह जब चाहे तब उतर सकता है।

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर कोटि—जैसे अवतार आदि—जब चाहें तब मुक्त हो सकते हैं। जो जीवकोटि हैं, वे नहीं हो सकते। जीव कामिनी और कांचन में बद्ध हैं। कमरे के द्वार और झरोखे स्क्रू (पेंच) से कसे हुए हैं। कैसे निकल सकते हैं?

भवनाथ– (सहास्य)– जैसे रेल के तीसरे दर्जे के मुसाफिर, दरवाजे में चाबी लगा देने पर फिर नहीं निकल सकते।

गिरीश– जीव अगर इस तरह बँधा हुआ है तो उसके लिए कोई उपाय है?

श्रीरामकृष्ण– हाँ, गुरु के रूप से ईश्वर अगर स्वयं ही माया-पाशों का छेदन करें तो फिर भय की कोई बात नहीं।

परिच्छेद १०

राम के मकान में

(१)

नित्य तथा लीला । साधना चाहिए

श्रीरामकृष्ण राम के यहाँ आए हुए हैं। उनके नीचे के बैठक-खाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। मुख पर प्रसन्नता झलक रही है। आनन्दपूर्वक भक्तों से बातचीत कर रहे हैं।

आज शनिवार है, जेठ की शुक्ला दशमी, २३ मई १८८५। शाम के पाँच बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण के सामने महिमा-चरण बैठे हैं। बाईं ओर मास्टर हैं, चारों ओर पल्टू, भवनाथ, नृत्यगोपाल और हरमोहन हैं। आते ही श्रीरामकृष्ण भक्तों के बारे में पूछने लगे।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– छोटा नरेन्द्र नहीं आया ?

कुछ देर बाद छोटे नरेन्द्र आ गए।

श्रीरामकृष्ण– वह नहीं आया ?

मास्टर– जी, कौन ?

श्रीरामकृष्ण– किशोरी ?– गिरीश घोष नहीं आएगा ?—और नरेन्द्र ?

कुछ देर बाद नरेन्द्र ने आकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों से)– केदार (चटर्जी) अगर रहता तो खूब आनन्द आता। गिरीश घोष से उसकी खूब बनती है। (महिमा से, सहास्य) वह भी वही बात दुहराता है (अर्थात् अवतार मानता है)।

कमरे में कीर्तन होने का बन्दोबस्त कर रखा गया है। कीर्त-

निया हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से कह रहा है, 'आप आज्ञा दें तो कीर्तन आरम्भ हो।'

श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'थोड़ा सा पानी पीऊँगा।'

पानी पीकर मसाले की थैली से आपने कुछ मसाला निकालकर खाया। मास्टर से थैली बन्द करने के लिए कहा।

कीर्तन हो रहा है। खोल की आवाज़ से श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। गौरचन्द्रिका सुनते सुनते वे समाधिमग्न हो गए। पास ही नृत्यगोपाल थे, उसकी गोद पर श्रीरामकृष्ण ने अपने पैर फैला दिए। नृत्यगोपाल भी भावावेश में रो रहे हैं। भक्तगण चुपचाप यह समाधि की अवस्था देख रहे हैं।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर श्रीरामकृष्ण वार्तालाप करने लगे।

श्रीरामकृष्ण– नित्य से लीला और लीला से नित्य, (नृत्यगोपाल से) तेरा क्या भाव है?

नृत्यगोपाल– दोनों अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण आँखें बन्द करके कह रहे हैं, "क्या केवल इस तरह ही रहना है? क्या आँखें बन्द कर लेने पर वे हैं और आँखें खोलने पर वे नहीं हैं? जिनकी नित्यता है, लीला भी उन्हीं की है; जिनकी लीला है, उन्हीं की नित्यता है।

(महिमा से) "अजी, तुम्हें एक बात बतलाना है—"

महिमाचरण– जी, दोनों ईश्वर की इच्छाएँ हैं।

श्रीरामकृष्ण– कोई ऊपर चढ़कर फिर उतर नहीं सकता, और कोई ऊपर चढ़कर नीचे उतरकर घूम-फिर सकता है।

"उद्धव ने गोपियों से कहा था, तुम जिन्हें अपना कृष्ण बना रही हो वे सर्वभूतों में हैं, वे ही जीव-जगत् हुए हैं।

"इसीलिए कहता हूँ, क्या आँखें बन्द करने से ही ध्यान होता

है और आँखें खोलने से कुछ नहीं ?"

महिमा– एक प्रश्न है। जो भक्त हैं उन्हें भी किसी समय निर्वाण की आवश्यकता है ?

श्रीरामकृष्ण– निर्वाण चाहिए ही, ऐसी कोई बात नहीं। इस तरह भी है कि कृष्ण भी नित्य हैं और भक्त भी नित्य हैं––चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम।

"जैसे जहाँ चन्द्र है, वहीं तारे भी हैं। कृष्ण भी नित्य हैं और भक्त भी नित्य हैं। तुम्हीं तो कहते हो––'अन्तर्बहिर्यदि हरिस्त-पसा ततः किम्'––और तुमसे तो मैंने कहा है कि जिस भक्त में विष्णु का अंश रहता है उसमें भक्ति का बीज नष्ट नहीं होता। मैं एक ज्ञानी (न्यांगटा) के पंजे में फँस गया, उसने ग्यारह महीने तक वेदान्त सुनाया। परन्तु वह मुझमें भक्ति का बीज बिलकुल नष्ट नहीं कर सका! घूम-फिरकर वही 'माँ-माँ'! जब मैं गाता था तब (न्यांगटा) रोने लगता था। कहता था––'अरे, यह तूने क्या सुनाया!' देखो, इतना बड़ा ज्ञानी भी रोने लगता था। (छोटे नरेन्द्र आदि से) इतना समझ रखना, अलख लता का रस जब पेट में जाता है तो पेड़ होता ही है। भक्ति का बीज अगर पड़ गया, तो उससे क्रमशः पेड़ और फूल-फल होते ही हैं।

"'मूषलं कुलनाशनम्।' मूषल घिसकर ज़रा सा रह गया था। उस थोड़े से अंश से यदुवंश का ध्वंस हो गया। चाहे लाख ज्ञान और विचार करो, भक्ति का बीज अगर भीतर रहा, घूम-फिरकर वही 'भज राम––भज सीताराम।'"

भक्तगण चुपचाप सुन रहे हैं। श्रीरामकृष्ण हँसते हुए महिमा-चरण से कह रहे हैं––तुमको क्या अच्छा लगता है ?

महिमाचरण– (हँसकर)– कुछ भी नहीं, आम अच्छा लगता है।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– अकेले अकेले ? न, आप भी खाओ और दूसरों को भी कुछ दो ?

महिमा– (सहास्य)– देने की विशेष इच्छा तो नहीं है, अकेले खाया तो बुरा क्या है ?

श्रीरामकृष्ण– परन्तु मेरा भाव क्या है, जानते हो ?––क्या आँख खोलने ही से वे गायब हो जाते हैं ? मैं 'नित्य' और 'लीला' दोनों को लेता हूँ। उन्हें प्राप्त करने पर यह समझ में आ जाता है कि वे ही स्वराट हैं और वे ही विराट हैं। वे ही अखण्ड सच्चिदानन्द हैं और वे ही जीव-जगत् हुए हैं।

"साधना चाहिए। केवल शास्त्र रटने से नहीं होता। मैंने विद्यासागर को देखा, वह पढ़ा-लिखा खूब है, परन्तु अपने भीतर में क्या है उसने नहीं देखा। बच्चों को पढ़ा-लिखाकर ही उसे आनन्द मिलता है। ईश्वर के आनन्द का स्वाद उसने नहीं पाया, केवल पढ़ने से क्या होगा ? धारणा कहाँ ? पंचांग में लिखा है वर्षा पूरी होगी, परन्तु पंचांग दबाओ तो कहीं बूंद भर भी पानी नहीं निकलता !"

महिमा– संसार में कितने ही काम हैं, अवसर कहाँ मिलता है ?

श्रीरामकृष्ण– क्यों ? तुम तो सब स्वप्नवत् बतलाते हो।

"सामने सागर देखकर लक्ष्मण ने धनुष लेकर कहा था, 'मैं वरुण का वध करूँगा। यही समुद्र हमें लंका नहीं जाने दे रहा है।' राम ने समझाया, 'लक्ष्मण, यह जो सब देख रहे हो, यह स्वप्नवत् अनित्य है न ?— अतएव समुद्र भी अनित्य है और तुम्हारा क्रोध भी अनित्य है। मिथ्या को मिथ्या के द्वारा मारना भी मिथ्या है।'"

महिमाचरण चुप हो रहे।

महिमाचरण को बहुत से पारिवारिक काम करने पड़ते हैं। और उन्होंने परोपकार के लिए एक नया स्कूल खोला है।

श्रीरामकृष्ण– (महिमा से)– शंभू ने कहा, 'मेरी इच्छा है, ये रुपये सत्कार्य में लगाऊँ––स्कूल, दवाखाना खोल दूँ, रास्ता-घाट तैयार करा दूँ।' मैंने कहा, 'निष्काम भाव से कर सको तो अच्छा है, परन्तु निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है, न जाने किस तरफ से कामना निकल पड़ती है। तुमसे एक बात और पूछता हूँ, अगर ईश्वर तुम्हें मिल जायँ तो क्या तुम उनसे कुछ स्कूल, अस्पताल, दवाखाने ये सब माँगने लगोगे ?'

एक भक्त– महाराज, संसारियों के लिए क्या उपाय है ?

श्रीरामकृष्ण– साधु-संग–– ईश्वर की बातें सुनना।

"संसारी मतवाले हो रहे हैं, कामिनी और कांचन में मत्त हैं। मतवाले को भात का पानी थोड़ा थोड़ा सा पिलाते रहने पर वह अच्छा हो जाता है––उसे होश आ जाता है।

"और सद्‌गुरु के पास उपदेश लेना चाहिए। सद्‌गुरु के लक्षण हैं। जो वाराणसी गया हो और वाराणसी जिसने देखी हो, उसी से वाराणसी की बातें सुननी चाहिए। केवल पण्डित होने से नहीं होता। जिसे यह बोध नहीं हुआ कि संसार अनित्य है, उससे उपदेश न लेना चाहिए। पण्डित में विवेक और वैराग्य के रहने पर ही वह उपदेश दे सकता है।

"सामाध्यायी ने कहा था, ईश्वर नीरस हैं। जो रसस्वरूप हैं, उन्हें बतलाता था नीरस! जैसे किसी ने कहा था––मेरे मामा के यहाँ गोशाले में बहुत घोड़े हैं! (सब हँसते हैं)

"संसारी मतवाले हो रहे हैं। वे सदा सोचते हैं, मैं ही यह सब कर रहा हूँ, और घर-द्वार यह सब मेरा है। दाँत निकालकर

कहता है—'इनके (स्त्री आदि के) लिए फिर क्या होगा ? मैं न रहूँगा तो इनके दिन कैसे कटेंगे ? मेरी स्त्री को और मेरे परिवार को कौन संभालेगा ?' राखाल ने कहा, 'मेरी स्त्री की फिर क्या दशा होगी ?' "

हरमोहन– राखाल ने ऐसी बात कही ?

श्रीरामकृष्ण– इस तरह नहीं कहेगा तो क्या करेगा ? जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। लक्ष्मण ने राम से कहा, 'भाई! बड़े आश्चर्य की बात है, साक्षात् वशिष्ठ देव भी पुत्रों के शोक से विकल हो रहे हैं!' राम ने कहा, 'भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। भाई! ज्ञान और अज्ञान के पार हो जाओ।'

"जैसे किसी के पैर में एक काँटा लगा है। वह उस काँटे को निकालने के लिए एक और काँटा ले आता है। फिर उस काँटे से काँटा निकालकर दोनों काँटें फेंक देता है। अज्ञान-काँटे को निकालने के लिए ज्ञान-काँटे की ज़रूरत होती है। फिर ज्ञान और अज्ञान दोनों काँटों को फेंक देने पर जो कुछ रह जाता है वह विज्ञान है। ईश्वर हैं, इसका आभासमात्र लेकर उन्हें अच्छी तरह जानना पड़ता है; और उनसे खास तौर से बातचीत की जाती है, यह विज्ञान है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है, 'भाई, तीनों गुणों से पार हो जाओ।'

"इस विज्ञान को प्राप्त करने के लिए विद्यामाया को अपनाना पड़ता है। ईश्वर सत्य हैं, संसार अनित्य है, यह विचार है, अर्थात् विवेक और वैराग्य है। और उनके नामों और गुणों का कीर्तन, ध्यान, साधुसंग, प्रार्थना ये सब विद्यामाया के अन्दर हैं। विद्यामाया जैसे छत की ऊपरवाली कुछ सीढ़ियाँ हैं, और एक सीढ़ी उठने ही से छत है। (छत में उठने का अर्थ है ईश्वरलाभ)

"विषयी लोग मतवाले हो रहे हैं। कामिनी और कांचन में मत्त हैं, होश नहीं। इसीलिए तो इन लड़कों को मैं प्यार करता हूँ। उनमें कामिनी-कांचन का प्रवेश अभी नहीं हुआ। आधार अच्छा है, ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं। संसारियों में काँटे चुनते ही चुनते सब साफ हो जाता है— मछली नहीं मिलती।

"संसारी लोग ओले की चोट खाये हुए आम के सदृश होते हैं। यदि तुम उन आमों को ईश्वर को अर्पण करना चाहते हो तो उन्हें गंगाजल से धोकर शुद्ध कर लेना पड़ता है। परन्तु फिर भी ऐसे फल बहुत कम पूजा में चढ़ाये जाते हैं। परन्तु उन्हें यदि चढ़ाना ही पड़े तो ब्रह्मज्ञान के सहित, अर्थात् तुम्हें यह समझ लेना पड़ता है कि सब कुछ ईश्वर ही हुए हैं।"

श्रीयुत अश्विनीकुमार दत्त तथा श्रीयुत विहारी भादुड़ी के पुत्र के साथ एक थियोसफिस्ट आए हुए हैं। मुखर्जियों ने आकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। आँगन में संकीर्तन का आयोजन हो रहा है। ज्योंही खोल बजा, श्रीरामकृष्ण घर छोड़कर आँगन में जा बैठे। साथ ही साथ भक्तगण भी उठ गए।

भवनाथ अश्विनी का परिचय दे रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने अश्विनी की ओर इशारा करके मास्टर से कुछ कहा। मास्टर और अश्विनी में कुछ बातें होने लगीं। नरेन्द्र भी आँगन में आए। श्रीरामकृष्ण अश्विनी से कह रहे हैं, 'इसी का नाम नरेन्द्र है।'

परिच्छेद ११

श्रीरामकृष्ण तथा अहंकार का त्याग

(१)

श्रीरामकृष्ण की ज्ञान तथा भक्ति की अवस्था

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में उसी परिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज शनिवार है, १३ जून १८८५, जेठ की शुक्ला प्रतिपदा; जेठ की संक्रान्ति। दिन के तीन बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण भोजन के बाद तखत पर ज़रा विश्राम कर रहे हैं।

एक पण्डितजी जमीन पर चटाई पर बैठे हुए हैं। शोक से विह्वल एक ब्राह्मणी कमरे के उत्तर तरफवाले दरवाजे के पास खड़ी हुई हैं। किशोरी भी हैं। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। साथ में द्विज आदि हैं। अखिल बाबू के पड़ोसी भी बैठे हुए हैं। उनके साथ आसाम का एक लड़का अभी पहले पहल आया हुआ है।

श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। गले में गिलटी पड़ गई है, कुछ जुकाम भी हो गया है। उनकी गले की बीमारी बस यहीं से शुरू होती है।

अधिक गरमी पड़ने के कारण मास्टर का भी शरीर अस्वस्थ रहता है। श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए वे इधर लगातार दक्षिणेश्वर नहीं आ सके।

श्रीरामकृष्ण– यह लो तुम तो आ गए। तुमने जो बेल भेजा था वह बड़ा अच्छा था। तुम कैसे हो?

मास्टर– जी, पहले से अब कुछ अच्छा हूँ।

श्रीरामकृष्ण– बड़ी गरमी पड़ रही है। कुछ कुछ बर्फ खाया करो।

"गरमी से मुझे भी बड़ा कष्ट हो रहा है। गरमी में कुलफी बर्फ— यह सब बहुत खाया गया। इसीलिए गले में गिलटी पड़ गई है। गले से बड़ी बदबू निकल रही है।

"माँ से मैंने कहा, अच्छा कर दो, अब कुलफी बर्फ न खाऊँगा।

"इसके बाद यह भी कहा है कि बर्फ न खाऊँगा।

"माँ से जब कह दिया है कि अब न खाऊँगा तो खाना अवश्य ही न होगा। परन्तु एकाएक भूल भी ऐसी हो जाती है।

"परन्तु जानते में भूल नहीं होने पाती। उस दिन गडुआ लेकर एक आदमी को झाऊतल्ले की ओर आने के लिए मैंने कहा। उस समय वह जंगल गया था, इसलिए एक दूसरा आदमी ले आया। मैंने जंगल से आकर देखा, एक दूसरा ही आदमी गडुआ लिए हुए खड़ा था। अब क्या करूँ? हाथ में मिट्टी लगाए खड़ा रहा जब तक उसी ने आकर पानी नहीं दिया।

"माता के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर जब मैं सब कुछ त्याग करने लगा तब कहा, 'माँ, यह लो अपनी शुचिता और यह लो अशुचिता; यह लो अपना धर्म और यह लो अधर्म; यह लो अपना पाप और यह लो पुण्य; यह लो अपना भला और यह लो बुरा,— मुझे शुद्धा भक्ति दो।' परन्तु यह लो अपना सत्य और यह अपना असत्य यह मैं नहीं कह सका!"

एक भक्त बर्फ ले आए हैं। श्रीरामकृष्ण बार बार मास्टर से पूछ रहे हैं 'क्यों जी, क्या खा लूँ?'

मास्टर ने विनयपूर्वक कहा, तो आप माँ की आज्ञा बिना लिए न खाइये। श्रीरामकृष्ण ने अन्त में बर्फ नहीं खाई।

श्रीरामकृष्ण— शुचिता और अशुचिता का विचार भक्त के लिए है, ज्ञानी के लिए नहीं। विजय की सास ने कहा, 'मेरा क्या

हुआ ? अब भी तो मैं सब की जूठन नहीं खा सकती ।' मैंने कहा, 'सब की जूठन खाने ही से ज्ञान होता है ? कुत्ते जो पाते हैं वही खा लेते हैं, इसलिए क्या कुत्ते को बड़ा ज्ञानी कहें ?'

(मास्टर से) "मैं पाँच तरह की तरकारियाँ इसलिए खाया करता हूँ कि सब तरह की रुचि रहे— कहीं एक ही ढर्रे में पड़ गया तो इन्हें (भक्तों को) छोड़ न देना पड़े।

"केशव सेन से मैंने कहा, 'और भी बढ़कर अगर बातचीत की जाएगी तो तुम्हारा यह दल फिर न रह जाएगा। ज्ञान की अवस्था में दल-बल सब स्वप्नवत् मिथ्या है।'

"पक्षी का घोंसला अगर कोई जला देता है, तो वह उड़ता फिरता है, आकाश में आश्रय लेता है। अगर देह, संसार यह सब मिथ्या भासित हो, तो आत्मा समाधिमग्न हो जाती है।

"पहले मेरी ज्ञानी की अवस्था थी। आदमी अच्छे नहीं लगते थे। हाटखोला में एक ज्ञानी है अथवा अमुक स्थान पर एक भक्त है, इस तरह की बात मैं सुनता था; फिर कुछ दिनों में सुनता, वह तो गुज़र गया। इसीलिए आदमी अच्छे नहीं लगते थे। फिर उन्होंने (जगदम्बा ने) मन को उतारा, भक्ति और भक्तों में मन को लगा दिया।"

मास्टर अवाक् हैं। श्रीरामकृष्ण की अवस्थाओं के बदलने की बातें सुन रहे हैं। अब श्रीरामकृष्ण यह बतला रहे हैं कि ईश्वर आदमी होकर क्यों अवतार लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– भगवान मनुष्य-रूप में क्यों अवतार लेते हैं, जानते हो ? नरदेह के भीतर उनकी बातें सुनने को मिलती हैं। इसके भीतर उनका विलास है, इसके भीतर वे रसास्वादन करते हैं।

"और अन्य सब भक्तों में उनका थोड़ा थोड़ा सा प्रकाश है। जैसे किसी चीज़ को खूब चूसने पर कुछ रस मिलता है, अथवा फूल को चूसने पर कुछ मधु। (मास्टर से) तुम यह बात समझे ?"

मास्टर– जी हाँ, मैं खूब समझा।

श्रीरामकृष्ण द्विज के साथ बातचीत कर रहे हैं। द्विज की उम्र १५-१६ साल की है। उसके पिता ने अपना दूसरा विवाह किया है। द्विज प्रायः मास्टर के साथ आया करते हैं। श्रीरामकृष्ण उन पर स्नेह करते हैं। द्विज कह रहे हैं कि उनके पिता उन्हें दक्षिणेश्वर नहीं आने देते।

श्रीरामकृष्ण– (द्विज से)– क्या तेरे भाई भी मुझे अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं ?

द्विज चुप हैं।

मास्टर– संसार की कुछ ठोकरें खाने पर जिनमें कुछ अवज्ञा है भी वह भी दूर हो जाएगी।

श्रीरामकृष्ण– विमाता है, धक्के तो मिलते ही होंगे।

सब कुछ देर चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– पूर्ण के साथ इसे तुम मिला क्यों नहीं देते ?

मास्टर– जी हाँ, मिला दूँगा। (द्विज से) पानीहाटी जाना।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, इसीलिए मैं सबसे कहा करता हूँ— इसे भेज देना, उसे भेज देना। (मास्टर से) तुम जाओगे या नहीं ?

श्रीरामकृष्ण पानीहाटी के महोत्सव में जाएंगे। इसीलिए भक्तों से वहाँ जाने की बात कह रहे हैं।

मास्टर– जी हाँ, इच्छा तो है।

श्रीरामकृष्ण– बड़ी नाव किराये से ले ली जाएगी। वह डाँवा-डोल न होगी। गिरीश घोष क्या नहीं जाएगा?

श्रीरामकृष्ण एक दृष्टि से द्विज को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा इतने लड़के हैं, उनमें यही आता है— यह क्यों? कहो— पहले का कुछ ज़रूर रहा होगा।

मास्टर– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– संस्कार। गत जन्म में कर्म किया हुआ है। अन्तिम जन्म में मनुष्य सरल होता है। अन्तिम जन्म में पागलपन का भाव रहता है।

"परन्तु है यह उनकी इच्छा। उनकी 'हाँ' से संसार के कुछ काम होते हैं और उनकी 'ना' से होनहार भी बन्द हो जाता है। इसीलिए तो आदमी को आशीर्वाद नहीं देना चाहिए।

"मनुष्य की इच्छा से कुछ नहीं होता। उन्हीं की इच्छा से होता जाता है।

"उस दिन मैं कप्तान के यहाँ गया था। देखा, रास्ते से कुछ लड़के जा रहे थे। वे सब एक खास तरह के थे। एक लड़के को मैंने देखा, उन्नीस या बीस साल की उम्र रही होगी, बाल सँवारे हुए था, सीटी बजाता हुआ चला जा रहा था। कोई 'नगेन्द्र— क्षीरोद' कहता हुआ जा रहा था। देखा, कोई तमोगुण में पड़ा हुआ है, बांसुरी बजा रहा है, उसी के कारण कुछ अहंकार हो गया है। (द्विज से) जिसे ज्ञान हो गया है, उसे निन्दा की क्या परवाह है? उसकी बुद्धि कूटस्थ है— लोहार की निहाई जैसे, उस पर कितनी ही चोट पड़ चुकीं, परन्तु उसका कहीं कुछ नहीं बिगड़ा।

"मैंने (अमुक के) बाप को देखा, रास्ते से चला जा

रहा था।"

मास्टर– बड़ा सरल आदमी है।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु आँखें लाल रहती हैं।

श्रीरामकृष्ण कप्तान के यहाँ गए हुए थे। वहीं की बातें कर रहे हैं। जो लड़के श्रीरामकृष्ण के पास आते हैं, कप्तान ने उनकी निन्दा की थी। हाजरा महाशय ने कप्तान के पास उनकी निन्दा की होगी।

श्रीरामकृष्ण– कप्तान से बातें हो रही थीं। मैंने कहा, 'पुरुष और प्रकृति के सिवा और कुछ भी नहीं है। नारद ने कहा था, 'हे राम, जितने पुरुष देखते हो सब में तुम्हारा अंश है, और जितनी स्त्रियाँ देखते हो सब में सीता का अंश है।'

"कप्तान को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, 'आप ही को यथार्थ बोध हुआ है। सब पुरुष राम के अंश से हुए अतएव राम हैं और सब स्त्रियाँ सीता के अंश से हुईं अतएव सीता हैं।' फिर थोड़ी ही देर में वह लड़कों की निन्दा करने लगा। कहा, 'वे लोग अंग्रेजी पढ़ते हैं, जो पाते हैं वही खाते हैं,–– वे लोग आपके पास सर्वदा जाते हैं, यह अच्छा नहीं। इससे आप पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। हाजरा ही एक सच्चा आदमी है। लड़कों को अपने पास अधिक आने-जाने न दिया कीजिए। पहले तो मैंने कहा, 'आते हैं–– मैं क्या कहूँ?'

"फिर मैंने उसे खूब सुनाया। उसकी लड़की हँसने लगी। मैंने कहा, 'जिसमें विषय-बुद्धि है, उससे ईश्वर बहुत दूर हैं। विषय-बुद्धि अगर न रही तो ईश्वर उस आदमी की मुट्ठी में हैं–– बहुत निकट हैं।' कप्तान ने राखाल की बात पर कहा, 'वह सबके यहाँ खाता है।' हाजरा से उसने सुना होगा। तब

मैंने कहा, 'कोई चाहे लाख जप-तप करे, यदि उसमें विषय-बुद्धि है तो कहीं कुछ न होगा, और शूकर-मांस खाने पर भी अगर किसी का मन ईश्वर पर है तो वह मनुष्य धन्य है। क्रमशः ईश्वर की प्राप्ति उसे होगी ही। हाजरा इतना जप-तप करता है परन्तु भीतर दलाली करने की फिक्र में रहता है।'

"तब कप्तान ने कहा, 'हाँ, यह बात तो ठीक है।' मैंने कहा, 'अभी अभी तो तुमने कहा,— सब पुरुष राम के अंश से हुए अतएव राम हैं, और सब स्त्रियाँ सीता के अंश से हुईं अतएव सीता हैं, इस तरह कहकर अब ऐसी बात कह रहे हो?'

"कप्तान ने कहा, 'हाँ, ठीक है— मगर आप भी तो सबको प्यार नहीं करते।'

"मैंने कहा, 'आपो नारायण— सभी जल है, परन्तु कोई जल पिया जाता है, किसी से बरतन धोये जाते हैं, कोई शौच के काम आता है। यह जो तुम्हारी बीबी और लड़की बैठी हुई देख रहा हूँ, ये साक्षात् आनन्दमयी हैं।' कप्तान कहने लगा, 'हाँ हाँ, यह ठीक है।' तब मेरे पैर पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाने लगा।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण हँसने लगे। अब श्रीरामकृष्ण कप्तान के गुणों की बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— कप्तान में बहुत से गुण हैं। रोज नित्य-कर्म करता है, स्वयं देवता की पूजा करता है। नहाते समय कितने ही मंत्र जपा करता है। कप्तान एक बहुत बड़ा कर्मी है। पूजा, जप, आरती, पाठ, ये सब नित्य कर्म हमेशा किया करता है।

"फिर मैं कप्तान को सुनाने लगा। मैंने कहा, 'पढ़कर ही तुमने सब मिट्टी में मिलाया, अब हरगिज़ न पढ़ना।'

"मेरी अवस्था के सम्बन्ध में कप्तान ने कहा, 'यह आसमान

में चक्कर मारने वाला भाव है।' जीवात्मा और परमात्मा, जीवात्मा एक पक्षी है और परमात्मा आकाश—चिदाकाश। कप्तान कहता है, 'तुम्हारा जीवात्मा चिदाकाश में उड़ जाता है, इसीलिए समाधि होती है।' (हँसकर) कप्तान ने बंगालियों की निन्दा की। कहा, 'बंगाली बेवकूफ़ हैं। पास ही मणि है और उन लोगों ने न पहचाना!'

"कप्तान का बाप बड़ा भक्त था। अंग्रेजों की फौज में सूबेदार था, एक हाथ से शिव की पूजा करता था और दूसरे से बन्दूक चलाता था।

(मास्टर से) "परन्तु बात यह है कि विषय के कामों में दिन-रात फँसा रहता है। जब जाता हूँ, देखता हूँ, बीबी और बच्चे घेरे रहते हैं। और कभी कभी हिसाब की बही भी लोग ले आते हैं। परन्तु कभी कभी ईश्वर की ओर भी मन जाता है। जैसे सन्निपात का रोगी, विकार-ग्रस्त बना ही रहता है परन्तु कभी जब होश में आता है, तब 'पानी पिऊँगा, पानी पिऊँगा' कहकर चिल्ला उठता है। पर उसे जब तक पानी दो तब तक वह फिर बेहोश हो जाता है। इसीलिए मैंने उससे कहा, तुम कर्मी हो। कप्तान ने कहा, 'जी, मुझे तो पूजा आदि के करने में ही आनन्द आता है। जीवों के लिए कर्म के सिवा और उपाय भी नहीं है।'

"मैंने कहा, 'तो क्या सदा ही कर्म करते रहना होगा? मधु-मक्खी तभी तक भन्‌भन् करती है जब तक वह फूल पर नहीं बैठ जाती। मधु पीते समय भन्‌भन् करना छूट जाता है।' कप्तान ने कहा, 'आपकी तरह हम लोग पूजा और कर्म छोड़ थोड़े ही सकते हैं?' परन्तु उसकी बात कुछ ठीक नहीं रहती। कभी तो कहता है, 'यह सब जड़ है' और कभी कहता है, 'सब चैतन्य है।'

पर मैं कहता हूँ, 'जड़ कहाँ है ? सभी कुछ तो चैतन्य है।'"

श्रीरामकृष्ण मास्टर से पूर्ण की बात पूछने लगे।

श्रीरामकृष्ण– पूर्ण को एक बार और देख लूँ तो मेरी व्याकुलता कम हो जाय। कितना चतुर है!—मेरी ओर आकर्षण भी खूब है।

"वह कहता है, 'आपको देखने के लिए मेरे हृदय में भी न जाने कैसा हुआ करता है।'

(मास्टर से) "तुम्हारे स्कूल से उसके घरवालों ने उसे निकाल लिया, इससे तुम्हारे ऊपर कुछ बात तो न आएगी ?"

मास्टर– अगर वे (विद्यासागर) कहें—'तुम्हारे लिए उसको स्कूल से निकाल लेना पड़ा'— तो मेरे पास भी कुछ जवाब है।

श्रीरामकृष्ण– क्या कहोगे ?

मास्टर– यही कहूँगा कि साधुओं के साथ ईश्वर-चिन्ता होती है, यह कोई बुरा कर्म नहीं, और आप लोगों ने जो पुस्तक पढ़ाने के लिए दी है, उसी में है—ईश्वर को हृदय खोलकर प्यार करना चाहिए। (श्रीरामकृष्ण हँसने लगे)

श्रीरामकृष्ण– कप्तान के यहाँ छोटे नरेन्द्र को मैंने बुलाया। पूछा, 'तेरा घर कहाँ है ?—चल चलें।' उसने कहा, 'चलिए।' परन्तु डरता हुआ साथ जा रहा था कि कहीं बाप को खबर न लग जाय। (सब हँसते हैं)

(अखिल बाबू के पड़ोसी से) "क्यों जी, तुम बहुत दिनों से नहीं आए, सात-आठ महीने तो हुए होंगे ?"

पड़ोसी– जी, एक साल हुआ होगा।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारे साथ एक और आते थे।

पड़ोसी– जी हाँ, नीलमणि बाबू।

श्रीरामकृष्ण– वे सब क्यों नहीं आते ?— एक बार उनसे आने के लिए कहना— उनसे मुलाकात करा देना। (पड़ोसी के साथ के बच्चे को देखकर) यह बच्चा कौन है ?

पड़ोसी– यह आसाम का है।

श्रीरामकृष्ण– आसाम कहाँ है। किस ओर है ?

द्विज आशुतोष की बात करने लगे। कहा, 'आशुतोष के पिता उसका विवाह करने वाले हैं, परन्तु उसकी इच्छा नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण– देखो तो, उसकी इच्छा नहीं है और बलपूर्वक उसका विवाह किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण एक भक्त से बड़े भाई पर भक्ति करने के लिए कह रहे हैं। कहा— बड़ा भाई पिता के समान होता है, उसका बड़ा सम्मान करना चाहिए।

(२)

श्रीरामकृष्ण तथा श्रीराधिका-तत्त्व। जन्म-मृत्यु-तत्त्व

पण्डितजी बैठे हुए हैं। वे उत्तर प्रदेश के हैं।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर, मास्टर से)– भागवत के ये बड़े अच्छे पण्डित हैं।

मास्टर और भक्तगण एकदृष्टि से पण्डितजी को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (पण्डितजी से)– क्यों जी, योगमाया क्या है ?

पण्डितजी ने योगमाया की एक तरह की व्याख्या की।

श्रीरामकृष्ण– राधिका को योगमाया क्यों नहीं कहते ?

पण्डितजी ने इस प्रश्न का उत्तर भी एक खास तरह का दिया। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा— "राधिका विशुद्ध सत्त्व की थीं— वे प्रेममयी थीं। योगमाया के भीतर तीनों गुण हैं, सत्त्व, रज और तम; परन्तु राधिका के भीतर शुद्ध सत्त्व के सिवाय

और कुछ न था। (मास्टर से) नरेन्द्र अब श्रीमती को बहुत मानता है। वह कहता है, 'सच्चिदानन्द को प्यार करने की शिक्षा अगर किसी को लेनी है तो राधिका से लेनी चाहिए।'

"सच्चिदानन्द ने स्वयं ही अपना रसास्वादन करने के लिए राधिका की सृष्टि की थी। राधिका सच्चिदानन्द कृष्ण के अंग से निकली थीं। 'आधार' सच्चिदानन्द कृष्ण ही हैं और श्रीमती के रूप में स्वयं ही 'आधेय' हैं—अपना रसास्वादन करने के लिए अर्थात् सच्चिदानन्द को प्यार करके आनन्द-संभोग करने के लिए।

"इसीलिए वैष्णवों के ग्रन्थ में है, राधा ने जन्मग्रहण के बाद आँखें नहीं खोली थीं। यह भाव था कि इन आँखों से और किसे देखूँ? राधिका को देखने के लिए यशोदा जब कृष्ण को गोद में लेकर गई थीं, तब उन्होंने कृष्ण को देखने के लिए आँखें खोली थीं। कृष्ण ने क्रीड़ा के बहाने राधिका की आँखों पर हाथ फेरा था। (नये आए हुए आसाम के लड़के से) तूने देखा है, छोटा सा बच्चा दूसरों की आँखों पर हाथ फेरता है?"

पण्डितजी बिदा होने लगे।

पण्डितजी— मैं घर जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण— (सस्नेह)— कुछ प्राप्त हुआ?

पण्डितजी— भाव गिरा हुआ है— रोजगार नहीं चलता।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके पण्डितजी बिदा हुए।

श्रीरामकृष्ण— (मास्टर से)— देखो, विषयी लोगों और बच्चों में कितना अन्तर है। यह पण्डित दिन-रात रुपया-रुपया कर रहा है। पेट के लिए कलकत्ता आया हुआ है। नहीं तो घर के आदमियों को भोजन नहीं मिलता। इसीलिए इसके-उसके दरवाजे

दौड़ना पड़ता है। मन को एकाग्र करके ईश्वर की चिन्ता कब करे? परन्तु लड़कों में कामिनी और कांचन नहीं हैं। इच्छा करने से ही ये ईश्वर पर मन लगा सकते हैं।

"लड़के विषयी मनुष्यों का संग पसन्द भी नहीं करते। राखाल कहता था, 'विषयी आदमी को आते हुए देखकर भय होता है।'

"मुझे जब पहले पहल यह अवस्था हुई तब विषयी आदमी को आते हुए देखकर कमरे का दरवाजा बन्द कर लेता था।

"कामारपुकूर में श्रीराम मल्लिक को इतना मैं प्यार करता था, परन्तु जब वह यहाँ आया तब उसे छू भी न सका।

"श्रीराम से बचपन में बड़ा मेल था। दिन-रात हम दोनों एक साथ रहते थे। एक साथ सोते थे। तब सोलह-सत्रह साल की उम्र थी। लोग कहते थे, इनमें से अगर एक औरत होता तो साथ ही विवाह भी हो जाता! उसके घर में हम दोनों खेलते थे। उस समय की सब बातें याद आ रही हैं। उनके सम्बन्धी पालकी पर चढ़कर आया करते थे, कहार 'हिंजोड़ा हिंजोड़ा' कहा करते थे।

"श्रीराम को देखने के लिए कितने ही बार मैंने बुला भेजा। अब चानक में उसने दूकान खोली है। उस दिन आया था, यहाँ दो दिन रहा था।

"श्रीराम ने कहा, 'मेरे तो लड़के-बाले नहीं हुए, भतीजे को पालकर आदमी कर रहा था कि वह भी गुज़र गया।' कहते ही कहते श्रीराम ने लम्बी साँस छोड़ी, आँखों में पानी भर आया। भतीजे के लिए दुःख करने लगा।

"फिर उसने कहा, 'लड़का नहीं हुआ था, इसलिए स्त्री का पूरा प्यार उसी भतीजे पर पड़ा था। अब वह शोक से अधीर हो रही है। मैं उसे बहुत समझाता हूँ, पगली, अब शोक करने

से क्या होगा ? तू वाराणसी जाएगी ?'

"अपनी स्त्री को वह पागल कहता था। भतीजे के लिए दुःख करने से वह एकदम dilute हो गया (गल गया)।

"मैं उसे छू नहीं सका। देखा, उसमें कोई माद्दा (तत्त्व) नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण शोक के सम्बन्ध में यही सब बातें कह रहे हैं। इधर कमरे के उत्तर ओर वाले दरवाजे के पास वह शोक-विह्वल ब्राह्मणी खड़ी हुई है। ब्राह्मणी विधवा है। उसके एक मात्र लड़की थी। उसका विवाह बहुत बड़े घराने में हुआ था। उस लड़की के पति राजा की उपाधि पाये हुए हैं। कलकत्ते में रहते हैं, जमींदार हैं। लड़की जब अपने मायके आती थी, तब साथ सशस्त्र सिपाही पालकी के आगे-पीछे लगे हुए आते थे। माता की छाती उस समय गज भर की हो जाती थी। वह एकलौती लड़की, कुछ दिन हुए, गुज़र गई है।

ब्राह्मणी खड़ी हुई भतीजे के वियोग से राम मल्लिक की क्या दशा थी, सुन रही थी। कई दिनों से वह लगातार बागबाजार से पागल की तरह श्रीरामकृष्ण के पास दौड़ी हुई आती थी, इसलिए कि अगर कोई उपाय हो जाय—अगर वे इस दुर्जय शोक के निराकरण की कोई व्यवस्था कर दें। श्रीरामकृष्ण फिर बातचीत करने लगे—

(ब्राह्मणी और भक्तों से) "एक आदमी यहाँ आया था। कुछ देर बैठने के बाद कहा, 'जाऊँ, जरा बच्चे का चांदमुख भी देखूँ।'

"तब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने कहा, 'क्या कहा रे, उठ यहाँ से, ईश्वर के चांदमुख से बढ़कर बच्चे का चांदमुख ?'

(मास्टर से) "बात यह है कि ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य। जीव-जगत्, घर-द्वार, लड़के-बच्चे, यह सब बाजीगर का इन्द्रजाल है। बाजीगर डंडे से ढोल पीटता है और कहता है, 'देख तमाशा मेरा—तू देख तमाशा मेरा।' बस ढक्कन खोला नहीं कि कुछ पक्षी उसमें से निकलकर आकाश में उड़ गए। परन्तु बाजीगर ही सत्य है और सब अनित्य—अभी है, थोड़ी देर में गायब।

"कैलाश में शिव बैठ हुए थे। पास ही नन्दी थे। उसी समय एक बहुत बड़ा शब्द हुआ। नन्दी ने पूछा, 'भगवन्, यह कैसी आवाज़ है?' शिव ने कहा, 'रावण पैदा हुआ है, यह उसी की आवाज़ है।' कुछ देर बाद फिर एक आवाज़ आई। नन्दी ने पूछा, 'यह कैसी आवाज़ है?' शिव ने हँसकर कहा, 'यह रावण मारा गया।' जन्म और मृत्यु, यह सब इन्द्रजाल-सा है। अभी है, अभी गायब! ईश्वर ही सत्य हैं और सब अनित्य। पानी ही सत्य है, पानी के बुलबुले अभी हैं, अभी नहीं—बुलबुले पानी में ही मिल जाते हैं,—जिस जल से उनकी उत्पत्ति होती है, उसी जल में अन्त में वे लीन भी हो जाते हैं।

"ईश्वर महासमुद्र हैं, जीव बुलबुले; उसी में पैदा होते हैं, उसी में लीन हो जाते हैं। लड़के-बच्चे एक बड़े बुलबुले के साथ मिले हुए कई छोटे छोटे बुलबुले हैं।

"ईश्वर ही सत्य हैं। उन पर कैसे भक्ति हो, उन्हें किस तरह प्राप्त किया जाय, इस समय यही चेष्टा करो। शोक करने से क्या होगा?"

सब चुप हैं। ब्राह्मणी ने कहा, 'तो अब मैं जाऊँ?'

श्रीरामकृष्ण—(ब्राह्मणी से, सस्नेह)—तुम इस समय जाओगी?

धूप बहुत तेज़ है, क्यों, इन लोगों के साथ गाड़ी पर जाना।

आज जेठ की संक्रान्ति है। दिन के तीन-चार बजे का समय होगा। गरमी बड़े ज़ोर की पड़ रही है। एक भक्त श्रीरामकृष्ण के लिए चन्दन का एक नया पंखा लाए हैं। श्रीरामकृष्ण पंखा पाकर बड़े प्रसन्न हुए, कहा, "वाह-वाह। ॐ तत् सत् काली!" यह कहकर पहले देवताओं को पंखा झलने लगे। फिर मास्टर से कह रहे हैं, 'देखो, कैसी हवा आती है!' मास्टर भी प्रसन्न होकर देख रहे हैं।

(३)

दास 'मैं'। अवतारवाद

बच्चे को साथ लेकर कप्तान आए हैं। श्रीरामकृष्ण ने किशोरी से कहा, इन्हें सब दिखा लाओ-- ठाकुरबाड़ी आदि।

श्रीरामकृष्ण कप्तान से बातचीत कर रहे हैं। मास्टर, द्विज आदि भक्त जमीन पर बैठे हुए हैं। दमदम के मास्टर भी आए हैं। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर उत्तर की ओर मुँह किए बैठे हैं। कप्तान से उन्होंने तखत के एक ओर अपने सामने बैठने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण– इन लोगों से तुम्हारी बातें कह रहा था। तुममें कितनी भक्ति है, कितनी पूजा करते हो, कितने प्रकार से आरती करते हो, यह सब बतला रहा था।

कप्तान (लज्जित होकर)– मैं क्या पूजा और आरती करूँगा? मैं क्या हूँ?

श्रीरामकृष्ण– जो 'मैं' कामिनी और कांचन में पड़ा हुआ है, उसी 'मैं' में दोष है। मैं ईश्वर का दास हूँ, इस 'मैं' में दोष नहीं। और बालक का 'मैं'— बालक किसी गुण के वश नहीं

है; अभी लड़ाई कर रहा है, देखते-देखते, मेल हो गया। कितने ही यत्न से अभी अभी खेलने का घरौंदा बनाया, फिर बात की बात में उसे बिगाड़ डाला! दास 'मैं' और बच्चे के 'मैं' में दोष नहीं है। यह 'मैं' 'मैं' में नहीं गिना जाता, जैसे मिश्री मिठाई में नहीं गिनी जाती—दूसरी मिठाई से बीमारी फैलती है, परन्तु मिश्री अम्लनाश करती है—जैसे ओंकार की गणना शब्दों में नहीं है।

"इस अहं से ही सच्चिदानन्द को प्यार किया जाता है। अहं जाने का है ही नहीं—इसीलिए दास 'मैं' और भक्त का 'मैं' है। नहीं तो आदमी क्या लेकर रहे? गोपियों का प्रेम कितना गहरा था! (कप्तान से) तुम गोपियों की बात कुछ कहो—तुम इतना भागवत पढ़ते हो।"

कप्तान– श्रीकृष्ण वृन्दावन में थे, कोई ऐश्वर्य नहीं था, तो भी गोपियाँ उन्हें प्राणों से अधिक प्यार करती थीं। इसीलिए श्रीकृष्ण ने कहा था, 'मैं कैसे उनका ऋण शोध करूँगा, जिन गोपियों ने मुझे सब कुछ समर्पित कर दिया है—देह, मन, चित्त?'

श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। 'गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द' कहकर भावाविष्ट हो रहे हैं। प्रायः बाह्यज्ञान-शून्य हैं। कप्तान विस्मयावेश में 'धन्य है, धन्य है' कह रहे हैं।

कप्तान तथा अन्य भक्तगण श्रीरामकृष्ण की यह अद्भुत प्रेमावस्था देख रहे हैं। जब तक वे प्राकृत दशा में न आ जायँ, तब तक वे चुपचाप एकदृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– इसके बाद?

कप्तान– वे योगियों के लिए भी अगम्य हैं, 'योगिभिरगम्यम्'। आपकी तरह योगियों के लिए भी अगम्य हैं, गोपियों के लिए

गम्य हैं। योगियों ने वर्षों तक योग-साधना करके जिन्हें नहीं पाया, गोपियों ने अनायास ही उन्हें प्राप्त कर लिया।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– गोपियों के पास भोजन-पान, हँसना-रोना, क्रीड़ा-कौतुक, यह सब हो चुका।

एक भक्त ने कहा, 'श्रीयुत बंकिम ने कृष्ण-चरित्र लिखा है।'

श्रीरामकृष्ण– बंकिम कृष्ण को मानता है, श्रीमती को नहीं मानता।

कप्तान– वे शायद श्रीकृष्ण-लीला नहीं मानते।

श्रीरामकृष्ण– सुना, वह कहता है, काम आदि की ज़रूरत है!

दमदम के मास्टर– 'नवजीवन' में बंकिम ने लिखा है, धर्म की आवश्यकता शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की स्फूर्ति के लिए है।

कप्तान– 'कामादि की आवश्यकता है'—यह कहते हैं, फिर भी लीला नहीं मानते! ईश्वर मनुष्य के रूप में वृन्दावन में आए थे, पर राधा और कृष्ण की लीला हुई थी यह नहीं मानते?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– ये सब बातें संवाद-पत्रों में नहीं हैं, फिर किस तरह मान ली जायँ?

"एक ने अपने मित्र से आकर कहा, 'देखो जी, कल उस मुहल्ले से मैं जा रहा था, उसी समय देखा, वह मकान भरभराकर गिर गया।' मित्र ने कहा, 'ज़रा ठहरो, अखबार देखूँ।' घर के भरभराकर गिरने की बात अखबार में तो कहीं कुछ न थी। तब उस आदमी ने कहा, 'क्यों जी, अखबार में तो कहीं कुछ नहीं लिखा। तुम्हारा कहना सच नहीं दिखता।' उस आदमी ने कहा, 'मैं स्वयं देखकर आ रहा हूँ।' उसने कहा, 'यह हो सकता है, परन्तु अखबार में यह बात नहीं लिखी, इसलिए लाचार

होकर मुझे इस पर विश्वास नहीं आता।' ईश्वर आदमी होकर लीला करते हैं, यह बात कैसे वे लोग मानेंगे ? यह बात उनकी अंग्रेजी शिक्षा के घेरे में नहीं जो है ! पूर्ण अवतार का समझाना बहुत मुश्किल है, क्यों जी ? साढ़े तीन हाथ के भीतर अनन्त का समा जाना ?"

कप्तान– 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहते समय पूर्ण और अंश इस तरह कहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– पूर्ण और अंश, जैसे अग्नि और उसका स्फुलिंग। अवतार भक्तों के लिए हैं–– ज्ञानी के लिए नहीं। अध्यात्म-रामायण में है, 'हे राम! तुम्हीं व्याप्य हो, तुम्हीं व्यापक हो'–– 'वाच्यवाचकभेदेन त्वमेव परमेश्वर।'

कप्तान– वाच्य-वाचक अर्थात् व्याप्य-व्यापक।

श्रीरामकृष्ण– व्यापक अर्थात् जैसे एक छोटासा रूप–– जैसे अवतार आदमी का रूप धारण करते हैं।

(४)

अहंकार ही विनाश का कारण तथा ईश्वर-लाभ में विघ्न है

सब बैठे हुए हैं। कप्तान और भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बातचीत कर रहे हैं। इसी समय ब्राह्मसमाज के जयगोपाल सेन और त्रैलोक्य आए, प्रणाम करके उन्होंने आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण हँसते हुए त्रैलोक्य की ओर देखकर बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अहंकार है, इसीलिए तो ईश्वर के दर्शन नहीं होते। ईश्वर के घर के दरवाजे के रास्ते में अहंकार रूपी ठूँठ पड़ा हुआ है। इस ठूँठ के उस पार गए बिना कमरे में प्रवेश नहीं किया जा सकता।

" एक आदमी प्रेतसिद्ध हो गया था। सिद्ध होकर उसने पुकारा नहीं कि भूत आ गया। आकर कहा, 'बतलाओ, कौन सा काम करना होगा? अगर नहीं कह सकोगे तो तुम्हारी गरदन मरोड़ दूँगा।' उस आदमी ने, जितने काम थे, एक एक करके सब करा लिए। फिर उसे कोई नया काम ही नहीं सूझता था। प्रेत ने कहा, 'अब तुम्हारी गरदन मरोड़ता हूँ।' उसने कहा, 'ज़रा ठहरो, अभी आया।' इतना कहकर वह अपने गुरु के पास गया और उनसे कहा, 'महाराज, मैं बड़ी विपत्ति में हूँ,' और सब हाल कह सुनाया। तब गुरु ने कहा, 'तू एक काम कर, उसे एक छल्लेदार बाल सीधा करने के लिए दे।' प्रेत दित-रात वही काम करने लगा। पर छल्लेदार बाल भी कभी सीधा होता है? ज्यों का त्यों टेढ़ा बना रहा। इसी तरह अहंकार भी देखते ही देखते गया और देखते ही देखते फिर आ गया।

" अहंकार का त्याग हुए बिना ईश्वर की कृपा नहीं होती।

" जिस मकान में कोई काम-काज (ब्राह्मण-भोजन, विवाह आदि) रहता है तो जब तक भाण्डार में कोई भण्डारी बना रहता है, तब तक मालिक का चक्कर उधर नहीं लगता। पर जब भण्डारी स्वयं भाण्डार छोड़कर चला जाता है, तब मालिक उस भाण्डार-घर में ताला लगा देता है और उसका इन्तजाम खुद करने लगता है।

" ईश्वर मानो बच्चे का वली— बच्चा अपनी जायदाद खुद नहीं संभाल सकता। राजा उसका भार लेते हैं। अहंकार के गए बिना ईश्वर भार नहीं लेते।

" वैकुण्ठ में श्रीलक्ष्मी और नारायण बैठे हुए थे। एकाएक नारायण उठकर खड़े हो गए। श्रीलक्ष्मी चरणसेवा कर रही

थीं। उन्होंने पूछा, 'महाराज, कहाँ चले ?' नारायण ने कहा, 'मेरा एक भक्त बड़ी विपत्ति में पड़ गया है, उसकी रक्षा के लिए जा रहा हूँ।' यह कहकर नारायण चले गए। परन्तु उसी समय फिर आ गए। लक्ष्मी ने पूछा, 'भगवन्, इतनी जल्दी कैसे आ गए ?' नारायण ने हँसकर कहा, 'प्रेम से विह्वल वह भक्त रास्ते से चला जा रहा था। रास्ते में धोबियों ने सूखने के लिए कपड़े फैलाए थे। वह भक्त उन कपड़ों के ऊपर से जा रहा था, यह देखकर लाठी लेकर धोबी लोग मारने के लिए चले, इसीलिए मैं गया था।' श्रीलक्ष्मी ने पूछा, 'तो इतनी जल्दी फिर कैसे आ गए ?' नारायण ने हँसते हुए कहा, 'जाकर मैंने देखा, उस भक्त ने धोबियों को मारने के लिए खुद ही पत्थर उठा लिया है। (सब हँसते हैं) इसीलिए मैं फिर नहीं गया।'

"केशव सेन से मैंने कहा था, 'अहं' का त्याग करना होगा। इस पर केशव ने कहा, 'तो महाराज, दल फिर कैसे रह सकता है ?'

"मैंने कहा, यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है,— तुम 'कच्चे मैं' का त्याग करो,— जो 'मैं' कामिनी और कांचन की ओर ले जाता है। परन्तु मैं 'पक्के मैं'— 'भक्त के मैं'— 'दास के मैं' का त्याग करने के लिए नहीं कहता। मैं ईश्वर का दास हूँ,— ईश्वर की सन्तान हूँ, इसका नाम है 'पक्का मैं'। इसमें कोई दोष नहीं।"

त्रैलोक्य– अहंकार का जाना बहुत कठिन है। लोग सोचते हैं, अहंकार मुझमें नहीं है।

श्रीरामकृष्ण– कहीं अहंकार न हो जाय, इसलिए गौरी 'मैं' का प्रयोग ही नहीं करता था— 'ये' कहता था ! मैं भी उसकी देखादेखी 'ये' कहने लगा, 'मैंने खाया है' यह न कहकर कहता था, 'इसने खाया है।' यह देखकर एक दिन मथुर बाबू ने कहा,

'यह क्या है बाबा— तुम ऐसा क्यों कहते हो ? यह सब उन लोगों को कहने दो, उनमें अहंकार है। तुम्हारे कुछ अहंकार थोड़े ही है, तुम्हें इस तरह बोलने की कोई जरूरत नहीं।'

"केशव से मैंने कहा, 'मैं' जानें का तो है ही नहीं, अतएव उसे दासभाव से पड़ा रहने दो— जैसे दास पड़ा रहता है। प्रह्लाद दो भावों से रहते थे। 'कभी सोऽहम्' का अनुभव करते थे— तुम्हीं 'मैं' हो— मैं ही 'तुम' हूँ। फिर जब अहं-बुद्धि आती थी, तब देखते थे, मैं दास हूँ— तुम प्रभु हो। एक बार पक्का सोऽहम् अगर हो गया, तो फिर दास-भाव से रहना आसान हो जाता है— मैं तुम्हारा दास हूँ इस भाव से।

(कप्तान से) "ब्रह्मज्ञान होने पर कुछ लक्षणों से समझ में आ जाता है। श्रीमद्भागवत में ज्ञानी की चार अवस्थाओं की बातें लिखी हैं— पहली बालवत्, दूसरी जड़वत्, तीसरी उन्मत्तवत्, चौथी पिशाचवत्। पाँच साल के लड़के जैसी अवस्था हो जाती है। फिर कभी वह पागल की तरह व्यवहार करता है।

"कभी जड़ की तरह रहता है। इस अवस्था में वह कर्म नहीं कर सकता, कर्म छूट जाते हैं। परन्तु अगर कहो कि जनक आदि ने तो कर्म किया था, तो असल बात यह है कि उस समय के आदमी कर्म-चारियों पर भार देकर निश्चिन्त रहते थे, और उस समय के आदमी भी बड़े विश्वासी होते थे।"

श्रीरामकृष्ण कर्मत्याग की बातें करने लगे। और जिनकी काम पर आसक्ति है, उन्हें अनासक्त होकर कर्म करने का उपदेश देने लगे।

श्रीरामकृष्ण– ज्ञान के होने पर मनुष्य अधिक कर्म नहीं कर सकता।

त्रैलोक्य– क्यों ? पवहारी बाबा इतने योगी तो हैं, परन्तु लोगों के झगड़े और विवादों का फैसला कर दिया करते हैं—यहाँ तक कि मुकदमे का भी फैसला कर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, यह ठीक है, दुर्गाचरण डाक्टर इतना शराबी तो है, परन्तु काम के समय उसके होश दुरुस्त ही रहते हैं— चिकित्सा के समय किसी तरह की भूल नहीं होने पाती। भक्ति प्राप्त करके कर्म किया जाय तो कोई दोष नहीं होता। परन्तु है यह बड़ी कठिन बात, बड़ी तपस्या चाहिए।

"ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं, मैं यंत्र-स्वरूप हूँ। कालीमन्दिर के सामने सिक्ख लोग कह रहे थे, 'ईश्वर दयामय हैं।' मैंने पूछा, 'दया किन पर करते हैं ?'

"सिक्खों ने कहा, 'महाराज, हम सब पर उनकी दया है।'

"मैंने कहा, 'सब उनके लड़के हैं तो लड़कों पर फिर दया कैसी ? वे अपने लड़कों की देखरेख कर रहे हैं, वे नहीं देखेंगे तो क्या अड़ोसी-पड़ोसी आकर देखेंगे ?' अच्छा देखो, जो लोग ईश्वर को दयामय कहते हैं वे यह नहीं समझते कि वे किसी दूसरे के लड़के नहीं, ईश्वर की ही सन्तान हैं।"

कप्तान– जी हाँ, ठीक है, पर वे ईश्वर को अपना नहीं मानते।

श्रीरामकृष्ण– तो क्या हम ईश्वर को दयामय न कहें ? अवश्य कहना चाहिए— जब तक हम साधना की अवस्था में हैं। उन्हें प्राप्त कर लेने पर अपने माँ-बाप पर जो भाव रहता है, वही उन पर भी हो जाता है। जब तक ईश्वर-लाभ नहीं होता, तब तक जान पड़ता है, हम बहुत दूर के आदमी हैं,— दूसरे के बच्चे हैं।

"साधना की अवस्था में उनसे सब कुछ कहना चाहिए। हाजरा ने एक दिन नरेन्द्र से कहा था, 'ईश्वर अनन्त हैं। उनका ऐश्वर्य

अनन्त है। वे क्या कभी सन्देश और केले खाने लगेंगे ? या गाना सुनेंगे ? यह सब मन की भूल है।'

"सुनते ही नरेन्द्र मानो दस हाथ धँस गया। तब मैंने हाजरा से कहा, 'तुम कैसे पाजी हो? अगर बाल-भक्तों से ऐसी बात कहोगे तो वे ठहरेंगे कहाँ ?' भक्ति के जाने पर आदमी फिर क्या लेकर रहे ? उनका ऐश्वर्य अनन्त है, फिर भी वे भक्ताधीन हैं, बड़े आदमी का दरवान बाबुओं की सभा में एक ओर खड़ा हुआ है, हाथ में एक चीज़ है— कपड़े से ढकी हुई, वह बड़े संकोच भाव से खड़ा हुआ है। बाबू ने पूछा, 'क्यों दरवान, तुम्हारे हाथ में यह क्या है ?' दरवान ने संकोच के साथ एक शरीफा निकालकर बाबू के सामने रखा— उसकी इच्छा थी कि बाबू उसे खायँ। दरवान का भक्तिभाव देखकर बाबू ने शरीफा बड़े आदर के साथ ले लिया, और कहा, 'वाह ! बड़ा अच्छा शरीफा है। तुम कहाँ से इतना कष्ट करके इसे लाए ?'

"वे भक्ताधीन हैं। दुर्योधन ने इतनी खातिर की और कहा, 'महाराज, यहीं जलपान कीजिए।' परन्तु श्रीठाकुरजी विदुर की कुटी पर चले गए। वे भक्तवत्सल हैं, विदुर का शाकान्न बड़े प्रेम से अमृत समझकर खाया।

"पूर्ण ज्ञानी का एक लक्षण और है,— पिशाचवत्— न खाने-पीने का विचार है, न शुचिता, न अशुचिता का। पूर्ण ज्ञानी और पूर्ण मूर्ख, दोनों के बाहरी लक्षण एक ही तरह के हैं। पूर्ण ज्ञानी को देखो, गंगा नहाकर कभी मंत्र जपता ही नहीं; ठाकुर-पूजा करते समय सब फूल एक साथ ठाकुरजी के पैरों पर चढ़ा दिए और चला आया, कोई तंत्र-मंत्र नहीं जपा।

"जितने दिन संसार में भोग करने की इच्छा रहती है, उतने

दिनों तक मनुष्य कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। जब तक भोग की आशा है, तब तक कर्म हैं।

"एक पक्षी जहाज़ के मस्तूल पर अन्यमनस्क बैठा था। जहाज़ गंगागर्भ में था। धीरे-धीरे महासमुद्र में आ गया तव पक्षी को होश आया, उसने चारों ओर देखा, कहीं भी किनारा दिखलाई नहीं पड़ता था। तब किनारे की खोज करने के लिए वह उत्तर की ओर उड़ा। बहुत दूर जाकर थक गया। फिर भी किनारा उसे नहीं मिला। तब क्या करे, लौटकर फिर मस्तूल पर आकर बैठा। कुछ देर के बाद, वह पक्षी फिर उड़ा, इस बार पूर्व की ओर गया। उस तरफ भी उसे कहीं छोर न मिला। चारों ओर समुद्र ही समुद्र था। तब बहुत ही थककर फिर जहाज़ के मस्तूल पर आ बैठा। फिर कुछ विश्राम करके दक्षिण ओर गया, पश्चिम ओर गया। पर उसने देखा कि कहीं ओर-छोर ही नहीं है। तव लौटकर वह फिर उसी मस्तूल पर बैठ गया। इसके बाद फिर नहीं उड़ा। निश्चेष्ट होकर बैठा रहा। तब मन में किसी प्रकार की चंचलता या अशान्ति नहीं रही। निश्चिन्त हो गया, फिर कोई चेष्टा भी नहीं रही।"

कप्तान– वाह! कैसा दृष्टान्त है!

श्रीरामकृष्ण– संसारी आदमी सुख के लिए जब चारों ओर भटके फिरते हैं, और नहीं पाते, तो अन्त में थक जाते हैं। जब कामिनी और कांचन पर आसक्त होकर केवल दुःख ही दुःख उनके हाथ लगता है, तभी उनमें वैराग्य आता है—तभी त्याग का भाव पैदा होता है। बहुतेरे ऐसे हैं जो बिना भोग किए त्याग नहीं कर सकते। कुटीचक और बहूदक, ये दो होते हैं। साधकों में भी बहुतेरे ऐसे हैं, जो अनेक तीर्थों की यात्रा किया करते हैं।

एक जगह पर स्थिर होकर नहीं बैठ सकते। बहुत से तीर्थों का उदक अर्थात् पानी पीते हैं। जब घूमते हुए उनका क्षोभ मिट जाता है तब किसी एक जगह कुटी बनाकर स्थिर हो जाते हैं और निश्चिन्त तथा चेष्टाशून्य होकर परमात्मा का चिन्तन किया करते हैं।

"परन्तु संसार में कोई भोग भी क्या करेगा?—कामिनी और कांचन का भोग? वह तो क्षणिक आनन्द है। अभी है, अभी नहीं।

"प्रायः मेघ छाए रहते हैं, वर्षा लगी हुई है, सूर्य नहीं दीख पड़ता। दुःख का भाग ही अधिक है। कामिनी-कांचनरूपी मेघ सूर्य को देखने नहीं देता।

"कोई कोई मुझसे पूछते हैं, 'महाराज, ईश्वर ने क्यों इस तरह के संसार की सृष्टि की? हम लोगों के लिए क्या कोई उपाय नहीं है?'

(५)

उपाय—व्याकुलता। त्याग

"मैं कहता हूँ, उपाय है क्यों नहीं? उनकी शरण में जाओ और व्याकुल होकर प्रार्थना करो, ताकि अनुकूल वायु चलने लगे, जिससे शुभ योग आ जायँ। व्याकुल होकर पुकारोगे तो वे अवश्य सुनेंगे।

"एक के लड़के का अब-तब हो रहा था। वह आदमी व्याकुल होकर इधर-उधर उपाय पूछता फिरता था। एक ने कहा, 'तुम अगर एक उपाय कर सको तो लड़का अच्छा हो जाएगा। अगर स्वाति नक्षत्र का पानी मुर्दे की खोपड़ी पर गिरे और उसी में रुक जाय, फिर अगर एक मेंढक उस पानी को पीने के लिए बढ़े और साँप उसे खदेड़े, खदेड़कर पकड़ते समय मेंढक उछलकर उस

खोपड़ी को पार कर जाय और साँप का विष उसी खोपड़ी में गिर जाय, और वह विषैला पानी अगर रोगी को थोड़ासा पिला सको, तो वह अच्छा हो सकता है।' वह आदमी उसी समय स्वाति नक्षत्र में उस दवा की तलाश के लिए निकला। उसी समय पानी बरसना भी शुरू हो गया। तब वह व्याकुल होकर ईश्वर से कहने लगा, 'भगवन्, अब मुर्दे की खोपड़ी भी कहीं से ला दो।' खोजते हुए उसे मुर्दे की खोपड़ी भी मिल गई। उसमें स्वाति नक्षत्र का पानी भी पड़ा हुआ था। तब वह प्रार्थना करके कहने लगा, 'जय हो तुम्हारी भगवन्, अब और जो कुछ रह गया है वह भी सब जुटा दो— मेंढक और साँप।' उसकी जैसी व्याकुलता थी, वैसी ही शीघ्रता से सब सामान भी इकट्ठे होते गए। देखते ही देखते एक साँप मेंढक का पीछा करते हुए आने लगा। और काटते समय उसका विष भी उसी खोपड़ी में गिर गया।

"ईश्वर की शरण में जाकर, उन्हें व्याकुल होकर पुकारने पर वे उस पुकार पर अवश्य ही ध्यान देंगे,— सब सुयोग वे स्वयं जुटा देंगे।"

कप्तान– कैसा सुन्दर दृष्टान्त है!

श्रीरामकृष्ण– हाँ, वे स्वयं सब सुयोग जुटा देते हैं। कभी ऐसा भी होता है कि विवाह नहीं हुआ, सब मन ईश्वर पर चला गया। कभी यह होता है कि भाई रोजगार करते हैं या एक लड़का तैयार हो जाता है, तो फिर उस व्यक्ति को स्वयं संसार का काम नहीं संभालना पड़ता, तब वह अनायास ही सोलहों आना मन ईश्वर को समर्पित कर सकता है। परन्तु बात यह है कि कामिनी और कांचन का त्याग हुए बिना कहीं कुछ नहीं होता। त्याग होने पर ही अज्ञान और अविद्या का नाश होता है। आतशी शीशे

पर सूर्य की किरणों के पड़ने पर कितनी चीज़ें जल जाती हैं, परन्तु कमरे के भीतर छाया है, वहाँ आतशी शीशे के ले जाने पर यह बात नहीं होती। घर छोड़कर बाहर निकलकर खड़े होना चाहिए।

"परन्तु ज्ञान-लाभ के बाद कोई कोई संसार में रहते भी हैं। वे घर और बाहर दोनों देखते हैं। ज्ञान का प्रकाश संसार पर पड़ता है, इसीलिए वे भला-बुरा, नित्य-अनित्य, सब उसके प्रकाश में देख सकते हैं।

"जो अज्ञानी हैं, ईश्वर को नहीं मानते और संसार में रहते हैं उनका रहना मिट्टी के घरों में ही रहने के समान है। क्षीण प्रकाश से वे घर का भीतरी हिस्सा ही देखते हैं। परन्तु जिन्होंने ज्ञान-लाभ कर लिया है, ईश्वर को जान लिया है, और फिर संसार में रहते हैं, वे मानो शीशे के मकान में रहते हैं। वे घर के भीतर भी देखते हैं और बाहर भी। ज्ञान-सूर्य का प्रकाश घर के भीतर खूब प्रवेश करता है। वह आदमी घर के भीतर की चीज़ें बहुत ही स्पष्ट देखता है— कौनसी चीज़ अच्छी है, कौन बुरी; क्या नित्य है और क्या अनित्य, यह सब वह स्पष्ट रीति से देख लेता है।

"ईश्वर ही कर्ता हैं, और सब उनके यंत्र की तरह हैं।

"इसीलिए ज्ञानी के लिए अहंकार करने की जगह नहीं है। जिसने महिम्न-स्तव लिखा था, उसे अहंकार हो गया था। शिव के नन्दी बैल ने जब दाँत दिखलाए तब उसका अहंकार गया था। उसने देखा, एक एक दाँत उसके स्तव का एक एक मंत्र था। इसका अर्थ क्या है, जानते हो? ये सब मंत्र अनादि काल से हैं, तुमने इनका उद्धार मात्र किया है।

"गुरुआई करना अच्छा नहीं। ईश्वर का आदेश पाए बिना

कोई आचार्य नहीं हो सकता। जो स्वयं कहता है, मैं गुरु हूँ, उसकी बुद्धि में नीचता है। तराजू तुमने देखा है न? जिधर हलका होता है, उधर ही का पलड़ा उठ जाता है। जो आदमी खुद ऊँचा होना चाहता है, वह हलका है। सभी गुरु बनना चाहते हैं! — शिष्य कहीं खोजने पर भी नहीं मिलता।"

त्रैलोक्य छोटे तखत के उत्तर ओर बैठे हुए हैं। त्रैलोक्य गाना गाएँगे। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'वाह! तुम्हारा गाना कितना सुन्दर होता है!' त्रैलोक्य तानपूरा लेकर गा रहे हैं—

गाना—तुमसे हमने दिल लगाया जो कुछ है सो तू ही है।

गाना—तुम मेरे सर्वस्व हो— प्राणाधार हो— सार वस्तु के सार भाग हो।

गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण भाव में मग्न हो रहे हैं। कह रहे हैं— 'वाह! तुम्हीं सब कुछ हो— वाह!!'

गाना समाप्त हो गया। छः बज गए। श्रीरामकृष्ण हाथ-मुँह धोने के लिए झाऊतल्ले की ओर जा रहे हैं। साथ में मास्टर हैं।

श्रीरामकृष्ण हँस-हँसकर बातें करते हुए जा रहे हैं। एकाएक मास्टर से पूछा, "क्यो जी, तुम लोगों ने खाया नहीं? और उन लोगों ने भी नहीं खाया?"

आज सन्ध्या के बाद श्रीरामकृष्ण ने कलकत्ता जाने का सोचा है। झाऊतल्ले से लौटते समय मास्टर से कह रहे हैं— 'परन्तु किसकी गाड़ी में जाऊँ?'

शाम हो गई। श्रीरामकृष्ण के कमरे में दिया जलाया गया और धूना दिया जा रहा है। कालीमन्दिर में सब जगह दिये जल गए। शहनाई बज रही है। मन्दिरों में आरती होगी।

तखत पर बैठे हुए श्रीरामकृष्ण नाम-कीर्तन करके माँ का ध्यान

कर रहे हैं। आरती हो गई। कुछ देर बाद कमरे में श्रीरामकृष्ण इधर-उधर टहल रहे हैं। बीच-बीच में भक्तों के साथ बातचीत कर रहे हैं, और कलकत्ता जाने के लिए मास्टर से परामर्श कर रहे हैं।

इतने में ही नरेन्द्र आए। साथ शरद तथा और भी दो-एक लड़के थे। उन लोगों ने आते ही भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

नरेन्द्र को देखकर श्रीरामकृष्ण का स्नेह उमड़ चला। जिस तरह छोटे बच्चे को प्यार किया जाता है, श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के मुख पर हाथ फेरकर उसी तरह प्यार करने लगे। स्नेहपूर्ण स्वरों में कहा–– तू आ गया?

कमरे के भीतर श्रीरामकृष्ण पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए हैं। नरेन्द्र तथा अन्य लड़के श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके पूर्व की ओर मुँह करके उनके सामने वार्तालाप कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण मास्टर की ओर मुँह फेरकर कह रहे हैं, "नरेन्द्र आया है तो अब कैसे जाना होगा? आदमी भेजकर उसे बुला लिया है। अब कैसे जाना होगा? तुम क्या कहते हो?"

मास्टर– जैसी आपकी आज्ञा, चाहे तो आज रहने दिया जाय।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, कल चला जाएगा नाव से या गाड़ी से। (दूसरे भक्तों से) तुम आज जाओ–– रात हो गई है।

भक्त एक एक करके प्रणाम कर बिदा हुए।

परिच्छेद १२

रथ-यात्रा के दिन बलराम के मकान में

(१)

पूर्ण, छोटे नरेन्द्र, गोपाल की माँ

श्रीरामकृष्ण बलराम के बैठकखाने में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। आज आषाढ़ की शुक्ला प्रतिपदा है, सोमवार, जुलाई १८८५, सबेरे ९ बजे का समय होगा।

कल रथ-यात्रा है। रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में बलराम ने श्रीरामकृष्ण को आमंत्रित किया है। उनके घर में श्रीजगन्नाथजी की नित्य सेवा हुआ करती है। एक छोटा सा रथ भी है। रथ-यात्रा के दिन रथ बाहर के बरामदे में चलाया जाएगा।

श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ बातचीत कर रहे हैं। पास ही नारायण, तेजचन्द्र तथा अन्य दूसरे भक्त भी हैं। पूर्ण के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। पूर्ण की उम्र पन्द्रह साल की होगी। श्रीरामकृष्ण उन्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– अच्छा, वह किस रास्ते से आकर मिलेगा ? द्विज और पूर्ण के मिला देने का भार तुम्हीं पर रहा।

"एक ही प्रकृति तथा एक ही उम्र के आदमियों को मैं मिला दिया करता हूँ। इसका एक विशेष अर्थ है। इससे दोनों की उन्नति होती है। पूर्ण में कैसा अनुराग है, तुमने देखा ?"

मास्टर– जी हाँ, मैं ट्राम पर जा रहा था, छत से मुझे देखकर दौड़ा हुआ आया और व्याकुल होकर वहीं से उसने नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण– (अश्रुपूर्ण नेत्रों से)– अहाहा ! मतलब यह कि तुमने परमार्थ-लाभ के लिए उसका मेरे साथ संयोग करा दिया

है। ईश्वर के लिए व्याकुल हुए बिना ऐसा नहीं होता।

"नरेन्द्र, छोटा नरेन्द्र और पूर्ण, इन तीनों की सत्ता पुरुष-सत्ता है। भवनाथ में यह बात नहीं--- उसके स्वभाव में जनानापन है, प्रकृति-भाव है।

"पूर्ण की जैसी अवस्था है, इससे बहुत सम्भव है, उसकी देह का नाश बहुत जल्द हो जाय--- इस विचार से कि ईश्वर तो मिल गए, अब किसलिए यहाँ रहा जाय ?--- या यह भी सम्भव है कि थोड़े ही दिनों में वह बड़े ज़ोरों की बाढ़ बढ़ेगा।

"उसका है देव-स्वभाव--- देवता की प्रकृति। इससे लोक-भय कम रहता है। अगर गले में माला डाल दी जाय या देह में चन्दन लगा दिया जाय अथवा धूप-धूना जलाया जाय, तो उस प्रकृतिवाले को समाधि हो जाती है।--- उसे जान पड़ता है, हृदय में नारायण हैं--- वे ही देह धारण करके आए हुए हैं। मुझे इसका ज्ञान हो गया है।

"दक्षिणेश्वर में पहले-पहल जब मेरी यह अवस्था हुई, तब कुछ दिनों के बाद एक भले ब्राह्मण-घर की लड़की आई थी। वह बड़ी सुलक्षणी थी। ज्योंही उसके गले में माला डाली और धूप-धूना दिया, त्योंही वह समाधिमग्न हो गई। कुछ देर बाद उसे आनन्द मिलने लगा--- और आँखों से अश्रुधारा बह चली। तब मैंने प्रणाम करके पूछा, 'माँ, क्या मुझे भी लाभ होगा?' उसने कहा, 'हाँ।'

"पूर्ण को एक बार और देखने की इच्छा है। परन्तु देखने की सुविधा कहाँ ?

"जान पड़ता है कला है। कैसा आश्चर्यजनक! केवल अंश नहीं, कला है!

"कितना चतुर है! — सुना है, लिखने-पढ़ने में भी बड़ा तेज़ है।— तब तो मेरा अन्दाज़ा पूरा उतर गया।

"तपस्या के प्रभाव से नारायण भी सन्तान होकर जन्म लेते हैं। कामारपुकूर के रास्ते में एक तालाब पड़ता है, नाम है रणजित राय का तालाब। रणजित राय के यहाँ भगवती ने कन्या होकर जन्म लिया था। अब भी चैत के महीने में वहाँ मेला लगता है। जाने की मेरी बड़ी इच्छा होती है; परन्तु अब नहीं जाया जाता।

"रणजित राय वहाँ का जमीन्दार था। तपस्या के प्रभाव से उसने भगवती को कन्या के रूप में पाया था। कन्या पर उसका बड़ा स्नेह था। उसी स्नेह के कारण वह अपने पिता का संग नहीं छोड़ती थी। एक दिन रणजित अपनी जमींदारी का काम कर रहा था,— फुरसत नहीं थीं। लड़की, बच्चों का स्वभाव जैसा होता है, बार बार पूछ रही थी— 'बाबूजी, यह क्या है? — वह क्या है?' पिता ने बड़े मधुर स्वर से कहा,— 'बेटी, अभी जाओ, बड़ा काम है।' पर लड़की वहाँ से किसी तरह नहीं टली। अन्त में ध्यानरहित हो उसके बाप ने कहा, 'तू यहाँ से दूर हो जा।' कन्या वहाँ से चली आई। उसी समय एक शंख की चूड़ियाँ बेचनेवाला वहाँ से जा रहा था। उसे बुलाकर उसने शंख की चूड़ियाँ पहनीं। दाम देने की बात पर उसने कहा, 'घर की अमुक अलमारी की बगल में रुपये रखे हैं, माँग लेना।' और यह कहकर वहाँ से चली गई, फिर नहीं दीख पड़ी। उधर घर में चूड़ीवाला पुकार रहा था। तब लड़की को घर में न देख, सब इधर-उधर दौड़ पड़े। रणजित राय ने खोज करने के लिए जगह-जगह आदमी भेजे। चूड़ीवाले का रुपया उसी जगह मिला। रणजित राय रोते हुए घूम रहे

थे, इतने में ही किसी ने कहा, 'तालाब में कुछ दीख पड़ता है।' लोगों ने उसके किनारे पर खड़े होकर देखा, एक हाथ जिसमें वही शंख की चूड़ियाँ थीं, पानी के ऊपर उठा हुआ था। फिर वह हाथ भी न दीख पड़ा। अब भी मेले के समय भगवती की पूजा होती है,-- वारुणी के दिन। (मास्टर से) यह सब सत्य है।"

मास्टर-- जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण-- नरेन्द्र अब यह सब मानता है।

"पूर्ण का जन्म विष्णु के अंश से है। मन ही मन बिल्व-पत्र से मैंने पूजा की--- पूजा ठीक न हुई, तब चन्दन और तुलसीदल लिया। तब पूजा ठीक हुई।

"वे अनेक रूपों से दर्शन देते हैं। कभी नररूप से, कभी चिन्मय ईश्वर के रूप से। रूप मानना चाहिए-- क्यों जी ?"

मास्टर-- जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण-- कामारहाटी की ब्राह्मणी (गोपाल की माँ) तरह तरह के रूप देखती है; गंगा के किनारे, एक निर्जन कुटिया में अकेली रहती है और जप किया करती है। गोपाल के पास सोती है। (कहते ही कहते श्रीरामकृष्ण चौंके) कल्पना में नहीं, साक्षात्। उसने देखा, गोपाल के हाथ लाल हो रहे हैं! गोपाल उसके साथ साथ घूमते हैं!--- उसका दूध पीते हैं!--- बातचीत करते हैं! नरेन्द्र सुनकर रोने लगा!

"पहले मैं भी बहुत कुछ देखा करता था। इस समय भाव में उतना दर्शन नहीं होता। अब प्रकृति-भाव घट रहा है। पुरुष-भाव आ रहा है। इसीलिए अन्तर में ही भाव रहता है, बाहर उतना प्रकाश नहीं हो पाता।

"छोटे नरेन्द्र का पुरुष-भाव है,—इसीलिए मन लीन हो जाया करता है। भावादि नहीं होते। नित्यगोपाल का प्रकृति-भाव है; इसीलिए टेढ़ा-मेढ़ा बना रहता है— भावावेश में शरीर लाल हो जाता है।"

(२)

कामिनी-कांचन-त्याग

श्रीरामकृष्ण—(मास्टर से)—अच्छा, आदमियों का त्याग तिल तिल करके होता है, परन्तु इनकी (लड़कों की) कैसी अवस्था है ?

"विनोद ने कहा, 'स्त्री के साथ सोना पड़ता है, मन को ज़रा भी नहीं रुचता।'

"देखो, संग हो या न हो, एक साथ सोना भी बुरा है। देह का संघर्ष— देह की गरमी तो लगती ही है।

"द्विज की कैसी अवस्था है! बस देह हिलाता हुआ मेरी ओर देखता रहता है! यह क्या कम बात है? सब मन सिमटकर अगर मुझमें आ गया तो समझो सब कुछ हो गया।

"मैं और क्या हूँ?— वे ही हैं। मैं यंत्र हूँ, वे यंत्री। इसके (मेरे) भीतर ईश्वर की सत्ता है, इसीलिए आकर्षण इतना बढ़ रहा है, लोग खिंचे आते हैं। छूने से ही हो जाता है। वह आकर्षण ईश्वर का ही आकर्षण है।

"तारक (बेलघर के) वहाँ से (दक्षिणेश्वर से) घर लौट रहा था। मैंने देखा, इसके (मेरे) भीतर से शिखा की तरह जलता हुआ कुछ निकल गया— उसके पीछे पीछे!

"कुछ दिनों बाद तारक फिर आया। तब समाधिस्थ होकर उसकी छाती पर पैर रख दिया— उन्होंने जो इसके (मेरे)

भीतर हैं।

"अच्छा, इन लड़कों की तरह क्या और लड़के हैं ?"

मास्टर– मोहित अच्छा है। आपके पास दो-एक बार आया था। दो परीक्षाओं के लिए तैयारी कर रहा है और ईश्वर पर अनुराग भी है।

श्रीरामकृष्ण– यह हो सकता है, परन्तु इतना ऊँचा स्थान उसका नहीं है। शरीर के लक्षण उतने अच्छे नहीं हैं–– मुँह चिपटा है।

"इनका स्थान ऊँचा है। परन्तु शरीर धारण करने से ही आफतों में पड़ना हैं। और शाप रहा तब तो सात बार जन्म लेना ही होगा। बड़ी सावधानी से रहना पड़ता है। वासनाओं के रहने से ही शरीर-धारण होता है।"

एक भक्त– जो अवतार हैं और देह धारण करके आए हैं, उनमें कौन सी वासना है ?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– मैंने देखा है, मेरी सब वासनाएँ नहीं गईं। एक साधु का शाल देखकर मेरी इच्छा हुई थी कि मैं भी इस तरह का शाल ओढ़ूँ। अब भी है। कौन जाने, एक बार कहीं फिर न आना पड़े।

बलराम– (सहास्य)– आपका जन्म होगा शाल के लिए ?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– एक अच्छी कामना रखनी चाहिए। उसी की चिन्ता करते हुए शरीर का त्याग हो, इसलिए। साधु चार धामों में एक धाम बाकी रख छोड़ते हैं। बहुतेरे जगन्नाथक्षेत्र बाकी रखते हैं। इसलिए कि जगन्नाथ की चिन्ता करते हुए शरीर-पात हो।

गेरुआ पहने हुए एक व्यक्ति कमरे के भीतर आए और नमस्कार

किया। ये भीतर ही भीतर श्रीरामकृष्ण की निन्दा किया करते हैं। इसीलिए बलराम हँस रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अन्तर्यामी हैं, बलराम से कह रहे हैं-- 'कोई चिन्ता नहीं, यदि वे मुझे ढोंगी कहते हैं तो कहने दो।'

श्रीरामकृष्ण तेजचन्द्र के साथ बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (तेजचन्द्र से)– तुझे इतना बुला भेजता हूँ, तू आता क्यों नहीं ? अच्छा, ध्यान आदि करता है ? इसी से मुझे प्रसन्नता होगी। मैं तुझे अपना जानता हूँ इसलिए बुला भेजता हूँ।

तेजचन्द्र– जी, आफिस जाना पड़ता है। काम भी बहुत रहता है।

मास्टर– (सहास्य)– घर में शादी थी, दस दिन की इन्होंने छुट्टी ली थी।

श्रीरामकृष्ण– तो फिर, अवकाश नहीं है, अवकाश नहीं है-- ऐसा क्यों कहा ? अभी तो तूने कहा था कि संसार छोड़ दूँगा।

नारायण– मास्टर ने एक दिन कहा था-- संसार का अरण्यभाव।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– तुम वह कहानी ज़रा कहो तो। इन लोगों का उपकार होगा। शिष्य दवा खाकर अचेत हो रहा। गुरु ने आकर कहा, 'इसके प्राण बच सकते हैं, अगर यह गोली कोई और खा ले। यह तो बच जाएगा परन्तु जो खाएगा, उसके प्राण निकल जाएँगे।'

"और वह भी कहो,-- टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था। उस हठयोगी के बारे में, जिसने सोचा था, स्त्री-पुत्र यही सब अपने आदमी हैं।"

दोपहर को श्रीरामकृष्ण ने जगन्नाथजी का प्रसाद पाया। श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'बलराम का अन्न शुद्ध है।' भोजन के बाद

कुछ देर के लिए वे विश्राम कर रहे हैं।

दोपहर ढल चुकी है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उसी कमरे में बैठे हुए हैं। कर्ताभजा चन्द्रबाबू और वे रसिक ब्राह्मण भी हैं। ब्राह्मण का स्वभाव एक तरह भाँड़-जैसा है।— वे एक बात कहते हैं और हँसते हँसते लोगों का पेट फूलने लगता है।

श्रीरामकृष्ण नें कर्ताभजा सम्प्रदाय के लोगों पर बहुतसी बातें कहीं— रूप, स्वरूप, रज, वीर्य, पाकक्रिया आदि बहुतसी बातों का उल्लेख किया।

श्रीरामकृष्ण की भावावस्था

लगभग छः बजे का समय है। गिरीश के भाई अतुल और तेजचन्द्र के भाई आए हुए हैं। श्रीरामकृष्ण भाव-समाधि में मग्न हैं। कुछ देर बाद भावावेश में कह रहे हैं— "चैतन्य की चिन्ता करके क्या कोई कभी अचेतन होता है?— ईश्वर की चिन्ता करके क्या कभी किसी को मस्तिष्क-विकार हो सकता है?— वे बोधस्वरूप जो हैं— नित्य, शुद्ध और बोधरूप।"

आए हुए लोगों में से कोई कोई सोचते रहे होंगे कि ईश्वर की चिन्ता करके लोग पागल हो जाते हैं— शायद इन्हें भी कोई मस्तिष्क-विकार हो गया है।

श्रीरामकृष्ण कृष्णधन नाम के उसी रसिक ब्राह्मण से कह रहे हैं— "साधारण-से ऐहिक विषय को लेकर तुम दिनरात मज़ाक कर-करके समय क्यों बिता रहे हो? उसी को ईश्वर की ओर लगा दो। जो नमक का हिसाब लगा सकता है, वह मिश्री का भी लगा लेता है।"

कृष्णधन— (हँसकर)— आप खींच लीजिए।

श्रीरामकृष्ण— मैं क्या करूँगा, सब तुम्हारी ही चेष्टा पर

अवलम्बित है। 'यह मंत्र नहीं,-- अब मन तेरा है।'

"उस साधारण-सी रसिकता को छोड़कर ईश्वर की ओर बढ़ जाओ। आगे एक से एक बढ़कर चीजें मिलेंगी। ब्रह्मचारी ने लकड़हारे से बढ़ जाने के लिए कहा था। उसने बढ़कर देखा, चन्दन का वन था-- फिर चांदी की खान थी, और फिर आगे बढ़कर सोने की खान,--- फिर हीरे और मणि की खानें।"

कृष्णधन-- इस मार्ग का अन्त नहीं है।

श्रीरामकृष्ण-- जहाँ शान्ति हो, वहीं रुक जाओ।

श्रीरामकृष्ण एक आए हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में कह रहे हैं--

"उसके भीतर कोई वस्तु मुझे नहीं दीख पड़ी, जैसे जंगली बेर।"

शाम हो गई। कमरे में दिया जला दिया गया। श्रीरामकृष्ण जगन्माता की चिन्ता करते हुए मधुर स्वर से उनका नाम ले रहे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं।

कल रथ-यात्रा है। आज श्रीरामकृष्ण यहीं रहेंगे।

अन्तःपुर से कुछ जलपान करके श्रीरामकृष्ण फिर बड़े कमरे में आए। रात के दस बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण मणि से कह रहे हैं -- उस कमरे से अंगौछा तो ले आओ।

उसी छोटे कमरे में श्रीरामकृष्ण के सोने का प्रबन्ध किया गया है। रात के साढ़े दस का समय हुआ। श्रीरामकृष्ण शयन करने के लिए गए।

गरमी का मौसम है। श्रीरामकृष्ण ने मणि से पंखा ले आने के लिए कहा। मणि पंखा झल रहे हैं। रात कें बारह बजे श्रीरामकृष्ण की नींद उचट गई, कहा, 'पंखा बन्द कर दो, जाड़ा लग रहा है।'

(३)

विचार के अन्त में मन का नाश तथा ब्रह्मज्ञान

आज रथ-यात्रा है। दिन मंगलवार। प्रातःकाल उठकर श्रीरामकृष्ण नृत्य करते हुए मधुर कण्ठ से नाम ले रहे हैं।

मास्टर ने आकर प्रणाम किया। क्रमशः भक्तगण आकर प्रणाम करके श्रीरामकृष्ण के पास बैठे। श्रीरामकृष्ण पूर्ण के लिए बहुत व्याकुल हो रहे हैं। मास्टर को देखकर उन्हीं की बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– तुम पूर्ण को देखकर क्या कोई उपदेश दे रहे थे?

मास्टर– जी, मैंने चैतन्य-चरितामृत पढ़ने के लिए उससे कहा था। उस पुस्तक की बातें वह खूब बतला सकता है। और आपने कहा था सत्य को पकड़े रहने के लिए; वह बात भी मैंने कही थी।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, 'ये (श्रीरामकृष्ण) अवतार हैं,' इन सब बातों के बताने पर क्या कहता था?

मास्टर– मैंने कहा था, 'चैतन्यदेव की तरह एक और आदमी देखना हो तो चलो।'

श्रीरामकृष्ण– और भी कुछ?

मास्टर– आपकी वही बात। छोटी सी गड़ही में हाथी उतर जाता है तो पानी में उथल-पुथल मच जाती है,—आधार के छोटे होने पर उसमें से भाव छलककर गिरता है।

लगभग साढ़े छः का समय है। बलराम के घर से मास्टर गंगा नहाने के लिए जा रहे हैं। रास्ते में एकाएक भूकम्प होने लगा। वे उसी समय श्रीरामकृष्ण के कमरे में लौट आए। श्रीराम-कृष्ण बैठकखाने में खड़े हुए हैं। भक्तगण भी खड़े हैं। भूकम्प की बात हो रही है। कम्प कुछ अधिक हुआ था। भक्तों में

बहुतों को भय हो गया था ।

मास्टर– तुम सब लोगों को नीचे चले जाना चाहिए था ।

श्रीरामकृष्ण– जिस घर में रहते हैं, उसी की तो यह दशा है ! इस पर फिर आदमियों का अहंकार ! (मास्टर से) तुम्हें वह आश्विन की आँधी याद है ?

मास्टर– जी हाँ, तब मेरी उम्र बहुत थोड़ी थी— नौ-दस साल की रही होगी— मैं कमरे में अकेला देवताओं का नाम ले रहा था ।

मास्टर विस्मय में आकर सोच रहे हैं, 'श्रीरामकृष्ण ने एकाएक आश्विन की आँधी की बात क्यों चलाई ? मैं व्याकुल होकर एक कमरे में बैठा हुआ ईश्वर की प्रार्थना कर रहा था; श्रीरामकृष्ण क्या सब जानते हैं ? वे क्या मुझे उसकी याद दिला दे रहे हैं ? मेरे जन्म के समय से ही वे क्या गुरु-रूप से मेरी रक्षा कर रहे हैं ?'

श्रीरामकृष्ण– जब दक्षिणेश्वर में आँधी आई, उस समय दिन बहुत चढ़ गया था, पर कैसा भी करके भोग पकाया गया था । देखो, जिस घर में निवास है, उसी की यह हालत है !

"परन्तु पूर्ण ज्ञान के होने पर मरना और मारना एक जान पड़ता है । मरने पर भी कुछ नहीं मरता— मार डालने पर भी कुछ नहीं मरता । जिनकी लीला है, नित्यता भी उन्हीं की है । एक रूप में नित्यता है और दूसरे रूप में लीला । लीला का रूप नष्ट हो जाने पर भी उसकी नित्यता नहीं जाती । पानी के स्थिर रहने पर भी वह पानी है और हिलने-डुलने पर भी पानी ही है । फिर हिलकर, उस हिलने के बन्द हो जाने पर भी वह वही पानी है ।"

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठकखाने में बैठे हुए हैं । महेन्द्र

मुखर्जी, हरिबाबू, छोटे नरेन्द्र तथा अन्य कई वालक-भक्त बैठे हुए हैं। हरिबाबू अकेले ही रहते हैं, वेदान्त की चर्चा किया करते हैं, उम्र २३-२४ साल की होगी। विवाह नहीं किया है। श्रीरामकृष्ण इन्हें बड़ा प्यार करते हैं। सदा दक्षिणेश्वर आने के लिए कहा करते हैं। वे अकेले ही रहना पसन्द करते हैं, इसलिए श्रीरामकृष्ण के पास भी अधिक नहीं जाया करते।

श्रीरामकृष्ण– (हरिबाबू से)– क्यों जी, तुम बहुत दिन नहीं आए ?

"वे एक रूप से नित्य हैं, एक रूप से लीला। वेदान्त में क्या है ? ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या। परन्तु जब तक उन्होंने 'भक्त का मैं' रख दिया है, तब तक लीला भी सत्य है। 'मैं' को जब वे पोंछ डालेंगे, तब जो कुछ है, वही है। मुँह से उसका वर्णन नहीं हो सकता। 'मैं' को जब तक उन्होंने रखा है, तब तक सब मानना होगा। केले के पेड़ के खोलों को निकालते रहने पर उसका माझा मिलता है। अतएव खोलों के रहने पर माझा का रहना भी सिद्ध होता है और माझे के रहने पर खोलों का। खोलों का ही माझा है और माझे का ही खोल है। नित्य है, यह कहने से लीला का अस्तित्व सिद्ध होता है; और लीला है, यह कहने पर नित्य का अस्तित्व।

"वे ही जीव और जगत् हुए हैं, चौबीसों तत्व हुए हैं। जब वे निष्क्रिय हैं, तब उन्हें लोग ब्रह्म कहते हैं और जब सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं तब उन्हें शक्ति कहते हैं। ब्रह्म और शक्ति दोनों अभेद हैं। पानी स्थिर रहने पर भी पानी है और हिलने-डुलने पर भी पानी ही है।

"'मैं' का भाव दूर नहीं होता। जब तक 'मैं' का भाव है,

तब तक जीव-जगत् को मिथ्या कहने का अधिकार नहीं है। बेल के खोपड़े और बीजों को फेंक देने पर, कुल बेल का वज़न समझ नहीं आता।

"जिस ईंट, चूना और सुर्खी से छत बनी है, उसी से सीढ़ियाँ भी बनी हैं। जो ब्रह्म हैं, उन्हीं की सत्ता से यह जीव-जगत् भी बना है।

"भक्त और विज्ञानी निराकार और साकार दोनों मानते हैं—अरूप और रूप दोनों को ग्रहण करते हैं, भक्तिरूपी हिम के लगने से उसी जल का कुछ अंश बर्फ बन जाता है। फिर ज्ञान-सूर्य के उगने पर वह बर्फ गलकर जल का फिर जल ही हो जाता है।

"जब तक मनुष्य मन के द्वारा विचार करता है, तब तक वह नित्य को नहीं प्राप्त कर सकता। जब तक तुम अपने मन का सहारा लेकर विचार करते हो तब तक तुम संसार के परे नहीं जा सकते, तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि इन्द्रिय-विषयों को भी नहीं छोड़ सकते। विचार के बन्द होने पर ही ब्रह्मज्ञान होता है। इस मन से कोई आत्मा को जान नहीं सकता। आत्मा के द्वारा ही आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध आत्मा, ये सब एक ही वस्तु हैं।

"देखो न, एक ही वस्तु को देखने के लिए कितनी चीज़ों की आवश्यकता होती है। आँखें चाहिए, उजाला चाहिए और मन का संयोग होना चाहिए। इन तीनों में से किसी एक को छोड़ देने से दर्शन नहीं होता। मन का यह काम जब तक चल रहा है, तब तक किस तरह कहोगे कि संसार नहीं है या मैं नहीं हूँ?

"मन का नाश होने पर, संकल्प और विकल्प के चले जाने

पर समाधि होती है— ब्रह्मज्ञान होता है। परन्तु— सा, रे, ग, म, प, ध, नि— 'नि' में बड़ी देर तक नहीं रहा जाता।"

छोटे नरेन्द्र की ओर देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "'ईश्वर हैं'— केवल इतना ही आभास पाने से क्या होगा? ईश्वर की केवल झलक से ही सब कुछ हो जाता हो, सो बात नहीं।

"उन्हें अपने घर ले आना चाहिए— उनसे जान-पहचान करनी चाहिए।

"किसी ने दूध की बात सुनी ही है, किसी ने दूध देखा है और किसी ने पिया है।

"राजा को किसी किसी ने देखा है, परन्तु दो एक आदमी उन्हें अपने मकान ले आ सकते हैं और उन्हें खिला-पिला सकते हैं।"

मास्टर गंगा-स्नान के लिए गए।

(४)

वाराणसी में शिव तथा अन्नपूर्णा दर्शन

दिन के दस बजे का समय हो गया। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। मास्टर ने गंगा-स्नान करके श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया और उनके पास बैठे।

श्रीरामकृष्ण भाव के पूर्णावेश में कितनी ही बातें कह रहे हैं। बीच बीच में दर्शन की गुह्य बातें कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— मथुर बाबू के साथ मैं वाराणसी गया था। मणिकर्णिका के घाट से हमारी नाव जा रही थी; एकाएक मुझे शिव के दर्शन हुए। मैं नाव के एक सिरे पर खड़ा हुआ समाधिमग्न हो गया। मल्लाह हृदय से कहने लगे, 'अरे! पकड़ो!' उन्होंने सोचा, मैं कहीं गिर न जाऊँ। देखा, शिव मानो संसार की कुल गंभीरता लिए हुए खड़े हैं। पहले मैंने उन्हें दूर

खड़े हुए देखा था, फिर मेरे पास आने लगे और मेरे भीतर विलीन हो गए।

"भावावेश में मैंने देखा, एक संन्यासी मेरा हाथ पकड़कर मुझे लिए जा रहा है। एक ठाकुर-मन्दिर में मैं घुसा, वहाँ सोने की अन्नपूर्णा देखी।

"वे ही यह सब हुए हैं,— किसी किसी वस्तु में उनका प्रकाश अधिक है।

(मास्टर से) "तुम लोग शायद शालग्राम में विश्वास नहीं करते— इंग्लिशमैन भी नहीं करते। तुम लोग मानो चाहे न मानो, कोई बात नहीं। शालग्राम अगर सुलक्षणयुक्त हों— उनमें अच्छे चक्र आदि हों— तभी ईश्वर के प्रतीक-रूप में उनकी पूजा हो सकती है।"

मास्टर— जी, जैसे उत्तम लक्षणवाले मनुष्य के भीतर ईश्वर का प्रकाश अधिक है।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र पहले इन सब बातों को मन की भूल कहा करता था; अब सब मानने लगा है।

ईश्वर-दर्शन की बातें कहते हुए श्रीरामकृष्ण को भाव की अवस्था हो रही है। धीरे-धीरे आप भाव-समाधि में लीन हो गए। भक्तगण चुपचाप एकटक दृष्टि से देख रहे हैं। बड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण ने भाव को रोका और फिर बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण— (मास्टर से)— मैं देख रहा था, ब्रह्माण्ड एक शालग्राम है। उसके भीतर तुम्हारी दो आँखें देख रहा था।

मास्टर और भक्तगण यह अद्‌भुत और अश्रुतपूर्व दर्शन आश्चर्यचकित होकर सुन रहे हैं। इसी समय एक और बालक भक्त शारदा आए और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– (शारदा से)– तू दक्षिणेश्वर क्यों नहीं आता ? मैं जब कलकत्ता आया करता हूँ,तो तू दक्षिणेश्वर क्यों नहीं आता ?

शारदा– मुझे खबर नहीं मिलती।

श्रीरामकृष्ण– अब तुझे खबर दूँगा। (मास्टर से, सहास्य) लड़कों की एक फेहरिस्त तो बनाओ। (मास्टर और भक्त हँसते हैं)

शारदा– घरवाले विवाह कर देना चाहते हैं। ये (मास्टर) विवाह की बात पर कितने ही बार मना कर चुके हैं।

श्रीरामकृष्ण– अभी विवाह क्यों ?

(मास्टर से) "शारदा की अच्छी अवस्था हो गई है, पहले संकोच का भाव था, अब मुख पर आनन्द आ गया है।"

श्रीरामकृष्ण एक भक्त से पूछ रहे हैं— "तुम क्या एक बार पूर्ण को ले आओगे ?"

नरेन्द्र आए। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को जलपान कराने के लिए कहा। नरेन्द्र को देखकर श्रीरामकृष्ण को बड़ा आनन्द हो रहा है। नरेन्द्र को खिलाकर मानो वे साक्षात् नारायण की सेवा करते हैं। उनकी देह पर हाथ फेरकर उन्हें प्यार कर रहे हैं। गोपाल की माँ कमरे के भीतर आईं। श्रीरामकृष्ण ने बलराम से कामारहाटी आदमी भेजकर गोपाल की माँ को ले आने के लिए कहा था। इसीलिए वे आई हुई हैं। कमरे के भीतर आते ही गोपाल की माँ कह रही हैं, 'मारे आनन्द के मेरी आँखों से आँसू बह रहे हैं।' यह कहकर श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो उन्होंने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– यह क्या है, तुम मुझे गोपाल भी कहती हो और प्रणाम भी करती हो।

"जाओ, घर में कोई तरकारी बनाओ जाकर, खूब बघार देना जिससे यहाँ तक सुगन्ध आए।" (सब हँसते हैं)

गोपाल की माँ– ये लोग (घर के लोग) क्या सोचेंगे?

घर के भीतर जाने से पहले उन्होंने नरेन्द्र से कातर स्वर में कहा, 'भैया, मेरी बन गई या अभी कुछ बाकी है?'

आज रथ-यात्रा है। श्रीजगन्नाथजी के भोग आदि के होने में कुछ देर हो गई। अब श्रीरामकृष्ण भोजन करेंगे, अन्त:पुर की ओर जा रहे हैं। भक्त-स्त्रियाँ उनके दर्शन करने के लिए उत्सुक हैं।

बहुतसी स्त्रियाँ श्रीरामकृष्ण की भक्ति करती थीं। परन्तु उनकी बातें वे पुरुष-भक्तों से न कहते थे। कोई भक्त-स्त्री अगर किसी भक्त से पास आती-जाती थी तो वे उससे कहते थे— "उसके पास ज्यादा न जाया कर, गिर जाएगी।" कभी कभी कहते थे, "अगर मारे भक्ति के कोई स्त्री जमीन में लोटती भी रहे तो भी उसके पास न जाना चाहिए।" स्त्री-भक्त अलग रहेंगी— पुरुष-भक्त अलग, तभी दोनों की भलाई है। कभी कहते थे, "स्त्रियों के गोपाल-भाव— वात्सल्य-भाव— का अतिरेक अच्छा नहीं। उसी वात्सल्य से एक दिन बुरा भाव पैदा हो जाता है।"

(५)

नरेन्द्रादि भक्तों के साथ कीर्तनानन्द में

दिन के एक बजे का समय है। भोजन करके श्रीरामकृष्ण फिर बैठकखाने में आकर भक्तों के बीच में बैठे। एक भक्त पूर्ण को बुला लाए हैं। श्रीरामकृष्ण बड़े आनन्द में आकर कहने लगे, 'यह देखो, पूर्ण आ गया।' 'नरेन्द्र, छोटे नरेन्द्र, नारायण,

हरिपद और दूसरे भक्त श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए उनसे वार्तालाप कर रहे हैं।

छोटे नरेन्द्र– अच्छा, हम लोगों में स्वाधीन इच्छा है या नहीं?

श्रीरामकृष्ण– मैं क्या हूँ— कौन हूँ, पहले इसे खोज तो लो। 'मैं' की खोज करते ही करते 'वे' निकल पड़ेंगे। 'मैं यंत्र हूँ, तुम यंत्री!' चीन का बना हुआ (कलवाला) पुतला चिट्ठी लेकर दूकान चला जाता है, तुमने सुना है? ईश्वर ही कर्ता हैं। अपने को अकर्ता समझकर कर्ता की तरह काम करते रहो।

"जब तक उपाधियाँ हैं, तभी तक अज्ञान है। मैं पण्डित हूँ, मैं ज्ञानी हूँ, मैं धनी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं कर्ता हूँ, पिता हूँ, गुरु हूँ, यह सब अज्ञान से होता है। 'मैं यंत्र हूँ, तुम यंत्री हो,' यह ज्ञान है। उस समय सब उपाधियाँ दूर हो जाती हैं। काठ के जल जाने पर फिर शब्द नहीं होता, न ताप रहता है। सब ठंडा हो जाता है।— शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(नरेन्द्र से) "कुछ गाओ न।"

नरेन्द्र– घर जाऊँगा, कई काम हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ भाई, हम लोगों की बात तुम क्यों सुनने लगे। जिसके पास पूँजी है, उसी के पीछे लोग लगे रहते हैं, और जिसके एक धोती भी साबित नहीं है उसकी बात भला कौन सुनता है? (सब हँसते हैं)

"तुम गुहों के बगीचे तो जा सकते हो! जब कभी मैं पूछता हूँ, 'नरेन्द्र कहाँ है?'— तो सुनता हूँ, 'गुहों के बगीचे में।'— यह बात मैं न कहता, तूने ही तो निकाली।"

नरेन्द्र कुछ देर चुप रहे। फिर कहा, 'बाजा नहीं है, कैसे गाऊँ?'

श्रीरामकृष्ण—हमारी जैसी हालत !—इसी में रहकर गा सको तो गाओ। इस पर बलराम का बन्दोबस्त !

"बलराम कहता है, 'आप नाव पर ही कलकत्ता आया कीजिए, अगर कभी न बने तभी गाड़ी से आया कीजिए।' (सब हँसते हैं) देखते हो, आज उसने खिलाया है, इसीलिए आज तीसरे पहर भर हम सबों को कसकर नचावेगा। (हास्य) यहाँ से एक दिन उसने गाड़ी की—बारह आने में ! मैंने पूछा, 'क्या बारह आने में दक्षिणेश्वर तक गाड़ी जाएगी ?' उसने कहा, 'हाँ, ऐसा होता है।' रास्ते में जाते जाते गाड़ी का कुछ हिस्सा ही अलग हो गया ! (उच्च हास्य) घोड़ा भी बीच-बीच में पैर अड़ाता था। किसी तरह चलता ही न था, गाड़ीवान जब कसकर चाबुक मारता था तब घोड़े के पैर उठते थे। इधर राम खोल बजाएगा और हम लोग नाचेंगे—राम को ताल का भी ज्ञान नहीं है। (सब हँसे) बलराम का यह भाव है,—आप लोग गाइए, बजाइए, नाचिए और मौज कीजिए !" (सब हँसते हैं)

घर से भोजन कर क्रमशः भक्तगण आते जा रहे हैं।

महेन्द्र मुखर्जी को दूर से प्रणाम करते हुए देखकर श्रीरामकृष्ण उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—फिर सलाम किया। पास के एक नवयुवक भक्त से कह रहे हैं, "उसे बताओ कि इन्होंने सलाम किया—वह 'अल्काट' 'अल्काट' (थिऑसफी के एक महात्मा) ही रटता है।"

गृही भक्तों में से अनेकों ने अपने घर की स्त्रियों को भी साथ लाया है—वे श्रीरामकृष्ण के दर्शन करेंगी और रथ के सामने श्रीरामकृष्ण का कीर्तनानन्द देखेंगी। राम और गिरीश आदि भक्त भी आ गए हैं। नवयुवक भक्त भी बहुत से आ गए हैं।

नरेन्द्र गाने लगे--

"वह प्रेम का संचार और कितने दिनों में होगा ?"

बलराम ने आज कीर्तन का बन्दोबस्त किया है--- वैष्णवचरण और बनवारी का कीर्तन है। वैष्णवचरण ने गाया--- "ऐ मेरी रसने, सदा दुर्गा-नाम का जप कर।"

गाने का कुछ अंश सुनते ही श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। खड़े होकर समाधिस्थ हुए थे--- छोटे नरेन्द्र पकड़े हुए हैं। मुख पर हास्य की रेखा प्रकट हो गई। कमरे भर के भक्त आश्चर्य-चकित हो देख रहे हैं। स्त्रियाँ चिक के भीतर से श्रीरामकृष्ण की यह अवस्था देख रही हैं।

नाम जपते जपते बड़ी देर के बाद समाधि छूटी। श्रीरामकृष्ण के आसन ग्रहण करने पर वैष्णवचरण ने फिर गाया--

"ऐ वीणे, तू हरिनाम कर।"

अब एक दूसरे कीर्तनिये बनवारी 'रूप' गा रहे हैं। परन्तु वे गाते ही गाते 'आहा हा, आहा हा' कहकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करने लगते हैं। इससे कोई श्रोता हँसते हैं, किसी को विरक्ति होती है।

पिछला प्रहर हो आया। इस समय बरामदे में श्रीजगन्नाथदेव का वही छोटा रथ ध्वजा-पताकाओं से सुसज्जित करके लाया गया है। श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलराम चन्दन-चर्चित तथा वसन-भूषण और पुष्पमालाओं से सुशोभित हैं। श्रीरामकृष्ण बनवारी का कीर्तन छोड़कर बरामदे में रथ के सामने चले गए। साथ साथ भक्तगण भी गए। श्रीरामकृष्ण ने रथ की रस्सी पकड़ ज़रा खींचा, फिर रथ के सामने भक्तों के साथ नृत्य और कीर्तन करने लगे।

छोटे बरामदे में रथ चलने के साथ ही कीर्तन और नृत्य हो

रहा है। उच्च संकीर्तन और खोल का शब्द सुनकर बहुत से बाहर के लोग वहाँ आ गए। श्रीरामकृष्ण भगवत्प्रेम से मतवाले हो रहे हैं। भक्तगण प्रेमोन्मत्त हो साथ-साथ नाच रहे हैं।

(६)

भावावेश में श्रीरामकृष्ण

रथ के सामने कीर्तन और नृत्य करके श्रीरामकृष्ण कमरे में आकर बैठे। मणि आदि भक्त उनकी चरण-सेवा कर रहे हैं।

भावमग्न होकर नरेन्द्र तानपूरा लेकर फिर गाने लगे—"ऐ प्राणों की पुतली, माँ, हृदयरमा, तू हृदय-आसन में आकर आसीन हो, मैं तेरा निरीक्षण करूँ।"

"त्रिगुणरूपधारिणी, परात्परा तारा तुम्हीं हो।"

"तुम्हीं को मैंने अपने जीवन का ध्रुवतारा बना लिया है।"

एक भक्त ने नरेन्द्र से कहा—'क्या तुम वह गाना गाओगे—ऐ अन्तर्यामिनी माँ, तुम हृदय में सदा ही जाग रही हो।'

श्रीरामकृष्ण— चल, इस समय ये सब गाने क्यों? इस समय आनन्द के गीत हों—'श्यामा सुधा-तरंगिणी।'

नरेन्द्र गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण गाना सुनते ही प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। बड़ी देर तक नृत्य करने के बाद उन्होंने आसन ग्रहण किया। भावावेश में नरेन्द्र की आँखों में आँसू आ गए। श्रीरामकृष्ण को देखकर बड़ा आनन्द हुआ। रात के नौ बजे का समय होगा। अब भी भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बैठे हुए वैष्णवचरण का गाना सुन रहे हैं।

वैष्णवचरण ने दो गाने और गाये। तब तक रात के दस-ग्यारह बजे का समय हो गया। भक्तगण प्रणाम करके बिदा हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, अब सब लोग घर जाओ। (नरेन्द्र और

छोटे नरेन्द्र की ओर इशारा करके) इन दोनों के रहने ही से हो जाएगा। (गिरीश से) क्या घर जाकर भोजन करोगे? रहना चाहो तो कुछ देर रहो। तम्बाकू!—अरे, बलराम का नौकर भी वैसा ही है। बुलाकर देखो—हरगिज़ न देगा। (सब हँसते हैं) परन्तु तुम तम्बाकू पीकर जाना।

श्रीयुत गिरीश के साथ चश्मा लगाये हुए उनके एक मित्र आए हैं। वे सब कुछ देख-सुनकर चले गए। श्रीरामकृष्ण गिरीश से कह रहे हैं—"तुमसे तथा अन्य सभी से कहता हूँ, ज़बरदस्ती किसी को न ले आया करो,—बिना समय के आए कुछ नहीं होता।"

एक भक्त ने प्रणाम किया। साथ एक छोटा लड़का है। श्रीरामकृष्ण सस्नेह कह रहे हैं—"अच्छा, बड़ी देर हो गई है, फिर यह लड़का भी साथ है।" नरेन्द्र, छोटे नरेन्द्र तथा दो-एक भक्त और कुछ देर रहकर घर गए।

(७)

मधुर नृत्य तथा नामसंकीर्तन

श्रीरामकृष्ण बैठकखाने के पश्चिम ओर खाट पर लेटे हुए हैं। रात के चार बजे का समय होगा। कमरे के दक्षिण ओर बरामदा है, उसमें एक स्टूल पड़ा हुआ है। उस पर मास्टर बैठे हैं।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण बरामदे में गए। मास्टर ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। आज संक्रान्ति है, बुधवार, १५ जुलाई १८८५।

श्रीरामकृष्ण– मैं एक बार और उठा था। अच्छा, क्या सबेरे दक्षिणेश्वर जाऊँ?

मास्टर– प्रातःकाल गंगा बहुत कुछ शान्त रहती है।

सबेरा हो गया है। भक्तों का आगमन अभी नहीं हुआ। श्रीरामकृष्ण हाथ-मुख धोकर मधुर स्वर से नाम ले रहे हैं। पश्चिम

वाले कमरे के उत्तर तरफ के दरवाजे के पास खड़े होकर नाम ले रहे हैं। पास ही मास्टर हैं। थोड़ी देर बाद कुछ दूरी पर गोपाल की माँ आकर खड़ी हुई। अन्त:पुर के द्वार के पास दो-एक स्त्रियाँ श्रीरामकृष्ण को आकर देख रही हैं।

राम-नाम करके श्रीरामकृष्ण कृष्ण का नाम ले रहे हैं। "कृष्ण कृष्ण ! गोपी कृष्ण ! गोपी ! गोपी ! राखालजीवन कृष्ण ! नन्दनन्दन कृष्ण ! गोविन्द ! गोविन्द !"

फिर गौरांग का नाम लेने लगे——"गौरांग प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द !"

फिर कह रहे हैं—— 'अलख निरंजन !' निरंजन कहकर रो रहे हैं। उनका रोना और करुण कण्ठ सुनकर पास में खड़े हुए सब भक्त भी रोने लगे। वे रोते हुए कह रहे हैं—— "निरंजन ! आ बेटा, कब तुझे भोजन कराकर जन्म सफल करूँ ! देह धारण करके मनुष्य के रूप में तू मेरे लिए आया हुआ है।"

जगन्नाथजी को अपनी विनय सुना रहे हैं— "जगन्नाथ ! जगद्बन्धो ! दीनबन्धो ! मैं संसार से अलग तो हूँ ही नहीं नाथ, मुझ पर दया करो।"

प्रेमोन्मत्त होकर गा रहे हैं—— "उड़ीसा जगन्नाथ पुरी में भले बिराजे जी।"

अब नारायण का नाम-कीर्तन करते हुए नाच रहे हैं—— "श्रीमन्नारायण ! नारायण ! नारायण !"

अब श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ छोटे कमरे में बैठे। दिगम्बर! —— जैसे पाँच साल का बच्चा ! बलराम, मास्टर और भी दो-एक भक्त बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर के रूप के दर्शन होते हैं। जब सब

उपाधियाँ चली जाती हैं, विचार बन्द हो जाता है तब दर्शन होता है। तब मनुष्य निर्वाक् हो समाधि में लीन हो जाता है। थिएटर में जाकर, वहाँ बैठे हुए आदमी कितनी ही गप्पें सुनते-सुनाते रहते हैं। पर्दा उठा नहीं कि सब गप्पें बन्द हो जाती हैं। जो कुछ देखते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं।

"तुम्हें यह मैं गुह्य बात सुना रहा हूँ। पूर्ण और नरेन्द्र आदि को प्यार करता हूँ, इसका एक खास अर्थ है। जगन्नाथ को मधुर-भाव में आकर भेंटने के लिए मैंने हाथ बढ़ाया नहीं कि गिरकर हाथ टूट गया। उसने समझा दिया—'तुमने शरीर धारण किया है, इस समय नर-रूपों में ही सख्य, वात्सल्य आदि भावों को लेकर रहो।'

"रामलला पर जो जो भाव होते थे, वे ही अब पूर्णादि को देखकर होते हैं। रामलला को मैं नहलाता था, खिलाता था, सुलाता था, साथ लेकर घूमता था। रामलला के लिए बैठकर रोता था; इन सब लड़कों को लेकर ठीक वे ही बातें हो रही हैं। देखो न, निरंजन किसी में लिप्त नहीं है। खुद रुपया लगाकर गरीबों को दवाखाने ले जाया करता है। विवाह की बात पर कहता है, 'बाप रे! विशालाक्षी नदी का भँवर है।' उसे मैं देखता हूँ, एक ज्योति पर बैठा हुआ है।

"पूर्ण साकार ईश्वर के राज्य का है। उसका जन्म विष्णु के अंश से है। आहा!—कैसा अनुराग है!

(मास्टर से) "देखा नहीं, वह तुम्हारी तरफ देखने लगा—जैसे गुरुभाई पर दृष्टि हो—जैसे कोई अपना सगा हो? एक बार और मिलने के लिए कहा है। उसने कहा है, कप्तान के यहाँ भेंट होगी।

"नरेन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है— निराकार का घर है।— पुरुष की सत्ता है। इतने भक्त आ रहे हैं, उसकी तरह एक भी नहीं है।

"एक एक बार मैं बैठकर हिसाब लगाता हूँ। देखता हूँ— दूसरों में से कोई तो पद्मों में दस दल का है, कोई सोलह दल का, कोई सौ दल का, परन्तु नरेन्द्र सहस्र दल का है।

"दूसरे लोग यदि लोटा, घड़ा आदि हैं तो नरेन्द्र खूब बड़ा मटका है।

"गड़हियों और तालाबों में नरेन्द्र सरोवर है।— जैसे हालदार सरोवर।

"मछलियों में नरेन्द्र लाल आँखों की रोहू है तथा अन्य सब तरह-तरह की छोटी मछलियाँ हैं।

"नरेन्द्र बहुत बड़ा आधार है— उसमें बहुत सी चीज़ें समा जाती हैं। बड़े छेदवाला बाँस है।

"नरेन्द्र किसी के वश नहीं है। वह आसक्ति और इन्द्रिय-सुख के वश नहीं है। नर-कबूतर है। नर-कबूतर की चोंच पकड़ने पर वह चोंच खींचकर छुड़ा लेता है,— मादा चुपचाप रह जाती है।

"बेलघर के तारक को 'मृगाल' (एक प्रकार की मछली, चालाक और बड़ी) कह सकते हैं।

"नरेन्द्र पुरुष है, इसीलिए गाड़ी में दाहिनी ओर बैठता है। भवनाथ का ज़नाना भाव है, इसलिए उसे दूसरी ओर बैठाता हूँ।

"नरेन्द्र सभा में रहता है तो मुझे भरोसा रहता है।"

श्रीयुत महेन्द्र मुखर्जी आए और प्रणाम किया। दिन के आठ बजे होंगे। हरिपद, तुलसीराम भी क्रमशः आए और प्रणाम किया। बाबूराम को बुखार है। इसलिए वे नहीं आ सके।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– छोटा नरेन्द्र नहीं आया ? उसने सोचा होगा–– वे चले गए। (मुखर्जी से) कितने आश्चर्य की बात है, वह (छोटा नरेन्द्र) बचपन में, स्कूल से लौटकर ईश्वर के लिए रोता था। (ईश्वर के लिए) रोना क्या सहज ही होता है ?

"फिर बुद्धि भी खूब है। बाँसों में बड़े छेदवाला बाँस है।

"और सब मन मुझ पर रहता है। गिरीश घोष ने कहा, 'नवगोपाल के यहाँ जिस दिन कीर्तन हुआ था, उस दिन (छोटा नरेन्द्र) गया था,–– परन्तु "वे कहाँ" कहकर बेहोश हो गया, लोग उसके ऊपर से चले जाते थे!'

"उसे भय भी नहीं है कि घरवाले नाराज होंगे। दक्षिणेश्वर में लगातार तीन रात रहा था।"

(८)

भक्तियोग का रहस्य। ज्ञान तथा भक्ति का समन्वय

मुखर्जी– हरि (बागबाजार के हरिबाबू) आपकी बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गए। कहते हैं, सांख्यदर्शन में, पातंजलि में, वेदान्त में ये सब बातें हैं। ये कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण– सांख्य और वेदान्त तो मैंने नहीं पढ़ा।

"पूर्ण ज्ञान और पूर्ण भक्ति एक ही हैं। 'नेति नेति' के द्वारा जहाँ विचार का अन्त हो जाता है, वहीं ब्रह्मज्ञान है।–– फिर जो कुछ छोड़कर जाना पड़ा था, लौटते हुए उसी को ग्रहण करना पड़ता है। छत पर चढ़ते समय बड़ी सावधानी से चढ़ना चाहिए। फिर वह देखता है, जिन चीज़ों से छत बनी है, उन्हीं से सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं–– उन्हीं ईंटों से–– उसी सुर्खी और चूने से।

"जिसे उच्च का ज्ञान है, उसे निम्न का भी ज्ञान है। ज्ञान के बाद ऊँचा-नीचा एक जान पड़ता है।

"प्रह्लाद को जब तत्त्व-ज्ञान होता था, तब वे 'सोऽहम्' होकर रहते थे। जब देह-बुद्धि आती थी, तब "दासोऽहम्'— 'मैं दास हूँ' यह भाव रहता था।

"हनुमान को भी कभी 'सोऽहम्' का भाव रहता था, कभी 'दास मैं', कभी 'मैं तुम्हारा अंश हूँ' यह भाव रहता था।

"भक्ति लेकर क्यों रहना?— इसे छोड़ दे तो मनुष्य फिर क्या लेकर रहे?— क्या लेकर दिन पार किया करे?

"'मैं' जाने का तो है ही नहीं। 'मैं' रूपी घट के रहते 'सोऽहम्' नहीं होता। समाधिमग्न होने पर 'मैं' पूर्ण रूप से चला जाता है।— तब जो कुछ है, वही है। रामप्रसाद ने कहा है— 'फिर मैं अच्छा हूँ या तुम, यह तुम्हीं समझो।'

"जब तक 'मैं' है तब तक भक्त की तरह ही रहना अच्छा है। 'मैं ईश्वर हूँ', यह भाव अच्छा नहीं। हे जीव! भक्तवत् न तु कृष्णवत्!— परन्तु अगर वे खुद खींच लें तो वह बात और है। जिस तरह मालिक नौकर को प्यार करके कहता है—'आ, पास बैठ, मैं जो कुछ हूँ, वही तू भी है।'

"तरंगें गंगा की हैं, परन्तु गंगा तरंगों की नहीं।

"शिव की दो अवस्थाएँ हैं। जब वे आत्माराम रहते हैं, तब उनकी 'सोऽहम्' अवस्था होती है—योग में सब कुछ स्थिर है। जब 'मैं'-ज्ञान रहता है, तब 'राम राम' कहकर नृत्य करते हैं।

"जिनमें स्थिरता है, उनमें अस्थिरता भी है।

"अभी तुम स्थिर हो, फिर थोड़ी देर बाद तुम काम करने लगोगे।

"ज्ञान और भक्ति एक ही वस्तु हैं। अन्तर इतना ही है कि कोई कहता है पानी और कोई कहता है पानी का एक बड़ा

ढेला (बर्फ़)।

"साधारणतया समाधियाँ दो तरह की हैं। ज्ञान-मार्ग पर विचार करते हुए अहं के नष्ट हो जाने के बाद जो समाधि होती है, उसे स्थिर-समाधि या जड़-समाधि कहते हैं। भक्तिपथ की समाधि को भाव-समाधि कहते हैं। भाव-समाधि में भोग के लिए 'अहं' की एक रेखा रह जाती है, भक्त को ईश्वरानन्द देने के लिए। कामिनी और कांचन में आसक्ति के रहने पर इन सब बातों की धारणा नहीं होती।

"केदार से मैंने कहा, कामिनी और कांचन में मन के रहने पर कुछ होगा नहीं। इच्छा हुई, एक बार उसकी छाती पर हाथ फेर दूँ,— परन्तु फिर फेर न सका। भीतर टेढ़ापन था। उसके हृदय-रूपी कमरे में मानो विष्ठा की दुर्गन्ध थी, मैं घुस नहीं सका। उसमें की आसक्ति मानो स्वयंभू लिंग जैसी है, वाराणसी तक उसकी जड़ फैली हुई है। संसार में आसक्ति— कामिनी और कांचन में आसक्ति के रहते हुए कुछ हो नहीं सकता।

"इन लड़कों में कामिनी और कांचन का प्रवेश अभी तक नहीं हो पाया। इसीलिए तो उन्हें मैं इतना प्यार करता हूँ। हाजरा कहता है, 'धनी लोगों के सुन्दर लड़के देखकर तुम उन्हें प्यार करते हो।' अगर यही बात है तो हरीश, लाटू, नरेन्द्र, इन्हें मैं क्यों प्यार करता हूँ? नरेन्द्र को तो रोटी खाने के लिए नमक खरीदने के लिए भी पैसे नहीं मिलते।

"इन लड़कों में विषय-बुद्धि अभी नहीं पैठी। इसीलिए उनका मन इतना शुद्ध है।

"और बहुतेरे उनमें नित्य-सिद्ध भी हैं। जन्म से ही ईश्वर की ओर मन लगा हुआ है। जैसे तुमने एक बगीचा खरीदा। साफ़

करते हुए कहीं जल का स्रोत तुम्हें मिल गया। मिट्टी हटी नहीं कि कलकल स्वर से पानी निकलने लगा।"

बलराम– महाराज, संसार मिथ्या है, यह ज्ञान पूर्ण को एकदम कैसे हो गया?

श्रीरामकृष्ण– जन्मगत। पिछले जन्मों में सब किया हुआ है। शरीर ही छोटा और वृद्ध होता रहता है, पर आत्मा के लिए वह बात नहीं।

"वे कैसे हैं, जानते हो?—— जैसे पहले फल लगकर फिर फूल हों। पहले दर्शन, फिर गुण-महिमा आदि का श्रवण, फिर मिलन।

"निरंजन को देखो——न:लेना है, न देना।——जब पुकार होगी तभी चला जा सकता है। परन्तु जब तक मनुष्य की माँ जीवित है, तब तक उसे उसका भरण-पोषण करना चाहिए। मैं अपनी माँ की फूल-चन्दन से पूजा करता था। वह जगन्माता ही हैं जो हमारे लिए सांसारिक माता के रूप में विराजमान हैं।

"जब तक अपने शरीर की खबर है तब तक माता की खबर लेनी चाहिए; इसीलिए मैं हाजरा से कहता हूँ, अपने शरीर में अगर खाँसी की बीमारी हो गई तो मिश्री और मरिच की व्यवस्था की जाती है—— मरिच और नमक की जरूरत होती है।—— अतएव, जब तक अपने शरीर के लिए यह इतना किया जाता है, तब तक माता की ख़बर भी रखना उचित है।

"परन्तु जब अपने शरीर की भी खबर नहीं रख सकते तब दूसरे के लिए बात ही क्या है? तब सब भार ईश्वर ले लेते हैं।

"नाबालिग अपना भार नहीं ले सकता। इसीलिए उसके एक अभिभावक होता है। नाबालिग अवस्था और चैतन्य देव की अवस्था दोनों एक हैं।"

मास्टर गंगा-स्नान करने के लिए गए।

(९)

श्रीरामकृष्ण का ईश्वर-दर्शन

श्रीरामकृष्ण भक्तों से उसी कमरे में बातचीत कर रहे हैं। महेन्द्र मुखर्जी, बलराम, तुलसी, हरिपद, गिरीश आदि भक्तगण बैठे हुए हैं। गिरीश श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त कर सात-आठ महीने से आते-जाते हैं। मास्टर गंगा-स्नान करके आ गए, श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके उनके पास बैठे। श्रीरामकृष्ण अपने अपूर्व दर्शन की बातें सुना रहे हैं—

"कालीमन्दिर में एक दिन नागा और हलधारी अध्यात्म-रामायण पढ़ रहे थे। मैंने एकाएक एक नदी देखी, उसके पास ही वन था— हरे रंग के पेड़-पौधे, और जाँघिया पहने हुए राम और लक्ष्मण चले जा रहे थे। एक दिन मैंने कोठी के सामने अर्जुन का रथ देखा था। सारथी के वेश में श्रीकृष्णजी बैठे हुए थे। वह अब भी मुझे याद है।

"एक दिन और, देश में (कामारपुकुर में) कीर्तन हो रहा था। सामने मैंने गौरांग की मूर्ति देखी।

"एक नंगा आदमी मेरे साथ घूमता था। उससे मैं खूब मज़ाक करता था। वह नंगी मूर्ति मेरे ही भीतर से निकलती थी, परमहंस मूर्ति, बालकवत्।

"ईश्वर के कितने रूपों के दर्शन हो चुके हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता। उस समय मुझे पेट की सख्त बीमारी थी। और वह उन सब दर्शनों के समय और भी अधिक बढ़ जाती थी। इसलिए जब मुझे वे दर्शन होते थे तब मैं उन पर 'थू थू' करने लगता था,— परतु वे तो मेरे पीछे भूत के समान लग जाते थे। इन

रूपों के भावावेश में मैं मस्त रहा करता था और रात-दिन न जाने कहाँ बीत जाते थे । दूसरे दिन फिर दस्त आने लगते थे ।" (हास्य)

गिरीश– (सहास्य)– आप की ज़न्मपत्री देख रहा हूँ ।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– द्वितीया के चन्द्र में जन्म है। और रवि, चन्द्र और बुध को छोड़ और कोई बड़ी बात नहीं है ।

गिरीश– कुंभराशि है । कर्क और वृष में राम और कृष्ण का जन्म है–– सिंह में चैतन्यदेव का ।

श्रीरामकृष्ण– मुझमें दो वासनाएँ थीं, –– पहली यह कि मैं भक्तों का राजा होऊँगा; दूसरी, तपस्या के मारे सूख जानेवाला साधु न होऊँगा ।

गिरीश– आपको साधना क्यों करनी पड़ी ?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– भगवती ने शिव के लिए बड़ी कठोर साधना की थी––पंचाग्नि तापना, जाड़े में पानी के भीतर गले तक डूबकर रहना, सूर्य की ओर एकदृष्टि से ताकते रहना ।

"स्वयं कृष्ण ने राधायंत्र लेकर बहुत सी साधनाएँ की थीं । यंत्र ब्रह्मयोनि है– उसी की पूजा और ध्यान । इस ब्रह्मयोनि से कोटि कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि हो रही है ।

"बड़ी गुप्त बात है । बेल के नीचे मैं उसे चमकते हुए देखा करता था ।

"वहाँ तंत्र की बहुत सी साधनाएँ मैंने की थीं, मुर्दे की खोपड़ी लेकर । ब्राह्मणी (श्रीरामकृष्ण की तांत्रिक आराधना की आचार्या) सब सामग्री इकट्ठा कर देती थी ।

"एक अवस्था और होती थी । जिस दिन मैं अहंकार करता था उसके दूसरे ही दिन बीमार पड़ता था ।"

सब लोग चुपचाप बैठे हुए हैं।

तुलसी– ये (मास्टर) नहीं हँसते।

श्रीरामकृष्ण– भीतर हँसी है, फल्गु-नदी के ऊपर बालू रहती है और खोदने पर भीतर पानी मिलता है।

(मास्टर से) "तुम जीभ नहीं छीलते। रोज जीभ छीला करो।"

बलराम– अच्छा, इनके (मास्टर के) द्वारा पूर्ण आपकी बहुत सी बातें सुन चुके हैं—

श्रीरामकृष्ण– पहले की बातें ये जानते हैं, मुझे याद नहीं।

बलराम– पूर्ण स्वभावसिद्ध हैं, और ये (मास्टर)?

श्रीरामकृष्ण– ये साधन मात्र हैं।

नौ बज चुके हैं। श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर जाने वाले हैं। इसी का प्रबन्ध हो रहा है। बागबाजार के अन्नपूर्णा-घाट में नाव ठीक की गई है। श्रीरामकृष्ण को भक्तगण भूमिष्ठ हो प्रणाम करने लगे।

श्रीरामकृष्ण दो-एक भक्तों को लेकर नाव पर बैठे। गोपाल की माँ भी उसी नाव पर बैठीं– दक्षिणेश्वर में कुछ देर विश्राम करके पिछले पहर चलकर कामारहाटी जाएँगी।

श्रीरामकृष्ण की कैम्प-खाट भी नाव पर चढ़ा दी गई। इस पर श्रीयुत राखाल सोया करते थे।

अगले शनिवार को श्रीरामकृष्ण फिर बलराम के यहाँ आएँगे।

परिच्छेद १३

श्री नन्द वसु के मकान में शुभागमन

(१)

बलराम के मकान में श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बलराम के बैठकखाने में बैठे हुए है। मुख पर प्रसन्नता विराज रही है। इस समय दिन के तीन बजे होंगे। विनोद, राखाल, मास्टर आदि श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हैं। छोटे नरेन्द्र भी आए।

आज मंगलवार है, २८ जुलाई, १८८५, आषाढ़ की कृष्ण प्रतिपदा। श्रीरामकृष्ण सबेरे से बलराम के यहाँ आए हैं। भक्तों के साथ भोजन भी उन्होंने वहीं किया है।

नारायण आदि भक्तों ने कहा है, 'नन्द वसु के घर में ईश्वर सम्बन्धी चित्र बहुत से हैं।' आज दिन के पिछले पहर उनके घर जाकर श्रीरामकृष्ण चित्र देखेंगे। एक ब्राह्मणी भक्त नन्द वसु के घर के पास ही रहती है, श्रीरामकृष्ण उसके घर भी जाएँगे। कन्या के गुज़र जाने पर ब्राह्मणी दुखी रहा करती है। प्राय: दक्षिणेश्वर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए जाया करती है। अत्यन्त व्याकुलता के साथ उसने श्रीरामकृष्ण को निमंत्रण भेजा है। उसके घर तथा एक और स्त्री-भक्त— गनू की माँ— के घर भी श्रीरामकृष्ण जानेवाले हैं।

श्रीरामकृष्ण बलराम के यहाँ आते ही बालक-भक्तों को बुला भेजते हैं। छोटे नरेन्द्र ने अभी उस दिन कहा था, 'मुझे काम रहता है, इसलिए सदा मैं नहीं आ सकता, परीक्षा के लिए भी तैयारी करनी पड़ रही है।' छोटे नरेन्द्र के आने पर श्रीरामकृष्ण

उनसे बातचीत करते हुए कह रहे हैं-- "तुझे बुलाने के लिए मैंने आदमी नहीं भेजा।"

छोटे नरेन्द्र- (हँसते हुए)- तो इससे क्या होता है ?

श्रीरामकृष्ण- नहीं भाई, तुम्हारा नुकसान होता है, जब अवकाश हो तब आया करो !

श्रीरामकृष्ण ने जैसे अभिमान करके ये बातें कहीं। पालकी आई है। श्रीरामकृष्ण श्रीयुत नन्द वसु के यहाँ जाएँगे।

ईश्वर का नाम लेते हुए श्रीरामकृष्ण पालकी पर बैठे, पैरों में काली चट्टी, लाल धारीदार धोती पहने। मणि ने जूतों को पालकी की बगल में एक ओर रख दिया। पालकी के साथ साथ मास्टर जा रहे हैं। इतने में परेश भी आ गए।

पालकी नन्द वसु के फाटक के भीतर गई। क्रमश: घर का लम्बा आँगन पार करके पालकी मकान के द्वार पर पहुँची।

गृहस्वामी के आत्मीयों ने श्रीरामकृष्ण को आकर प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से चट्टियाँ निकाल देने के लिए कहा। पालकी से उतरकर वे ऊपर के दालान में गए। दालान बहुत लम्बा-चौड़ा है। चारों ओर देवी-देवताओं के चित्र टँगे हुए हैं।

गृहस्वामी और उनके भाई पशुपति ने श्रीरामकृष्ण से सम्भाषण किया। पालकी के पीछे पीछे भक्तगण भी आ रहे थे। अब वे भी उसी दालान में एकत्र होने लगे। गिरीश के भाई अतुल भी आए हुए हैं। प्रसन्न के पिता श्रीयुत नन्द वसु के यहाँ अक्सर आया-जाया करते हैं। वे भी वहाँ मौजूद हैं।

(२)

चित्रों का दर्शन

श्रीरामकृष्ण अब चित्रों को देखने के लिए उठे। साथ मास्टर

हैं तथा कुछ भक्तगण। गृहस्वामी के भ्राता श्रीयुत पशुपति साथ साथ रहकर तस्वीरें दिखा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण पहले चतुर्भुज विष्णुमूर्ति देख रहे हैं। देखकर ही भावावेश में परिपूर्ण हो गए। खड़े थे, बैठ गए। कुछ काल भावाविष्ट रहे।

दूसरा चित्र श्रीरामचन्द्रजी की भक्तवत्सल मूर्ति का है। श्रीराम हनुमान के सिर पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। हनुमान की दृष्टि श्रीरामचन्द्रजी के पादपद्मों पर लगी हुई है। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक यह चित्र देखते रहे। भावावेश में कह रहे हैं— "आहा! आहा!"

तीसरा चित्र वंशीधर श्रीमदनगोपाल का है। कदम्ब के नीचे खड़े हुए हैं।

चौथा चित्र वामनावतार का है, छाता लगाए हुए बलि के यज्ञ में जा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— 'वामन', और टकटकी लगाए देख रहे हैं।

फिर नृसिंहमूर्ति देखकर श्रीरामकृष्ण गो-चारण देख रहे हैं। श्रीकृष्ण गोपाल बालकों के साथ गौएँ चरा रहे हैं। श्रीवृन्दावन और यमुनापुलिन! मणि कह उठे, 'बड़ी सुन्दर तस्वीर है!'

सप्तम चित्र देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— 'धूमावती!' अष्टम, 'षोड़शी'; नवम, भुवनेश्वरी; दशम, तारा; एकादश, काली। इन सब मूर्तियों को देखकर श्रीरामकृष्ण कहते हैं— "ये सब उग्र मूर्तियाँ हैं, उन्हें घर में न रखना चाहिए। इन्हें यदि घर पर रखे तो इनकी पूजा करना उचित है, साथ ही भोग भी चढ़ाना चाहिए। परन्तु आप लोगों के भाग्य अच्छे हैं, आप रख सकते हैं।"

श्रीअन्नपूर्णा के दर्शन कर श्रीरामकृष्ण भावावेश में कह रहे हैं-- वाह ! वाह !

फिर देखा राधिका का राजा-वेश, सखियों के साथ वन में सिंहासन पर बैठी हुई हैं। श्रीकृष्ण द्वार पर कोतवाल बनकर बैठे हुए हैं।

फिर झूलना-चित्र। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक इसके बाद का चित्र देख रहे हैं। ग्लास-केस के भीतर वीणावादिनी का चित्र है। देवी हाथ में वीणा लिए हुए आनन्द से रागिनी अलाप रही हैं।

तस्वीरों का देखना समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण फिर गृहस्वामी के पास गए। खड़े हुए गृहस्वामी से कह रहे हैं, "आज बड़ा आनन्द आया। वाह! आप तो पूरे हिन्दू हैं। अंग्रेजी चित्र न रखकर इन चित्रों को रखा है, यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है।"

श्रीयुत नन्द वसु बैठे हुए हैं, वे श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं-- "बैठिए, आप खड़े क्यों हैं ?"

श्रीरामकृष्ण-- (बैठकर)-- ये चित्र काफी बड़े हैं। तुम अच्छे हिन्दू हो।

नन्द वसु-- अंग्रेजी चित्र भी हैं।

श्रीरामकृष्ण-- (सहास्य)-- वे ऐसे नहीं हैं। अंग्रेजी की ओर तुम्हारी वैसी दृष्टि नहीं है।

कमरे की दीवार पर श्रीयुत केशवचन्द्र सेन के नवविधान की तस्वीर लटकी हुई थी। श्रीयुत सुरेश मित्र ने वह चित्र बनाया था। वे श्रीरामकृष्ण के एक प्रिय भक्त हैं। उस चित्र में दिखाया है कि श्रीरामकृष्ण केशव को दिखा रहे हैं कि भिन्न-भिन्न मार्गों

से सब धर्मों के लोग ईश्वर की ही ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। गम्यस्थान एक है, केवल मार्ग पृथक्-पृथक् हैं।

श्रीरामकृष्ण– वह तो सुरेन्द्र का बनाया हुआ चित्र है।

प्रसन्न के पिता– (हँसकर)– आप भी उसके भीतर हैं।

श्रीरामकृष्ण– वह एक विशेष ढंग का है, उसके भीतर सब कुछ है–– वह आधुनिक भाव का चित्र है।

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण को एकाएक भावावेश हो रहा है। श्रीरामकृष्ण जगन्माता से वार्तालाप कर रहे हैं।

कुछ देर बाद मतवाले की भाँति कह रहे हैं––" मैं बेहोश नहीं हुआ।" घर की ओर दृष्टि करके कह रहे हैं, " बड़ा मकान, इसमें क्या हैं,–– ईंटें, काठ और मिट्टी।"

कुछ देर बाद उन्होंने कहा, " देव-देवताओं के ये सब चित्र देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।" फिर कहने लगे–– " उग्र मूर्ति, काली, तारा (शव और शिवा के बीच श्मशान में रहनेवाली) रखना अच्छा नहीं, रखने पर पूजा चढ़ानी चाहिए।"

पशुपति– (हँसकर)– वे जितने दिन चलाएँगी, उतने दिन तो चलेगा ही।

श्रीरामकृष्ण– यह ठीक है। परन्तु ईश्वर में मन रखना अच्छा है, उन्हें भूलकर रहना अच्छा नहीं।

नन्द वसु– उनमें मति होती कहाँ है?

श्रीरामकृष्ण– उनकी कृपा होने पर सब हो जाता है।

नन्द वसु– उनकी कृपा होती कहाँ है? उनमें कृपा करने की शक्ति भी हो तब न?

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– मैं समझा, तुम्हारा मत पण्डितों-जैसा है कि जो जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा फल मिलता रहेगा;

यह सब छोड़ दो। ईश्वर की शरण में जाने पर कर्मों का क्षय हो जाता है। मैंने माता के पास हाथ में फूल लेकर कहा था, 'माँ, यह लो अपना पाप और यह लो अपना पुण्य, मैं कुछ नहीं चाहता; तुम मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना भला और यह लो अपना बुरा; मैं भला-बुरा कुछ नहीं चाहता, मुझे बस अपनी शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना धर्म और यह लो अपना अधर्म, मैं धर्माधर्म कुछ नहीं चाहता; मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना ज्ञान और यह लो अपना अज्ञान; मैं ज्ञान-अज्ञान कुछ नहीं चाहता; मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपनी शुचिता और यह लो अपनी अशुचिता; मुझे शुचिता-अशुचिता नहीं चाहिए, मुझे शुद्धा भक्ति दो।'

नन्द वसु– क्या वे कानून रद्द कर सकते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– यह क्या ! वे ईश्वर हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं। जिन्होंने कानून बनाया है, वे कानून बदल भी सकते हैं।

"परन्तु यह बात तुम कह सकते हो। तुम्हारी शायद भोग करने की इच्छा है, इसीलिए तुम ऐसी बात कह रहे हो। यह एक मत है भी,—– ठीक है; भोग की शान्ति बिना हुए चैतन्य नहीं होता; परन्तु भोग भी क्या करोगे ?—– कामिनी और कांचन का भोग ?—– वह तो अभी है, अभी नहीं; क्षणिक। कामिनी और कांचन में है ही क्या ?—– छिलका और गुठली ही है—– खाने पर अम्लशूल होता है। सन्देश निगलने के साथ ही स्वाद भी गायब !"

नन्द बसु चुप हो रहे। फिर कहा—– 'यह सब कहते तो हैं, परन्तु क्या ईश्वर पक्षपात करनेवाले हैं ? अगर उनकी कृपा से होता है, तो कहना पड़ता है कि ईश्वर में पक्षपात है।'

श्रीरामकृष्ण– वे स्वयं ही सब कुछ हैं। ईश्वर स्वयं ही जीव-

जगत् हुए हैं। जब पूर्ण ज्ञान होगा, तब यह बोध होगा। वे मन, बुद्धि और देह हुए हैं–– चौबीसों तत्त्व सब वे ही हुए हैं। वे पक्षपात करें भी तो किस पर करें ?

नन्द वसु– अनेक रूपों का धारण उन्होंने क्यों किया ?––कोई ज्ञानी और कोई अज्ञानी क्यों हैं ?

श्रीरामकृष्ण– उनकी इच्छा।

अतुल– केदार ने अच्छा कहा है। एक ने उनसे पूछा, 'ईश्वर ने सृष्टि का निर्माण क्यों किया ?' इस पर वे बोले, 'जिस मीटिंग में ईश्वर ने सृष्टि बनाने का ठहराया, उस मीटिंग में मैं हाज़िर नहीं था।' (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– उनकी इच्छा।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाने लगे।

" 'सब तुम्हारी ही इच्छा है, तुम इच्छामयी तारा हो। माँ, अपने कर्म तुम खुद करती हो, परन्तु लोग कहते है कि मैं करता हूँ। ऐ काली, हाथी को तो तुम दलदल में फँसा देती हो और किसी पंगु से गिरि का उल्लंघन करा देती हो। किसी को तुम ब्रह्मपद दे देती हो और किसी को तुम अधोगामी कर देती हो।'

"वे आनन्दमयी हैं। इसी सृष्टि, स्थिति और प्रलय की लीला कर रही हैं। जीव असंख्य हैं, उनमें दो ही एक मुक्त हो रहे हैं, उससे भी उन्हें आनन्द होता है। कोई संसार में बँध रहा है, कोई मुक्त हो रहा है।"

नन्द वसु– उनकी इच्छा तो है, परन्तु इधर तो जान निकली जा रही है।

श्रीरामकृष्ण– तुम लोग हो कहाँ ? वे ही सब कुछ हुए हैं। जब तक उन्हें तुम नहीं समझ सकते हो, तभी तक 'मैं मैं' कर रहे हो।

"सब लोग अगर उन्हें जान लें तो तर जायँ। परन्तु बात यह है कि किसी को दिन निकलते ही खाने को मिल जाता है, कोई दोपहर के समय भोजन पाता है और कोई शाम को; परन्तु खाना सभी को मिल जाता है—— कोई बिना खाए हुए नहीं रहता। इसी तरह अपने स्वरूप का ज्ञान सभी प्राप्त करेंगे।"

पशुपति– जी हाँ, जान पड़ता है, वे ही सब कुछ हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– मैं क्या हूँ, इसे ज़रा खोजो तो। क्या मैं हाड़ हूँ? माँस, खून या आँत हूँ? 'मैं' को खोजते ही खोजते 'तुम' आ जाता है; अर्थात् अन्दर में उस ईश्वर की शक्ति के सिवा और कुछ नहीं है। 'मैं' नहीं है, 'वे' हैं। (नन्द वसु के प्रति) तुममें अभिमान नहीं है—— इतना ऐश्वर्य होकर भी।

"'मैं' का सम्पूर्ण त्याग नहीं होता। यह सब जाने का नहीं तो रहने दो इसे ईश्वर का दास बना। मैं ईश्वर का भक्त हूँ, ईश्वर का दास हूँ, ईश्वर का पुत्र हूँ, यह अभिमान अच्छा है। जो 'मैं' कामिनी और कांचन में फँसता है वह कच्चा 'मैं' है, उसी का त्याग करना चाहिए।"

अहंकार की यह व्याख्या सुनकर गृहस्वामी और दूसरे लोग बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीरामकृष्ण– ज्ञान के दो लक्षण हैं। पहला यह कि अभिमान न रह जाएगा। दूसरा, स्वभाव शान्त बना रहेगा। तुममें दोनों लक्षण हैं। अतएव तुम पर ईश्वर का अनुग्रह है।

"अधिक ऐश्वर्य के होने पर ईश्वर को लोग भूल जाते हैं, ऐश्वर्य का स्वभाव ही ऐसा है। यदु मल्लिक को बहुत ऐश्वर्य हुआ है, वह आजकल ईश्वर की बात ही नहीं करता। पहले ईश्वर-चर्चा खूब किया करता था।

"कामिनी और कांचन एक तरह की शराब है। अधिक शराब पीने पर फिर चाचा और दादा का विचार नहीं रह जाता। उन्हें ही कह डालता है— 'तेरी ऐसी की तैसी।' मतवाले को बड़े-छोटे का ज्ञान नहीं रहता।"

नन्द वसु– हाँ, यह तो ठीक है।

पशुपति– ये सब क्या ठीक हैं?—स्पिरिच्युएलिज्म, थियोसफी, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, नक्षत्रलोक?

श्रीरामकृष्ण– नहीं भाई, मैं नहीं जानता। इतना हिसाब-किताब क्यों? आम खाओ। आम के कितने पेड़ हैं, कितनी लाख डालियाँ हैं, कितने करोड़ पत्ते हैं, इसके हिसाब लगाने की क्या ज़रूरत? मैं बगीचे में आम खाने के लिए आया करता हूँ, आम खाकर चला जाऊँगा।

"एक बार भी अगर चैतन्य हो, अगर एक बार भी ईश्वर को कोई समझ सके, तो दूसरी व्यर्थ बातों के जानने की इच्छा भी नहीं होती। विकार के होने पर लोग बहुत कुछ बका करते हैं— 'अरे! मैं तो पाँच सेर चावल का भात खाऊँगा, मैं दस घड़ा पानी पिऊँगा रे!'— यह सब। वैद्य कहता है— 'खाएगा! अच्छा खा लेना' — यह कहकर वह तम्बाकू पीने लगता है। विकार अच्छा हो जाने पर, रोगी जो कुछ कहता है उसकी ओर वह ध्यान देता है।"

पशुपति– जान पड़ता है, हम लोगों का विकार चिरकाल तक बना रहेगा।

श्रीरामकृष्ण– क्यों, ईश्वर पर मन रखो, चैतन्य प्राप्त होगा।

पशुपति– (सहास्य)– हम लोगों का ईश्वर से योग क्षणिक है। तम्बाकू पीने में जितनी देर लगती है, बस उतनी ही देर तक।

(सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– तो क्या हुआ, थोड़ी देर के लिए भी उनसे योग हो गया तो मुक्ति होगी ही।

"अहल्या ने कहा, 'राम, चाहे शूकर-योनि में जन्म हो, अथवा और कहीं, ऐसा करो कि तुम्हारे श्रीचरणों में मन लगा रहे—शुद्धा भक्ति वनी रहे।'

पाप तथा परलोक। मृत्युकाल के समय ईश्वर-चिन्ता

"नारद ने कहा, 'राम! तुमसे मैं और कोई वर नहीं चाहता। मुझे बस शुद्धा भक्ति दो। और यह आशीर्वाद करो कि फिर कभी तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में बद्ध न होऊँ।' उनसे आन्तरिक प्रार्थना करने पर उन पर मन भी लगता है और शुद्धा भक्ति भी उनके श्रीचरणों में होती है।

"'क्या हमारा विकार दूर होगा?—हम पापी जो हैं,' यह सब बुद्धि दूर करो। (नन्द वसु से) चाहिए यह भाव कि एक बार हमने उनका नाम लिया है, अब हममें पाप कहाँ रह गया?"

नन्द वसु– क्या परलोक है? और पाप का शासन?

श्रीरामकृष्ण– तुम आम खाते तो जाओ। इन सब बातों के हिसाब से तुम्हें क्या काम?—परलोक है या नहीं—वहाँ क्या होता है, क्या नहीं—इन सब बातों से क्या प्रयोजन?

"आम खाओ, आम की ज़रूरत है—उनमें भक्ति की ज़रूरत है।"

नन्द वसु– आम का पेड़ है कहाँ?—आम मिलता कहाँ है?

श्रीरामकृष्ण– पेड़! वे अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं। वे तो हैं ही—वे नित्य हैं। एक बात और—वे कल्पतरु हैं।

"उस कल्पतरु के नीचे तुम्हें चारों फल मिलेंगे।

"कल्पतरु के पास जाकर प्रार्थना करनी चाहिए, फल तभी

मिलता है। तब देखोगे, पेड़ के नीचे फल पड़े हैं; तब बीन लेना। चार फल हैं— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

"ज्ञानी मुक्ति चाहते हैं, भक्त भक्ति चाहते हैं— अहैतुकी भक्ति, वे धर्म, अर्थ, काम नहीं चाहते।

"परलोक की बात कहते हो। गीता का मत है, मृत्यु के समय जो कुछ सोचोगे, वही होओगे। राजा भरत ने हरिण-हरिण कहकर दुःख में देह छोड़ी थी। दूसरे जन्म में वे हरिण हुए भी थे। इसीलिए जप, ध्यान और पूजा आदि का दिन-रात अभ्यास किया जाता है, इस तरह अभ्यास के गुण से मृत्यु के समय ईश्वर की याद आती है। इस तरह से अगर मृत्यु होती है तो ईश्वर का स्वरूप मिलता है। केशव सेन ने भी परलोक की बात पूछी थी। मैंने केशव से कहा, 'इन सब बातों का हिसाब लगाकर क्या करोगे?' फिर कहा, 'जब तक ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती, तब तक बार बार संसार में आना-जाना होगा। कुम्हार मिट्टी के बासन धूप में सुखाता है। बकरी या गाय के पैरों से दबकर जो फूट जाते हैं उनमें जो पक्के बासन होते हैं उन्हें तो कुम्हार फेंक देता है, परन्तु कच्चे बासनों को वह फिर से गढ़ता है।'"

(३)

ज्ञानमार्ग तथा शुद्धा भक्ति

अब तक गृहस्वामी ने श्रीरामकृष्ण के जलपान के लिए कोई व्यवस्था नहीं की। श्रीरामकृष्ण स्वयं उनसे कह रहे हैं— "कुछ खाना चाहिए। यदु की माँ से उस दिन इसीलिए मैंने कहा, 'कुछ खाने को दो।' नहीं तो गृहस्थ का कहीं अमंगल न हो।"

गृहस्वामी ने कुछ मिष्टान्न मँगाया। श्रीरामकृष्ण मिष्टान्न खा रहे हैं। नन्द वसु तथा अन्य लोग श्रीरामकृष्ण की ओर एकदृष्टि

से ताक रहे हैं। देख रहे हैं, वे क्या क्या करते हैं।

श्रीरामकृष्ण हाथ धोएँगे। जिस तश्तरी में मिठाई दी गई थी वह दरी पर बिछी हुई चद्दर पर रखी थी, इसलिए श्रीरामकृष्ण वहीं अपने हाथ नहीं धो सके। हाथ धोने के लिए एक आदमी एक बरतन (पीकदान) ले आया।

पीकदान रजोगुण का चिह्न है। श्रीरामकृष्ण देखकर कह उठे, "ले जाओ—ले जाओ।" गृहस्वामी ने कहा, "हाथ धोइए।"

श्रीरामकृष्ण अन्यमनस्क हैं। कहा, "क्या?—हाथ धोऊँगा।"

श्रीरामकृष्ण बरामदे के दक्षिण ओर उठ गए। मणि को हाथ पर पानी डालने के लिए आज्ञा की। मणि गडुए से पानी छोड़ने लगे। श्रीरामकृष्ण अपनी धोती में हाथ पोंछकर फिर बैठने की जगह पर आ गए। समागत सज्जनों के लिए तश्तरी में पान लाए गए थे। उसी में के पान श्रीरामकृष्ण के पास ले जाए गए। उन्होंने पान नहीं लिया।

नन्द वसु— (श्रीरामकृष्ण से)— एक बात कहूँ?

श्रीरामकृष्ण— (सहास्य)— क्या?

नन्द वसु— पान आपने क्यों नहीं खाया? सब तो ठीक हुआ, इतना यह अन्याय हो गया।

श्रीरामकृष्ण— इष्ट को देकर खाता हूँ। यह एक अपना भाव है।

नन्द वसु— वह तो इष्ट ही में जाता।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञानमार्ग और चीज़ हैं, और भक्तिमार्ग दूसरी। ज्ञानी के मत से सभी चीज़ें ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से ली जा सकती हैं, भक्तिमार्ग में कुछ भेद-बुद्धि होती है।

नन्द वसु— तो यह दोष हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— यह एक मेरा भाव है। तुम जो कुछ कहते हो ठीक

है, वैसा भी है।

श्रीरामकृष्ण गृहस्वामी को चापलूसों के सम्बन्ध में सावधान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– एक बात के बारे में सावधान रहना। चापलूस अपने स्वार्थ की ताक में रहते हैं। (प्रसन्न के पिता से) आप क्या यहाँ रहते हैं ?

प्रसन्न के पिता– जी नहीं, परन्तु इसी मुहल्ले में रहता हूँ।

नन्द वसु का मकान बहुत बड़ा है, इस पर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं–– "यदु का मकान इतना बड़ा नहीं है। इसीलिए उससे उस दिन मैंने कहा।"

नन्द– हाँ, उन्होंने (जोड़ासाखों में) एक नया मकान बनवाया है।

श्रीरामकृष्ण नन्द वसु का उत्साह बढ़ा रहे हैं, कह रहे हैं––

"तुम संसार में रहकर ईश्वर की ओर मन रखे हुए हो, क्या यह कुछ कम बात है ? जिसने संसार का त्याग कर दिया है वह तो ईश्वर को पुकारेगा ही। उसमें बहादुरी क्या है ? जो संसार में रहकर पुकारता है, धन्य वही है।

"किसी एक भाव का आश्रय लेकर उन्हें पुकारना चाहिए। हनुमान में ज्ञान और भक्ति दोनों थे, नारद में शुद्धा भक्ति थी।

"राम ने पूछा, 'हनुमान, तुम किस भाव से मेरी पूजा करते हो ?' हनुमान ने कहा, 'कभी तो देखता हूँ, तुम पूर्ण हो और मैं अंश हूँ; कभी देखता हूँ, तुम प्रभु हो और मैं दास हूँ; और राम, जब तत्त्व का ज्ञान होता है, तब देखता हूँ, तुम्हीं 'मैं' हो और मैं ही 'तुम' हूँ।'

"राम ने नारद से कहा, 'तुम वर लो।' नारद ने कहा, 'राम'

यह वर दो कि तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जिससे फिर तुम्हारी भुवन-मोहिनी माया से मुग्ध न होऊँ।' "

श्रीरामकृष्ण अब उठने वाले हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नन्द वसु से)– गीता का मत है, बहुत से आदमी जिसे मानते और पूजते हैं उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति है। तुममें ईश्वर की शक्ति है।

नन्द वसु– शक्ति सभी मनुष्यों में बराबर है।

श्रीरामकृष्ण– (विरक्ति से)– यही तुम लोगों की एक रट है। सब आदमियों की शक्ति कभी वराबर हो सकती है ? विभुरूप से वे सर्व भूतों में विराजमान हैं, यह ठीक है, परन्तु शक्ति की विशेषता है।

"यही बात विद्यासागर ने भी कही थी। उसने कहा था, 'क्या उन्होंने किसी को अधिक शक्ति दी है और किसी को कम ?' तब मैंने कहा, 'अगर शक्ति की भिन्नता न रहती, तो तुम्हें हम लोग देखने क्यों आते ? क्या तुम्हारे सिर पर दो सींग हैं ?' "

श्रीरामकृष्ण उठे। साथ-साथ सब भक्त भी उठे। पशुपति साथ साथ दरवाजे तक आए।

(४)

ब्राह्मणी के मकान में श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण बागबाजार की एक शोकातुरा ब्राह्मणी के यहाँ आए हुए हैं। मकान पुराना है, पर पक्का है। छत पर बैठने का प्रबन्ध किया गया है। छत पर कतार बाँधकर कुछ लोग खड़े हैं, कुछ लोग बैठे हुए हैं। सब उत्सुक हैं कि श्रीरामकृष्ण को कब देखें।

ब्राह्मणी दो बहनें हैं, दोनों विधवा हैं, घर में उनके भाई

सपत्नीक रहते हैं। ब्राह्मणी के एक ही कन्या थी। उसके निधन से वह अत्यन्त दुःखी रहा करती है। आज श्रीरामकृष्ण पधारेंगे, यह सुनकर दिन भर से वह उनके स्वागत की तैयारी कर रही है। जब तक श्रीरामकृष्ण नन्द वसु के यहाँ थे तब तक ब्राह्मणी भीतर-बाहर कर रही थी कि कब वे आएँ। आने में विलम्ब होते देख वह निराश हो रथी थी।

भक्तों के साथ आकर छत पर बैठने के स्थान पर श्रीरामकृष्ण ने आसन ग्रहण किया। पास चटाई पर मास्टर, नारायण, योगीन्द्र सेन, देवेन्द्र तथा योगीन बैठे हुए हैं। कुछ देर बाद छोटे नरेन्द्र आदि बहुत से भक्त आ गए। ब्राह्मणी की बहन छत पर आकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके कह रही है— "दीदी नन्द वसु के यहाँ खबर लेने के लिए अभी थोड़ी देर हुई, गई हैं। आती ही होंगी।"

नीचे एक शब्द सुनकर उसने कहा, 'वह— दीदी आई।' यह कहकर वह देखने लगी, परन्तु ब्राह्मणी नहीं आई थी।

श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक भक्तों के बीच में बैठे हुए हैं।

मास्टर– (देवेन्द्र से)– कितना सुन्दर दृश्य है! लड़के बच्चे, पुरुष, स्त्री— सब लोग कतार बाँधकर खड़े हुए हैं। सब लोग इन्हें देखने के लिए कितने उत्सुक हो रहे हैं— और इनकी बात सुनने के लिए!

देवेन्द्र– (श्रीरामकृष्ण से)– मास्टर महाशय कहते हैं, 'नन्द वसु के वहाँ से यह जगह अच्छी है,— इन लोगों में कितनी भक्ति है!'

श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं।

अब ब्राह्मणी की बहन कह रही है, 'दीदी वह आ रही हैं।'

ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके, कुछ सोच न सकी कि क्या कहें।

वह अधीर होकर कहने लगी—"अरी, देख, इतना आनन्द मैं कहाँ रखूँ?—बताओ री—जब मेरी चण्डी आती थी, सिपाहियों को साथ लेकर, और वे लोग रास्ते पर पहरा देते थे, तब भी तो मुझे इतना आनन्द नहीं हुआ—अरी, अब मुझे चण्डी का दु:ख ज़रा भी नहीं है। मैंने सोचा था, जब वे नहीं आए, तब जो कुछ आयोजन मैंने किया, सब गंगा में फेंक दूँगी—फिर कभी उनसे (श्रीरामकृष्ण से) बोलूँगी भी नहीं—जहाँ आएँगे, आड़ से एक बार देख भर लूँगी, बस चली आऊँगी।

"जाऊँ, सब से कहूँ, तुम आकर मेरा सुख देख जाओ,—जाऊँ योगीन से कहूँ, मेरा सुख देख जा—"

मारे आनन्द के अधीर होकर ब्राह्मणी फिर कहने लगी—"खेल (लाटरी) में एक रुपया लगाकर किसी कुली को एक लाख रुपए मिले थे। एक लाख रुपए मिले हैं, सुनकर मारे आनन्द से वह मर गया था—सचमुच मर गया था!—अरी! मेरी भी तो वही दशा हो गई है। तुम लोग सब आशीर्वाद दो, नहीं तो मैं भी सचमुच मर जाऊँगी।"

मणि ब्राह्मणी की व्याकुलता और भाव की अवस्था देखकर मुग्ध हो गए हैं। वे उसके पैरो की धूल लेने के लिए बढ़े। ब्राह्मणी ने कहा 'अजी, यह क्या?'—उसने मणि को भी बदले में प्रणाम किया।

ब्राह्मणी भक्तों को आए हुए देखकर मारे आनन्द के कह रही है—"तुम सब लोग आए हो, छोटे नरेन्द्र को भी मैं ले आई हूँ, नहीं तो हँसेगा कौन?" ब्राह्मणी इसी तरह की बातें कह रही

है, इसी समय उसकी बहन ने आकर कहा, 'दीदी, तुम ज़रा नीचे भी तो आओ, हम लोग अकेले क्या क्या करें ?'

ब्राह्मणी आनन्द में अपने को भूली हुई है। श्रीरामकृष्ण तथा भक्तों को देख रही है। उन्हें अब छोड़कर जा नहीं सकती।

इस तरह की बातों के पश्चात् बड़ी भक्ति से ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण को एक दूसरे कमरे में ले गई और खाने के लिए अनेक मिष्टान्न आदि दिए। भक्तों को भी छत पर बैठाकर खिलाया।

रात के आठ बजे। श्रीरामकृष्ण बिदा हो रहे हैं। नीचे के मंज़ले में कमरे के साथ बरामदा भी है। बरामदे से पश्चिम की ओर आँगन में आया जाता है, फिर दाहिनी ओर गौओं के रहने की जगह छोड़कर सदर दरवाजे को रास्ता है। उस समय ब्राह्मणी ज़ोर से पुकार रही थी— 'ओ बहू, जल्दी आ-- पैरों की धूल ले।' बहू ने प्रणाम किया। ब्राह्मणी के एक भाई ने भी आकर प्रणाम किया।

ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण से कह रही है-- 'यह एक दूसरा भाई है-- मूर्ख है।'

श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'नहीं, नहीं, सब भलेमानस हैं।'

एक व्यक्ति साथ साथ दिया दिखाते हुए आ रहे हैं, आते आते एक जगह प्रकाश ठीक नहीं पहुँचा, तब छोटे नरेन्द्र ऊँचे स्वर से कहने लगे— 'दिया दिखाओ-- दिया दिखाओ-- यह न सोचो दिया दिखाना अब बस है।' (सब हँसते हैं)

अब गौओं की जगह आई। ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण से कहती है, 'यहाँ मेरी गौएँ रहती हैं।' श्रीरामकृष्ण वहाँ ज़रा खड़े हो गए, और चारों ओर भक्तगण। मणि ने भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया और पैरों की धूल ली।

अब श्रीरामकृष्ण गनू की माँ के घर जाएँगे।

(५)

गनू की माँ के मकान में श्रीरामकृष्ण

गनू की माँ के बैठकखाने में श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। कमरा एक मंज़ले पर है, बिलकुल रास्ते पर। उस कमरे में बजानेवालों का अखाड़ा (Concert) लगा करता है। कुछ नवयुवक श्रीरामकृष्ण के आनन्द के लिए वाद्ययंत्र लेकर बीच बीच में बजाते भी हैं।

रात के साढ़े आठ बजे का समय होगा। आज आषाढ़ की कृष्णा प्रतिपदा है। चाँदनी में आकाश, गृह, राजपथ, सब कुछ प्लावित हो रहा है। श्रीरामकृष्ण के साथ भक्तगण आकर उसी कमरे में बैठे।

साथ साथ ब्राह्मणी भी आई हुई है, वह कभी घर के भीतर जा रही है, कभी बाहर बैठकखाने के दरवाजे के पास खड़ी होती है। मुहल्ले के कुछ लड़के झरोखों पर चढ़कर श्रीरामकृष्ण को झाँककर देख रहे हैं। मुहल्ले भर के लड़के, बूढ़े और जवान श्रीरामकृष्ण के आगमन की बात सुनकर उनके दर्शन करने के लिए आए हैं।

झरोखे पर बच्चों को देखकर छोटे नरेन्द्र कह रहे हैं, 'अरे, तुम लोग वहाँ क्यों खड़े हो, जाओ अपने अपने घर।' श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'नहीं, नहीं, रहने दो।'

श्रीरामकृष्ण बीच बीच में 'हरि ॐ-- हरि ॐ' कह रहे हैं।

दरी पर एक आसन बिछाया गया है। श्रीरामकृष्ण उसी पर बैठे हैं। वाद्य बजानेवाले लड़कों से गाने के लिए कहा गया। उनके लिए बैठने की सुविधा नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने पास

दरी पर बैठने के लिए बुलाया।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'इसी पर आकर बैठो। मैं इसे समेटे लेता हूँ।' यह कहकर उन्होंने अपना आसन समेट लिया। नवयुवक गा रहे हैं— "केशव कुरु करुणा दीने कुंजकाननचारी।"

श्रीरामकृष्ण— अहा! कितना मधुर गाना है! — बेला भी कितना सुन्दर बज रहा है! और गाना भी कैसा स्वरयुक्त हो रहा है!

एक लड़का फ्लुट (बंसी) बजा रहा था। उसकी ओर तथा एक दूसरे लड़के की ओर उँगली से इशारा करके श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'ये इनके जोड़ीदार हैं।'

अब वाद्य बजने लगे। श्रीरामकृष्ण आनन्दित होकर कह रहे हैं— "वाह! कितना सुन्दर है!"

एक लड़के की ओर उँगली से इशारा करके कह रहे हैं— "इनको सब तरह का बाजा बजाना आता है।"

मास्टर से कह रहे हैं— "ये सब बड़े अच्छे आदमी हैं।"

बालक-भक्त जब खुद गा-बजा चुके तब भक्तों से उन्होंने कहा, 'आप लोग भी कुछ गाइये।' ब्राह्मणी खड़ी हुई है। उसने दरवाजे के पास ही से कहा, 'ये लोग कोई गाना नहीं जानते। एक हैं महिनबाबू, परन्तु उनके (श्रीरामकृष्ण के) सामने वे भी नहीं गाएँगे।'

एक बालक-भक्त— क्यों, मैं तो अपने बाबूजी के सामने गा सकता हूँ।

छोटे नरेन्द्र— (ज़ोर से हँसकर)— इतनी दूर ये नहीं बढ़ सके।

सब हँस रहे हैं। कुछ देर बाद ब्राह्मणी ने आकर कहा, "आप भीतर आइए।" श्रीरामकृष्ण ने पूछा— "क्यों?"

ब्राह्मणी– वहाँ जलपान की व्यवस्था की गई है।

श्रीरामकृष्ण– यहीं न ले आओ।

ब्राह्मणी– गनू की माँ ने कहा है, 'घर में ले आओ, पैरों की धूल पड़ जाएगी तो मेरा घर वाराणसी हो जाएगा, इस घर में मरूँगी तो फिर किसी बात की चिन्ता न रहेगी।'

श्रीरामकृष्ण घर के लड़कों के साथ मकान के भीतर गए। भक्त-गण चाँदनी में टहलने लगे। मास्टर और विनोद घर के दक्षिण ओर सदर रास्ते पर बातें करते हुए टहल रहे हैं।

(६)

गुह्य कथा। 'तीनों एक'

श्रीरामकृष्ण बलराम के घर लौट आए हैं। बलराम के बैठक-खाने के पश्चिम ओर वाले कमरे में विश्राम कर रहे हैं, अब वे सोएँगे। गनू की माँ के घर से लौटते हुए बड़ी रात हो गई है। रात के पौने ग्यारह बजे होंगे।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— "योगीन, ज़रा पैरों पर हाथ तो फेर दो।" पास ही मास्टर भी बैठे हुए हैं।

योगीन पैरों पर हाथ फेर रहे हैं, इतने में ही श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'मुझे भूख लगी है, थोड़ी सी सूजी खाऊँगा।'

ब्राह्मणी यहाँ भी साथ-साथ आई हुई है। ब्राह्मणी के भाई तबला बहुत अच्छा बजाते हैं। श्रीरामकृष्ण ब्राह्मणी को देखकर फिर कह रहे हैं, 'अगली बार नरेन्द्र या किसी दूसरे गवैये के आने पर इनके भाई भी बुला लिए जाएँगे।'

श्रीरामकृष्ण ने थोड़ीसी सूजी खाई। क्रमशः योगीन आदि भक्तगण कमरे से चले गए। मणि श्रीरामकृष्ण के पैरों पर हाथ फेर रहे हैं, श्रीरामकृष्ण उनसे बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अहा, इन्हें (ब्राह्मणी आदि को) कितना आनन्द हुआ है !

मणि– कैसे आश्चर्य की बात है, ईसा मसीह के समय भी ऐसा ही हुआ था। वे भी दो बहनें थीं— परम भक्त मारथा (Martha) और मेरी (Mary)।

श्रीरामकृष्ण– (आग्रह से)– उनकी कहानी क्या है, ज़रा कहो तो।

मणि– ईशू उनके यहाँ भक्तों के साथ बिलकुल इसी तरह गए थे। एक बहन उन्हें देखकर भाव और आनन्द के पारावार में मग्न हो गई थी। यह मुझे गौरांग के बारे में एक गीत की याद दिलाती है : 'गौर के रूप-सागर में मेरे नयन डूब गए, फिर लौटकर मेरे पास न आए; मेरा मन भी, तैरना भूलकर, एकदम तल में पैठ गया।'

"दूसरी बहन अकेली जलपान का प्रबन्ध कर रही थी। उसने अपनी बहन से कोई मदद न पा ईशू के पास शिकायत की, कहा, 'प्रभु, देखिए तो, दीदी का यह कितना बड़ा अन्याय है ! आप यहाँ अकेली चुपचाप बैठी हुई हैं और मैं अकेली यह सब काम कर रही हूँ !'

"तब ईशू ने कहा, 'तुम्हारी दीदी धन्य हैं, क्योंकि मनुष्य-जीवन में जो कुछ चाहिए (ईश्वर-प्रेम) वह उन्हें हो गया है।'"

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, यह सब देखकर तुम्हें क्या जान पड़ता है ?

मणि– मुझे जान पड़ता है, ईशू, चैतन्य और आप एक ही हैं।

श्रीरामकृष्ण– एक ! एक ! एक ही तो ! वे (ईश्वर)— देखते नहीं हो—इसमें किस तरह से हैं !

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने अपने शरीर की ओर उँगली से इशारा किया।

मणि– उस दिन आप इस अवतीर्ण होने की बात को बहुत अच्छी तरह समझा रहे थे।

श्रीरामकृष्ण– किस तरह, कहो तो।

मणि– जैसे खूब लम्बा-चौड़ा मैदान पड़ा हुआ है। सामने चारदीवार है। इसलिए वह मैदान हमें देखने को नहीं मिलता। उस चारदीवार में एक गोलाकार छेद है। उस छेद से उस मैदान का कुछ अंश दिखाई पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– कहो भला वह छेद क्या है?

मणि– वह छेद आप हैं; आपके भीतर से सब दीख पड़ता है, —– वह दिगन्तव्यापी मैदान भी दिखाई पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण सन्तुष्ट होकर मणि की पीठ ठोंकने लगे और कहा, 'तुमने इसे समझ लिया, अच्छा हुआ।'

मणि– उसे समझना सचमुच बड़ा कठिन है। पूर्ण ब्रह्म होते हुए भी उतने के भीतर किस तरह रहते हैं, यह नहीं समझ में आता।

श्रीरामकृष्ण– उसे किसी ने न पहचाना, वह पागल की तरह जीवों के घरों में घूम रहा है।

मणि– और आपने ईशू की बात कही थी।

श्रीरामकृष्ण– क्या-क्या?

मणि– यदु मल्लिक के बगीचे में ईशू की तस्वीर देखकर भाव-समाधि हुई थी, आपने देखा था—– ईशू की मूर्ति तस्वीर से निकलकर आपमें आकर लीन हो गई।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप हैं। फिर मणि से कह रहे हैं—– 'गले में यह जो हुआ है, सम्भव है इसका कोई अर्थ हो। यदि यह न होता तो मैं सब स्थानों में जाता, गाता और नाचता, और

इस प्रकार स्वयं को खिलवाड़-सा बना लेता।

श्रीरामकृष्ण द्विज की बात कह रहे हैं। कहा-- 'द्विज नहीं आया।'

मणि– मैंने तो आने के लिए कहा था। आज आने की बात भी थी; परन्तु क्यों नहीं आया, कुछ समझ में नहीं आता।

श्रीरामकृष्ण– उसमें अनुराग खूब है। अच्छा, वह यहाँ का (सांगोपांग में से) कोई एक होगा, न ?

मणि– जी हाँ, होगा ज़रूर। नहीं तो इतना अनुराग फिर कैसे होता ?

मणि मसहरी के भीतर श्रीरामकृष्ण को पंखा झल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण करवट बदलकर फिर बातचीत करने लगे। आदमी के भीतर अवतीर्ण होकर वे लीला करते हैं, यही बात हो रही है।

श्रीरामकृष्ण– पहले मुझे रूपदर्शन नहीं होता था, ऐसी अवस्था भी हो चुकी है। इस समय भी देखते नहीं हो ? रूपदर्शन घटता जा रहा है।

मणि– लीलाओं में नरलीला मुझे अधिक पसन्द है।

श्रीरामकृष्ण– तो बस ठीक है।-- और तुम मुझे देखते ही हो!

उपरोक्त कथन से क्या श्रीरामकृष्ण का यही संकेत है कि ईश्वर नररूप में अवतीर्ण होकर इस शरीर में लीला कर रहे हैं?

परिच्छेद १४

श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक अनुभव

(१)

द्विज तथा द्विज के पिताजी । मातृऋण तथा पितृऋण

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में अपने उसी कमरे में राखाल, मास्टर आदि भक्तों के साथ बैठे हुए हैं । दिन के ३-४ बजे का समय होगा ।

श्रीरामकृष्ण के गले की बीमारी की जड़ जमने लगी है । तथापि दिन भर वे भक्तों की मंगलकामना करते रहते हैं । किस तरह वे संसार में बद्ध न हों, किस तरह उनमें ज्ञान और भक्ति हों—— ईश्वर की प्राप्ति हो, इसी की चिन्ता किया करते हैं ।

श्रीयुत राखाल वृन्दावन से आकर कुछ दिन घर पर थे । आजकल वे श्रीरामकृष्ण के पास रहते हैं । लाटू, हरीश और रामलाल भी श्रीरामकृष्ण के पास रहते हैं ।

श्री माताजी (श्रीरामकृष्ण की धर्मपत्नी) भी कई महीने हुए श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए देश से आई हुए हैं । वे नौबत-खाने में रहती हैं । शोकातुरा ब्राह्मणी कई रोज से उनके पास रहती है ।

श्रीरामकृष्ण के पास द्विज, द्विज के पिता और भाई, मास्टर आदि बैठे हुए हैं । आज ९ अगस्त है, १८८५ ।

द्विज की उम्र सोलह साल की होगी । उनकी माता के निधन के बाद उनके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया है । द्विज मास्टर के साथ प्रायः श्रीरामकृष्ण के पास आया करते हैं । परन्तु उनके पिता को इससे बड़ा असन्तोष है ।

द्विज के पिता श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आएँगे, यह बात उन्होंने बहुत दिन पहले ही कही थी। आज इसीलिए आए भी हैं। वे कलकत्ते के किसी विदेशी वनिये के ऑफिस के मैनेजर हैं।

श्रीरामकृष्ण– (द्विज के पिता से)– आपका लड़का यहाँ आता है, इससे आप कुछ और न सोचिएगा।

"मैं तो कहता हूँ, चैतन्य प्राप्त करके संसार में रहो। बड़ी मेहनत के बाद अगर कोई सोना पा ले, तो वह उसे चाहे मिट्टी में गाड़ रखे, सन्दूक में वन्द कर रखे, अथवा पानी में रखे, सोने का इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं।

"मैं कहता हूँ, अनासक्त होकर संसार करो। हाथों में तेल लगाकर कटहल काटो, तो हाथ में दूध न चिपकेगा।

"कच्चे 'मैं' को संसार में रखने पर मन मलिन हो जाता है। ज्ञानलाभ करके संसार में रहना चाहिए।

"पानी में दूध को डाल रखने पर दूध नष्ट हो जाता है। परन्तु उसी का मक्खन निकालकर पानी में डालने पर फिर कोई झंझट नहीं रह जाती।"

द्विज के पिता– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– आप जो इन्हें डाँटते हैं, इसका मतलब मैं समझता हूँ। आप इन्हें डरवाते हैं। ब्रह्मचारी ने साँप से कहा, 'तू तो बड़ा मूर्ख है! मैंने तुझे बस काटने ही के लिए मना किया था, फुफकारने के लिए नहीं। तूने अगर फुफकारा होता तो तेरे शत्रु तुझे मार न सकते।' इसी तरह आप जो लड़कों को डाँटते हैं, वह केवल फुफकारना ही है। (द्विज के पिता हँस रहे हैं)

"लड़के का अच्छा होना पिता के पुण्य के लक्षण हैं। अगर

कुएँ का पानी अच्छा निकला तो वह कुएँ के मालिक के पुण्य का चिह्न है।

"बच्चे को आत्मज कहते हैं। तुममें और तुम्हारे बच्चे में कोई भेद नहीं। एक रूप से बच्चा तुम्हीं हुए हो। एक रूप से तुम विषयी हो, ऑफिस का काम करते हो, संसार का भोग करते हो, एक दूसरे रूप से तुम्हीं भक्त हुए हो——अपने सन्तान के रूप से। मैंने सुना था, तुम घोर विषयी हो। परन्तु बात ऐसी तो नहीं है। (सहास्य) यह सब तो तुम जानते ही हो। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शायद तुम बहुत अधिक सतर्क हो, इसीलिए जो कुछ मैं कहता हूँ उस पर तुम सिर हिला-हिलाकर अपनी राय देते हो। (द्विज के पिता मुसकराते हैं)

"यहाँ आने पर तुम क्या हो, यह ये लोग समझ सकेंगे। पिता का स्थान कितना ऊँचा है! माता-पिता को धोखा देकर जो धर्म करना चाहता है उसे क्या खाक हो सकता है?

"आदमी के बहुत से ऋण हैं, पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण; इसके अतिरिक्त मातृऋण भी है। फिर स्त्री के ऋण का भी उल्लेख है—— इसे भी मानना चाहिए। अगर वह सती है तो पति को अपनी मृत्यु के बाद उसके भरण-पोषण के लिए व्यवस्था कर जानी चाहिए।

"मैं अपनी माँ के कारण वृन्दावन में न रह सका। ज्योंही याद आया कि माँ दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में है, फिर वृन्दावन में मन न लगा।

"मैं इन लोगों से कहता हूँ, संसार भी करो और ईश्वर में भी मन रखो। संसार छोड़ने के लिए मैं नहीं कहता, यह करो और वह भी करो।"

पिता– मैं उससे यही कहता हूँ कि वह लिखना-पढ़ना भी करे, आपके यहाँ आने से मैं मनाई तो नहीं करता। परन्तु लड़कों के साथ हँसी-मज़ाक में समय नष्ट न किया करे––

श्रीरामकृष्ण– इसमें अवश्य ही संस्कार था। इसके दूसरे दो भाइयों में वह बात न होकर इसी में यह क्यों पैदा हुई ?

"ज़बरदस्ती क्या तुम मना कर सकोगे ? जिसमें जो कुछ है, वह होकर ही रहेगा।"

पिता– हाँ, यह तो है।

श्रीरामकृष्ण द्विज के पिता के पास चटाई पर आकर बैठे। बातचीत करते हुए एक बार उनकी देह पर हाथ लगा रहे हैं।

सन्ध्या हो आई। श्रीरामकृष्ण मास्टर आदि से कह रहे हैं, 'इन्हें सब देवता दिखा ले आओ–– अच्छा रहता तो मैं भी साथ चलता।'

लड़कों को सन्देश देने के लिए कहा। द्विज के पिता से कह रहे हैं–– "ये कुछ जलपान करेंगे, कुछ जलपान करना चाहिए।' द्विज के पिता देवालय देखकर बगीचे में ज़रा टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के दक्षिण-पूर्व वाले बरामदे में भूपेन, द्विज और मास्टर आदि के साथ आनन्द-पूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। कौतुक करते हुए भूपेन और मास्टर की पीठ में मीठी चपत मार रहे हैं। द्विज से हँसते हुए कह रहे हैं, "कैसा कहा मैंने तेरे बाप से ?"

सन्ध्या के बाद द्विज के पिता श्रीरामकृष्ण के कमरे में फिर आए। कुछ देर में बिदा होने वाले हैं।

द्विज के पिता को गरमी लग रही है। श्रीरामकृष्ण अपने हाथों से पंखा झल रहे हैं।

द्विज के पिता बिदा हुए। श्रीरामकृष्ण उठकर खड़े हो गए।

(२)

समाधि के प्रकार

रात के आठ बजे हैं। श्रीरामकृष्ण महिमाचरण से बातचीत कर रहे हैं। कमरे में राखाल, मास्टर और महिमाचरण के दो-एक मित्र बैठे हैं।

महिमाचरण आज रात को यहीं रहेंगे।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, केदार को कैसा देख रहे हो?— उसने दूध देखा ही है या पिया भी है?

महिमा– हाँ, आनन्द पा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– और नृत्यगोपाल?

महिमा– सुन्दर! अच्छी अवस्था है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, अच्छा गिरीश घोष कैसा हुआ है?

महिमा– अच्छा हुआ है, परन्तु लड़कों का दर्जा और है।

श्रीरामकृष्ण– और नरेन्द्र?

महिमा– मैं पन्द्रह साल पहले जैसा था, यह वैसा ही है।

श्रीरामकृष्ण– और छोटा नरेन्द्र? कैसा सरल है!

महिमा– जी हाँ, खूब सरल।

श्रीरामकृष्ण– तुमने ठीक कहा है। (सोचते हुए) और कौन है?

"जो सब लड़के यहाँ आ रहे हैं, उन्हें बस दो बातों को जानने से ही हुआ। ऐसा होने से फिर अधिक साधन-भजन न करना होगा। पहली बात— मैं कौन हूँ, दूसरी— वे कौन हैं। इन लड़कों में बहुतेरे अन्तरंग हैं।

"जो अन्तरंग हैं, उनकी मुक्ति न होगी। वायव्य दिशा में

एक बार और (मुझे) देह धारण करना होगा ।

"बच्चों को देखकर मेरे प्राण शीतल हो जाते हैं । और जो लोग बच्चे पैदा कर रहे हैं, मुकदमा और मामलेबाज़ी कर रहे हैं, उन्हें देखकर कैसे आनन्द हो सकता है ? शुद्ध आत्मा को बिना देखे रहूँ कैसे ?"

महिमाचरण शास्त्रों से श्लोकों की आवृत्ति करके सुना रहे हैं, और तंत्रों से भूचरी, खेचरी और शाम्भवी, कितनी ही मुद्राओं की बातें कह रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, समाधि के बाद मेरी आत्मा महाकाश में पक्षी की तरह उड़ती हुई घूमती है, ऐसी बात कोई कोई कहते हैं ।

"हृषीकेश का साधु आया था । उसने कहा, 'समाधियाँ पाँच प्रकार की होती हैं,— देखता हूँ तुम्हें तो सभी समाधियाँ होती हैं । पिपीलिकावत्, मीनवत्, कपिवत्, पक्षीवत्, तिर्यग्वत् ।'

"कभी वायु चढ़कर चींटी की तरह सुरसुराया करती है । कभी समाधि-अवस्था में भाव-समुद्र के भीतर आत्मारूपी मीन आनन्द से क्रीड़ा करता है ।

"कभी करवट बदलकर पड़ा हुआ हूँ, देखा, महावायु बन्दर की तरह मुझे ठेलकर आनन्द करती है । मैं चुपचाप पड़ा रहता हूँ । वही वायु एकाएक बन्दर की तरह उछलकर सहस्रार में चढ़ जाती है । इसीलिए तो मैं उछलकर खड़ा हो जाता हूँ ।

"फिर कभी पक्षी की तरह इस डाल से उस डाल पर, उस डाल से इस डाल पर महावायु चढ़ती रहती है । जिस डाल पर बैठती है वह स्थान आग की तरह जान पड़ता है । कभी मूलाधार से स्वाधिष्ठान, स्वाधिष्ठान से हृदय, और इस तरह क्रमशः सिर में चढ़ती है ।

"कभी महावायु की तिर्यक्-गति होती है— टेढ़ी-मेढ़ी चाल ।

उसी तरह चलकर अन्त में जब सिर में आती है तब समाधि होती है।

"कुण्डलिनी के जागृत हुए बिना चैतन्य नहीं होता।

"कुण्डलिनी मूलाधार में रहती है। चैतन्य होने पर वह सुषुम्ना नाड़ी के भीतर से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, इन सबका भेद करके अन्त में मस्तक में पहुँचती है, इसे ही महावायु की गति कहते हैं। अन्त में समाधि होती है।

"केवल पुस्तक पढ़ने से चैतन्य नहीं होता। उन्हें पुकारना चाहिए। व्याकुल होने पर कुलकुण्डलिनी जागृत होती है। सुनकर या किताबें पढ़कर जो ज्ञान होता है उससे क्या होगा ?

"जब यह अवस्था हुई, उससे ठीक पहले मुझे दिखलाया गया किस तरह कुलकुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर क्रमशः सब पद्म खिलने लगे, और फिर समाधि हुई। यह बड़ी गुप्त बात है। मैंने देखा, बिलकुल मेरी तरह का २२–२३ साल का एक युवक सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जाकर, जिह्वा के द्वारा योनिरूप पद्मों के साथ रमण कर रहा है। पहले गुह्य, लिंग और नाभि––चतुर्दल, षड्दल और दशदल पद्म, पहले ये सब अधोमुख थे, फिर वे ऊर्ध्वमुख हो गए।

"जब वह हृदय में आया, मुझे खूब याद है, जीभ से रमण करने के बाद द्वादशदल अधोमुख पद्म ऊर्ध्वमुख होकर खिल गया, फिर कण्ठ में षोड़षदल और कपाल में द्विदल पद्म के खुलने के बाद सिर में सहस्रदल पद्म प्रस्फुटित हो गया। तभी से मेरी यह अवस्था है।"

(३)

श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक अनुभव

श्रीरामकृष्ण यह बात कहते हुए उतरकर महिमाचरण के पास

जमीन पर बैठे। पास मास्टर हैं, तथा दो-एक भक्त और। कमरे में राखाल भी हैं।

श्रीरामकृष्ण– (महिमा से)–आपसे कहने की इच्छा बहुत दिनों से थी, पर कह नहीं सका, आज कहने की इच्छा हो रही है।

"मेरी जो अवस्था आप बतलाते हैं, साधना करने ही से ऐसा नहीं हुआ करता। इसमें (मुझमें) कुछ विशेषता है।

"बातचीत की !—केवल दर्शन ही नहीं, बातचीत की ! बट के नीचे मैंने देखा, गंगाजी के भीतर से निकलकर कितनी हँसी—कितना मज़ाक किया। हँसी ही हँसी में मेरी उँगली मरोड़ दी गई ! फिर बातचीत हुई,—वे (भगवान्) बोले !

"तीन दिन लगातार मैं रोया, उन्होंने वेदों, पुराणों और तंत्रों में क्या है, सब दिखला दिया !

"महामाया क्या है, यह भी एक दिन दिखला दिया। कमरे के भीतर छोटीसी ज्योति क्रमशः बढ़ने लगी और संसार को आच्छन्न करने लगी।

"फिर उन्होंने दिखलाया—मानो बहुत बड़ा तालाब काई से भरा हुआ है। हवा से काई कुछ हट गई और पानी ज़रा दीख पड़ा, परन्तु देखते ही देखते चारों ओर से नाचती हुई काई फिर आ गई और पानी को ढक लिया। दिखलाया, वह जल सच्चिदानन्द है और काई माया। माया के कारण सच्चिदानन्द को कोई देख नहीं सकता। अगर एक बार देखता भी है तो पल भर के लिए, फिर माया उसे ढक लेती है।

"किस तरह का आदमी यहाँ आ रहा है, उसके आने से पहले ही वे मुझे दिखा देते हैं। बट के नीचे से बकुल के पेड़ तक उन्होंने चैतन्यदेव के संकीर्तन का दल दिखलाया। उसमें मैंने बलराम को

देखा था——नहीं तो भला मिश्री और यह सब मुझे कौन देता ? और इन्हें (मास्टर को) भी देखा था।

"केशव सेन से मुलाकात होने के पहले उसे मैंने देखा ! समाधि-अवस्था में मैंने देखा केशव सेन और उसके दल को। कमरे में ठसाठस भरे हुए आदमी मेरे सामने बैठे हुए थे। केशव को मैंने देखा, उन लोगों में मोर की तरह अपने पंख फैलाए बैठा हुआ था। पंख अर्थात् दल-बल। केशव के सिर में, देखा, एक लाल मणि थी। वह रजोगुण का लक्षण है। केशव अपने चेलों से कह रहा था——'ये (श्रीरामकृष्ण) क्या कह रहे हैं, तुम लोग सुनो।' माँ से मैंने कहा, 'माँ, इन लोगों का अंग्रेजी मत है, इनसे क्या कहना है ?' फिर माँ ने समझाया, कलिकाल में ऐसा ही होता है। तब यहाँ से (मेरे पास से) वे लोग हरिनाम तथा माता का नाम ले गए। इसीलिए माता ने विजय को केशव के दल से अलग कर लिया। परन्तु विजय आदि-समाज में सम्मिलित नहीं हुआ।

(अपने को दिखाकर) "इसके भीतर कोई एक हैं। गोपाल सेन नाम का एक लड़का आया करता था, बहुत दिन हो गए। इसके भीतर जो हैं, उन्होंने गोपाल की छाती पर पैर रख दिया। वह भावावेश में कहने लगा, 'अभी तुम्हें देर है; परन्तु मैं संसारी आदमियों के बीच में नहीं रह सकता।'——फिर 'अब जाता हूँ' कहकर वह घर चला गया। बाद में मैंने सुना, उसने देह छोड़ दी है। जान पड़ता है, वही नित्यगोपाल है !

"सब बड़े आश्चर्यपूर्ण दर्शन हुए हैं। अखण्ड सच्चिदानन्द-दर्शन भी हो चुका है। उसके भीतर मैंने देखा है, बीच में घेरा लगाकर उसके दो हिस्से कर दिए गए हैं। एक हिस्से में केदार, चुन्नी

तथा अन्य साकारवादी भक्त हैं; घेरे के दूसरी ओर खूब लाल सुर्खी की ढेरी की तरह प्रकाश है, उसके बीच में समाधिमग्न नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) बैठा हुआ है।

"ध्यानस्थ देखकर मैंने पुकारा--'नरेन्द्र!', उसने ज़रा आँख खोली।--मैं समझ गया, वही एक रूप में, सिमला (कलकत्ता) में, कायस्थ के यहाँ पैदा होकर रह रहा है। तब मैंने कहा, 'माँ, उसे माया में बाँध लो, नहीं तो समाधि में वह देह छोड़ देगा।' केदार साकारवादी है, उसने झाँककर देखा, उसे रोमांच हो आया और वह भागा।

"यही सोचता हूँ, इस शरीर के भीतर माँ स्वयं हैं, भक्तों को लेकर लीला कर रही हैं। जब पहले पहल यह अवस्था हुई, तब ज्योति से देह दमका करती थी। छाती लाल हो जाती थी। तब मैंने कहा, 'माँ, बाहर प्रकाशित न होओ--भीतर समा जाओ।' इसीलिए अब यह देह मलिन हो रही है।

"नहीं तो आदमी जला डालते। आदमियों की भीड़ लग जाती अगर वैसी ज्योतिर्मय देह बनी रहती। अब बाहर प्रकाश नहीं है। इससे तमाशबीन भाग जाते हैं--जो शुद्ध भक्त हैं, वे ही रहेंगे। यह बीमारी क्यों हुई, इसका अर्थ यही है। जिनकी भक्ति सकाम है, वे बीमारी देखकर भाग जाएँगे।

"मेरी एक इच्छा थी। मैंने माँ से कहा था--'माँ, मैं भक्तों का राजा होऊँगा।'

"फिर मेरे मन में यह वात उठी कि हृदय से जो ईश्वर को पुकारेगा, उसे यहाँ आना होगा—आना ही होगा। देखो, वही हो रहा है, वे ही सब लोग आते हैं।

"इसके भीतर कौन हैं, यह मेरे पिता आदि जानते थे। पिताजी

ने गया में स्वप्न देखा था। स्वप्न में आकर रघुवीर ने कहा था, 'मैं तेरा पुत्र होकर पैदा होऊँगा।'

"इसके भीतर वे ही हैं। कामिनी और कांचन का त्याग!—यह क्या मेरा कर्म हैं? स्त्री-संभोग स्वप्न में भी नहीं हुआ।

"नागे ने वेदान्त का उपदेश दिया। तीन ही दिन में समाधि हो गई। माधवी लता के नीचे उस समाधि-अवस्था को देखकर उसने कहा—'अरे! यह क्या है!' फिर उसने समझा था, इसके भीतर कौन हैं। तब उसने मुझसे कहा, 'मुझे तुम छोड़ दो।' यह बात सुनकर मेरी भावावस्था हो गई। उसी अवस्था में मैंने कहा, 'वेदान्त का बोध हुए बिना तुम यहाँ से नहीं जा सकते।'

"तब मैं दिन-रात उसी के पास रहता था। केवल वेदान्त की चर्चा होती थी। ब्राह्मणी (श्रीरामकृष्ण की तंत्र-साधना की आचार्या) कहती थी, 'बच्चा, वेदान्त पर ध्यान न दो, इससे भक्ति की हानि होती है।'

"माँ से मैंने कहा, 'माँ, इस देह की रक्षा किस तरह होगी?—और साधुओं तथा भक्तों को लेकर भी किस तरह रह सकूँगा?—एक बड़ा आदमी ला दो।' इसीलिए मथुर बाबू ने चौदह वर्ष तक सेवा की।

"इसके भीतर जो हैं, वे पहले से ही बतला देते हैं, किस श्रेणी का भक्त आने वाला है। ज्योंही देखता हूँ, गौरांग का रूप सामने आया कि समझ जाता हूँ, कोई गौरांग-भक्त आ रहा है। अगर कोई शाक्त आता है तो शक्तिरूप—कालीरूप दीख पड़ता है।

"कोठी की छत पर से आरती के समय मैं चिल्लाया करता था, 'अरे, तुम सब लोग कहाँ हो?—आओ!' देखो, अब क्रम क्रम

से सब आ गए हैं।

"इसके भीतर वे खुद हैं—स्वयं ही मानो इन सब भक्तों को लेकर काम कर रहे हैं।

"एक-एक भक्त की अवस्था कितने आश्चर्य की है! छोटा नरेन्द्र—इसे कुंभक आप ही आप होता है और फिर समाधि भी! एक-एक बार कभी-कभी ढाई घण्टे तक! कभी और देर तक!—कैसे आश्चर्य की बात है!

"यहाँ सब तरह की साधनाएँ हो चुकी हैं—ज्ञानयोग, भक्ति-योग, कर्मयोग। उम्र बढ़ाने के लिए हठयोग भी किया जा चुका है। इस शरीर के भीतर कोई और (ईश्वर) वास कर रहा है; नहीं तो समाधि के बाद फिर मैं भक्तों के साथ कैसे रह सकता तथा ईश्वर-प्रेम का आनन्द कैसे उठा सकता? कुँवरसिंह कहता था, 'समाधि के बाद लौटा हुआ आदमी कभी मैंने नहीं देखा—तुम नानक हो।'

"चारों ओर संसारी आदमी हैं—चारों ओर कामिनी-कांचन—इस तरह की परिस्थिति के भीतर यह अवस्था है!—समाधि और भाव लगे ही रहते हैं। इसी पर प्रताप ने (ब्राह्म-समाज के प्रतापचन्द्र मुजूमदार)—कुक साहब जब आया था—जहाज़ में मेरी अवस्था देखकर कहा, 'बाप रे! जैसे भूत लगा ही रहता हो!'"

राखाल, मास्टर आदि अवाक् होकर ये सब बातें सुन रहे हैं।

क्या महिमाचरण ने श्रीरामकृष्ण के इस इशारे को समझा? इन सब बातों को सुनकर भी वे कह रहे हैं—'जी, आपके प्रारब्ध के कारण यह सब हुआ है।' उनका मनोभाव यह है कि श्रीरामकृष्ण एक साधु या भक्त हैं। श्रीरामकृष्ण उनकी बात पर

अपनी सम्मति देते हुए कह रहे हैं-- 'हाँ, प्रारब्ध-- जैसे बाबू के बहुत से बैठकखाने हों, यहाँ भी उनका एक बैठकखाना है। भक्त उनका बैठकखाना है।'

(४)

स्वप्न-दर्शन

रात के नौ बजे हैं। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए हैं। महिमाचरण की इच्छा है-- कमरे में श्रीरामकृष्ण के रहते हुए वे ब्रह्मचक्र की रचना करें। राखाल, मास्टर, किशोरी तथा और दो-एक भक्तों को साथ लेकर जमीन पर उन्होंने चक्र बनाया। सब लोगों से उन्होंने ध्यान करने के लिए कहा। राखाल को भावावस्था हो गई। श्रीरामकृष्ण उतरकर उनकी छाती में हाथ लगाकर माता का नाम लेने लगे। राखाल का भाव संवरण हो गया।

रात के एक बजे का समय होगा। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। चारों ओर घोर अंधकार है। दो-एक भक्त गंगा के तट पर अकेले टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण उठे। वे बाहर आए। भक्तों से कहा, "नागा कहा करता था, 'इस समय-- गम्भीर रात्रि की इस निस्तब्धता में-- अनाहत शब्द सुन पड़ता है।'"

रात के पिछले पहर में महिमाचरण और मास्टर श्रीरामकृष्ण के कमरे में जमीन पर ही लेट गए। कैम्पखाट पर राखाल थे।

श्रीरामकृष्ण पाँच वर्ष के बच्चे की तरह दिगम्बर होकर कभी कभी कमरे के भीतर टहल रहे हैं।

सबेरा हुआ। श्रीरामकृष्ण माता का नाम ले रहे हैं। पश्चिम के गोल बरामदे में जाकर उन्होंने गंगादर्शन किया। कमरे के भीतर जितने देव-देवियों के चित्र थे, सब के पास जा-जाकर

प्रणाम किया। भक्तगण शय्या से उठकर प्रणाम आदि करके प्रातःक्रिया करने के लिए गए।

श्रीरामकृष्ण पंचवटी में एक भक्त के साथ बातचीत कर रहे हैं। उन्होंने स्वप्न में चैतन्यदेव को देखा था।

श्रीरामकृष्ण– (भावावेश में)– आहा! आहा!

भक्त– जी स्वप्न में––।

श्रीरामकृष्ण– स्वप्न क्या कम है?

श्रीरामकृष्ण की आँखों में आँसू आ गए। स्वर गद्‌गद है।

जागृत अवस्था में एक भक्त के दर्शन की बात सुनकर कह रहे हैं, 'इसमें आश्चर्य क्या है? आजकल नरेन्द्र भी ईश्वरी रूप देखता है।'

प्रातःक्रिया समाप्त करके महिमाचरण ठाकुर-मन्दिर के उत्तर-पश्चिम ओर के शिवमन्दिर में जाकर निर्जन में वेद-मंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं।

दिन के आठ बजे का समय है। मणि गंगा नहाकर श्रीरामकृष्ण के पास आए। संतप्त ब्राह्मणी भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए आई है।

श्रीरामकृष्ण– (ब्राह्मणी से)– इन्हें (मास्टर को) कुछ प्रसाद देना, पूड़ी-मिठाई–– ताक पर रखा है।

ब्राह्मणी– पहले आप पाइये। फिर वे भी पा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण– तुम पहले जगन्नाथजी का भात खाओ, फिर प्रसाद पाना।

प्रसाद पाकर मणि शिवमन्दिर में शिवदर्शन करके श्रीरामकृष्ण के पास लौट आए और प्रणाम करके बिदा हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सस्नेह)–तुम चलो। तुम्हें काम पर जाना है।

(५)

मौनधारी श्रीरामकृष्ण और माया का दर्शन

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में प्रातः आठ बजे से दिन के तीन बजे तक मौन व्रत धारण किए हुए हैं। आज मंगलवार है, ११ अगस्त १८८५ ई.। कल अमावस्या थी।

श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। क्या उन्होंने जान लिया है कि शीघ्र ही वे इस धाम को छोड़ जाएँगे? क्या इसीलिए मौन धारण किये हुए हैं? उन्हें बात न करते देख श्री माँ रो रही हैं। राखाल और लाटू रो रहे हैं। बागबाजार की ब्राह्मणी भी इस समय आई थी। वह भी रो रही है। भक्तगण बीच बीच में पूछ रहे हैं, "क्या आप हमेशा के लिए चुप रहेंगे?"

श्रीरामकृष्ण इशारे से कह रहे हैं, 'नहीं।' नारायण आए हैं— दिन के तीन बजे के समय।

श्रीरामकृष्ण नारायण से कह रहे हैं, "माँ तेरा कल्याण करेंगी।"

नारायण ने आनन्द के साथ भक्तों को समाचार दिया। श्रीरामकृष्ण ने अब बात की है। राखाल आदि भक्तों की छाती पर से मानो एक पत्थर उतर गया। वे सभी श्रीरामकृष्ण के पास आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण— (राखाल आदि भक्तों के प्रति)— माँ दिखा रही थीं कि सभी माया है। वे ही सत्य हैं और शेष सभी माया का ऐश्वर्य है।

"और एक बात देखी, भक्तों में से किसका कितना हुआ है।"

नारायण आदि भक्त— अच्छा, किसका कितना हुआ है?

श्रीरामकृष्ण— इन सभी को देखा— नित्यगोपाल, राखाल, नारायण, पूर्ण, महिमा चक्रवर्ती आदि।

(६)

श्रीरामकृष्ण गिरीश, शशधर पण्डित आदि भक्तों के साथ

श्रीरामकृष्ण की बीमारी का समाचार कलकत्ता के भक्तों को प्राप्त हुआ, उन्होंने सोचा कि शायद वह उनके गले में एक प्रकार का घाव मात्र है।

रविवार, १६ अगस्त। अनेक भक्त उनके दर्शन के लिए आए हैं— गिरीश, राम, नित्यगोपाल, महिमा चक्रवर्ती, किशोरी (गुप्त), पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि आदि।

श्रीरामकृष्ण पहले-जैसे ही आनन्दमय हैं तथा भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– रोग की बात माँ से कह नहीं सकता, कहने में लाज लगती है।

गिरीश– मेरे नारायण अच्छा करेंगे।

राम– ठीक हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– हाँ, यही आशीर्वाद दो। (सभी की हँसी)

गिरीश आजकल नये नये आ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे कह रहे हैं, "तुम्हें अनेक झमेलों में रहना होता है, तुम्हें अनेक काम रहते हैं। तुम और तीन बार आओ।" अब शशधर के साथ बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (शशधर के प्रति)– तुम शक्ति की बात कुछ कहो।

शशधर– मैं क्या जानता हूँ ?

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– एक आदमी एक व्यक्ति की

बहुत भक्ति करता था। उसने उस भक्त से तम्बाकू भर लाने के लिए कहा। इस पर भक्त ने कहा, 'क्या मैं आपकी आग लाने के योग्य हूँ ?' फिर आग भी नहीं लाया ! (सभी हँसे)

शशधर– जी, वे ही निमित्त-कारण हैं, वे ही उपादान-कारण हैं। उन्होंने ही जीव और जगत् को पैदा किया, और फिर वे ही जीव तथा जगत् बने हुए हैं, जैसे मकड़ी ने स्वयं जाला तैयार किया (निमित्त-कारण) और उस जाले को अपने ही अन्दर से निकाला (उपादान-कारण)।

श्रीरामकृष्ण– फिर यह भी है कि जो पुरुष हैं, वे ही प्रकृति हैं; जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति हैं। जिस समय निष्क्रिय हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय नहीं कर रहे हैं, उस समय उन्हें हम ब्रह्म कहते हैं, पुरुष कहते हैं। और जब वे उन सब कामों को करते हैं, उस समय उन्हें शक्ति कहते हैं, प्रकृति कहते हैं। परन्तु जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति हैं। जो पुरुष हैं, वे ही प्रकृति बने हुए हैं।

"जल स्थिर रहने पर भी जल है और हिलने पर भी जल है। साँप टेढ़ा-मेढ़ा होकर चलने पर भी साँप है और फिर चुपचाप कुण्डलाकार रहने पर भी साँप है।

भोग और कर्म

"ब्रह्म क्या है यह मुख से नहीं कहा जा सकता, मुख बन्द हो जाता है। 'निताई मेरा मतवाला हाथी है, निताई मेरा मतवाला हाथी है'—ऐसा कहते कहते अन्त में कीर्तनिया और कुछ भी नहीं कह सकता, केवल कहता है 'हाथी-हाथी'; फिर 'हाथी-हाथी' कहते कहते केवल 'हा-हा' कहता है, और अन्त में वह भी नहीं कह सकता—बाह्यशून्य।"

ऐसा कहते कहते श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। खड़े-खड़े

ही समाधिमग्न !

समाधि-भंग होने के थोड़ी देर बाद कह रहे हैं—" 'क्षर' व 'अक्षर' से परे क्या है मुँह से कहा नहीं जाता।"

सभी चुप हैं; श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं, "जब तक कुछ भोग बाकी रहता है या कर्म बाकी है तब तक समाधि नहीं होती।

(शशधर के प्रति) "इस समय ईश्वर तुमसे कर्म करा रहे हैं, व्याख्यान देना आदि। अब तुम्हें वही सब करना होगा।

"कर्म समाप्त हो जाने पर ही तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी। घरवाली घर का काम-काज समाप्त करके जब नहाने जाती है तो फिर बुलाने पर भी नहीं लौटती।"

परिच्छेद १५

दक्षिणेश्वर मन्दिर में

(१)

पण्डित श्यामापद पर कृपा

श्रीरामकृष्ण दो-एक भक्तों के साथ कमरे में बैठे हुए हैं। शाम के पाँच बजे का समय है। श्रावण कृष्णा द्वितीया, २७ अगस्त १८८५।

श्रीरामकृष्ण की बीमारी का सूत्रपात हो चुका है। फिर भी भक्तों के आने पर वे शरीर पर ध्यान नहीं देते, उनके साथ दिन भर बातचीत करते रहते हैं,--कभी गाना गाते हैं।

श्रीयुत मधु डाक्टर प्रायः नाव पर चढ़कर आया करते हैं-- श्रीरामकृष्ण की चिकित्सा के लिए। भक्तगण बहुत ही चिन्तित हो रहे हैं, उनकी इच्छा है, मधु डाक्टर रोज देख जाया करें। मास्टर श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं, 'ये अनुभवी हैं, ये अगर रोज देखें तो अच्छा हो।'

पण्डित श्यामापद भट्टाचार्य ने आकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन किए। ये आँटपुर मौजे में रहते हैं। सन्ध्या हो गई, अतएव 'सन्ध्या कर लूँ' कहकर पण्डित श्यामापदजी गंगा की ओर-- चांदनीघाट चले गए।

सन्ध्या करते करते पण्डितजी को एक बड़ा अद्‌भुत दर्शन हुआ। सन्ध्या समाप्त कर वे श्रीरामकृष्ण के कमरे में आकर बैठे। श्रीरामकृष्ण माता का नाम-स्मरण समाप्त करके तखत पर बैठे हुए हैं। पाँवपोश पर मास्टर बैठे हैं, राखाल और लाटू आदि कमरे में आ-जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से, पण्डितजी को इशारे से बताकर) --ये बड़े अच्छे आदमी हैं। (पण्डितजी से) 'नेति नेति' करके जहाँ मन को विराम मिलता है, वहीं वे हैं।

"राजा सात ड्योढ़ियों के पार रहते हैं। पहली ड्योढ़ी में किसी ने जाकर देखा, एक धनी मनुष्य बहुत से आदमियों को लेकर बैठा हुआ है, बड़े ठाट-बाट से। राजा को देखने के लिए जो मनुष्य गया हुआ था, उसने अपने साथवाले से पूछा, 'क्या राजा यही है ?' साथवाले ने ज़रा मुस्कराकर कहा, 'नहीं।'

"दूसरी ड्योढ़ी तथा अन्य ड्योढ़ियों में भी उसने इसी तरह कहा। वह जितना ही बढ़ता था, उसे उतना ही ऐश्वर्य दीख पड़ता था, उतनी ही तड़क-भड़क। जब वह सातों ड्योढ़ियों को पार कर गया तब उसने अपने साथवाले से फिर नहीं पूछा,--- राजा के अतुल ऐश्वर्य को देखकर अवाक् होकर खड़ा रह गया।--- समझ गया राजा यही है, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

पण्डितजी– माया के राज्य को पार कर जाने से उनके दर्शन होते हैं।

श्रीरामकृष्ण– उनके दर्शन हो जाने के बाद दिखता है कि यह जीव-जगत् वे ही हुए हैं। यह संसार 'धोखे की टट्टी' है--- स्वप्नवत् है। यह बोध तभी होता है जब साधक 'नेति-नेति' का विचार करता है। उनके दर्शन हो जाने पर यही संसार 'मौज की कुटिया' हो जाता है।

"केवल शास्त्रों के पाठ से क्या होगा ? पण्डित लोग सिर्फ विचार किया करते हैं।"

पण्डितजी– मुझे कोई पण्डित कहता है, तो घृणा होती है।

श्रीरामकृष्ण– यह उनकी कृपा है। पण्डित लोग केवल विचार

करते हैं। परन्तु किसी ने दूध का नाम मात्र सुना है और किसी ने दूध देखा है। दर्शन हो जाने पर सब को नारायण देखोगे—देखोगे, नारायण ही सब कुछ हुए हैं।

पण्डितजी नारायण का स्तव सुना रहे हैं। श्रीरामकृष्ण आनन्द में मग्न हैं।

पण्डितजी– सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

श्रीरामकृष्ण– आपने अध्यात्म रामायण देखी है?

पण्डितजी– जी हाँ, कुछ-कुछ देखी है।

श्रीरामकृष्ण– ज्ञान और भक्ति से वह पूर्ण है। शबरी का उपाख्यान, अहिल्या की स्तुति, सब भक्ति से पूर्ण हैं।

"परन्तु एक बात है। वे विषय-बुद्धि से बहुत दूर हैं।"

पण्डितजी– जहाँ विषय बुद्धि है, वे वहाँ से 'सुदूरम्' हैं। और जहाँ वह बात नहीं है वहाँ वे 'अदूरम्' हैं। उत्तरपाड़ा के एक जमींदार मुखर्जी को मैंने देखा, उम्र पूरी हो गई है और वह बैठा हुआ उपन्यास सुन रहा था।

श्रीरामकृष्ण– अध्यात्म में एक बात और लिखी है, वह यह कि जीव-जगत् वे ही हुए हैं।

पण्डितजी आनन्दित होकर, यमलार्जुन के द्वारा की गई इसी भाव की स्तुति की आवृत्ति कर रहे हैं, श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध से—'कृष्ण कृष्ण महायोगिन् त्वमाद्यः पुरुषः परः। व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहस्वात्मेन्द्रियेश्वरः। त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविचारवित् ॥'

स्तुति सुनकर श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। खड़े हुए हैं।

पण्डितजी बैठे हैं। पण्डितजी की गोद और छाती पर एक पैर रखकर श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं।

पण्डितजी चरण धारण करके कह रहे हैं, 'गुरो, चैतन्यं देहि।' श्रीरामकृष्ण छोटे तखत के पास पूर्वास्य खड़े हुए हैं।

कमरे से पण्डितजी के चले जाने पर श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं, "मैं जो कुछ कहता हूँ, वह पूरा उतर रहा है न? जो लोग अन्तर से उन्हें पुकारेंगे, उन्हें यहाँ आना होगा।"

रात के दस बजे। सूजी की थोड़ीसी खीर खाकर श्रीरामकृष्ण ने शयन किया। मणि से कहा, 'पैरों में ज़रा हाथ तो फेर दो।'

कुछ देर बाद उन्होंने देह और छाती में भी हाथ फेर देने के लिए कहा।

एक झपकी के बाद उन्होंने मणि से कहा, 'तुम जाओ—सोओ। देखूँ, अगर अकेले में आँख लगे।' फिर रामलाल से कहा, 'कमरे के भीतर ये (मणि) और राखाल चाहे तो सो सकते हैं।'

(२)

श्रीरामकृष्ण तथा ईशू

सबेरा हुआ। श्रीरामकृष्ण उठकर माता का स्मरण कर रहे हैं। शरीर अस्वस्थ रहने के कारण भक्तों को वह मधुर नाम सुनाई न पड़ा। प्रातःकृत्य समाप्त करके श्रीरामकृष्ण अपने आसन पर बैठे। मणि से पूछ रहे हैं, 'अच्छा, रोग क्यों हुआ?'

मणि– जी, आदमी की तरह अगर सब बातें न होंगी तो जीवों में साहस फिर कैसे होगा? वे देखते हैं, इस देह में इतनी बीमारी है, फिर भी आप ईश्वर को छोड़ और कुछ भी नहीं जानते।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– बलराम ने भी कहा, 'आप ही को

अगर यह है तो हमें फिर क्यों नहीं होगा ?'

"सीता के शोक से जब राम धनुष्य न उठा सके तब लक्ष्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु पंचभूतों के फन्दे में पड़कर ब्रह्म को भी आँसू बहाना पड़ता है।"

मणि– भक्तों का दुःख देखकर ईशू भी साधारण मनुष्यों की तरह रोए थे।

श्रीरामकृष्ण– क्या हुआ था ?

मणि– जी, मार्था और मेरी दो बहनें थीं। उनके एक भाई थे--- लैज़ेरस। ये तीनों ईशू के भक्त थे। लैज़ेरस का देहान्त हो गया। ईशू उनके घर जा रहे थे। रास्ते में एक बहन, मेरी, दौड़ी हुई गई और उनके पैरों पर गिरकर रोने लगी और कहा, 'प्रभो, तुम अगर आ जाते तो वह न मरता।' उसका रोना देखकर ईशू भी रोए थे।

"फिर वे कब्र के पास जाकर उसका नाम ले-लेकर पुकारने लगे। लैज़ेरस जीकर उनके पास आ गया।"

श्रीरामकृष्ण– मैं ये सब बातें नहीं कर सकता।

मणि– आप खुद नहीं करते, क्योंकि आपकी इच्छा नहीं होती। ये सब सिद्धियाँ हैं, इसीलिए आप नहीं करते। इनका प्रयोग करने पर आदमी का मन देह की ओर चला जाता है, शुद्धा भक्ति की ओर नहीं। इसीलिए आप नहीं करते।

"आपके साथ ईशू का बहुत कुछ मेल होता है।"

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– और क्या क्या मिलता है ?

मणि– आप भक्तों से न तो व्रत करने के लिए कहते हैं, न किसी दूसरी ही कठोर साधना के लिए। खाने-पीने के लिए भी कोई कठोर नियम नहीं है। ईशू के शिष्यों ने रविवार को

नियमानुकूल भोजन नहीं किया, इसलिए जो लोग शास्त्र मानकर चलते थे, उन लोगों ने उनका तिरस्कार किया। ईशू ने कहा, 'वे लोग खाएँगे और खूब खाएँगे। जब तक वर के साथ हैं तब तक बरातवाले आनन्द तो करेंगे ही।'

श्रीरामकृष्ण– इसका क्या अर्थ है ?

मणि– अर्थात् जब तक अवतारी पुरुष के साथ हैं तब तक अन्तरंग शिष्य सब आनन्द में ही रहेंगे।—क्यों वे निरानन्द का भाव लाएँ ? जब वे निजधाम चले जाएँगे, तब उनके (अन्तरंग शिष्यों के) निरानन्द के दिन आएँगे।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– और भी कुछ मिलता है ?

मणि- जी, आप जिस तरह कहते हैं, 'लड़कों में कामिनी और कांचन का प्रवेश नहीं हुआ; वे उपदेशों की धारणा कर सकेंगे,——जैसे नई हंडी में दूध रखना; दही जमाई हंडी में रखने से दूध बिगड़ सकता है;' ईशू भी इसी तरह कहते थे।

श्रीरामकृष्ण– क्या कहते थे ?

मणि– 'पुरानी बोतल में शराब रखने से बोतल फूट सकती है। पुराने कपड़े में नया पेवन लगाने पर कपड़ा जल्दी फट जाता है।'

"आप जैसा कहते हैं, 'माँ और आप एक हैं,' उसी तरह वे भी कहते थे, 'पिता और मैं एक हूँ'।"

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– और कुछ ?

मणि– आप जैसा कहते हैं, 'व्याकुल होकर पुकारने से वे सुनेंगे ही।' वे भी कहते थे, 'व्याकुल होकर द्वार पर धक्का मारो, द्वार खुल जाएगा।'

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, यदि ईश्वर फिर अवतार के रूप में

प्रकट हुए हैं तो वे पूर्ण रूप में हैं, अथवा अंश रूप में अथवा कला रूप में ?

मणि– जी, मैं तो पूर्ण, अंश और कला, यह अच्छी तरह समझता ही नहीं, परन्तु जैसा आपने कहा था, चारदीवार में एक गोल छेद, यह खूब समझ गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण– क्या, बताओ तो ज़रा ?

मणि– चारदीवार के भीतर एक गोल छेद है। उस छेद से चारदीवार के उस तरफ के मैदान का कुछ अंश दीख पड़ता है। उसी तरह आप के भीतर से उस अनन्त ईश्वर का कुछ अंश दीख पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, दो-तीन कोस तक बराबर दीख पड़ता है।

चांदनी घाट में गंगास्नान कर मणि फिर श्रीरामकृष्ण के पास आए। दिन के आठ बजे होंगे।

मणि लाटू से श्रीजगन्नाथजी के सीत (भात) मांग रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण मणि के पास आकर कह रहे हैं— 'इसका (प्रसाद खाने का) नियमपूर्वक पालन करते रहना। जो लोग भक्त हैं, प्रसाद बिना पाए वे कुछ खा नहीं सकते।'

मणि– मैं बलराम बाबू के यहां से सीत ले आया हूँ, कल से रोज दो-एक सीत पा लिया करता हूँ।

मणि भूमिष्ठ हो श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर रहे हैं। फिर बिदा होने लगे। श्रीरामकृष्ण सस्नेह कह रहे हैं— 'तुम कुछ सबेरे आ जाया करो, भादों की धूप बड़ी खराब होती है।'

परिच्छेद १६

पूर्ण आदि भक्तों को उपदेश

(१)

पूर्ण, मास्टर आदि भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में विश्राम कर रहे हैं। रात के आठ बजे होंगे। सोमवार, श्रावण की कृष्णा षष्ठी है, ३१ अगस्त १८८५।

श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ रहते हैं। गले की बीमारी का वही हाल है; परन्तु दिनरात भक्तों के लिए शुभ-कामना और ईश्वर-चिन्तन किया करते हैं। कभी कभी बालक की तरह विकल हो जाते हैं, परन्तु वह थोड़ी देर के लिए। उसी क्षण उनका वह भाव बदल जाता है और वे ईश्वर के आनन्द में मग्न हो जाते हैं। भक्तों के प्रति स्नेह और वात्सल्य के आवेश में पागल रहते हैं।

दो दिन हुए—पिछले शनिवार की रात को—पूर्ण ने पत्र लिखा है, 'मुझे खूब आनन्द मिल रहा है। कभी-कभी रात को मारे आनन्द के आँख नहीं लगती।'

श्रीरामकृष्ण ने पत्र सुनकर कहा—'सुनकर मुझे रोमांच हो रहा है। उसके आनन्द की वह अवस्था बाद में भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी। अच्छा, देखूँ तो ज़रा पत्र।'

पत्र को हाथ में लेकर उसे मरोड़ते-दबाते हुए कह रहे हैं—'दूसरे का पत्र मैं नहीं छू सकता, पर इसकी चिट्ठी बहुत अच्छी है।'

उसी रात को वे ज़रा सोए ही थे कि एकाएक देह से पसीना बह चला। पलंग से उठकर कहने लगे—'मुझे जान पड़ता है कि यह बीमारी अब अच्छी न होगी।'

यह बात सुनकर भक्त सब चिन्ता में पड़ गए।

श्रीमाताजी श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए आई हुई हैं और बहुत ही एकान्त में नौबतखाने में रहती हैं। वे नौबतखाने में रहती हैं, यह बात किसी भक्त को भी मालूम न थी। एक भक्त-स्त्री (गोलाप माँ) भी कई दिनों से नौबतखाने में रहती हैं। वे प्रायः श्रीरामकृष्ण के कमरे में आती और दर्शन कर जाया करती हैं।

श्रीरामकृष्ण उनसे दूसरे दिन रविवार को कह रहे हैं, 'तुम बहुत दिनों से यहाँ पर हो, लोग क्या समझेंगे ? बल्कि दस दिन घर में भी जाकर रहो।' मास्टर ने इन सब बातों को सुना।

आज सोमवार है। श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ हैं। रात के आठ बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर, पीछे की ओर फिर कर, दक्षिण की ओर सिरहाना करके लेटे हुए हैं। सन्ध्या के बाद मास्टर के साथ गंगाधर कलकत्ते से आए। वे उनके पैरों की ओर एक किनारे बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण मास्टर से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– दो लड़के आए हुए थे। एक तो शंकर घोष के नाती का लड़का है–– सुबोध, और दूसरा उसी के टोले का एक लड़का क्षीरोद। दोनों बड़े अच्छे लड़के हैं। उनसे मैंने कहा, 'मेरी तबीयत इस समय अच्छी नहीं।' फिर मैंने तुम्हारे पास आकर उपदेश लेने के लिए कहा। उन्हें ज़रा देखना।

मास्टर– जी हाँ, मेरे ही मुहल्ले में वे रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– उस दिन फिर देह से पसीना निकला और नींद उचट गई। यह क्या बीमारी हो गई ?

मास्टर– जी, हम लोगों ने एक बार डा. भगवान रुद्र को दिखलाने का निश्चय किया है। वे एम. डी. 'पास' बड़े अच्छे डाक्टर हैं।

श्रीरामकृष्ण– कितना लेगा ?

मास्टर– दूसरी जगह बीस-पच्चीस रुपये लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण– तो रहने दो।

मास्टर– जी, हम लोग अधिक से अधिक चार या पाँच रुपये देंगे।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, इतने पर ठीक करके एक बार कहो, 'कृपा कर उन्हें चलकर देखिए ज़रा।' यहाँ की बात क्या उसने कुछ सुनी नहीं ?

मास्टर– शायद सुनी है। एक तरह से कुछ भी न लेने के लिए कहा है। परन्तु हम लोग देंगे, क्योंकि इस तरह वे फिर आएँगे।

श्रीरामकृष्ण– निताई डाक्टर को ले आओ तो और अच्छा है। दूसरे डाक्टर आकर करते ही क्या हैं ? घाव दबाकर और बढ़ा देते हैं।

रात के नौ बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण सूजी की खीर खाने के लिए बैठे। खाने में कोई कष्ट नहीं हुआ। इसलिए हँसते हुए मास्टर से कह रहे हैं, "कुछ खाया गया, इससे मन को आनन्द है।"

(२)

नरेन्द्र, राम आदि भक्तों के संग में

आज जन्माष्टमी है, मंगलवार, १ सितम्बर १८८५।

श्रीरामकृष्ण स्नान करेंगे। एक भक्त उनकी देह में तेल लगा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण दक्षिण के बरामदे में बैठकर तेल लगवा रहे हैं। गंगास्नान करके मास्टर ने श्रीरामकृष्ण को आकर प्रणाम किया।

स्नान करके एक अंगौछा पहनकर श्रीरामकृष्ण ने बरामदे से ही देवताओं को प्रणाम किया। शरीर अस्वस्थ रहने के कारण कालीमन्दिर या विष्णुमन्दिर में नहीं जा सके।

आज जन्माष्टमी है। राम आदि भक्त श्रीरामकृष्ण के लिए आज नया वस्त्र ले आए हैं।

श्रीरामकृष्ण ने नया वस्त्र पहना—वृन्दावनी धोती, और ओढ़ने के लिए लाल दुपट्टा। उनका शुद्ध पुण्य शरीर नये वस्त्रों से अपूर्व शोभा दे रहा है। वस्त्र पहनकर उन्होंने देवताओं को प्रणाम किया।

आज जन्माष्टमी है। गोपाल की माँ गोपाल (श्रीरामकृष्ण) को खिलाने के लिए कुछ भोजन कामारहाटी से लेकर आई हैं। श्रीरामकृष्ण के पास दुःख प्रकट करते हुए वे कह रही हैं—'तुम तो खाओगे ही नहीं।'

श्रीरामकृष्ण– यह देखो, मुझे यह बीमारी हो गई है।

गोपाल की माँ– मेरा दुर्भाग्य! अच्छा, हाथ में थोड़ा सा ले लो।

श्रीरामकृष्ण– तुम आशीर्वाद दो।

गोपाल की माँ श्रीरामकृष्ण को ही गोपाल कहकर सेवा करती थीं।

भक्तगण मिश्री ले आए हैं। गोपाल की माँ कह रही हैं, 'यह मिश्री मैं नौबतखाने में लिए जा रही हूँ।' श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'यहाँ भक्तों के लिए खर्च होती है, कौन सौ बार माँगता रहेगा। यहीं रहने दो।'

दिन के ग्यारह बजे का समय है। क्रमशः भक्तगण कलकत्ते से आते जा रहे हैं। श्रीयुत बलराम, नरेन्द्र, छोटे नरेन्द्र, नवगोपाल, कटोवा के एक वैष्णव भक्त, सब क्रमशः आ गए। आजकल

राखाल और लाटू यहीं रहते हैं। एक पंजाबी साधु कुछ दिनों से पंचवटी में टिके हुए हैं।

छोटे नरेन्द्र के मत्थे में एक उभरी हुई गुल्थी है। श्रीरामकृष्ण पंचवटी में टहलते हुए कह रहे हैं, 'तू इस गुल्थी को कटा क्यों नहीं डालता? वह गले में तो है ही नहीं-- सिर पर ही है। इससे कष्ट क्या हो सकता है?-- लोग तो बढ़ा हुआ अण्डकोश तक कटा डालते हैं।' (हास्य)

पंजाबी साधु बगीचे के रास्ते से जा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं--'मैं उसे नहीं खींचता। उसका भाव ज्ञानी का है। देखता हूँ, जैसे सूखी लकड़ी।'

श्रीरामकृष्ण कमरे में लौटे। श्यामापद भट्टाचार्य की बात हो रही है।

बलराम--उन्होंने कहा है, 'नरेन्द्र की छाती पर पैर रखने से नरेन्द्र को जैसा भावावेश हुआ था, वैसा मेरे लिए तो नहीं हुआ।'

श्रीरामकृष्ण--बात यह है कि कामिनी और कांचन में मन के रहने पर विक्षिप्त मन को एकत्र करना बड़ा कठिन हो जाता है। उसने कहा है, उसे 'सालिसिटर'-पन (वकालत) करनी पड़ती है और घर के बच्चों के लिए भी चिन्ता करनी पड़ती है। नरेन्द्र आदि का मन विक्षिप्त थोड़े ही है!--उनमें अभी कामिनी और कांचन का प्रवेश नहीं हो पाया।

"परन्तु वह (श्यामापद) है बड़ा चोखा आदमी।"

कटोवा के वैष्णव श्रीरामकृष्ण से प्रश्न कर रहे हैं। वैष्णवजी कुछ कंजे हैं।

वैष्णव--महाराज, क्या पुनर्जन्म होता है?

श्रीरामकृष्ण--गीता में है, मृत्यु के समय जिस चिन्ता को लेकर

मनुष्य देह छोड़ता है, उसी को लेकर वह पैदा होता है। हरिण की चिन्ता करते हुए देह छोड़ने के कारण महाराज भरत को हरिण होकर जन्म लेना पड़ा था।

वैष्णव—यह बात होती है इसे अगर कोई आँख से देखकर कहे तो विश्वास भी हो।

श्रीरामकृष्ण—यह मैं नहीं जानता, भाई। मैं अपनी बीमारी ही तो अच्छी नहीं कर सकता, तिस पर मरकर क्या होता है—यह प्रश्न !

"तुम जो कुछ कह रहे हो, ये हीन बुद्धि की बातें हैं। किस तरह ईश्वर में भक्ति हो, यह चेष्टा करो। भक्ति-लाभ के लिए ही आदमी होकर पैदा हुए हो। बगीचे में आम खाने के लिए आए हो, कितनी हज़ार डालियाँ हैं, कितने लाख पत्ते हैं, इसकी खबर लेकर क्या करोगे ?—जन्मान्तर की खबर !"

श्रीयुत गिरीश घोष दो-एक मित्रों के साथ गाड़ी पर चढ़कर आए। कुछ शराब भी उन्होंने पी थी। रोते हुए आ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण के पैरों पर मस्तक रखकर रो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण सस्नेह उनकी देह में मीठी थपकियाँ मारने लगे। एक भक्त को पुकारकर कहा,—'अरे, इसे तम्बाकू पिला।'

गिरीश सिर उठाकर हाथ जोड़ कह रहे हैं—"तुम्हीं पूर्ण ब्रह्म हो, यह अगर सत्य न हो तो सब मिथ्या है।

"बड़ा खेद रहा, मैं तुम्हारी सेवा न कर सका। (ये बातें वे एक ऐसे स्वर में कह रहे हैं कि भक्तों की आँखों में आँसू आ गए—वे फूट-फूटकर रो रहे हैं।)

"भगवन् ! यह वर दो कि साल भर तुम्हारी सेवा करता रहूँ। मुक्ति क्या चीज़ है !—वह तो मारी मारी फिरती है—

उस पर मैं थूकता हूँ। कहिए सेवा एक साल के लिए करूँगा।"

श्रीरामकृष्ण–यहाँ के आदमी अच्छे नहीं हैं। कोई कुछ कहेगा।

गिरीश–वह बात न होगी, आप कह दीजिए––

श्रीरामकृष्ण–अच्छा, तुम्हारे घर जब जाऊँ तब सेवा करना।

गिरीश–नहीं, यह नहीं। यहीं करूँगा।

श्रीरामकृष्ण ने हठ देखकर कहा, 'अच्छा, ईश्वर की जैसी इच्छा।'

श्रीरामकृष्ण के गले में घाव है। गिरीश फिर कहने लगे, "कह दीजिए, अच्छा हो जाय। अच्छा, मैं इसे झाड़े देता हूँ––काली! काली!"

श्रीरामकृष्ण–मुझे लगेगा।

गिरीश–अच्छा हो जा! (फूक मारते हैं)

"क्या अच्छा नहीं हुआ?––अगर आपके चरणों में मेरी भक्ति होगी तो अवश्य अच्छा हो जाएगा––कहिए अच्छा हो गया।"

श्रीरामकृष्ण–(विरक्ति से)–जाओ भाई, ये सब बातें मुझसे नहीं कही जातीं। रोग के अच्छे होने की बात माँ से मैं नहीं कह सकता।

"अच्छा, ईश्वर की इच्छा से होगा।"

गिरीश–आप मुझे बहका रहे हैं। आपकी ही इच्छा से होगा।

श्रीरामकृष्ण–छिः, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। भक्तवत् न तु कृष्णवत्। तुम्हें जैसा रुचे सोच सकते हो––अपने गुरु को भगवान् समझ सकते हो; परन्तु इन सब बातों के कहने से अपराध होता है। ऐसी बातें फिर नहीं कहना।

गिरीश–कहिए, अच्छा हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण–अच्छा, जो कुछ हुआ है वह चला जाएगा।

गिरीश शायद अब भी अपने नशे में हैं। कभी कभी बीच में

वे श्रीरामकृष्ण से कहते हैं, "क्या बात है कि इस वार आप अपने दैवी सौन्दर्य को लेकर पैदा नहीं हुए ?"

कुछ देर बाद फिर कह रहे हैं-- "अबकी बार जान पड़ता है, बंगाल का उद्धार है ।"

एक भक्त अपने आप से कह रहे हैं, "केवल बंगाल का ही क्यों ? समस्त जगत् का उद्धार होगा ।"

गिरीश फिर कह रहे हैं-- "ये यहां क्यों हैं, इसका अर्थ किसी की समझ में आया ? जीवों के दुःख से विकल होकर आये हैं, उनका उद्धार करने के लिए ।"

गाड़ीवान पुकार रहा था । गिरीश उठकर उसके पास जा रहे हैं । श्रीरामकृष्ण मास्टर से कह रहे हैं--"देखो, कहाँ जाता है-- गाड़ीवान को मारेगा तो नहीं ?" मास्टर भी साथ जा रहे हैं ।

गिरीश फिर लौटे, श्रीरामकृष्ण की स्तुति करने लगे-- "भगवन्, मुझे पवित्रता दो, जिससे कभी थोड़ी सी भी पाप-चिन्ता न हो ।"

श्रीरामकृष्ण-- तुम पवित्र तो हो ही । तुममें इतनी भक्ति और विश्वास जो हैं ! तुम तो आनन्द में हो न ?

गिरीश-- जी नहीं, मन खराब रहता है-- बड़ी अशान्ति रहती है, इसीलिए तो शराब पी और खूब पी ।

कुछ देर बाद गिरीश फिर कह रहे हैं-- "भगवन्, आश्चर्य हो रहा है, मैं पूर्णब्रह्म भगवान की सेवा कर रहा हूँ ! ऐसी कौनसी तपस्या मैंने की जिससे इस सेवा का अधिकारी हुआ ?"

दोपहर हो गई है, श्रीरामकृष्ण ने भोजन किया । बीमारी के होने से बहुत थोड़ा सा भोजन किया ।

श्रीरामकृष्ण की सदैव भावावस्था रहती है-- ज़बरदस्ती उन्हें

शरीर की ओर मन को ले आना पड़ता है। परन्तु बालक की तरह वे खुद अपने शरीर की रक्षा नहीं कर सकते। बालक की तरह भक्तों से कह रहे हैं, "ज़रा सा भोजन किया, अब थोड़ी देर के लिए लेटूँगा। तुम लोग ज़रा बाहर जाकर बैठो।"

श्रीरामकृष्ण ने थोड़ा विश्राम किया। भक्तगण कमरे में फिर आए।

श्री गुरु ही इष्ट हैं। दो प्रकार के भक्त

गिरीश—गुरु और इष्ट। मुझे गुरुरूप बहुत अच्छा लगता है——उसका भय नहीं होता——क्यों भला ? मैं भावावेश से दूर भागता हूँ——उससे मुझे भय लगता है।

श्रीरामकृष्ण—जो इष्ट हैं, वे ही गुरु के रूप में आते हैं। शव-साधना के पश्चात् जब इष्टदेव के दर्शन होते हैं, तब गुरु स्वयं शिष्य से आकर कहते हैं——'ऐ (शिष्य), वह देख (इष्ट को)।' यह कहकर वे इष्ट के रूप में लीन हो जाते हैं। शिष्य तब गुरु को नहीं देखता। जब पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब कौन गुरु और कौन शिष्य ? 'वह बड़ी कठिन अवस्था है; वहाँ गुरु और शिष्य एक दूसरे को नहीं देख पाते।'

एक भक्त— गुरु का सिर और शिष्य के पैर।

गिरीश— (आनन्द से)—— हाँ, हाँ, सच है।

नवगोपाल— इसका अर्थ सुन लो। शिष्य का सिर गुरु की वस्तु है और गुरु के पैर शिष्य की वस्तु। सुना ?

गिरीश— नहीं, यह अर्थ नहीं है। बाप के कन्धे पर क्या लड़का चढ़ता नहीं ? इसीलिए शिष्य के पैर और गुरु का सिर, ऐसा कहा है।

नवगोपाल— वह शिष्य अगर वैसा ही छोटा सा हो, तब न ?

श्रीरामकृष्ण– भक्त दो तरह के हैं——एक वे जिनका भाव बिल्ली के बच्चे जैसा होता है, सारा अवलम्ब माता पर।

"बिल्ली का बच्चा बस 'मिऊँ मिऊँ' करता रहता है। कहाँ जाना है, क्या करना है, वह कुछ नहीं जानता। माँ कभी उसे कन्डौरे में रखती है और कभी बिस्तरे पर ले जाकर रखती है। इस तरह का भक्त ईश्वर को अपना आममुख्तार बना लेता है। उन्हें मुख्तारी सौंपकर वह निश्चिन्त हो जाता है।

"सिक्खों ने कहा था, 'ईश्वर दयालु हैं।' मैंने कहा, 'वे हमारे माँ-बाप हैं; उनका दयालु होना फिर कैसा? बच्चों को पैदा करके माँ-बाप उनका पालन-पोषण नहीं करेंगे तो क्या टोलेवाले आकर करेंगे?' इस तरह के भक्तों को दृढ़ विश्वास है——'वे हमारी माँ हैं, हमारे पिता हैं।'

"एक दर्जे के भक्त और हैं। उनका स्वभाव बन्दर के बच्चे की तरह है। बन्दर का बच्चा खुद किसी तरह माँ को पकड़े रहता है। इस दर्जे के लोगों को कुछ कर्तृत्व का विचार रहता है। मुझे तीर्थ करना है, जप-तप करना है, षोड़शोपचार पूजा करनी है तब ईश्वर मिलेंगे,—— इनका यह भाव है।

"भक्त दोनों हैं। (भक्तों से) जितना ही बढ़ोगे, उतना ही देखोगे, वे ही सब कुछ हुए हैं——वे ही सब कुछ करते हैं। वे ही गुरु हैं और वे ही इष्ट भी हैं। वे ही ज्ञान और भक्ति सब दे रहे हैं।

"जितना ही आगे बढ़ोगे उतना ही अधिक पाओगे। देखोगे, चन्दन की लकड़ी, फिर आगे और भी बहुत कुछ है——चांदी-सोने की खान, हीरे और मणि की खान; इसीलिए कहता हूँ, 'आगे बढ़ते जाओ।'

"और 'बढ़ते जाओ' यह बात भी किस तरह कहूँ ?—संसारी आदमी अगर अधिक बढ़ जायँ तो घर और गृहस्थी सब साफ हो जाय। केशव सेन उपासना कर रहा था, कहा, 'हे ईश्वर, ऐसा करो जिससे तुम्हारी भक्ति की नदी में हम डूब जायँ।' जब उपासना समाप्त हो गई तब मैंने कहा, 'क्यों जी, तुम भक्ति की नदी में डूब कैसे जाओगे ? डूब जाओगे तो जो चिक के भीतर बैठी हुई हैं, उनकी क्या दशा होगी ? एक काम करो—कभी कभी डूब जाना और कभी कभी निकलकर फिर किनारे पर सूखे में आ जाना।'" (सब हँसते हैं)

कटोवा के वैष्णव तर्क कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण उनसे कह रहे हैं—"तुम कलकलाना छोड़ो। घी जब तक कच्चा रहता है तभी तक कलकलाया करता है।

"एक बार उनका आनन्द मिलने से विचार-बुद्धि दूर हो जाती है। जब मधु-पान का आनन्द मिलने लगता है तो गूँजना बन्द हो जाता है।

"किताब पढ़कर कुछ बातों के कह सकने से क्या होगा ? पण्डित कितने ही श्लोक कहते हैं—'शीर्णा गोकुलमण्डली' आदि सब।

"'भंग-भंग' रटते रहने से क्या होगा ? उसकी कुल्ली करने से भी कुछ न होगा। पेट में पड़ना चाहिए—नशा तभी होगा। निर्जन में और एकान्त में व्याकुल होकर ईश्वर को बिना पुकारे इन सब बातों की धारणा कोई कर नहीं सकता।"

डाक्टर राखाल श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए आए हैं। श्रीरामकृष्ण व्यस्त भाव से कह रहे हैं—"आइए, बैठिए।"

वैष्णव से बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण– मनुष्य और 'मन-होश'। जिसे चैतन्य हुआ है, वह 'मन-होश' है। बिना चैतन्य के मनुष्य-जन्म वृथा है!

"हमारे देश (कामारपुकुर) में मोटे पेट और बड़ी बड़ी मूछों वाले आदमी बहुत हैं; फिर भी वहाँ के लोग दस कोस से अच्छे आदमी को पालकी पर चढ़ाकर क्यों ले आते हैं?— उन्हें धार्मिक और सत्यवादी देखकर; वे झगड़े का फैसला कर देंगे, इसलिए। जो लोग केवल पण्डित हैं, उन्हें नहीं लाते।

"सत्य बोलना कलिकाल की तपस्या है। सत्य वचन, ईश्वर पर निर्भरता तथा पर-स्त्री को माता के समान देखना— ये सब ईश्वर-दर्शन के उपाय हैं।"

श्रीरामकृष्ण बच्चे की तरह डाक्टर से कह रहे हैं– "भाई, इसे अच्छा कर दो।"

डाक्टर– मैं अच्छा करूँगा?

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– डाक्टर नारायण हैं। मैं सब मानता हूँ।

"अगर कहो— सब नारायण हैं, तो चुप मारकर क्यों नहीं रहते?— तो उत्तर यह है कि मैं महावत नारायण को भी मानता हूँ।

"शुद्ध मन और शुद्ध आत्मा एक ही वस्तु हैं।

"शुद्ध मन में जो बात पैदा होती है वह उन्हीं की वाणी है। 'महावत नारायण' वे ही हैं।

"उनकी बात फिर क्यों न मानूँ? वे ही कर्ता हैं। 'मैं' को जब तक उन्होंने रखा है, तब तक उनकी आज्ञा को सुनकर काम करूँगा।"

अब डाक्टर श्रीरामकृष्ण के गले की बीमारी की परीक्षा करेंगे।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"महेन्द्र सरकार ने जीभ दबाई थी—जैसे बैल की जीभ दबाई जाती है!"

श्रीरामकृष्ण बालक की तरह बार-बार डाक्टर के कुर्ते में हाथ लगाते हुए कह रहे हैं—"भाई! तुम इसे अच्छा कर दो।"

Laryngoscope (गला देखने का आईना) को देखकर श्रीरामकृष्ण हँसते हुए कह रहे हैं—"इसमें छाया पड़ेगी, समझ गया।"

नरेन्द्र ने गाया। परन्तु श्रीरामकृष्ण की बीमारी के कारण अधिक संगीत नहीं हुआ।

(३)

डा० रुद्र तथा श्रीरामकृष्ण

दोहपर के भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण अपनी चारपाई पर बैठे हुए डाक्टर भगवान रुद्र और मास्टर से वार्तालाप कर रहे हैं। कमरे में राखाल, लाटू आदि भक्त भी हैं।

आज बुधवार है, श्रावण की अष्टमी-नवमी तिथि, २ सितम्बर १८८५। डाक्टर ने श्रीरामकृष्ण की बीमारी का कुल विवरण सुना। श्रीरामकृष्ण जमीन पर उतरकर डाक्टर के पास बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण– देखो जी, दवा नहीं सही जाती। मेरी प्रकृति कुछ और है।

"अच्छा, यह तुम्हें क्या जान पड़ता है? रुपया छूने पर हाथ टेढ़ा हो जाता है। और अगर मैं धोती में गाँठ दे दूँ, तो जब तक वह खोल न दी जाय तब तक के लिए साँस बन्द हो जाती है।"

यह कहकर उन्होंने एक रुपया ले आने के लिए कहा। डाक्टर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि रुपये को हाथ पर रखते

ही हाथ टेढ़ा हो गया और साँस बन्द हो गई। रुपये को हटा लेने पर तीन बार साँस कुछ ज़ोर से चली और तब हाथ कहीं ठीक हुआ। डाक्टर ने मास्टर से कहा, "Action on the nerves." (स्नायु के ऊपर क्रिया)

श्रीरामकृष्ण डाक्टर से कह रहे हैं-- "एक अवस्था और है। कुछ संचय नहीं किया जाता। एक दिन मैं शम्भू मल्लिक के बगीचे में गया था। उस समय पेट में बड़ी पीड़ा थी। शम्भू ने कहा, 'ज़रा ज़रा अफीम खाया कीजिए तो ठीक हो जाएगा।' मेरी धोती के छोर में ज़रा सी अफीम उसने बाँध दी। जब लौटा आ रहा था तब फाटक के पास न जाने चक्कर आने लगा। रास्ता नहीं मिल रह था। फिर जब अफीम खोलकर फेंक दी गई तब फिर ज्यों की त्यों अवस्था हो गई और मैं बगीचे में लौट आया।

"देश में मैं आम तोड़कर लिए आ रहा था, थोड़ी दूर जाने के बाद फिर चल न सका। खड़ा हो गया। फिर आमों को एक गढ़े में जब रख दिया तब कहीं घर आ सका। अच्छा, यह क्या है?"

डाक्टर-- इसके पीछे एक शक्ति और है, मन की शक्ति।

मणि-- ये कहते हैं, यह ईश्वर की शक्ति है और आप बतलाते हैं, मन की शक्ति।

श्रीरामकृष्ण-- (डाक्टर से)-- ऐसी भी अवस्था है--- अगर कोई कहता है, 'पीड़ा घट गई,' तो साथ ही साथ कुछ घट भी जाती है। उस दिन ब्राह्मणी ने कहा, 'आठ आना बीमारी अच्छी हो गई'; उसके कहने के साथ ही मैं नाचने लगा।

डाक्टर का स्वभाव देखकर श्रीरामकृष्ण को प्रसन्नता हुई। वे डाक्टर से कह रहे हैं--- "तुम्हारा स्वभाव अच्छा है। ज्ञान के दो लक्षण हैं, स्वभाव का शान्त हो जाना और अभिमान का

लोप हो जाना ।"

मणि– इन्हें पत्नी-वियोग हो गया है ।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– मैं कहता हूँ, इन तीन आकर्षणों के एकत्र होने पर ईश्वर मिलते हैं–– माता का बच्चे पर, सती का पति पर तथा विषयी मनुष्य का विषय पर जैसा आकर्षण होता है ।

"कुछ भी हो, भाई, मेरी यह बीमारी अच्छी कर दो ।"

डाक्टर अब गला देखेंगे । गोल बरामदे में एक कुर्सी पर श्रीरामकृष्ण बैठे । श्रीरामकृष्ण पहले डाक्टर सरकार की बात कह रहे हैं– "उसने खूब ज़ोर से जीभ दबाई–– जैसे बैल की हो !"

डाक्टर– उन्होंने इच्छापूर्वक वैसा न किया होगा ।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, ठीक ठीक जाँच करने के लिए उसने जीभ को दबाया ।

(४)

अस्वस्थ श्रीरामकृष्ण तथा डाक्टर राखाल । भक्तों के साथ नृत्य

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर मन्दिर में भक्तों के साथ अपने कमरे में बैठे हैं । रविवार, २० सितम्बर, १८८५ ई०, शुक्ला एकादशी । नवगोपाल, हिन्दू स्कूल के शिक्षक हरलाल, राखाल, लाटू, कीर्तनकार गोस्वामी तथा अन्य लोग उपस्थित हैं । बड़ा बाजार के डाक्टर राखाल को साथ लेकर मास्टर आ पहुँचे । डाक्टर से श्रीरामकृष्ण के रोग की जाँच कराएँगे ।

डाक्टर देख रहे हैं कि श्रीरामकृष्ण के गले में क्या रोग हुआ है । वे मोटे आदमी हैं, उँगलियाँ मोटी मोटी हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए, डाक्टर से)– जो लोग ऐसा ऐसा करते हैं (अर्थात् कुश्ती लड़ते हैं) उनकी तरह हैं, तुम्हारी

उँगलियाँ ! महेन्द्र सरकार ने देखा था, परन्तु जीभ को इतने ज़ोर से दबा दिया था कि बहुत तकलीफ हुई। जैसे गाय की जीभ दबाकर पकड़ी हो !

डाक्टर राखाल– जी, मैं देखता हूँ, आपको कुछ कष्ट न होगा।

डाक्टर द्वारा दवा की व्यवस्था करने के बाद श्रीरामकृष्ण फिर बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों के प्रति)– भला, लोग कहते हैं, ये यदि साधु हैं तो इन्हें रोग क्यों होता है ?

तारक– भगवानदास बाबाजी बहुत दिनों तक रोग से बिस्तर पर पड़े रहे।

श्रीरामकृष्ण– मधु डाक्टर साठ वर्ष की अवस्था में वेश्या के लिए उसके घर पर खाना लेकर जाता है, और इधर उसे कोई रोग नहीं है।

गोस्वामी– जी, आपका जो रोग है, यह दूसरों के लिए है। जो लोग आपके यहाँ आते हैं, उनका अपराध आपको लेना पड़ता है। उन्हीं सब अपराध-पापों को लेने से आपको रोग होता है।

एक भक्त– यदि आप माँ से कहें, 'माँ, इस रोग को मिटा दो,' तो जल्द ही मिट जाय।

श्रीरामकृष्ण– रोग मिटाने की बात कह नहीं सकता; फिर हाल में सेव्य-सेवक भाव कम हो रहा है। एक बार कहता हूँ, 'माँ, तलवार के खोल की ज़रा मरम्मत कर दो,' परन्तु उस प्रकार की प्रार्थना कम होती जा रही है। आजकल 'मैं' को खोजने पर भी नहीं पाता। देखता हूँ, वे ही इस खोल में विद्यमान हैं।

कीर्तन के लिए गोस्वामी को लाया गया है। एक भक्त ने पूछा, 'क्या कीर्तन होगा ?'

श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ हैं, कीर्तन होने पर भावावस्था आएगी, यही सबको भय है।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "होने दो थोड़ा सा। कहते हैं, मेरा भाव होता है— इसीलिए भय होता है। भाव होने पर गले के उसी स्थान में जाकर लगता है।"

कीर्तन सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण भाव को संभाल न सके। खड़े हो गए और भक्तों के साथ नृत्य करने लगे।

डाक्टर राखाल ने सब देखा, उनकी किराए की गाड़ी खड़ी है। वे और मास्टर उठ खड़े हुए,— कलकत्ता जाएँगे। दोनों ने श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– (स्नेह के साथ, मास्टर के प्रति)– क्या तुमने खाया है?

मास्टर के प्रति आत्मज्ञान का उपदेश— 'देह' खोल मात्र है

बृहस्पतिवार, २८ सितम्बर, पूर्णिमा की रात को श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तख्त पर बैठे हैं। गले के रोग से पीड़ित हैं।

मास्टर आदि भक्तगण जमीन पर बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर के प्रति)– कभी कभी सोचता हूँ, यह देह केवल खोल है। उस अखण्ड (सच्चिदानन्द) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

"भाव का आवेश होनेपर गले का रोग एक किनारे पड़ा रहता है। अब थोड़ा-थोड़ा वह भाव हो रहा है और हँसी आ रही है।"

द्विज की बहिन और छोटी दादी श्रीरामकृष्ण की अस्वस्थता का समाचार पाकर देखने के लिए आई हैं। वे प्रणाम करके कमरे के एक कोने में बैठीं। द्विज की दादी को श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "ये कौन हैं? जिन्होंने द्विज को पाला-पोसा है? अच्छा,

द्विज ने एकतारा क्यों खरीदा है ?"

मास्टर– जी, उसमें दो तार हैं।

श्रीरामकृष्ण– उसके पिता उसके विरोधी हैं। सब लोग क्या कहेंगे ? उसको तो गुप्त रूप से ईश्वर को पुकारना ही ठीक है।

श्रीरामकृष्ण के कमरे की दीवाल पर टँगा हुआ गौर-निताई का एक चित्र था। गौर-निताई दल-बल के साथ नवद्वीप में संकीर्तन कर रहे हैं–– वह इसी का चित्र है।

रामलाल– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– तो फिर, यह चित्र इन्हें ही (मास्टर को) देता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– बहुत अच्छा, दे दो।

श्रीरामकृष्ण कुछ दिनों से प्रताप की दवा ले रहे हैं। आज रात रहते ही उठ पड़े हैं, इसलिए मन बेचैन है। हरी सेवा करते हैं, उसी कमरे में हैं, वहीं राखाल भी हैं। श्रीरामलाल बाहर के बरामदे में सो रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने बाद में कहा, 'प्राण बेचैन होने से हरीश को बाँह में लेने की इच्छा हुई। मध्यम नारायण तेल मालिश करने से अच्छा हुआ, तब फिर नाचने लगा।'

परिच्छेद १७

श्यामपुकुर में श्रीरामकृष्ण

(१)

सुरेन्द्र की भक्ति । गीता

आज विजयादशी है । १८ अक्टूबर १८८५ । श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुरवाले मकान में हैं । शरीर अस्वस्थ रहता है, कलकत्ते में चिकित्सा कराने के लिए आए हैं । भक्तगण निरन्तर रहते और उनकी सेवा किया करते हैं । भक्तों में से अभी तक किसी ने संसार का त्याग नहीं किया । वे लोग अपने घर से आया-जाया करते हैं ।

जाड़े का मौसम है, सबेरे आठ बजे का समय है । श्रीराम-कृष्ण अस्वस्थ हैं, बिस्तर पर बैठे हुए हैं, जैसे पाँच वर्ष का बालक जो माता के सिवा और कुछ नहीं जानता । सुरेन्द्र आए और आसन ग्रहण किया । नवगोपाल, मास्टर तथा और भी कई लोग उपस्थित हैं । सुरेन्द्र के यहाँ दुर्गापूजा हुई थी । श्रीरामकृष्ण नहीं जा सके; भक्तों को प्रतिमा के दर्शन करने के लिए भेजा था । आज विजयादशमी है, इसीलिए सुरेन्द्र का मन कुछ उदास है ।

सुरेन्द्र—मैं घर से भाग आया ।

श्रीरामकृष्ण—(मास्टर से)—प्रतिमा पानी में डाल दी गई तो क्या, माँ बस हृदय में विराजती रहें ।

सुरेन्द्र 'माँ माँ' करके जगदीश्वरी के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहने लगे । श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र को देखते हुए आँसू बहाने लगे । मास्टर की ओर देखकर गद्‌गद स्वर से कहने लगे, "अहा ! कैसी भक्ति है ! ईश्वर के लिए कैसा अगाध प्रेम !"

श्रीरामकृष्ण– कल साढ़े सात बजे के लगभग मैंने देखा, तुम्हारे दालान में श्रीदेवी प्रतिमा है, चारों ओर ज्योति ही ज्योति है। सब एकाकार हो गया है— यह और वह। दोनों जगह के बीच मानो ज्योति की एक तरंग बह रही है— इस घर से तुम्हारे उस घर तक।

सुरेन्द्र– उस समय मैं देवीजीवाले दालान में खड़ा हुआ 'माँ माँ' कहकर उन्हें पुकार रहा था। मेरे भाई मुझे छोड़कर ऊपर चले गए थे। मेरे मन में ऐसा जान पड़ा कि माँ कह रही हैं, 'मैं फिर आऊँगी।'

दिन के ग्यारह बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण को पथ्य दिया गया। मणि मुँह धुलाने के लिए उनके हाथों पर पानी डाल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मणि से)– चने की दाल खाकर राखाल कुछ अस्वस्थ है। आहार सात्विक करना अच्छा है। तुमने गीता में नहीं देखा? क्या तुम गीता नहीं पढ़ते?

मणि– जी हाँ, युक्ताहार की बातें हैं। सात्विक आहार, राजसिक आहार और तामसिक आहार; और सात्विक दया, राजसिक दया और तामसिक दया भी हैं। सात्विक अहं आदि सब है।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारे पास गीता है?

मणि– जी हाँ, है।

श्रीरामकृष्ण– उसमें सब शास्त्रों का सार है।

मणि– जी हाँ, ईश्वर को अनेक प्रकार से देखने की बातें लिखी हैं; आप जैसा कहते हैं, अनेक मार्गों से उनके पास जाना; ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान आदि अनेक मार्गों से।

श्रीरामकृष्ण– कर्मयोग का अर्थ जानते हो? सब कर्मों का फल

ईश्वर को समर्पण कर देना।

मणि– जी हाँ, मैंने देखा है। गीता में लिखा है, कर्म भी तीन तरह से किए जा सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण– किस किस तरह से?

मणि– प्रथम, ज्ञान के लिए। दूसरा, लोक-शिक्षा के लिए। तीसरा, स्वभाववश।

(२)

श्रीरामकृष्ण तथा अवतारवाद

श्रीरामकृष्ण मास्टर से डाक्टर सरकार की बातें कह रहे हैं। पहले दिन मास्टर श्रीरामकृष्ण का हाल लेकर डाक्टर सरकार के पास गए थे।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारे साथ क्या-क्या बातें हुईं।

मास्टर– डाक्टर के यहाँ बहुत सी पुस्तकें हैं। मैं वहाँ बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसी से कुछ अंश पढ़कर डाक्टर को सुनाने लगा। सर हम्फ्रे डेवी की पुस्तक है। उसमें अवतार की आवश्यकता पर लिखा गया है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ? तुमने क्या कहा था?

मास्टर उसमें एक बात यह है कि ईश्वर की वाणी आदमी के भीतर से होकर बिना आए मनुष्य उसे समझ नहीं सकते। इसीलिए अवतार की आवश्यकता है।

श्रीरामकृष्ण– वाह! ये सब तो बड़ी अच्छी बातें हैं।

मास्टर– लेखक ने उपमा दी है कि सूर्य की ओर कोई देख नहीं सकता, परन्तु सूर्य की किरणें जिस जगह पर पड़ती हैं (Reflected Rays) वहाँ लोग देख सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण– यह तो बड़ी अच्छी बात है, कुछ और है?

मास्टर– एक दूसरी जगह लिखा था, यथार्थ ज्ञान विश्वास है।

श्रीरामकृष्ण– ये तो बहुत सुन्दर बातें हैं। विश्वास हुआ तब तो सब कुछ हो गया।

मास्टर– लेखक ने स्वप्न में रोमन देव-देवियों को देखा था।

श्रीरामकृष्ण– क्या इस तरह की पुस्तकें निकल रही हैं? ऐसी जगह वे ही (ईश्वर) काम कर रहे हैं। और भी कोई बात हुई?

मास्टर– वे लोग कहते हैं, हम संसार का उपकार करेंगे। तब मैंने आपकी बात कही।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– कौनसी बात ?

मास्टर– शम्भू मल्लिक वाली बात। उसने आपसे कहा था, 'मेरी इच्छा होती है कि रुपए लगाकर कुछ अस्पताल और दवाखाने, स्कूल आदि बनवा दूँ। इससे बहुतों का उपकार होगा।' आपने उससे कहा था, 'अगर ईश्वर सामने आएँ तो क्या तुम कहोगे, मेरे लिए कुछ अस्पताल, दवाखाने और स्कूल बनवा दो?' एक बात मैंने और कही थी।

श्रीरामकृष्ण– जो कर्म करने के लिए आते हैं उनका दर्जा अलग है। हाँ, और कौनसी बात ?

मास्टर– मैंने कहा, 'यदि आपका उद्देश्य श्रीकाली की मूर्ति का दर्शन करना है तो सड़क के किनारे खड़े होकर गरीबों को भीख बाँटने में ही अपना सब समय लगा देने से क्या लाभ होगा? पहले आप किसी प्रकार मूर्ति के दर्शन कर लें। फिर जी भर के भीख दें?'

श्रीरामकृष्ण– और भी कोई बात हुई ?

मास्टर– आपके पास जो लोग आते हैं, उनमें बहुतों ने काम को जीत लिया है, यह बात हुई। डाक्टर ने कहा, 'मेरा भी काम-भाव दूर हो गया है, इतना समझ लेना।' मैंने कहा, 'आप तो

वड़े आदमी हैं। आपने काम को जीत लिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्षुद्र प्राणियों में भी, उनके पास रहकर, इन्द्रियों को जीतने की शक्ति आ रही है, यही आश्चर्य है!' फिर मैंने वह बात कही जो आपने गिरीश घोष से कही थी।

श्रीरामकृष्ण–(सहास्य)– क्या कहा था?

मास्टर– आपने गिरीश घोष से कहा था, 'डाक्टर तुमसे ऊँचे नहीं चढ़ सका।' वही अवतारवाली बात।

श्रीरामकृष्ण– अवतार की बात उससे (डाक्टर से) कहना। अवतार वे हैं जो तारते हैं। इस तरह दस अवतार हैं, चौबीस अवतार हैं और असंख्य अवतार भी हैं।

मास्टर– गिरीश घोष की वे (डा. सरकार) खूब खबर रखते हैं। यही पूछते रहे कि गिरीश घोष ने क्या बिलकुल शराब पीना छोड़ दिया? उन पर खूब नज़र है।

श्रीरामकृष्ण– क्या गिरीश घोष से यह बात तुमने कही थी?

मास्टर– जी हाँ, कही थी, और बिलकुल शराब छोड़नेवाली बात भी।

श्रीरामकृष्ण– उसने क्या कहा?

मास्टर– उन्होंने कहा, 'तुम लोग जब कह रहे हो, तो इस दशा में इसे श्रीरामकृष्ण की बात समझकर मान लेता हूँ— परन्तु मैं स्वयं अब ज़ोर देकर कोई बात न कहूँगा।'

श्रीरामकृष्ण– (आनन्दपूर्वक)– कालीपद ने कहा है, उसने एकदम शराब पीना छोड़ दिया है।

(३)

नित्य-लीला-योग

दिन का पिछला पहर है, डाक्टर आए हुए हैं। अमृत (डाक्टर

के लड़के) और हेम भी डाक्टर के साथ आए हैं। नरेन्द्र आदि भक्त भी उपस्थित हैं। श्रीरामकृष्ण एकान्त में अमृत के साथ बातचीत कर रहे हैं। पूछ रहे हैं, 'क्या तुम्हें ध्यान जमता है?' और कह रहे हैं, 'क्या जानते हो, ध्यान की अवस्था कैसी होती है? मन तैलधारा की तरह हो जाता है। ईश्वर की ही चिन्ता रह जाती है। उसमें कोई दूसरी चिन्ता नहीं आती।' अब श्रीरामकृष्ण दूसरों से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– तुम्हारा लड़का अवतार नहीं मानता। यह अच्छी बात है। नहीं मानता तो न सही।

"तुम्हारा लड़का बड़ा अच्छा है। और होगा भी क्यों नहीं? बम्बई-आम के पेड़ में कभी खट्टे आम भी लगते हैं? ईश्वर पर उसका कैसा विश्वास है! ईश्वर पर जिसका मन है, आदमी तो बस वही है। मनुष्य और मन-होश। जिसमें होश है—चैतन्य है, जो निश्चयपूर्वक जानता है कि ईश्वर सत्य हैं और सब अनित्य, वही वास्तव में मनुष्य है। अवतार नहीं मानता तो इसमें क्या दोष? 'ईश्वर हैं, यह सम्पूर्ण जीव-जगत् उनका ऐश्वर्य है,' इसे मानने से ही हो गया।— जैसे कोई बड़ा आदमी और उसका बगीचा।

"बात यह है कि दस अवतार हैं, चौबीस अवतार हैं और फिर असंख्य अवतार भी हैं। जहाँ कहीं उनकी शक्ति का विशेष प्रकाश है, वहीं अवतार है। मेरा यही मत है।

"एक बात और है, जो कुछ देख रहे हो यह सब वे ही हुए हैं।— जैसे बेल के बीज, खोपड़ा, गूदा, तीनों को मिलाकर एक बेल है। जिनकी नित्यता है, उन्हीं की लीला भी है। नित्य को छोड़कर केवल लीला समझ में नहीं आती। लीला के रहने के

कारण ही, लीला को छोड़-छोड़कर लोग नित्य में जाया करते हैं।

"जब तक अहं-बुद्धि रहती है तब तक लीला के परे मनुष्य नहीं जा सकता। 'नेति नेति' करके ध्यान-योग द्वारा नित्य में लोग पहुँच सकते हैं, परन्तु कुछ भी छोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि यह सब वे ही हुए हैं-- जैसा मैंने कहा-- बेल।"

डाक्टर-- बहुत ठीक है।

श्रीरामकृष्ण-- कचदेव निर्विकल्प समाधि में थे। जब समाधि छूटी तब एक ने पूछा, 'आप इस समय क्या देखते हैं?' कचदेव ने कहा, 'मैं देख रहा हूँ, संसार मानो उनसे मिला हुआ है। वे ही पूर्ण हैं। जो कुछ देख रहा हूँ, सब वे ही हुए हैं। इसमें से क्या छोड़ूँ और क्या पकड़ूँ, कुछ समझ में नहीं आता।'

"बात यह है कि नित्य और लीला का दर्शन करके दास-भाव में रहना चाहिए। हनुमान ने साकार और निराकार दोनों का साक्षात्कार किया था। इसके बाद, दास-भाव से-- भक्त के भाव से रहे थे।"

मणि-- (स्वगत)-- नित्य और लीला, दोनों को लेना होगा। जर्मनी में वेदान्त के प्रवेश के समय से यूरोपीय पण्डितों में भी किसी किसी का मत ऐसा ही है; परन्तु श्रीरामकृष्ण ने तो कहा है कि सम्पूर्ण रूप से त्याग-- कामिनी-कांचन का त्याग-- हुए बिना नित्य और लीला का साक्षात्कार नहीं होता। सच्चे साधक को ठीक ठीक त्यागी, सम्पूर्ण अनासक्त होना चाहिए। यहीं पर उनमें तथा हेगल जैसे यूरोपीय पण्डितों में भेद है।

(४)

श्रीरामकृष्ण तथा ज्ञानयोग

डाक्टर कह रहे हैं, 'ईश्वर ने हमारी सृष्टि की है, और हम

सब लोगों की आत्माएँ अनन्त उन्नति करेंगी।' वे यह मानने के लिए राजी नहीं कि एक आदमी किसी दूसरे आदमी से बड़ा है। इसीलिए वे अवतार नहीं मानते।

डाक्टर– अनन्त उन्नति। यह अगर न हो तो पाँच-सात वर्ष और बचकर क्या होगा? इससे तो मैं गले में रस्सी की फाँसी लगाकर मर जाना बेहतर समझता हूँ!

"अवतार फिर है क्या? जो मनुष्य शौच जाता है-- पेशाब करता है, उसके पैरों सिर झुकाऊँ! हाँ, परन्तु यह मानता हूँ कि मनुष्य में ईश्वर की ज्योति प्रतिबिम्बित होती है।"

गिरीश– (हँसकर)– आपने ईश्वरी ज्योति कभी देखी नहीं--

डाक्टर उत्तर देने से पहले कुछ इधर-उधर करने लगे। पास ही एक मित्र बैठे हुए थे---धीरे धीरे उन्होंने कुछ कहा।

डाक्टर– (गिरीश के प्रति)– आपने भी तो प्रतिबिम्ब के सिवा और कुछ नहीं देखा।

गिरीश– मैं देखता हूँ! वह ज्योति मैं देखता हूँ! श्रीकृष्ण अवतार हैं, यह मैं प्रमाणित कर दूँगा, नहीं तो अपनी जीभ काट-कर फेंक दूँगा!

श्रीरामकृष्ण– यह सब जो बातचीत हो रही है, कुछ भी नहीं है।

"यह सब सन्निपात-ग्रस्त रोगी की बकवाद है। विकार के रोगी नें कहा था, 'मैं घड़ा भर पानी पिऊँगा, हण्डी भर भात खाऊँगा।' वैद्य ने कहा, 'अच्छा, खाना तब खाना। अच्छे हो जाने के बाद जो कुछ तू कहेगा, वैसा ही किया जाएगा।'

"जब घी कच्चा रहता है, तभी तक उसमें कलकलाहट होती है। पक जाने पर फिर आवाज़ नहीं निकलती। जिसका जैसा

मन है, वह ईश्वर को उसी तरह देखता है। मैंने देखा है, बड़े आदमी के घर में रानी की तस्वीर आदि—यह सब है और भक्तों के यहाँ देव-देवियों की तस्वीरें हैं।

"लक्ष्मण ने कहा था, 'हे राम, वशिष्ठदेव जैसे पुरुष को भी पुत्रों का शोक हो रहा है।' राम ने कहा, 'भाई, जिसमें ज्ञान है उसमें अज्ञान भी है। जिसे उजाले का ज्ञान है, उसे अंधेरे का भी ज्ञान है। इसलिए ज्ञान और अज्ञान से परे हो जाओ।' ईश्वर को विशेष रूप से जान लेने पर यह अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसे ही विज्ञान कहते हैं।

"पैर में काँटा चुभ जाने से, उसे निकालने के लिए एक और काँटा ले आना पड़ता है। निकालने के बाद फिर दोनों काँटे फेंक दिए जाते हैं। ज्ञानरूपी काँटे से अज्ञानरूपी काँटा निकालकर, ज्ञान और अज्ञानरूपी दोनों काँटे फेंक दिए जाते हैं।

"पूर्ण ज्ञान के कुछ लक्षण हैं। उस समय विचार बन्द हो जाता है। पहले जैसा कहा, कच्चा रहने से ही घी में कलकलाहट रहती है।"

डाक्टर—पूर्ण ज्ञान रहता कहाँ है? सब ईश्वर हैं, तो फिर आप परमहंस का काम क्यों करते हैं? और ये लोग आकर आपकी सेवा क्यों करते हैं? आप चुप क्यों नहीं रहते?

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—पानी स्थिर रहने पर भी पानी है, और तरंग-रूप से हिलने-डुलने पर भी वह पानी ही है।

"एक बात और। महावत-नारायण की बात भी क्यों न मानी जाय? गुरु ने शिष्य को समझाया था कि सब नारायण हैं। पागल हाथी आ रहा था, शिष्य गुरु की बात पर विश्वास करके वहाँ से नहीं हटा। यही सोचकर कि हाथी भी नारायण है! महावत

इधर चिल्ला-चिल्लाकर कह रह था, 'सब लोग हट जाओ— रास्ते से सब हट जाओ।' पर शिष्य नहीं हटा। हाथी आया और उसे एक ओर फेंककर चला गया। शिष्य को बड़ी चोट लगी, केवल जान ही नहीं निकली। मुँह पर पानी के छींटे लगाने से उसे चेत हुआ। जब उससे पूछा गया कि तुम हटे क्यों नहीं, तब उसने कहा, 'क्यों, गुरु महाराज ने तो कहा था—सब नारायण हैं।' गुरु ने कहा, 'बेटा, अगर ऐसा ही था तो तुमने महावत-नारायण की बात क्यों नहीं मानी? महावत भी तो नारायण हुआ।' वे ही शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि होकर भीतर वास करते हैं। मैं यंत्र हूँ, वे यंत्री हैं। मैं घर हूँ, वे मालिक। वे ही महावत-नारायण हैं।"

डाक्टर—और एक बात कहूँगा, आप फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि रोग अच्छा कर दो?

श्रीरामकृष्ण—जब तक 'मैं' रूपी घट है, तभी तक ऐसा हो रहा है। सोचो, एक महासमुद्र है, ऊपर-नीचे जल से पूर्ण है। उसके भीतर एक घट है। घट के भीतर और बाहर पानी है; परन्तु उसे बिना फोड़े यथार्थ में एकाकार नहीं होता। उन्हीं ने इस 'मैं'-घट को रख छोड़ा है।

डाक्टर—तो यह 'मैं' जो आप कह रहे हैं, यह सब क्या है? इसका भी तो अर्थ कहना होगा। क्या वे (ईश्वर) हमारे साथ कोई मज़ाक कर रहे हैं?

गिरीश—(डाक्टर से)—महाशय, आपको कैसे मालूम हुआ कि वह मज़ाक नहीं है?

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—इस 'मैं' को उन्हीं ने रख छोड़ा है। उनकी क्रीड़ा—उनकी लीला!

"एक राजा के चार लड़के थे। सब थे तो राजा के लड़के, परन्तु उन्हीं में कोई मंत्री, कोई कोतवाल, इसी तरह बन-बनकर खेल रहे थे। राजा के लड़के होकर कोतवाल का खेल !

(डाक्टर से) "सुनो, यदि तुम्हें आत्म-साक्षात्कार हो जाय तो यह सब तुम मानने लग जाओगे। उनके दर्शन से सब संशय दूर हो जाते हैं।"

डाक्टर—सब सन्देह कहाँ जाता है ?

श्रीरामकृष्ण—मेरे पास इतना ही सुन जाओ। इससे अधिक कुछ जानना चाहो तो अकेले में उनसे (ईश्वर से) कहना। उनसे पूछना, क्यों उन्होंने ऐसा किया है।

"लड़का भिक्षुक को मुट्ठी भर चावल ही दे सकता है। अगर रेल के किराए की उसे आवश्यकता होती है, तो यह बात मालिक के कान तक पहुँचाई जाती है।"

डाक्टर चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, तुम्हें विचार प्यारा है, तो सुनो कुछ विचार करता हूँ। ज्ञानी के मत से अवतार नहीं है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'तुम मुझे अवतार-अवतार कह रहे हो, आओ, तुम्हें एक दृश्य दिखलाऊँ।' अर्जुन साथ-साथ गए। कुछ दूर जाने पर कृष्ण ने पूछा, 'क्या देखते हो ?' अर्जुन ने कहा, 'एक बहुत बड़ा पेड़ है और उसमें गुच्छे के गुच्छे जामुन लटक रहे हैं।' कृष्ण ने कहा, 'वे जामुन नहीं हैं। ज़रा और बढ़कर देखो।' तब अर्जुन ने देखा, गुच्छों में कृष्ण फले हुए थे। कृष्ण ने कहा, 'अब देखा ?——मेरी तरह कितने कृष्ण फले हुए हैं !'

"कबीरदास ने कृष्ण की बात पर कहा था, 'वह तो गोपियों

की तालियों पर बन्दर-नाच नाचा था !'

"जितना ही बढ़ जाओगे, ईश्वर की उपाधि उतनी ही कम देखोगे। भक्त को पहले दशभुजा के दर्शन हुए। और भी बढ़कर उसने देखा, षड्भुजा मूर्ति। और भी बढ़कर देखा, द्विभुज गोपाल। जितना ही बढ़ रहा है, उतना ही ऐश्वर्य घट रहा है। और भी बढ़ा तब ज्योति के दर्शन हुए—कोई उपाधि नहीं।

"ज़रा वेदान्त का भी विचार सुनो। किसी राजा को एक आदमी इन्द्रजाल दिखाने के लिए आया था। उसके ज़रा हट जाने पर राजा ने देखा, एक सवार आ रहा है—घोड़े पर बड़े रोब-दाब से, हाथ में अस्त्र-शस्त्र लिए हुए। सभा भर के आदमी और राजा विचार करने लगे कि इसके भीतर क्या सत्य है। वह घोड़ा तो सत्य नहीं है, वह साज-बाज भी सत्य नहीं है, वे अस्त्र-शस्त्र भी सत्य नहीं हैं। अन्त में सचमुच देखा, सवार ही अकेला खड़ा था और कुछ नहीं। अर्थात् ब्रह्म सत्य है, संसार मिथ्या। विचार करना चाहो तो फिर और कोई चीज़ नहीं टिकती।"

डाक्टर—इसमें मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु यह भ्रम सहज ही दूर नहीं होता। ज्ञान के बाद भी कुछ कुछ रहता है। स्वप्न में अगर कोई बाघ देखता है तो आँख खुलने के बाद भी छाती धड़कती रहती है।

"चोर खेत में चोरी करने के लिए गए हुए थे। वहाँ आदमी के आकार का पुतला बनाकर खड़ा कर दिया गया था, डरवाने के लिए। चोर मारे डर के घुस नहीं रहे थे। एक ने पास जाकर देखा तो केवल घास!—आदमी के शक्ल की बाँध-कर खड़ी कर दी गई थी। उसने वहाँ से आकर अपने साथियों

से कहा कि डरने की कोई बात नहीं । किन्तु फिर भी वे लोग मारे डर के कदम आगे नहीं बढ़ा रहे थे । कहते थे, 'छाती धड़कती है ।' तब जिसने पास जाकर देखा था, उसने उस गड़े हुए आकार को जमीन में सुला दिया और कहने लगा, 'यह कुछ नहीं है, यह कुछ नहीं है'—'नेति' 'नेति' ।"

डाक्टर—यह तो बड़ी सुन्दर बात है !

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—हाँ, कैसी बात है ?

डाक्टर—बड़ी सुन्दर है ।

श्रीरामकृष्ण—एक बार थैन्क यू (Thank you) भी तो कहो ।

डाक्टर—क्या आप मेरे मन का भाव नहीं समझ रहे हैं ? इतना कष्ट करके आपको यहाँ देखने के लिए आता हूँ !

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—नहीं जी, मूर्ख के कल्याण के लिए भी तो कुछ कहो । विभीषण ने लंका का राजा होना अस्वीकृत कर दिया था, कहा था, 'राम, मैं तुम्हें जब पा गया तो अब राज्य से क्या काम ?' राम ने कहा, "विभीषण, तुम मूर्खों के लिए राजा बनो । जो लोग कह रहे हैं, 'तुमने राम की इतनी सेवा की, परन्तु तुम्हें ऐश्वर्य क्या मिला ?'—उनकी शिक्षा के लिए तुम राजा बनो ।"

डाक्टर—यहाँ उस तरह का मूर्ख है कौन ?

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—नहीं जी, यहाँ शंख भी हैं और शम्बुक भी हैं ! (सब हँसते हैं)

(५)

डाक्टर के प्रति उपदेश

डाक्टर ने श्रीरामकृष्ण के लिए दवा दी, दो गोलियाँ; कहने

लगे, 'ये गोलियाँ दी हैं--पुरुष और प्रकृति!' (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण-(सहास्य)-हाँ, पुरुष और प्रकृति एक ही साथ रहते हैं। तुमने कबूतरों को नहीं देखा? नर तथा मादी अलग नहीं रह सकते। जहाँ पुरुष है, वहीं प्रकृति भी है। जहाँ प्रकृति है, वहीं पुरुष भी है।

आज विजयादशमी है। श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर से कुछ मिष्टान्न खाने के लिए कहा। भक्तगण मिष्टान्न लाकर देने लगे।

डाक्टर-(खाते हुए)-भोजन के लिए थैन्क यू (Thank you) कहता हूँ; आपने जो ऐसा उपदेश दिया, उसके लिए नहीं। वह थैन्क यू मुंह से क्यों निकाला जाय?

श्रीरामकृष्ण-(सहास्य)-उनमें मन रखना। और क्या कहूँ, और थोड़ी थोड़ी देर के लिए ध्यान करना। (छोटे नरेन्द्र को दिखलाकर) देखो, इसका मन ईश्वर में बिलकुल लीन हो जाता है। जो सब बातें तुमसे कही गई थीं--

डाक्टर-अब इन लोगों से कहिए।

श्रीरामकृष्ण-जिसे जैसा सह्य है उसके लिए वैसी ही व्यवस्था की जाती है। वे सब बातें ये सब लोग कभी समझ सकते हैं? तुमसे कही गई थीं, वह और बात है। लड़के को जो भोजन रुचता है और जो उसे सह्य है वही भोजन उसके लिए माँ पकाती है। (सब हँसते हैं)

डाक्टर चले गए। विजया के उपलक्ष्य में सब भक्तों ने श्रीरामकृष्ण को साष्टांग प्रणाम करके उनके पैरों की धूल लेकर सिर से लगाई। फिर एक दूसरे को सप्रेम भेंटने लगे। आनन्द की मानो सीमा नहीं रही। श्रीरामकृष्ण को इतनी सख्त बीमारी है, परन्तु वे जैसे सब भूल गए हों। प्रेमालिंगन और मिष्टान्न

भोजन बड़ी देर तक चल रहा है। श्रीरामकृष्ण के पास छोटे नरेन्द्र, मास्टर तथा दो-चार भक्त और बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण आनन्द से बातचीत कर रहे हैं। डाक्टर के बारे में बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण–डाक्टर को और अधिक कुछ कहना न होगा। पेड़ का काटना जब समाप्त हो आता है तब जो आदमी काटता है वह ज़रा हटकर खड़ा हो जाता है। कुछ देर बाद पेड़ आप ही गिर जाता है।

(मास्टर से) "डाक्टर बहुत बदल गया है।"

मास्टर–जी हाँ! यहाँ आने पर उनकी अक्ल ही मारी जाती है। क्या दवा दी जानी चाहिए, इसकी बात ही नहीं उठाते। हम लोग जब याद दिलाते हैं, तब कहते हैं—'हाँ-हाँ, दवा देनी है।'

बैठकखाने में कोई कोई भक्त गा रहे थे। श्रीरामकृष्ण जिस कमरे में हैं, उसी में सबके आने पर श्रीरामकृष्ण कहने लगे— "तुम सब गा रहे थे—ताल ठीक क्यों नहीं रहता था? कोई एक बेतालसिद्ध था—यह भी वैसी ही बात हुई!" (सब हँसते हैं)

छोटे नरेन्द्र का आत्मीय एक लड़का आया हुआ है। खूब भड़कीली पोशाक पहने और नाक पर चश्मा लगाए। श्रीराम-कृष्ण छोटे नरेन्द्र से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण–देखो, इसी रास्ते से एक जवान आदमी जा रहा था। उसकी कमीज़ की आस्तीनों में 'प्लेट' पड़ी थीं। उसके चलने का ढंग भी कैसा था! रह-रहकर वह चादर हटाकर अपनी कमीज़ दिखाता था और इधर-उधर देखता था कि कोई

उसकी कमीज़ देखता भी है या नहीं ! परन्तु जब वह चलता था तो साफ मालूम हो जाता था कि उसके पैर टेढ़े हैं ! मोर अपने पंख तो दिखलाता है, पर उसके पैर बड़े गंदे होते हैं। इसी प्रकार ऊँट भी बड़ा भद्दा होता है, उसके सब अंग कुत्सित होते हैं।

नरेन्द्र का आत्मीय––परन्तु आचरण अच्छे होते हैं।

श्रीरामकृष्ण–अच्छा हैं, परन्तु ऊँट कँटीली घास खाता है–– मुख से धर-धर खून गिरता है, फिर भी वही घास खाता जाता है। आँख के सामने लड़का मरा, फिर भी संसारी 'लड़का-लड़का' की ही रट लगाए रहता है।

परिच्छेद १८

गृहस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम

(१)

श्रीरामकृष्ण तथा गृहस्थाश्रम

आज आश्विन की शुक्ला चतुर्दशी है। सप्तमी, अष्टमी और नवमी ये तीन दिन श्रीजगन्माता की पूजा और उत्सव में कटे हैं। दशमी को विजया थी। उस समय पारस्परिक मिलने-जुलने का जो शुभ संयोग था, वह भी हो चुका। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ कलकत्ते के श्यामपुकुर नामक स्थान में रहते हैं। शरीर में कठिन व्याधि है। गले में कैन्सर हो गया है। जब वे बलराम के घर पर थे तब कविराज गंगाप्रसाद देखने के लिए आए थे। श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा था—'यह रोग साध्य है या असाध्य?' इसका कोई उत्तर कविराज ने नहीं दिया। चुप हो रहे थे। अंग्रेजी चिकित्सा के डाक्टरों ने भी रोग के असाध्य होने का इशारा किया था। इस समय डाक्टर सरकार चिकित्सा कर रहे हैं।

आज बृहस्पतिवार है, २२ अक्टूबर १८८५। श्यामपुकुर के एक दुमंज़ले मकान में श्रीरामकृष्ण का पलंग बिछाया गया है, उसी पर श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। डाक्टर सरकार, श्रीयुत ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय और भक्तगण सामने तथा चारों ओर बैठे हुए हैं। ईशान बड़े दानी हैं, पेन्शन लेकर भी दान किया करते हैं, ऋण करके दान करते हैं और सदा ईश्वर की चिन्ता में रहते हैं। पीड़ा का हाल सुनकर वे देखने के लिए आए हुए हैं। डाक्टर सरकार चिकित्सा के लिए आते हैं तो छः सात घंटे तक रहते हैं। श्रीरामकृष्ण पर उनकी बड़ी श्रद्धा है और भक्तों को तो वे अपने आत्मीयों

की तरह मानते हैं।

शाम के सात बजे का समय है। बाहर चाँदनी छिटकी हुई है। पूर्णांग निशानाथ चारों ओर सुधावृष्टि कर रहे हैं। भीतर दीपक का प्रकाश है। कमरे में बहुत से आदमी बैठे हुए हैं। बहुत से लोग श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन करने के लिए आए हैं। सब के सब एकदृष्टि से उनकी ओर देख रहे हैं। उनकी बातें सुनने के लिए लोगों की इच्छा प्रबल हो रही है। उनके कार्य देखने के लिए लोग उत्सुक हो रहे हैं। ईशान को देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—

"जो संसारी व्यक्ति ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति करके संसार का काम करता है, वह धन्य है, वह वीर है। जैसे किसी के सिर पर दो मन का बोझा रखा हुआ हो, और एक बरात जा रही हो। इधर तो सिर पर इतना बड़ा बोझा है, फिर भी वह खड़े होकर बरात को देखता है। इस प्रकार संसार में रहना बिना अधिक शक्ति के नहीं होता। जैसे पाँकाल मछली, रहती तो कीच के भीतर है, परन्तु देह में कीच छू नहीं जाता। 'पनडुब्बी' पानी में डुबकियाँ लगाया करती है, परन्तु एक ही वार परों को झाड़ने से फिर पानी नहीं रह जाता।

"परन्तु संसार में यदि निर्लिप्त भाव से रहना है तो कुछ साधना चाहिए। कुछ दिन निर्जन में रहना ज़रूरी है, एक वर्ष के लिए हो या छः महीने के लिए, अथवा तीन महीने के लिए या महीने ही भर के लिए। उसी एकान्त में ईश्वर की चिन्ता करनी चाहिए। और मन ही मन कहना चाहिए— 'इस संसार में मेरा कोई नहीं है, जिन्हें मैं अपना कहता हूँ, वे दो दिन के लिए हैं, भगवान ही मेरे अपने हैं, वे ही मेरे सर्वस्व हैं। हाय! किस तरह मैं उन्हें पाऊँ?'

"भक्तिलाभ के पश्चात् संसार में रहा जा सकता है। जैसे हाथ में तेल लगाकर कटहल काटने से फिर उसका दूध हाथ में नहीं चिपकता। संसार पानी की तरह है और मनुष्य का मन जैसे दूध। पानी में अगर दूध रखना चाहते हो तो दूध और पानी एक हो जाएगा; इसीलिए निर्जन स्थान में दही जमाना चाहिए। दही जमाकर मक्खन निकालना चाहिए। मक्खन निकालकर अगर पानी में रखो तो फिर वह पानी में नहीं मिलता, निर्लिप्त होकर तैरता रहता है।

"ब्राह्मसमाजवालों ने मुझसे कहा था, 'महाराज, हमारा वह मत है जो राजर्षि जनक का था। हम लोग उनकी तरह निर्लिप्त रहकर संसार करेंगे।' मैंने कहा, 'निर्लिप्त भाव से संसार करना बड़ा कठिन है। मुँह से कहने से ही जनक राजा नहीं हो सकते। राजर्षि जनक ने सिर नीचे और पैर ऊपर करके वर्षों तपस्या की थी। तुम्हें सिर नीचे और पैर ऊपर नहीं करना होगा। परन्तु साधना करनी चाहिए, निर्जन में वास करना चाहिए। निर्जन में ज्ञान और भक्ति प्राप्त करके फिर संसार कर सकते हो। दही एकान्त में जमाया जाता है। हिलाने-डुलाने से दही नहीं जमता।'

"जनक निर्लिप्त थे, इसलिए उनका एक नाम विदेह भी था— अर्थात् देह में बुद्धि नहीं रहती थी,— संसार में रहकर भी जीवन्मुक्त होकर घूमते थे। परन्तु देह-बुद्धि का नाश होना बहुत दूर की बात है। बड़ी साधना चाहिए।

"जनक बड़े वीर थे। वे दो तलवारें चलाते थे। एक ज्ञान की, दूसरी कर्म की।

श्रीरामकृष्ण तथा संन्यासाश्रम

"अगर पूछो, 'गृहस्थाश्रम के ज्ञानी और संन्यासाश्रम के ज्ञानी

में कोई अन्तर है या नहीं,' तो उसका उत्तर यह है कि दोनों वास्तव में एक ही हैं-- यह भी ज्ञानी है और वह भी ज्ञानी है; परन्तु इतना ही है कि संसार में गृहस्थ ज्ञानी के लिए एक भय रह जाता है। कामिनी और कांचन के भीतर रहने से ही कुछ न कुछ भय है। तुम चाहे जितने ही बुद्धिमान होओ, पर काजल की कोठरी में रहने से देह में स्याही का थोड़ा सा दाग लग ही जाएगा।

"मक्खन निकालकर अगर नई हण्डी में रखो तो मक्खन के नष्ट होने की संभावना नहीं रहती। अगर मट्ठे की हण्डी में रखो तो सन्देह होता है। (सब हँसे)

"धान के लावे जब भूने जाते हैं तब दो-चार भाड़ के बाहर चिकटकर गिर पड़ते हैं। वे चमेली के फूल की तरह शुभ्र होते हैं, देह में कहीं एक भी दाग नहीं रहता। जो लावे कड़ाही में रहते हैं, वे भी अच्छे होते हैं, परन्तु उन बाहरवालों के समान नहीं होते, देह में कुछ दाग होते हैं। संसार-त्यागी संन्यासी अगर ज्ञानलाभ करता है तो ठीक इसी चमेली के फूल की तरह बेदाग होता है; और ज्ञान के पश्चात् संसाररूपी कड़ाही में रहने पर देह में ऊपर से कुछ लाल दाग लग सकता है। (सब हँसते हैं)

"जनक राजा की सभा में एक भैरवी आई हुई थी। स्त्री देखकर जनक राजा ने सिर झुका लिया। यह देखकर भैरवी ने कहा, 'जनक! स्त्री को देखकर अब भी तुम डरते हो!' पूर्ण ज्ञान होने पर पाँच साल के बच्चे का स्वभाव हो जाता है, तब स्त्री और पुरुष में भेद-बुद्धि नहीं रह जाती।

"कुछ भी हो, संसार में रहनेवाले ज्ञानी की देह पर दाग चाहे लग जाय, परन्तु उससे उसकी कोई हानि नहीं होती। चाँद में कलंक तो है, परन्तु उससे किरणों के निकलने में कोई रुकावट

नहीं होती।

"कोई कोई लोग ज्ञानलाभ के पश्चात् लोक-शिक्षा के लिए कर्म करते हैं, जैसे जनक और नारद आदि। लोक-शिक्षा के लिए शक्ति के रहने की ज़रूरत है। ऋषिगण अपने-ही-अपने ज्ञानोपार्जन में व्यस्त रहते थे। नारदादि आचार्य दूसरों के हित के लिए विचरण किया करते थे। वे वीर पुरुष थे।

"सड़ी हुई लकड़ी जब बह जाती है, तो उस पर कोई चिड़िया के बैठने से ही वह डूब जाती है, परन्तु मोटी लकड़ी का लट्ठा जब बहता है, तब गौ, आदमी, यहाँ तक कि हाथी भी उसके ऊपर चढ़कर पार हो सकता है।

"स्टीम बोट खुद भी पार होता है और कितने ही आदमियों को भी पार कर देता है।

"नारदादि आचार्य काठ के लट्ठे की तरह हैं, स्टीम बोट की तरह।

"कोई खाकर अंगौछे से मुँह पोंछकर बैठा रहता है कि कहीं किसी को खबर न लग जाय। (सब हँसते हैं) और कोई कोई अगर एक आम पाते हैं तो ज़रा ज़रा सा सब को देते हैं और आप भी खाते हैं।

"नारदादि आचार्य सबके कल्याण के लिए ज्ञानलाभ के बाद भी भक्ति लेकर रहे थे।"

(२)

भक्तियोग तथा ज्ञानयोग

डाक्टर—ज्ञान होने पर मनुष्य अवाक् हो जाता है, आँखें मुँद जाती हैं और आँसू बह चलते हैं। तब भक्ति की आवश्यकता होती है।

श्रीरामकृष्ण—भक्ति स्त्री है। इसीलिए अन्तःपुर तक उसकी पैठ है। ज्ञान बहिर्द्वार तक ही जा सकता है। (सब हँसते हैं)

डाक्टर—परन्तु अन्तःपुर में हरएक स्त्री को घुसने नहीं दिया जाता, वेश्याएँ वहाँ नहीं जाने पातीं। ज्ञान चाहिए।

श्रीरामकृष्ण—यथार्थ मार्ग जो नहीं जानता, परन्तु ईश्वर पर जिसकी भक्ति है——उन्हें जानने की जिसे इच्छा है, वह भक्ति के बल पर ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। एक आदमी बड़ा भक्त था, वह जगन्नाथजी के दर्शन करने के लिए घर से निकला। पुरी का कोई रास्ता वह जानता नहीं था,——दक्षिण की ओर न जाकर वह पश्चिम की ओर चला गया। रास्ता भूल गया था सही, परन्तु व्याकुल होकर आदमियों से वह पूछा करता था। उन लोगों ने कह दिया, 'यह मार्ग नहीं है, उस मार्ग से जाओ।' अन्त में वह भक्त पुरी पहुँच ही गया और वहाँ उसने जगन्नाथजी के दर्शन भी किए। देखो, न जानने पर भी कोई-न-कोई मार्ग बतला ही देता है।

डाक्टर—वह भूल तो गया था।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, ऐसा हो जाता है ज़रूर, परन्तु अन्त में वह पाता भी है।

एक ने पूछा—ईश्वर साकार हैं या निराकार?

श्रीरामकृष्ण—वे साकार भी हैं और निराकार भी। एक संन्यासी जगन्नाथजी के दर्शन करने गया था। जगन्नाथजी के दर्शन करके उसे सन्देह हुआ कि ईश्वर साकार हैं या निराकार। हाथ में उसके दण्ड था, उसी दण्ड को वह जगन्नाथजी की देह में छुआने लगा, यह देखने के लिए कि दण्ड छू जाता है या नहीं। एक बार दण्ड के एक सिरे से छुआया तो दण्ड नहीं लगा, फिर

दूसरे सिरे से छुआया तो वह उनकी देह से लग गया। तब संन्यासी ने समझा कि ईश्वर साकार भी हैं और निराकार भी।

"परन्तु इसकी धारणा करना बड़ा कठिन है। जो निराकार हैं, वे फिर साकार कैसे हो सकते हैं? यह सन्देह मन में उठता है। और यदि वे साकार हों भी, तो ये अनेक रूप क्यों हैं?'

डाक्टर– उन्होंने नाना रूपों की सृष्टि की है, इसलिए वे साकार हैं। उन्होंने मन की सृष्टि की है, इसलिए वे निराकार हैं। वे सब कुछ हो सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर को प्राप्त किए बिना ये सब बातें समझ में नहीं आतीं। साधक को वे अनेक भावों में और अनेक रूपों में दर्शन देते हैं। एक के गमला भर रंग था। बहुतेरे उसके पास कपड़े रंगाने के लिए आया करते थे। वह आदमी पूछा करता था, 'तुम किस रंग से रंगाना चाहते हो?' किसी ने कहा, 'लाल रंग से।' बस, वह आदमी गमले में कपड़ा छोड़ देता था और निकालकर कहता था, 'यह लो, तुम्हारा कपड़ा लाल रंग से रंग गया।' कोई दूसरा कहता था, 'मेरा कपड़ा पीले रंग से रंग दो।' रंगरेज़ उसी समय उसका कपड़ा भी उसी गमले में डुबाकर कहता था, 'यह लो, तुम्हारा पीले रंग से रंग गया।' अगर कोई आसमानी रंग से रंगाना चाहता था, तो वह रंगरेज़ फिर उसी गमले में डुबाकर कहता, 'यह लो, तुम्हारा आसमानी रंग से रंग गया।' इसी तरह, जो जिस रंग से कपड़ा रंगाना चाहता था, उसका कपड़ा उसी रंग से और उसी गमले में डालकर वह रंग देता था। एक आदमी यह आश्चर्यजनक कार्य देख रहा था। रंगरेज़ ने उससे पूछा, 'क्यों जी, तुम्हारा कपड़ा किस रंग से रंगना होगा?' तब उस देखनेवाले ने कहा, 'भाई,

तुमने जो रंग इस गमले में डाल रखा है, वही रंग मुझे दो।' (सब हँसते हैं)

"एक आदमी जंगल गया था। उसने देखा, पेड़ पर एक बहुत सुन्दर जीव बैठा है। उसने एक आदमी से आकर कहा, 'भाई, अमुक पेड़ पर मैंने एक लाल रंग का जीव देखा है।' उस आदमी ने कहा, 'मैंने भी देखा है। पर वह लाल क्यों होने लगा? वह तो हरा है।' तीसरे ने कहा, 'नहीं जी, वह हरा नहीं, पीला है।' अन्त में लड़ाई ठन गई। तब उन लोगों ने पेड़ के नीचे जाकर देखा, वहाँ एक आदमी बैठा हुआ था। पूछने पर उसने कहा, 'मैं इसी पेड़ के नीचे रहता हूँ। उस जीव को मैं खूब पहचानता हूँ। तुम लोगों ने जो कुछ कहा सब ठीक है। वह कभी तो लाल होता है, कभी आसमानी, और भी न जाने क्या क्या होता है। फिर कभी देखता हूँ, उसमें कोई रंग नहीं।'

"जो आदमी सदा ही ईश्वर-चिन्तन करता है, वही समझ सकता है कि उनका स्वरूप क्या है। वही मनुष्य जानता है कि ईश्वर अनेक रूपों से दर्शन देते हैं। वे सगुण भीं हैं और निर्गुण भी। जो आदमी पेड़ के नीचे रहता है, वही जानता है कि उस बहुरुपिये के अनेक रंग हैं और कभी कोई रंग नहीं रहता। दूसरे आदमी तर्क-वितर्क करके केवल कष्ट ही उठाते हैं।

"वे साकार हैं और निराकार भी। यह किस प्रकार है, जानते हो? जैसे सच्चिदानन्द एक समुद्र हों, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं। भक्ति की हिम-शक्ति से उस समुद्र का पानी जगह जगह जमकर बर्फ बन गया हो,—मानो पानी बर्फ के आकार में बँधा हुआ हो; अर्थात् भक्त के पास वे कभी कभी साकार रूप में दर्शन देते हैं। ज्ञान-सूर्य के उगने पर वह बर्फ गलकर फिर पानी

हो जाता है !"

डाक्टर— सूर्य के उगने पर बर्फ गलकर पानी हो जाता है; और आप जानते हैं–– बाद में सूर्य की उष्णता से पानी निराकार बाष्प बन जाता है ?

श्रीरामकृष्ण - अर्थात् 'ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या' इस विचार के बाद समाधि के होने पर रूप आदि कुछ नहीं रह जाते। तब फिर ईश्वर के सम्बन्ध में किसी को यह नहीं मालूम होता कि वे व्यक्ति हैं अथवा अन्य कुछ। वे क्या हैं, यह मुख से नहीं कहा जा सकता। कहे भी कौन ? जो कहेंगे, वे ही नहीं रह गए! वे अपने 'मैं' को फिर खोजकर भी नहीं पाते! उनके लिए ब्रह्म निर्गुण है। तब केवल बोधरूप में ब्रह्म का बोध होता है। मन और बुद्धि के द्वारा कोई उसे पकड़ नहीं सकता।

"इसीलिए कहते हैं, भक्ति चन्द्र है और ज्ञान सूर्य। मैंने सुना है, बिलकुल उत्तर में और दक्षिण में समुद्र हैं। वहाँ इतनी ठंडक है कि पानी पर बर्फ की चट्टानें बन जाती हैं। जहाज़ नहीं चलते। वहाँ जाकर अटक जाते हैं।"

डाक्टर— भक्ति के मार्ग में आदमी अटक जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, ऐसा होता तो है, परन्तु इससे हानि नहीं होती। उस सच्चिदानन्द-सागर का पानी ही बर्फ के आकार में जमा हुआ है। यदि और भी विचार करना चाहो, यदि 'ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या' यह विचार करना चाहो तो इसमें भी कोई हानि नहीं है। ज्ञानसूर्य से वह बर्फ गल जाएगा, और वह गलकर भी उसी सच्चिदानन्द-सागर में रहेगा।

"ज्ञान-विचार के बाद समाधि के होने पर 'मैं' 'मेरा' यह कुछ नहीं रह जाता। परन्तु समाधि का होना बहुत मुश्किल है।

'मैं' किसी तरह जाना नहीं चाहता। और जाना नहीं चाहता, इसीलिए फिर-फिरकर इस संसार में उसे आना पड़ता है।

"गौ 'हम्बा' (हम-हम) करती है, इसीलिए उसे इतना दुःख मिलता है। बैल को दिन भर हल जोतना पड़ता है— गरमी हो या वर्षा। और फिर उसे कसाई काटते हैं। इतने पर भी बचाव नहीं होता, चमार चमड़े से जूते बनाते हैं। अन्त में आँत की ताँत बनती है। धुनिया के हाथ में जब वह 'तूँ तूँ' करती है, तब कहीं उसका निस्तार होता है।

"जब जीव कहता है, 'नाहं नाहं नाहं, हे ईश्वर, मैं कुछ भी नहीं हूँ, तुम्हीं कर्ता हो; मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो,' तब उसका निस्तार होता है, तभी उसकी मुक्ति होती है।"

डाक्टर– परन्तु धुनिये के हाथ में पड़े तब तो! (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– जब 'मैं' जाने का है ही नहीं, तो पड़ा रहे दास-'मैं' बना हुआ! (सब हँसते हैं)

"समाधि के बाद भी किसी किसी का 'मैं' रह जाता है— 'दास मैं', 'भक्त का मैं'। शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए 'विद्या का मैं' रख छोड़ा था। 'दास मैं, विद्या का मैं, भक्त का मैं' यह पक्का 'मैं' है।

"कच्चा 'मैं' क्या है, जानते हो? मैं कर्ता हूँ, मैं इतने बड़े आदमी का लड़का हूँ, विद्वान् हूँ, धनवान हूँ, मुझे ऐसी बात कही जाय! — ये सब कच्चे 'मैं' के भाव हैं। अगर कोई घर में चोरी करे और उसे अगर कोई पकड़ ले, तो पहले सब चीज़ें उससे छुड़ा लेता है, फिर मार-पीटकर उसे सीधा कर देता है, फिर पुलिस को सौंप देता है। कहता है, 'हँः, नहीं जानता किसके घर में चोरी की!'

"ईश्वर-प्राप्ति होने पर पाँच वर्ष के बच्चे जैसा स्वभाव हो जाता है। 'बालक का मैं' और 'पक्का मैं'। बालक किसी गुण के वश नहीं है। वह तीनों गुणों से परे है। सत्व, रज और तम में से किसी गुण के वश नहीं। देखो, बच्चा तमोगुण के वश में नहीं है। अभी तो उसने लड़ाई की और देखते ही देखते फिर गले से लिपट गया। कितना प्रेम और कितना खेल! वह रजोगुण के भी वश में नहीं है। अभी उसने घरोंदा बनाया, कितनी मेहनत की, पर कुछ देर में सब पड़ा रह गया! वह माता के पास दौड़ चला। कभी देखो तो एक सुन्दर धोती पहने हुए घूम रहा है, पर कुछ देर बाद देखो तो वह कपड़ा खुलकर गिर गया है। कभी देखो, वह कपड़े की बात ही बिलकुल भूल गया है या उसे बगल में ही दबाए घूम रहा है। (हास्य)

"अगर बच्चे से कहो, 'यह बड़ी अच्छी धोती है, यह किसकी धोती है?' तो वह कहेगा, 'यह मेरी धोती है—मेरे बाबूजी ले आए हैं।' अगर कहो, 'वाह, बच्चू, तू बड़ा अच्छा है, बच्चू, मुझे यह धोती दे दे' तो वह कहेगा—'नहीं, मेरी धोती है, मेरे बाबूजी की दी हुई है। उँहूँ, मैं न दूँगा।' फिर उसे एक खिलौने पर या एक बाजे पर फुसला लो—वह पाँच रुपए की धोती तुम्हें देकर चला जाएगा। पाँच वर्ष का बच्चा सत्त्वगुण के भी वश में नहीं है, पड़ोस के बच्चों से कितना प्यार है, बिना देखे रहा नहीं जाता, परन्तु माँ-बाप के साथ अगर किसी दूसरी जगह चला गया तो वहाँ नये साथी मिल जाते हैं, उन्हीं पर सब प्यार हो जाता है, पुराने साथियों को एक प्रकार से एकदम भूल जाता है। बच्चे को फिर जाति आदि का अभिमान भी नहीं होता। माता ने कह दिया है कि वह तेरा दादा है, बस उसे पूरा विश्वास

हो गया कि यह मेरा दादा है। चाहे एक ब्राह्मण का लड़का हो और दूसरा कुम्हार का, दोनों एक ही पत्तल पर खा सकते हैं। बच्चे में शुचिता और अशुचिता का भी विचार नहीं है, न लोक-लज्जा ही है।

"और 'वृद्ध का मैं' भी है। (डाक्टर हँसते हैं) वृद्ध के बहुत से पाश हैं,— जाति, अभिमान, लज्जा, घृणा, भय, विषय-बुद्धि, पटवारी-बुद्धि, कपटाचरण। अगर किसी से वह नाराज़ हो जाता है तो सहज ही उसका रंज नहीं मिटता। सम्भव है, जीवन भर के लिए वह कसकता रहे। तिस पर पाण्डित्य का अहंकार और धन का अहंकार भी है। 'वृद्ध का मैं' कच्चा 'मैं' है।

(डाक्टर से) "चार-पाँच आदमी ऐसे हैं जिन्हें ज्ञान नहीं होता। जिसे विद्या का अहंकार है, जिसे धन का अहंकार है, पाण्डित्य का अहंकार है, उसे ज्ञान नहीं होता। इस तरह के आदमियों से अगर कहा जाय, 'वहाँ एक बहुत अच्छे महात्मा आए हैं, दर्शन करने चलोगे?'— तो कितने ही बहाने करके कहता है, 'नः, मैं न जाऊँगा।' और मन ही मन कहता है, 'मैं इतना बड़ा आदमी हूँ, मैं क्यों जाऊँ?'

सत्वगुण से ईश्वर-लाभ। इन्द्रियसंयम के उपाय

"तमोगुण का स्वभाव अहंकार है। अहंकार, अज्ञान, यह सब तमोगुण से होता है।

"पुराणों में है, रावण में रजोगुण था, कुंभकर्ण में तमोगुण और विभीषण में सतोगुण। इसीलिए विभीषण श्रीरामचन्द्रजी को पा सके थे। तमोगुण का एक और लक्षण है क्रोध। क्रोध में उचित और अनुचित का ज्ञान नहीं रहता। हनुमान ने लंका जला

दी, परन्तु यह ज्ञान नहीं था कि इससे सीताजी की कुटी भी जल जाएगी।

"तमोगुण का एक लक्षण और है, काम। पथरियाघट्टे के गिरीन्द्र घोष ने कहा था, 'काम, क्रोध आदि रिपु जब कि नहीं हटने के, तो इनका मोड़ फेर दो।' ईश्वर की कामना करो। सच्चिदानन्द के साथ रमण करो। क्रोध अगर न जाता हो तो भक्ति का तम धारण करो। 'क्या! मैंने उनका नाम लिया और मेरा उद्धार न होगा? मुझे फिर पाप कैसा?— बन्धन कैसा?' ईश्वर की प्राप्ति के लिए लोभ करो। ईश्वर के रूप पर मुग्ध हो जाओ। अगर अहंकार करना है तो इस तरह का अहंकार करो, 'मैं ईश्वर का दास हूँ, मैं ईश्वर का पुत्र हूँ।' इस तरह छहों रिपुओं का मोड़ फेर दिया जाता है।"

डाक्टर– इन्द्रियों का संयम करना बड़ा कठिन है। घोड़े की आँख के दोनों बगल आड़ लगाई जाती है, किसी किसी घोड़े की आँखें बिलकुल बन्द कर दी जाती हैं।

श्रीरामकृष्ण– अगर एक बार भी उनकी कृपा हो जाय, एक बार भी अगर ईश्वर के दर्शन मिल जायँ, आत्मा का साक्षात्कार हो जाय, तो फिर कोई भय नहीं रह जाता। छहों रिपु फिर कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

"नारद और प्रह्लाद जैसे नित्यसिद्ध महापुरुषों को उस तरह दोनों ओर से आँखों में आड़ लगाने की आवश्यकता नहीं थी। जो लड़का स्वयं ही बाप का हाथ पकड़कर खेत की मेड़ पर से चल रहा है, वह, सम्भव है, असावधानी के कारण पिता का हाथ छोड़कर गड्ढे में गिर पड़े, परन्तु पिता जिस लड़के का हाथ पकड़ता है, वह कभी गड्ढे में नहीं गिरता।"

डाक्टर– परन्तु बच्चे का हाथ बाप पकड़े यह अच्छा नहीं मालूम होता।

श्रीरामकृष्ण– बात ऐसी नहीं। महापुरुषों का स्वभाव बालकों जैसा होता है। ईश्वर के पास वे सदा ही बालक हैं, उनमें अहंकार नहीं है। उनकी सब शक्ति ईश्वर की शक्ति है, पिता की शक्ति है, अपनी स्वयं की शक्ति कुछ भी नहीं। यही उनका दृढ़ विश्वास है।

डाक्टर– घोड़े के दोनों ओर आँखों में आड़ लगाए बिना क्या घोड़ा कभी बढ़ना चाहता है? रिपुओं को वशीभूत किए बिना क्या ईश्वर कभी मिल सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण– तुम जो कुछ कहते हो, उसे विचार-मार्ग कहते हैं—ज्ञानयोग। उस रास्ते से भी ईश्वर मिलते हैं। ज्ञानी कहते हैं, पहले चित्त की शुद्धि आवश्यक है। पहले साधना चाहिए तब ज्ञान होता है।

"भक्तिमार्ग से भी वे मिलते हैं। यदि ईश्वर के पादपद्मों में एक बार भक्ति हो, यदि उनका नाम लेने में जी लगे तो फिर प्रयत्न करके इन्द्रियों का संयम नहीं करना पड़ता। रिपु आप ही आप वशीभूत हो जाते हैं।

"यदि किसी को पुत्र का शोक हो, तो क्या उस दिन वह किसी से लड़ाई कर सकता है?—या न्योते में खाने के लिए जा सकता है? वह क्या लोगों के सामने अहंकार कर सकता है या सुख-संभोग कर सकता है?

"कीड़े अगर एक बार उजाला देख लें तो क्या फिर वे कभी अंधेरे में रह सकते हैं?"

डाक्टर– (सहास्य)– चाहे जल जायँ, फिर भी उजाला

नहीं छोड़ेंगे !

श्रीरामकृष्ण– नहीं जी, भक्त कीड़े की तरह जलकर नहीं मरते। भक्त जिस उजाले को देखकर उसके पीछे दौड़ते हैं, वह मणि का उजाला है। मणि का उजाला बहुत उज्ज्वल तो है, परन्तु स्निग्ध और शीतल है। इस उजाले से देह नहीं जलती। इससे शान्ति और आनन्द होता है।

"विचार-मार्ग से–– ज्ञानयोग के मार्ग से भी वे मिलते हैं; परन्तु यह पथ बड़ा कठिन है। मैं न शरीर हूँ, न मन, न बुद्धि; मन में न रोग है, न शोक, न अशान्ति; मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, मैं सुख और दुःख से परे हूँ, मैं इन्द्रियों के वश में नहीं हूँ–– इस तरह की बातें मुख से कहना बहुत सीधा है, परन्तु कार्य में इन्हें परिणत करना या इनकी धारणा करना बहुत कठिन है। काँटे से हाथ छिदा जा रहा है, धर धर खून गिर रहा है, परन्तु फिर भी यह कहे जा रहा है कि 'कहाँ हाथ में काँटा चुभा ? मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ।' ये सब बातें शोभा नहीं देतीं। पहले उस काँटे को ज्ञानाग्नि में जलाना होगा, नहीं ?

"बहुतेरे यह सोचते हैं कि बिना पुस्तकें पढ़े ज्ञान नहीं होता, विद्या नहीं होती; परन्तु पढ़ने की अपेक्षा सुनना अधिक अच्छा है और सुनने की अपेक्षा देखना अच्छा है। वाराणसी के सम्बन्ध में पढ़ने या सुनने तथा दर्शन करने में बड़ा अन्तर है।

"जो लोग खुद शतरंज खेलते हैं, वे खुद चाल उतनी नहीं समझते, परन्तु जो लोग खेलते नहीं और तटस्थ रहकर चाल बतला देते हैं, उनकी चाल खेलनेवालों की चाल से बहुत अंशों में ठीक होती है। संसारी लोग सोचते हैं, हम बड़े बुद्धिमान हैं, परन्तु वे विषयासक्त हैं, वे खुद खेल रहे हैं। अपनी चाल स्वयं

नहीं समझ सकते; परन्तु संसार-त्यागी साधु-महात्मा विषयों से अनासक्त हैं, वे संसारियों से बुद्धिमान हैं। खुद नहीं खेलते, इसीलिए चाल अच्छी बतला सकते हैं।"

डाक्टर– (भक्तों से)– पुस्तक पढ़ने से इनको (श्रीरामकृष्ण को) इतना ज्ञान न होता। फैरडे (एक वैज्ञानिक) खुद प्रकृति का दर्शन किया करता था, इसीलिए वह इस तरह के वैज्ञानिक सत्यों का आविष्कार कर सका। किताबी ज्ञान के होने पर इतना न हो सकता था। गणित के नियम मस्तिष्क को उलझन में डाल देते हैं, मौलिक आविष्कार के रास्ते में वे विघ्न ला खड़ा कर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– जब पंचवटी में जमीन पर लोटता हुआ मैं माँ को पुकारा करता था तब मैंने माँ से कहा था, 'माँ, मुझे वह सब दिखा दो जो कर्मियों ने कर्म के द्वारा पाया है, योगियों ने योग के द्वारा और ज्ञानियों ने ज्ञान के द्वारा।' और भी बहुत सी बातें हैं, उनके सम्बन्ध में अब क्या कहूँ ?

"अहा ! कैसी अवस्था बीत गई है। नींद बिलकुल चली गई थी !" यह कहकर श्रीरामकृष्णदेव गाने लगे–– 'नींद टूट गई है, अब मैं कैसे सो सकता हूँ ? योग और याग में जाग रहा हूँ . . . . . ।'

"मैंने तो पुस्तक एक भी नहीं पढ़ी, परन्तु देखो, माता का नाम लेता हूँ, इसलिए सब लोग मुझे मानते हैं। शम्भू मल्लिक ने मुझसे कहा था, 'न ढाल है, न तलवार, और शान्तिराम सिंह बने हैं !'" (सब हँसते हैं)

श्रीयुत गिरीश घोष के बुद्धदेव-चरित के अभिनय की चर्चा होने लगी। उन्होंने डाक्टर को निमंत्रण देकर वह अभिनय

दिखलाया था। डाक्टर को अभिनय देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

डाक्टर– (गिरीश से)– तुम बड़े बुरे आदमी हो, अब मुझे रोज़ थिएटर देखने के लिए जाना होगा !

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– क्या कहता है ? मैं नहीं समझा।

मास्टर– थिएटर उन्हें बहुत अच्छा लगा है।

(३)

अवतार तथा जीव

श्रीरामकृष्ण– (ईशान के प्रति)– तुम कुछ कहो; यह (डाक्टर) अवतार नहीं मान रहा है।

ईशान– जी, अब क्या विचार करूँ ? विचार अब नहीं सुहाता।

श्रीरामकृष्ण– (विरक्ति से)– क्यों ? यथार्थ बात भी नहीं कहोगे ?

ईशान– (डाक्टर से)– अहंकार के कारण हम लोगों में विश्वास कम है। काकभुषुण्डि ने श्रीरामचन्द्रजी को पहले अवतार नहीं माना था। अन्त में जब चन्द्रलोक, देवलोक और कैलाश में उसने भ्रमण करके देखा कि राम के हाथ से उसका किसी प्रकार निस्तार ही नहीं हो रहा है, तब खुद वह राम की शरण में आया। राम उसे पकड़कर निगल गए। भुषुण्डि ने तब देखा कि वह अपने पेड़ पर ही बैठा हुआ है ! उसका अहंकार जब चूर्ण हो गया तब उसने समझा कि राम देखने में तो मनुष्य की तरह हैं, परन्तु ब्रह्माण्ड उनके उदर में समाया हुआ है। उन्हीं के पेट में आकाश, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, समुद्र, पर्वत, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि हैं।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– इतना समझना ही मुश्किल है

कि वे ही स्वराट हैं और वे ही विराट हैं। जिनकी नित्यता है, उन्हीं की लीला भी है। 'वे आदमी नहीं हो सकते' यह बात क्या हम अपनी क्षुद्र बुद्धि द्वारा कह सकते हैं? हमारी क्षुद्र बुद्धि में क्या इन सब बातों की धारणा हो सकती है? एक सेर भर के लोटे में क्या चार सेर दूध समा सकता है?

"इसीलिए जिन साधु और महात्माओं ने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है उनकी बात पर विश्वास करना चाहिए। साधु-महात्मा ईश्वर की ही चिन्ता लेकर रहते हैं, जैसे वकील मुकदमे की चिन्ता लेकर। क्या काकभुषुण्डि की बात पर तुम्हें विश्वास होता है?"

डाक्टर– जितना अच्छा है, उतने पर मैंने विश्वास कर लिया। पकड़ में आ जाने से ही हुआ, फिर कोई शिकायत नहीं रहती; परन्तु राम को कैसे हम अवतार मानें? पहले बालि का वध देखो। छिपकर चोर की तरह तीर चलाकर उसे मारा। यह तो मनुष्य का काम है, ईश्वर का कैसे कहा जाय?

गिरीश घोष– महाशय, यह काम ईश्वर ही कर सकते हैं।

डाक्टर– फिर देखो, सीता का परित्याग।

गिरीश घोष– महाशय, यह काम भी ईश्वर ही कर सकते हैं, आदमी नहीं।

ईशान– (डाक्टर से)–आप अवतार क्यों नहीं मानते? अभी तो आपने कहा, जिन्होंने नाना रूपों की सृष्टि की है वे साकार हैं, जिन्होंने मन की सृष्टि की है वे निराकार हैं। अभी अभी तो आपने कहा, ईश्वर के लिए सब कुछ सम्भव है।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– ईश्वर अवतार ले सकते हैं, यह बात इनके Science (विज्ञान) में नहीं जो है, फिर भला कैसे

विश्वास हो ? (सब हँसते हैं)

"एक कहानी सुनो। किसी ने आकर कहा, 'अरे, उस टोले में मैं देखकर आ रहा हूँ——अमुक का घर धँसकर बैठ गया है!' जिससे उसने यह बात कही, वह अंग्रेजी पढ़ा हुआ था। उसने कहा, 'ठहरो, जरा अखबार देख लूँ।' अखबार उलटकर उसने देखा, वहाँ कहीं कुछ न था। तब उसने कहा, 'चलो जी, तुम्हारी बात का हमें विश्वास नहीं। कहाँ, घर के धँसकर बैठ जाने की बात अखबार में तो नहीं लिखी है ? यह सब झूठ खबर है!'" (सब हँसे)

गिरीश– (डाक्टर से)–आपको कृष्ण को तो अवतार मानना ही होगा। आपको मैं उन्हें आदमी नहीं मानने दूँगा। कहिए, Demon or God (शैतान हैं या ईश्वर)?

श्रीरामकृष्ण– सरल हुए बिना जल्दी किसी को ईश्वर पर विश्वास नहीं होता, विषय-बुद्धि से ईश्वर बहुत दूर हैं। विषय-बुद्धि के रहते अनेक प्रकार के संशय आकर उपस्थित हो जाते हैं। और अनेक तरह के अहंकार आ जाते हैं, पाण्डित्य का अहंकार, धन का अहंकार, आदि आदि। परन्तु ये (डाक्टर) सरल हैं।

गिरीश– (डाक्टर से)– महाशय, आप क्या कहते हैं ? टेढ़ों को क्या कभी ज्ञान हो सकता है ?

डाक्टर– राम कहो, ऐसा भी कभी हो सकता है ?

श्रीरामकृष्ण– केशव सेन कितना सरल था ! एक दिन वहाँ (दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर) गया था। अतिथिशाला देखकर दिन के चार बजे उसने पूछा, 'क्यों जी, अतिथि और कंगालों को कब भोजन दिया जाएगा ?' विश्वास जितना बढ़ेगा, ज्ञान भी उतना ही बढ़ता जाएगा। जो गौ चुन-चुनकर घास चरती है उसकी दूध

की धार खूब नहीं फूटती, और जो गौ लता-पत्ता, घास-फूस, चोकर-भूसा आदि सब कुछ पेट में भर लेती है, उसकी धार नहीं टूटती-- घर्र-घर्र खूब दूध देती है ! (सब हँसते हैं)

"बालक की तरह जब तक विश्वास नहीं होता, तब तक ईश्वर नहीं मिलते । माता ने कह दिया है-- वह तेरा दादा है, बस बालक को सोलहों आने विश्वास हो गया कि वह मेरा दादा है। माता ने कह दिया-- उस कमरे में 'हौआ' रहता है, बालक सोलहों आने विश्वास करता है कि सचमुच उस कमरे में 'हौआ' रहता है । इस तरह बालक-जैसा विश्वास देखकर ही ईश्वर को दया उत्पन्न होती है । संसार-बुद्धि से वे नहीं मिलते ।"

डाक्टर- (भक्तों से)- जो कुछ सामने आया वही खाकर गौ का दूध बनना अच्छी बात नहीं । मेरे एक गौ थी, उसके आगे इसी तरह सब कुछ डाल दिया जाता था। अन्त में मैं सख्त बीमार हो गया । तब सोचा कि इसका कारण क्या है । बड़ी ढूँढ़-तलाश के बाद पता चला कि गौ कितनी ही ऐसी-वैसी चीज़ें खा गई थी । तब बड़ी आफ़त हुई, मुझे लखनऊ जाना पड़ा । अन्त तक बारह हजार रुपयों पर पानी फिर गया ! (सब लोग बड़े ज़ोर से हँसे)

"किससे क्या हो जाता है, कुछ कहा नहीं जाता। पाकापाड़ा के बाबुओं के यहाँ सात साल की एक लड़की बीमार पड़ी । उसे कूकर-खाँसी आती थी । मैं देखने के लिए गया। बीमारी के कारण का पता मुझे किसी तरह नहीं मिल रहा था । अन्त में पता चला, वह गधी भीग गई थी जिसका दूध वह लड़की पीती थी !" (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण- कहते क्या हो? इमली के पेड़ के नीचे से मेरी

गाड़ी निकल गई थी, इससे मेरा हाजमा विगड़ गया था ! (सब हँसे)

डाक्टर– (हँसते हँसते)– जहाज़ के कप्तान को बड़े ज़ोर से सिर-दर्द हो रहा था। तव डाक्टरों ने सलाह करके जहाज़ को दवा (ब्लिस्टर) लगा दी। (सब हँसते हैं)

साधु-संग तथा त्याग

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– साधु-संग की सदैव आवश्यकता है। रोग लगा ही हुआ है। साधुओं के उपदेश के अनुसार काम करना चाहिए। केवल सुनने से क्या होगा ? दवा का सेवन करना होगा और भोजन का भी परहेज़ रखना होगा। उस समय पथ्य आवश्यक है।

डाक्टर– पथ्य से ही बीमारी अच्छी होती है।

श्रीरामकृष्ण– वैद्य तीन तरह के होते हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य नाड़ी देखकर, 'दवा खाते रहना' कहकर चला जाता है, वह अधम वैद्य है,–– रोगी ने दवा का सेवन किया या नहीं, इसकी खबर वह नहीं रखता। और जो वैद्य रोगी को दवा खाने के लिए बहुत तरह से समझाता है, मीठी बातों द्वारा कहता है–– 'अजी, दवा नहीं खाओगे तो भला अच्छे कैसे होगे ? भलेमानस, मैं खुद दवा पीसकर देता हूँ, लो खा जाओ' वह मध्यम वैद्य है। और जो वैद्य रोगी को किसी तरह दवा न खाते देखकर छाती पर घुटना रखकर ज़बरदस्ती दवा खिलाता है, वह उत्तम वैद्य है।

डाक्टर–दवा ऐसी भी होती है जिससे छाती पर घुटना रखने की ज़रूरत नहीं होती, जैसे होमियोपैथिक।

श्रीरामकृष्ण– उत्तम वैद्य अगर छाती पर घुटना रख भी दे

तो कोई भय की बात नहीं।

"वैद्य की तरह आचार्य भी तीन प्रकार के हैं। जो धर्मोपदेश देकर शिष्यों की फिर कोई खबर नहीं लेते, वे अधम आचार्य हैं। जो शिष्य के कल्याण के लिए बार बार उसे समझाते हैं, जिससे वह उपदेशों की धारणा कर सके, बहुत कुछ निवेदन और प्रार्थना करते हैं, प्यार दिखलाते हैं, वे मध्यम आचार्य हैं। और शिष्यों को किसी तरह अपनी बात न मानते हुए देखकर कोई कोई आचार्य ज़बरदस्ती उनसे काम लेते हैं, वे उत्तम श्रेणी के आचार्य हैं।

(डाक्टर से) "संन्यासी के लिए आवश्यक है कामिनी और कांचन का त्याग करना। संन्यासी को स्त्रियों का चित्र भी न देखना चाहिए। स्त्री कैसी है, जानते हो ?—— जैसा इमली का आचार। उसके याद ही से लार टपक पड़ती है। उसे सामने नहीं लाना पड़ता।

"परन्तु यह आप लोगों के लिए नहीं—— यह संन्यासियों के लिए है। आप लोग जहाँ तक हो सके, स्त्री के साथ अनासक्त होकर रहिए—— कभी कभी निर्जन में ईश्वर का ध्यान किया कीजिए। वहाँ वे (स्त्रियाँ) न रहें। ईश्वर पर विश्वास और भक्ति होने पर, बहुत कुछ अनासक्त होकर रह सकोगे। दो-एक बच्चे हो जाने पर स्त्री और पुरुष में भाई-बहन जैसा व्यवहार रहना चाहिए, और ईश्वर से प्रार्थना करते रहना चाहिए जिससे इन्द्रिय-सुख की ओर मन न जाय—— लड़के-बच्चे और न हों।"

गिरीश— (सहास्य, डाक्टर से)— आप तीन-चार घण्टे से यहाँ हैं, रोगियों की चिकित्सा के लिए न जाइएगा ?

डाक्टर— कहाँ रही डाक्टरी और कहाँ रहे रोगी! ऐसे परमहंस से पाला पड़ा है कि मेरा तो सर्वस्व ही स्वाहा

हुआ ! (सब हँसे)

श्रीरामकृष्ण– देखो, कर्मनाशा नाम की एक नदी है। उस नदी में डुबकी लगाना एक महा विपत्ति है। इससे कर्मों का नाश हो जाता है ! फिर वह मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। (डाक्टर आदि सब हँसते हैं)

डाक्टर– (मास्टर, गिरीश तथा दूसरे भक्तों से)– मित्रो, तुम मुझे अपने में से ही एक समझो–– यह बात मैं डाक्टर की हैसियत से नहीं कह रहा हूँ; परन्तु यदि तुम मुझे अपना समझो तो मैं तुम्हारा ही हूँ।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– एक है अहैतुकी भक्ति। यह अगर हो तो बहुत अच्छा है। यह अहैतुकी भक्ति प्रह्लाद में थी। उस तरह का भक्त कहता है, 'हे ईश्वर, मैं धन-मान, देह-सुख, यह कुछ नहीं चाहता। ऐसा करो कि तुम्हारे पादपद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति हो।'

डाक्टर– हाँ, कालीतले में लोगों को प्रणाम करते हुए मैंने देखा है; उनके भीतर कामना ही कामना रहती है–– कहीं मेरी नौकरी लगा दो, कहीं मेरा रोग अच्छा कर दो, यही सब।

(श्रीरामकृष्ण से) "आपको जो बीमारी है, इससे लोगों से बातचीत करना बन्द कर देना होगा। हाँ, जब मैं जाऊँ, तब मेरे साथ बातचीत अवश्य कीजिए !" (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– यह बीमारी अच्छी कर दो; उनका नाम-गुण-कीर्तन नहीं कर पाता हूँ।

डाक्टर– ध्यान करने ही से उद्देश्य पूरा होता है।

श्रीरामकृष्ण– यह कैसी बात? मैं एक ही ढर्रे पर क्यों चलूँ? मैं कभी पूजा करता हूँ, कभी जप, कभी ध्यान, कभी उनका नाम

लिया करता हूँ और कभी उनके गुण गा-गाकर नाचता हूँ।

डाक्टर– मैं भी एक ढर्रे का आदमी नहीं हूँ।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारा लड़का, अमृत, अवतार नहीं मानता। परन्तु इसमें कोई दोष नहीं। ईश्वर को निराकार मानकर अगर उनमें विश्वास रहे तो भी वे मिलते हैं। और साकार मानकर अगर उनमें विश्वास हो तो भी वे मिलते हैं। उनमें विश्वास का रहना और उनकी शरण में जाना ये दोनों बातें आवश्यक हैं। आदमी तो अज्ञानी है, उससे भूल हो जाती है। एक सेर भर के लोटे में क्या कभी चार सेर दूध समा सकता है? परन्तु चाहे जिस मार्ग में रहो, व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। वे अन्तर्यामी हैं––अन्तर की पुकार वे सुनेंगे ही। व्याकुल होकर चाहे साकार-वादी के मार्ग से जाओ, चाहे निराकारवादी के मार्ग से, उन्हें ही पाओगे।

"मिश्री की रोटी चाहे सीधी तरह से खाओ या टेढ़ी करके, मीठी ज़रूर लगेगी। तुम्हारा लड़का अमृत बड़ा अच्छा है।"

डाक्टर– वह आपका ही चेला है।

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– कोई साला मेरा चेला-वेला नहीं है। मैं खुद सब का चेला हूँ। सब ईश्वर के बच्चे हैं, ईश्वर के दास हैं–– मैं भी ईश्वर का बच्चा हूँ, ईश्वर का दास हूँ।

"चंदा मामा सब का मामा है।" (सब हँसते हैं)

परिच्छेद १९

श्रीरामकृष्ण तथा डा. सरकार

(१)

पूर्वकथा

श्रीरामकृष्ण चिकित्सा के लिए श्यामपुकुरवाले मकान में भक्तों के साथ रहते हैं। आज शरद पूर्णिमा है, शुक्रवार, २३ अक्टूबर १८८५। दिन के दस बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ बातचीत कर रहे हैं। मास्टर उनके पैरों में मोज़ा पहना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– मफलर को काटकर पैरों में न पहन लिया जाय ? वह खूब गरम है।

मास्टर हँस रहे हैं।

कल बृहस्पतिवार की रात को डाक्टर सरकार के साथ बहुत सी बातें हुई थीं। उनका वर्णन करते हुए श्रीरामकृष्ण हँसकर मास्टर से कह रहे हैं— 'कल कैसा मैंने तूँऊँ-तूँऊँ कहा !'

कल श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "त्रिताप की ज्वाला में जीव झुलस रहे हैं, फिर भी कहते हैं— 'हम बड़े मज़े में हैं।' हाथ में काँटा चुभ गया है, धर-धर खून बह रहा है, फिर भी कहते हैं, 'हमारे हाथ में कहीं कुछ नहीं हुआ।' ज्ञानाग्नि में इस काँटे को जलाना होगा।"

इन बातों को याद कर छोटे नरेन्द्र कह रहे हैं— "कल के टेढ़े काँटेवाले की बात बड़ी अच्छी थी। ज्ञानाग्नि में जला देना।"

श्रीरामकृष्ण– उन सब अवस्थाओं को मैं खुद भोग चुका हूँ।

"कुटीर के पीछे से जाते हुए जान पड़ा कि देह में मानो

होमाग्नि जल उठी !

"पद्मलोचन ने कहा था, 'सभा करके मैं तुम्हारी अवस्था का हाल लोगों से कहूँगा।' परन्तु इसके बाद उसकी मृत्य हो गई।"

ग्यारह बजे के लगभग श्रीरामकृष्ण का संवाद लेकर डाक्टर सरकार के यहाँ मणि गए। हाल सुनकर डाक्टर उन्हीं के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे और उनका हाल सुनने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगे।

डाक्टर– (सहास्य)– मैंने कल कैसा कहा, 'तूँऊँ-तूँऊँ' कहने के लिए धुनिये के हाथ में जाना पड़ता है!

मणि– जी हाँ, उस तरह के गुरु के हाथ में बिना पड़े अहंकार दूर नहीं होता।

"कल भक्तिवाली बात कैसी रही! भक्ति स्त्री है, वह अन्तः-पुर तक जा सकती है।"

डाक्टर– हाँ, वह बड़ी अच्छी बात है। परन्तु इसलिए कहीं ज्ञान थोड़े ही छोड़ दिया जा सकता है।

मणि– श्रीरामकृष्णदेव यह कहते भी तो नहीं हैं। वे ज्ञान और भक्ति दोनों लेते हैं,— साकार और निराकार। वे कहते हैं, 'भक्ति की शीतलता से जल का कुछ अंश बर्फ बना, फिर ज्ञानसूर्य के उगने पर वह बर्फ गल गया, अर्थात् भक्तियोग से साकार और ज्ञानयोग से निराकार।

"और आपने देखा है, ईश्वर को वे इतना समीप देखते हैं कि उनसे बातचीत भी करते हैं। छोटे बच्चे की तरह कहते हैं— 'माँ, दर्द बहुत होता है।'

"और उनका Observation (दर्शन) भी कितना अद्भुत है! म्यूज़ियम में उन्होंने लकड़ी तथा जानवरों को देखा था जो

फॉसिल (पत्थर) हो गए हैं। बस वहीं उन्हें साधु-संग की उपमा मिल गई। जिस तरह पानी और कीच के पास रहते हुए लकड़ी आदि पत्थर हो गए हैं, उसी तरह साधु के पास रहते हुए आदमी साधु बन जाता है।"

डाक्टर– ईशान बाबू कल अवतार-अवतार कर रहे थे। अवतार कौनसी बला है–– आदमी को ईश्वर कहना?

मणि– उन लोगों का जैसा विश्वास हो, इस पर तर्क-वितर्क क्यों?

डाक्टर– हाँ, क्या ज़रूरत?

मणि– और उस बात से कैसा हँसाया उन्होंने! ––एक आदमी ने देखा था कि मकान धँस गया है, परन्तु अख़बार में वह बात लिखी नहीं थी, अतएव उस पर विश्वास कैसे किया जाता!

डाक्टर चुप हैं; क्योंकि श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'तुम्हारे Science (विज्ञान) में अवतार की बात नहीं है, अतएव तुम्हारी दृष्टि से अवतार नहीं हो सकता!'

दोपहर का समय है। डाक्टर मणि को साथ लेकर गाड़ी पर बैठे। दूसरे रोगियों को देखकर अन्त में श्रीरामकृष्ण को देखने जाएँगे।

डाक्टर उस दिन गिरीश का निमंत्रण पाकर 'बुद्ध-लीला' अभिनय देखने गए थे। वे गाड़ी में बैठे हुए मणि से कह रहे हैं, 'बुद्ध को दया का अवतार कहना अच्छा था;–– विष्णु का अवतार क्यों कहा?'

डाक्टर ने मणि को हेदुए के चौराहे पर उतार दिया।

(२)

श्रीरामकृष्ण की परमहंस अवस्था

दिन के तीन बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण के पास दो-एक भक्त बैठे हुए हैं। बालक की तरह अधीर होकर श्रीरामकृष्ण बार बार पूछ रहे हैं, 'डाक्टर कब आएगा ? क्या बजा है ?' आज सन्ध्या के बाद डाक्टर आने वाले हैं। एकाएक श्रीरामष्क्रण की बालक-जैसी अवस्था हो गई,—तकिया गोद में लेकर वात्सल्य-रस से भरकर बच्चे को जैसे दूध पिला रहे हों। भावावेश में हैं, बालक की तरह हँस रहे हैं, और एक खास ढंग से धोती पहन रहे हैं।

मणि आदि आश्चर्य में आकर देख रहे हैं।

कुछ देर बाद भाव का उपशम हुआ। श्रीरामकृष्ण के भोजन का समय आ गया। उन्होंने थोड़ी सूजी की खीर खाई।

मणि को एकान्त में बहुत ही गुप्त बातें बतला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मणि से, एकान्त में)– अब तक भावावस्था में मैं क्या देख रहा था, जानते हो ?— सिऊड़ के रास्ते में तीन-चार कोस का एक मैदान है, वहाँ मैं अकेला हूँ। वड़ के नीचे मैंने जो १५-१६ साल के लड़के की तरह एक परमहंस देखा था, फिर ठीक उसी तरह देखा। चारों ओर आनन्द का कुहरा-सा छाया है— उसी के भीतर से १३-१४ साल का एक लड़का निकला, केवल उसका मुँह दीख पड़ता था। पूर्ण की तरह का था। हम दोनों ही दिगंबर !— फिर आनन्दपूर्वक मैदान में दोनों ही दौड़ने और खेलने लगे। दौड़ने से पूर्ण को प्यास लगी। एक पात्र में उसने पानी पिया, पानी पीकर मुझे देने के लिए आया। मैंने कहा, 'भाई, तेरा जूठा पानी तो मैं न पी सकूँगा।' तब वह हँसते हुए गिलास धोकर मेरे लिए पानी ले आया।

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हैं। कुछ देर बाद प्राकृत अवस्था में आकर मणि के साथ बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अवस्था फिर बदल रही है। अब मैं प्रसाद नहीं ले सकता। सत्य और मिथ्या एक हुए जा रहे हैं! –– फिर क्या देखा, जानते हो? –– ईश्वरी रूप! भगवती मूर्ति! –– पेट के भीतर बच्चा है–– उसे निकालकर फिर निगल रही हैं! –– भीतर बच्चे का जितना अंश जा रहा है, उतना बिलकुल शून्य हुआ जा रहा है। मुझे दिखला रही थीं कि सब शून्य है।

"मानो कह रही हैं, देख, तू भानुमती का खेल देख!"

मणि श्रीरामकृष्ण की बात सोच रहे हैं, 'बाजीगर ही सत्य है और सब मिथ्या है।'

श्रीरामकृष्ण– उस समय पूर्ण पर मैंने आकर्षण का प्रयोग किया, परन्तु क्यों कुछ न हुआ? उससे विश्वास घटा जा रहा है।

मणि– ये तो सब सिद्धियाँ हैं।

श्रीरामकृष्ण– निरी सिद्धि!

मणि– उस दिन अधर सेन के यहाँ से गाड़ी पर हम लोग आपके साथ जब दक्षिणेश्वर जा रहे थे, तब बोतल फूट गई थी। एक ने कहा, 'आप बतलाइए, इससे क्या हानि होगी?' आपने कहा, 'मुझे क्या गरज़ जो यह सब बतलाऊँ? –– यह सब तो सिद्धि का काम है।'

श्रीरामकृष्ण– हाँ, लोग बीमार बच्चों को जमीन पर लिटा देते हैं और फिर कुछ लोग भगवान का नाम लेकर मंत्र जपने लगते हैं जिससे वह अच्छा हो जाय। इसी प्रकार लोग अन्य बीमारियाँ भी मंतर-जंतर से अच्छी कर देते हैं। ये सब विभूतियाँ हैं। जिनका स्थान बहुत ही निम्न है वे ही लोग रोग अच्छा

करने के लिए ईश्वर को पुकारते हैं।

(३)

श्रीमुखकथित चरितामृत

शाम हो गई। श्रीरामकृष्ण चारपाई पर बैठे हुए जगन्माता की चिन्ता करते हुए उनका नाम ले रहे हैं। कई भक्त चुपचाप उनके पास बैठे हुए हैं।

कुछ देर बाद डाक्टर सरकार आए। कमरे में लाटू, शशि, शरद, छोटे नरेन्द्र, पल्टू, भूपति, गिरीश आदि बहुत से भक्त बैठे हुए हैं। गिरीश के साथ थिएटर के श्रीयुत रामतारण भी आए हैं—ये गाना गाएँगे।

डाक्टर– (श्रीरामकृष्ण से)–कल रात तीन बजे तुम्हारे लिए मुझे बड़ी चिन्ता हुई थी। पानी बरसने लगा, तब मैंने सोचा, 'परमात्मा जाने, तुम्हारे कमरे की दरवाज़े-खिड़कियाँ खुली हैं या बन्द कर दी गई हैं।'

डाक्टर का स्नेह देखकर श्रीरामकृष्ण प्रसन्न हुए। कहा— "कहते क्या हो! जब तक देह है, तब तक उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

"परन्तु देख रहा हूँ, यह एक अलग बात है। कामिनी और कांचन से प्यार अगर बिलकुल दूर हो जाय, तो ठीक ठीक समझ में आ जाता है कि देह अलग है और आत्मा अलग। नारियल का सब पानी जब सूख जाता है तब खोपड़ा अलग और गोला अलग हो जाता है। तब नारियल को हिलाने से ही यह समझ में आ जाता है कि भीतर गोला खोपड़े से छूटकर खड़खड़ा रहा है,—जैसे म्यान और तलवार, म्यान अलग है और तलवार अलग।

"इसीलिए देह की बीमारी के लिए उनसे अधिक कुछ कहा

भी नहीं जाता ।"

गिरीश– (भक्तों के प्रति)– पण्डित शशधर ने इनसे कहा था, 'आप समाधि की अवस्था में शरीर की ओर मन को ले आया करें तो बीमारी अच्छी हो जाय।' और इन्हें भाव में ऐसा दिखा कि शरीर केवल हाड़-माँस का एक ढेर है ।

श्रीरामकृष्ण– बहुत दिन हुए, मुझे उस समय सख्त बीमारी थी । कालीमन्दिर में मैं बैठा हुआ था । माता के पास प्रार्थना करने की इच्छा हुई । पर ठीक ठीक खुद न कह सका । कहा, 'माँ, हृदय मुझसे कहता है कि मैं तुम्हारे पास अपनी बीमारी की बात कहूँ।' पर और अधिक मैं न कह सका। कहते ही कहते सोसाइटी (Asiatic Society's Museum) के अजायबघर की याद आ गई। वहाँ का तारों से बँधा हुआ मनुष्य का अस्थिपंजर आँखों के सामने आ गया । झट मैंने कहा, 'माँ, मैं केवल यही चाहता हूँ कि तुम्हारा नाम-गुण गाता रहूँ। इतने के लिए अस्थिपंजर को तारों से कसे भर रखना, उस अजायबघर के अस्थिपंजर की तरह ।'

"सिद्धि की प्रार्थना मुझसे होती ही नहीं । पहले-पहल हृदय ने कहा था–– मैं हृदय के 'अण्डर' (आधीन) था न–– 'माँ से कुछ विभूति माँगो।' मैं कालीमन्दिर में प्रार्थना करने के लिए गया । जाकर देखा एक अधेड़ विधवा, कोई ३०-३५ वर्ष की होगी, तमाम मल से सनी हुई है । तब मुझे यह स्पष्ट हुआ कि सिद्धियाँ इस मल के सदृश ही हैं। तब तो हृदय पर मुझे बड़ा क्रोध आया,–– क्यों उसने मुझसे कहा कि मैं सिद्धियों के लिए प्रार्थना करूँ?"

रामतारण का गाना हो रहा है । गिरीश घोष के 'बुद्धदेव'

नाटक का एक गीत वे गा रहे हैं।

(भावार्थ) " मेरी यह वीणा मुझे बड़ी प्रिय है। उसके तार बड़े यत्न से गूँथे हुए हैं। उस वीणा को जो यत्नपूर्वक रखना जानता है वही उसे बजाता है, और तब उससे अनवरत सुधा-धारा बह चलती है। ताल-मान के साथ उसके तारों को कसने पर माधुरी शत धाराओं से होकर प्रवाहित होने लगती है। तारों के ढीले रहने पर वह नहीं बजती, और अधिक खींचने से उसके कोमल तार टूट जाते हैं। "

डाक्टर–(गिरीश से)– क्या यह सब गान मौलिक है ?

गिरीश– नहीं, ये एड्विन आर्नल्ड के भाव हैं।

रामतारण गा रहे हैं, 'बुद्धदेव' नाटक का एक गीत :

" जुड़ाना चाहता हूँ, परन्तु कहाँ जुड़ाऊँ ? न जाने कहाँ से आकर कहाँ बहा जा रहा हूँ ! बार बार आता हूँ, न जाने कितना हँसता और कितना रोता हूँ ! सदा मुझे यही सोच लगा रहता है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।...ऐ जागनेवाले, मुझे भी जगा दो। हाय ! कब तक और यह स्वप्न चलता रहेगा ? क्या तुम सचमुच जाग रहे हो, यदि नहीं तो अब अधिक मत सोओ। ऐ सोनेवाले! नींद से उठो, और कहीं फिर मत सो जाना। यह घोर निबिड़ अन्धकार बड़ा दारुण है, बड़ा कष्टदायी है। इस अन्धकार का नाश करो, हे प्रकाश ! तुम्हारे बिना और कोई उपाय ही नहीं है-- तुम्हारे श्रीचरणों में मैं शरण चाहता हूँ ! "

यह गीत सुनते ही सुनते श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है।

गाना– " सन् सन् सन् चल री आँधी। "

गाने के समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, " यह क्या किया ? खीर खिलाकर फिर नीम की तरकारी ?

"इन्होंने ज्योंही गाया 'करो तमोनाश' त्योंही मैंने देखा सूर्य !— उदय होने के साथ ही चारों ओर का अंधकार दूर हो गया। और उसी के चरणों में सब लोग शरणागत होकर गिर रहे हैं !"

रामतारण फिर गा रहे हैं—

गाना—दीनतारिणी, दुरितवारिणी, सत्वरजस्तम त्रिगुणधारिणी, सृजनपालननिधनकारिणी, सगुणा निर्गुणा सर्वस्वरूपिणी.......।

गाना— मेरा धर्म और कर्म सब तो चला गया, परन्तु मेरी श्यामापूजा शायद पूरी नहीं हुई !......

यह गीत सुनकर श्रीरामकृष्ण फिर भावाविष्ट हो गए।

गवैये ने फिर गाया, "ओ माँ, तेरे चरणों में लाल जवा फूल किसने चढ़ाया है ? . . ."

(४)

संन्यासी तथा गृहस्थ के कर्तव्य

गाना समाप्त हो गया। भक्तों में बहुतों को भावावेश हो गया है। सब चुपचाप बैठे हैं। छोटे नरेन्द्र ध्यानमग्न हो काठ के पुतले की तरह बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण— (छोटे नरेन्द्र को दिखाकर, डाक्टर से)—यह बहुत ही शुद्ध है। इसमें विषय-बुद्धि छू भी नहीं गई।

डाक्टर नरेन्द्र को देख रहे हैं। अब भी उनका ध्यान नहीं छूटा।

मनोमोहन— (डाक्टर से हँसकर)—आपके बच्चे की बात पर ये (श्रीरामकृष्ण) कहते हैं, 'बच्चा अगर मिल जाय तो मुझे उसके बाप की चाह नहीं है।'

डाक्टर— यही तो ! इसीलिए तो कहता हूँ, तुम लोग बच्चे को लेकर भूल जाते हो ! (अर्थात् मनुष्य बच्चे को—अवतार

को---लेकर पिता को---ईश्वर को---भूल जाता है ।)

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)–मैं यह नहीं कहता कि मुझे बाप की कुछ भी चाह नहीं है ।

डाक्टर– यह मैं समझ गया, इस तरह दो-एक बातें बिना कहे काम कैसे चल सकेगा ?

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारा लड़का बड़ा सरल है । शम्भू ने मुँह लाल करके कहा था, 'सरल भाव से उन्हें पुकारने पर वे अवश्य ही सुनेंगे ।' मैं लड़कों को इतना प्यार क्यों करता हूँ, जानते हो ? वे सब निखालिस दूध हैं---थोड़ासा गरम कर लेने से ही श्री ठाकुरजी की सेवा में लगाया जा सकता है ।

" जिस दूध में पानी मिला रहता है, उसे बड़ी देर तक गरम करना पड़ता है, बहुत लकड़ी खर्च होती है ।

" बच्चे सब मानो नई हण्डियाँ हैं , पात्र अच्छा है, इसलिए निश्चिन्त होकर दूध रखा जा सकता है । उन्हें ज्ञानोपदेश देने पर बहुत शीघ्र चैतन्य होता है । विषयी आदमियों को शीघ्र होश नहीं होता । जिस हण्डी में दही जमाया जा चुका है, उसमें दूध रखते भय होता है कि कहीं दूध नष्ट न हो जाय ।

" तुम्हारे लड़के में अभी विषय-बुध्दि---कामिनी-कांचन का प्रवेश नहीं हुआ । "

डाक्टर– बाप की कमाई उड़ा रहे हैं न ! अपने को करना पड़ता तब मैं देखता कि ये अपने को सांसारिकता से कैसे अलग रख सकते थे ।

श्रीरामकृष्ण– यह ठीक है । परन्तु बात यह है कि विषय-बुद्धि से वे बहुत दूर हैं, नहीं तो वे मुट्ठी में ही हैं । (सरकार और डाक्टर दोकड़ी से) कामिनी और कांचन का त्याग आप लोगों के

लिए नहीं है। आप लोग मन ही मन त्याग करेंगे। गोस्वामियों से इसलिए मैंने कहा, 'तुम लोग त्याग की बात क्यों कर रहे हो?—— त्याग करने से तुम्हारा काम नहीं चल सकता —— श्यामसुन्दर की सेवा जो है।'

"त्याग संन्यासी के लिए है। उसके लिए स्त्रियों का चित्र भी देखना निषिद्ध है। स्त्री उसके लिए विष की तरह है। कम से कम दस हाथ की दूरी पर रहना चाहिए। अगर बिलकुल न निर्वाह हो तो एक हाथ का अंतर स्त्रियों से हमेशा रखना चाहिए। स्त्री चाहे लाख भक्त हो, परन्तु उससे अधिक बातचीत नहीं करनी चाहिए।

"यहाँ तक कि संन्यासी को ऐसी जगह रहना चाहिए जहाँ स्त्रियाँ बिलकुल नहीं या बहुत कम जाती हों।

"रुपया भी संन्यासी के लिए विषवत् है। रुपये के पास रहने से ही चिन्ताएँ, अहंकार, देह-सुख की चेष्टा, क्रोध आदि सब आ जाते हैं। रजोगुण की वृद्धि होती है। और रजोगुण के रहने से ही तमोगुण होता है। इसलिए संन्यासी कांचन का स्पर्श नहीं करते। कामिनी-कांचन ईश्वर को भुला देते हैं।

"तुम्हें यह समझना चाहिए कि रुपये से दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिए वस्त्र मिलता है, रहने की जगह मिलती है, श्री ठाकुरजी की सेवा होती है और साधुओं तथा भक्तों की सेवा होती है।

"धन-संचय की चेष्टा मिथ्या है। मधुमक्खी बड़े कष्ट से छत्ता तैयार करती है, और कोई दूसरा आकर उसे तोड़ ले जाता है।"

डाक्टर– लोग रुपये इकाट्ठा करते हैं। किसके लिए ?—— एक

बदमाश बच्चे के लिए।

श्रीरामकृष्ण– लड़का ही आवारा निकला या बीबी किसी दूसरे के साथ फँस गई –– शायद तुम्हारी ही घड़ी और चेन अपने यार को लगाने के लिए दे दे !

" परन्तु स्त्री का बिलकुल त्याग करना तुम्हारे लिए नहीं है। अपनी पत्नी से उपभोग करने में दोष नहीं है; परन्तु लड़के-बच्चे हो जाने पर भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।

" कामिनी और कांचन में आसक्ति के रहने पर विद्या का अहंकार, धन का अहंकार, उच्च पद का अहंकार –– यह सब होता है।"

(५)

अहंकार तथा विद्या का 'मैं'

श्रीरामकृष्ण– अहंकार के बिना गए ज्ञानलाभ नहीं होता। ऊँचे टीले पर पानी नहीं रुकता। नीची जमीन में ही चारों ओर का पानी सिमटकर भर जाता है।

डाक्टर– परन्तु नीची जमीन में जो चारों ओर का पानी आता है, उसके भीतर अच्छा पानी भी रहता है और दूषित भी। पहाड़ के ऊपर भी नीची जमीन है। नैनीताल, मानसरोवर ऐसे स्थान हैं जहाँ आकाश का ही शुद्ध पानी रहता है।

श्रीरामकृष्ण– आकाश का ही शुद्ध पानी ––यह बहुत अच्छा है!

डाक्टर– और ऊँची जगह का पानी चारों ओर काम में भी लाया जा सकता है।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य) –एक सिद्ध ने मंत्र पाया था। उसने पहाड़ पर खड़े होकर चिल्लाते हुए कह दिया –– 'तुम लोग इस मंत्र को जपकर ईश्वर-लाभ कर सकोगे।'

डाक्टर—हाँ ।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु एक बात है, जब ईश्वर के लिए प्राण विकल होते हैं, तब यह विचार नहीं रहता कि यह पानी अच्छा है और यह बुरा । तब उन्हें जानने के लिए कभी भले आदमी के पास जाया जाता है, कभी बुरे आदमी के पास । उनकी कृपा होने पर गंदले पानी से कोई नुकसान नहीं होता । जब वे ज्ञान देते हैं, तब यह सुझा देते हैं कि कौन अच्छा है और कौन बुरा ।

"पहाड़ के ऊपर नीची जमीन रह सकती है, परन्तु वैसी जमीन बदजात 'मैं' रूपी पहाड़ पर नहीं रहती । विद्या का 'मैं,' भक्त का 'मैं' यदि हो, तभी आकाश का शुद्ध पानी आकर जमता है ।

"ऊँची जगह का पानी चारों ओर काम में लगाया जा सकता है, यह ठीक है । परन्तु यह काम विद्या के 'मैं'-रूपी पहाड़ से ही सम्भव है ।

"उनके आदेश के बिना लोक-शिक्षा नहीं होती । शंकराचार्य ने ज्ञान के बाद विद्या का 'मैं' रखा था — लोक-शिक्षा के लिए । उन्हें प्राप्त किए बिना ही लेक्चर ! इससे आदमियों का क्या उपकार होगा ?

"मैं नन्दनबाग के ब्राह्मसमाज में गया था । उपासना आदि के बाद उनके प्रचारक ने एक वेदी पर बैठकर लेक्चर दिया । उन्होंने वह लेक्चर घर पर तैयार किया था । लेक्चर वे पढ़ते जाते थे और चारों ओर देखते भी जाते थे । ध्यान करते समय वे कभी-कभी आँखें खोलकर लोगों को देखते जाते थे !

"जिसने ईश्वर के दर्शन नहीं किए, उसका उपदेश असर नहीं करता । एक बात अगर ठीक हुई, तो दूसरी बेसिर-पैर की निकल

जाती है ।

"समाध्यायी ने लेक्चर दिया। कहा, 'ईश्वर वाणी और मन से परे हैं। उनमें कोई रस नहीं है—तुम लोग अपने प्रेम और भक्तिरस से उनकी अर्चना किया करो।' देखो, जो रसस्वरूप हैं, आनन्द-स्वरूप हैं, उनके लिए ऐसी बातें कही जा रही थीं। इस तरह के लेक्चर से क्या होगा? इसमें क्या कभी लोक-शिक्षा होती है? एक आदमी ने कहा था 'मेरे मामा के यहाँ गोशाले भर घोड़े हैं।' गोशाले में घोड़ा! (सब हँसते हैं) इससे समझना चाहिए कि घोड़ा-वोड़ा कहीं कुछ भी नहीं है!"

डाक्टर– (सहास्य)– गौएँ भी न होंगी! (सब हँसते हैं)

जिन भक्तों को भावावेश हो गया था, उनकी प्राकृत अवस्था हो गई है। भक्तों को देखकर डाक्टर आनन्द कर रहे हैं।

डाक्टर मास्टर से भक्तों का परिचय पूछ रहे हैं। पल्टू, छोटे नरेन्द्र, भूपति, शरद, शशि आदि लड़कों का, एक एक करके, मास्टर ने परिचय दिया।

श्रीयुत शशि के सम्बन्ध में मास्टर ने कहा, 'ये बी. ए. की परीक्षा देंगे।' डाक्टर कुछ अन्यमनस्क हो रहे थे।

श्रीरामकृष्ण–(डाक्टर से)– देखोजी, ये क्या कह रहे हैं।

डाक्टर ने शशि का परिचय सुना।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर को बताकर, डाक्टर से)– ये स्कूल के लड़कों को उपदेश देते हैं।

डाक्टर– यह मैंने सुना है।

श्रीरामकृष्ण– कितने आश्चर्य की बात है! मैं मूर्ख हूँ, फिर भी पढ़े-लिखे लोग यहाँ आते हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है! इससे तो मानना पड़ता है कि यह ईश्वर की लीला है।

आज शरद पूर्णिमा है। रात के नौ बजे का समय होगा। डाक्टर छः बजे से बैठे हुए ये सब बातें सुन रहे हैं।

गिरीश– (डाक्टर से)– अच्छा महाशय, आपको ऐसा कभी होता है कि यहाँ आने की इच्छा न होते हुए भी मानो कोई शक्ति खींचकर यहाँ ले आती हो? मुझे तो ऐसा होता है और इसीलिए आपसे भी पूछ रहा हूँ।

डाक्टर– पता नहीं, परन्तु हृदय की बात हृदय ही जानता है। (श्रीरामकृष्ण से) और बात यह है कि यह सब कहने में लाभ ही क्या है?

परिच्छेद २०

श्रीरामकृष्ण तथा डाक्टर सरकार

(१)

डा. सरकार तथा धर्मचर्चा

नरेन्द्र, महिमाचरण, मास्टर, डाक्टर सरकार आदि भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुर के दुमंज़ले पर कमरे में बैठे हुए हैं। दिन के एक बजे क़ा समय होगा। २४ अक्टूबर १८८५, कार्तिक नवमी।

श्रीरामकृष्ण—तुम्हारी यह (होमियोपैथिक) चिकित्सा अच्छी है।

डाक्टर—इसमें रोगी की अवस्था पुस्तक में लिखे चिह्नों के साथ मिलाई जाती है। जैसे अंग्रेजी बाजा बजाने की लिपि,—वह पढ़ी जाती है और साथ ही साथ गाई भी।

"गिरीश घोष कहाँ है?—परन्तु रहने दो। कल का जगा हुआ होगा।"

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, भाव की अवस्था में भंग जैसा नशा चढ़ता है, यह क्या है?

डाक्टर—(मास्टर से)—स्नायुओं के केंन्द्र हैं, उनकी क्रिया बन्द हो जाती है, इसीलिए सब जड़ हो जाता है—इधर पैर लड़खड़ाते रहते हैं। सब शक्ति मस्तिष्क की ओर जाती है। इसी स्नायविक क्रिया से जीवन है। गरदन के पास मेडूला आब्लाङ्गेटा (Medulla Oblongata) है, इसकी क्षति होने पर जीवन का दीपक बुझा हुआ जानो।

श्रीयुत महिमाचरण चक्रवर्ती सुषुम्ना नाड़ी के भीतर कुण्डलिनी शक्ति की बात कह रहे हैं—'मेरुदण्ड के भीतर सूक्ष्म

भाव से सुषुम्ना नाम की एक नाड़ी है — इसे कोई देख नहीं सकता। यह महादेवजी का वाक्य है।'

डाक्टर– शिव ने मनुष्य की परीक्षा उसकी पूर्ण अवस्था में की। परन्तु यूरोपियनों ने तो मनुष्य की जाँच गर्भावस्था से लेकर पूर्ण अवस्था तक सभी में की है। इसका तुलनात्मक इतिहास समझ लेना अच्छा है। भीलों का इतिहास पढ़कर पता चला है कि काली एक भीलनी थी, वह खूब लड़ी थी! (सब हँसते हैं)

"तुम लोग हँसो मत। तुलनात्मक जीवशरीरविद्या (Anatomy) से कितना उपकार हुआ है, सुनो। पहले पाचनशक्ति पैदा करनेवाले रस और पित्त का भेद समझ में नहीं आ रहा था। फिर क्लाड बरनार्ड ने खरगोश की यकृत आदि की परीक्षा करके देखा कि पित्त और उस रस की क्रिया में अन्तर है।

"इससे सिद्ध होता है कि छोटे छोटे प्राणियों की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए। केवल मनुष्य को देखने से काम न चलेगा।

"इसी तरह तुलनात्मक धर्म से भी बड़ा उपकार होता है।

"ये (श्रीरामकृष्णदेव) जो कुछ कहते हैं, हृदय पर उसका असर अधिक क्यों होता है? सब धर्म इनके देखे हुए हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वैष्णव, शाक्त सब धर्मों को इन्होंने स्वयं साधना करके देखा है। मधुमक्खी जब अनेक फूलों से मधु-संचय करती है तभी उसके छत्ते में अच्छा मधु तैयार होता है।"

मास्टर– (डाक्टर से)– इन्होंने (महिमाचरण ने) विज्ञान का अध्ययन खूब किया है।

डाक्टर– (हँसकर)– कौनसा विज्ञान? क्या मैक्समूलर का साइन्स ऑफ रिलिजन (धर्मविज्ञान)?

महिमा– (श्रीरामकृष्ण से)– आपकी बीमारी में डाक्टर क्या करेंगे ? जब मैंने सुना, आप बीमार हैं, तब सोचा, डाक्टरों का आप अहंकार बढ़ा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– ये बड़े अच्छे डाक्टर हैं, और बहुत बड़े विद्वान् भी हैं।

महिमा– जी हाँ, वे जहाज़ हैं और हम सब डोंगे हैं।

विनयपूर्वक डाक्टर हाथ जोड़ रहे हैं।

महिमा– परन्तु वहाँ (श्रीरामकृष्ण के पास) सब बराबर हैं।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गाना– तुम्हें ही मैंने अपने जीवन का ध्रुवतारा बनाया है. . .।

गाना– अहंकार में मत्त हो रहा हूँ, अपार वासनाएँ उठ रही हैं...।

गाना– तुम्हारी रचना अपार है, चमत्कारों से भरी हुई है. . .।

गाना– महान् सिंहासन पर बैठे हुए हे विश्वपिता, तुम अपने ही रचित छन्दों में विश्व के महान् गीत सुन रहे हो। मर्त्य की मृत्तिका बनकर, इस क्षुद्र कण्ठ को लेकर, तुम्हारे द्वार पर मैं भी आया हुआ हूँ . . .।

गाना– हे राजराजेश्वर, दर्शन दो ! मैं तुम्हारी करुणा का भिक्षुक हूँ, मेरी ओर कृपाकटाक्ष करो। तुम्हारे श्रीचरणों में मैं अपने इन प्राणों का उत्सर्ग कर रहा हूँ, परन्तु ये भी संसार के अनलकुण्ड में झुलसे हुए हैं . . .।

गाना– हरिरस-मदिरा पीकर, ऐ मेरे मन-मानस, मत्त हो जाओ। पृथ्वी पर लोटते हुए उनका नाम लो और रोओ . . .।

श्रीरामकृष्ण- और वह गाना–– "जो कुछ है सब तू ही है।"

डाक्टर– अहा !

गाना समाप्त हो गया। डाक्टर मुग्ध हो गए। कुछ देर बाद

डाक्टर बड़े भक्तिभाव से हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं— तो आज आज्ञा दीजिए, कल फिर आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– अभी कुछ देर और ठहरो। गिरीश घोष के पास ख़बर भेजी गई है।

(महिमा की ओर संकेत करके) "ये विद्वान् हैं, और ईश्वर के कीर्तन में नाचते भी हैं। इनमें अहंकार छू नहीं गया। ये कोन्नगर चले गए थे, इसलिए कि हम लोग वहाँ चले गए थे। स्वाधीन हैं, धनवान हैं, किसी की नौकरी नहीं करते। (नरेन्द्र को दिखलाकर) यह कैसा है?"

डाक्टर– जी, बहुत अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण– और ये—

डाक्टर– अहा!

महिमा– हिन्दुओं के दर्शन अगर न पढ़े गए तो मानो दर्शनों का पढ़ना ही अधूरा रह गया। सांख्य के चौबीस तत्वों को यूरोप न तो जानता है और न समझ ही सकता है।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– तुम कौन से तीन मार्गों की बात कहते हो?

महिमा– सत्पथ— ज्ञानमार्ग। चित्पथ— योगमार्ग, कर्म-मार्ग; इसमें चार आश्रमों की क्रिया, कर्तव्य आदि वर्णित हैं। तीसरा है आनन्दपथ— भक्ति और प्रेम का मार्ग। आपमें तीनों मार्ग हैं— आप तीनों मार्ग की ख़बर बतलाते हैं। (श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं।)

महिमा– मैं और क्या कहूँ? वक्ता जनक और श्रोता शुकदेव!

डाक्टर बिदा हो गए।

नित्यगोपाल तथा नरेन्द्र । 'जपात् सिद्धि ।'

सन्ध्या के बाद चन्द्रोदय हुआ है । आज शनिवार, शरद पूर्णिमा का दूसरा दिन है । श्रीरामकृष्ण खड़े हुए समाधिमग्न हैं । नित्यगोपाल भी उनके पास भक्तिभाव से खड़े हैं ।

श्रीरामकृष्ण बैठे। नित्यगोपाल पैर दबा रहे हैं। कालीपद, देवेन्द्र आदि भक्त पास ही बैठे हुए हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (देवेन्द्र आदि से)– मेरे मन में यह भासित हो रहा है कि नित्यगोपाल की ये अवस्थाएँ अब चली जाएंगी। उसका सब मन सिमटकर मुझमें आ जाएगा––जो मेरे भीतर हैं, उनमें ।

"नरेन्द्र को देखते हो न, उसका सब मन सिमटकर मुझ पर आ रहा है ।"

भक्तों में बहुतेरे बिदा हो रहे हैं। श्रीरामकृष्ण खड़े हुए एक भक्त को जप की बातें बतला रहे हैं– "जप करने का अर्थ है निर्जन में चुपचाप उनका नाम लेना। एकाग्र होकर उनका नाम-जप करते रहने से उनके रूप के भी दर्शन होते हैं और उनसे साक्षात्कार भी होता है। जंजीर से बँधी लकड़ी गंगा में जैसे डुबाई हुई हो और जंज़ीर का दूसरा छोर तट पर बंधा हुआ हो। जंजीर की एक एक कड़ी पकड़कर कुछ दूर बढ़कर, फिर पानी में डुबकी मारकर, उसी प्रकार और आगे बढ़ते हुए लोग लकड़ी को अवश्य ही छू सकते हैं। इसी तरह जप करते हुए मग्न हो जाने पर धीरे-धीरे ईश्वर के दर्शन होते हैं।"

कालीपद– (सहास्य, भक्तों से)– हमारे ये अच्छे ठाकुर हैं ! ––जप, ध्यान, तपस्या, कुछ करना ही नहीं पड़ता !

इसी समय श्रीरामकृष्ण ने एकाएक कहा– "यहाँ (गले में)

न जाने कैसा हो रहा है।"

श्रीरामकृष्ण के गले में दर्द हो रहा है। देवेन्द्र ने कहा, "हम इस तरह की बातों में नहीं आनेवाले।" देवेन्द्र का भाव यह है कि श्रीरामकृष्ण ने लोगों को धोखे में डालने के लिए रोग का आश्रय लिया है।

भक्तगण बिदा हो गए। रात में कुछ बालक-भक्त बारी बारी से जागकर श्रीरामकृष्ण की सेवा करेंगे। आज रात को मास्टर भी यहीं रहेंगे।

(२)

डाक्टर सरकार तथा मास्टर

आज रविवार है, कार्तिक, कृष्णद्वितीया, २५ अक्टूबर, १८८५। श्रीरामकृष्ण कलकत्ते के श्यामपुकुरवाले मकान में रहते हैं। गले में पीड़ा (Cancer) है, उसी की चिकित्सा हो रही है। आजकल डाक्टर सरकार देख रहे हैं।

डाक्टर को श्रीरामकृष्णदेव की अवस्था की ख़बर देने के लिए रोज़ मास्टर जाया करते हैं। आज सुबह साढ़े छः बजे के समय प्रणाम करके मास्टर ने पूछा– "आप कैसे हैं?" श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं– "डाक्टर से कहना, रात के पिछले भाग में मुँह कुल्ला भर पानी से भर जाता है, खाँसी है। पूछना, नहाऊँ या नहीं।"

सात बजे के बाद मास्टर डाक्टर सरकार से मिले और कुल हाल उनसे कहा। डाक्टर के वृद्ध शिक्षक तथा दो-एक मित्र वहाँ उपस्थित थे। डाक्टर ने वृद्ध शिक्षक से कहा, 'महाशय, रात तीन बजे से मुझे परमहंस की चिन्ता है, नींद नहीं आई, अब भी परमहंस की चिन्ता है।' (सब हँसते हैं)

डाक्टर के मित्र डाक्टर से कह रहे हैं, "महाशय, मैंने सुना है, कोई कोई उन्हें अवतार कहते हैं। आप तो रोज देखते हैं, आपको क्या जान पड़ता है?" डाक्टर ने कहा, "मनुष्य की दृष्टि से उनकी मैं अत्यन्त भक्ति करता हूँ।"

मास्टर– (डाक्टर के मित्र से)– डाक्टर महाशय बड़ी कृपा करके उनकी चिकित्सा कर रहे हैं।

डाक्टर– कृपा करके ?

मास्टर– हम लोगों पर आप कृपा करते हैं,श्रीरामकृष्णदेव पर मैं नहीं कह रहा।

डाक्टर– नहीं जी, ऐसा भी नहीं,तुम लोग नहीं जानते। वास्तव में मेरा नुकसान हो रहा है, दो-तीन Call (बुलावा) रोज ही रह जाते हैं––जा नहीं पाता। उसके दूसरे दिन रोगी के यहाँ खुद जाता हूँ और फीस (Fees) नहीं लेता,––खुद जाकर फीस लूँ भी कैसे ?

श्री महिमाचरण चक्रवर्ती की बात चली। शनिवार को जब डाक्टर परमहंस देव को देखने के लिए गए थे, तब चक्रवर्ती महाशय उपस्थित थे। डाक्टर को देखकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण से कहा था, 'महाराज, डाक्टर का अहंकार बढ़ाने के लिए आपने रोग की सृष्टि की है।'

मास्टर– (डाक्टर से)– महिमा चक्रवर्ती आपके यहाँ पहले आया करते थे। आप घर में डाक्टरी विज्ञान पर लेक्चर देते थे, वे सुनने के लिए आया करते थे।

डाक्टर– ऐसी बात? परन्तु उस मनुष्य में तमोगुण भी कितना है! देखा था तुमने ?––मैंने नमस्कार किया था जैसे वह तमोगुणी ईश्वर हो। और ईश्वर के भीतर तो तीनों गुण हैं। उसकी

उस बात पर तुमने ध्यान दिया था ?––'आपने डाक्टरों का अहंकार बढ़ाने के लिए रोग का आश्रय लिया है ।'

मास्टर– महिमा चक्रवर्ती को विश्वास है कि श्रीरामकृष्णदेव अगर खुद चाहें तो बीमारी अच्छी कर सकते हैं ।

डाक्टर– अजी, ऐंसा भी कभी होता है ?––आप ही आप बीमारी अच्छी कर लेना ? हम लोग डाक्टर हैं, हम लोग तो जानते हैं न, कि उस बीमारी के भीतर क्या क्या है ।

"हम ही जब इस तरह की बीमारी अच्छी नहीं कर सकते– तब वे तो कुछ जानते भी नहीं, वे किस तरह अच्छी करेंगे ? (मित्रों से) देखिए, रोग दुःसाध्य है, परन्तु इतना अवश्य है कि ये लोग उनकी सेवा भी खूब कर रहे हैं ।"

(३)

श्रीरामकृष्ण तथा मास्टर

डाक्टर से आने के लिए कहकर मास्टर लौटे । भोजन आदि करके दिन के तीन बजे वे श्रीरामकृष्ण से मिले और डाक्टर की कुल कथा कह सुनाई । कहा, 'डाक्टर ने आज बहुत सी बातें सुनाईं ।'

श्रीरामकृष्ण– क्यों, क्या कहा ?

मास्टर– महाराज, कल वे यहाँ सुन गए थे कि आपने यह रोग डाक्टर का अहंकार बढ़ाने के लिए स्वयं ही पैदा किया है ।

श्रीरामकृष्ण– किसने कहा था ?

मास्टर– महिमा चक्रवर्ती ने ।

श्रीरामकृष्ण– फिर ?

मास्टर– वह महिमा चक्रवर्ती को तमोगुणी ईश्वर कहने लगा। अब डाक्टर ने मान लिया है कि ईश्वर में सत्व, रज, तम तीनों

गुण हैं। (श्रीरामकृष्णदेव का हास्य) फिर मुझसे उन्होंने कहा, 'आज रात को तीन बजे मेरी नींद उचट गई और तभी से श्रीरामकृष्णदेव का चिन्तन कर रहा हूँ।' जब मैं उनसे मिला था तव आठ बजे थे, और उन्होंने कहा, 'अभी भी श्रीरामकृष्णदेव का मैं चिन्तन कर रहा हूँ।'

श्रीरामकृष्ण– देखो, तुम जानते हो, वह अंग्रेजी पढ़ा-लिखा है, उससे यह नहीं कहा जा सकता कि तुम मेरी चिन्ता करो। परन्तु अच्छा है, वह आप ही कर रहा है।

मास्टर– फिर उन्होंने कहा, 'मै उन्हें अवतार नहीं कहता, परन्तु मनुष्य समझकर उन पर मेरी सबसे अधिक भक्ति है।'

श्रीरामकृष्ण– कुछ और बात हुई है?

मास्टर– मैंने पूछा, 'आज बीमारी के लिए क्या बन्दोबस्त किया जाय?' डाक्टर ने कहा, 'बन्दोबस्त मेरा सर होगा! आज मुझे फिर जाना पड़ेगा––और क्या!' (श्रीरामकृष्ण का हँसना)

"उन्होंने इतना और कहा, 'तुम लोग नहीं जानते, मेरे कितने रुपयों पर पानी फिर जाता है। रोज दो-तीन जगह जाना नहीं हो पाता।'"

(४)

विजय आदि भक्तों के संग में

कुछ देर बाद श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन करने के लिए आए। साथ कई ब्राह्म भक्त भी हैं। विजयकृष्ण बहुत दिनों तक ढाके में थे। इधर पश्चिम के बहुत से तीर्थों में भ्रमण करके अभी थोड़े ही दिन हुए कलकत्ता आए हैं। आते ही उन्होंने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। बहुत से लोग उपस्थित हैं,— नरेन्द्र, महिमाचरण चक्रवर्ती,

नवगोपाल, भूपति, लाटू, मास्टर, छोटे नरेन्द्र आदि बहुत से भक्त।

महिमा चक्रवर्ती– (विजय से)– महाशय, आप तीर्थ कर आए, बहुत से देश देखकर आए, अब कहिए, आपने क्या क्या देखा।

विजय– क्या कहूँ ? मैं अनुभव कर रहा हूँ कि जहाँ अभी मैं बैठा हुआ हूँ, यहीं सब कुछ है। इधर-उधर भटकना व्यर्थ है। और जहाँ जहाँ मैं गया, कहीं इनका (श्रीरामकृष्ण का) एक आना, कहीं दो आने या चार आने अंश ही पाया, परन्तु पूरे सोलह आने तो केवल यहीं पा रहा हूँ।

महिमा– आप ठीक कहते हैं। फिर, ये ही चक्कर लगवाते हैं और ये ही बैठाते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– देख, विजय की कैसी अवस्था हो गई है ! लक्षण सब बदल गए हैं, मानो उबाला हुआ है। मैं परमहंस की गरदन और कपाल देखकर बतला सकता हूँ कि वह परमहंस है या नहीं।

महिमा– महाराज, क्या आपका भोजन घट गया है ?

विजय– हाँ, शायद घट गया है। (श्रीरामकृष्ण से) आपकी पीड़ा का हाल पाकर देखने के लिए आया हूँ। और फिर ढाके में–

श्रीरामकृष्ण– क्या ?

विजय ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर चुप हो रहे।

विजय– अगर अपने आप को वे (श्रीरामकृष्ण) खुद न पकड़वा दें तो पकड़ना मुश्किल है। यहीं सोलहों आना (प्रकाश) है।

श्रीरामकृष्ण– केदार ने कहा, 'दूसरी जगह खाने को नहीं मिलता, परन्तु यहाँ आते ही पेट भर जाता है।'

महिमा– पेट भरना ही नहीं–– इतना मिलता है कि पेट में

समाता नहीं—— बाहर गिर जाता है !

विजय—(हाथ जोड़कर, श्रीरामकृष्ण से)— आप कौन हैं, यह मैं समझ गया, अब कहना न होगा।

श्रीरामकृष्ण—(भावस्थ)— अगर ऐसा है तो यही सही।

विजय ने कहा, 'मैं समझा।' यह कहकर श्रीरामकृष्ण के पैर पर गिर पड़े और उनके चरणों को अपनी छाती से लगा लिया।

श्रीरामकृष्ण ईश्वरावेश में बाह्यशून्य हो चित्रवत् बैठे हुए हैं। इस प्रेमावेश को, इस अद्भुत दृश्य को देखकर, भक्तों में किसी की आँखों से आँसू बह रहे हैं और कोई स्तुति-पाठ कर रहे हैं। जिसका जैसा भाव है, वह उसी भाव से श्रीरामकृष्ण की ओर हेर रहा है। कोई उन्हें परम भक्त देखता है, कोई साधु, कोई देह धारण करके आए हुए साक्षात् ईश्वरावतार, जिसका जैसा भाव।

महिमाचरण गाने लगे। गाते हुए आँखों में पानी भर आया— 'देखो देखो प्रेममूर्ति।' और बीच-बीच में इस भाव से श्लोकों की आवृत्ति करने लगे जैसे ब्रह्म का साक्षात् दर्शन कर रहे हों—— 'तुरीयं सच्चिदानन्दं द्वैताद्वैतविवर्जितम्।'

नवगोपाल रोने लगे। एक दूसरे भक्त भूपति ने गाया।

गाना—हे परब्रह्म, तुम्हारी जय हो, तुम अपार हो, अगम्य हो, परात्पर हो ....। मुझे ज्ञान दो, भक्ति और प्रेम दो, और अपने श्रीचरणों में मुझे आश्रय दो।

भूपति फिर गा रहे हैं ——

गाना— चिदानन्द-सिन्धु-सलिल में प्रेम और आनन्द की लहरें उठ रही हैं। रासलीला के महान् भाव में कैसी सुन्दर माधुरी है !...

बड़ी देर के बाद श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– आवेश में न जाने क्या हो जाता है। इस समय लज्जा आ रही है। उस समय जैसे भूत सवार हो जाता है, 'मैं' फिर 'मैं' नहीं रह जाता।

"इस अवस्था के बाद गिनती नहीं गिनी जा सकती। गिनने लगो तो १,७,९ इस तरह की गणना होती है।"

नरेन्द्र– सब एक ही है, इसलिए।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, एक और दो से परे।

महिमाचरण– जी हाँ, द्वैताद्वैतविवर्जितम्।

श्रीरामकृष्ण– वहाँ तर्क-विचार नष्ट हो जाता है। पाण्डित्य द्वारा उन्हें कोई पा नहीं सकता। वे शास्त्रों, वेदों, पुराणों और तन्त्रों से परे हैं। किसी के हाथ में अगर मैं एक पुस्तक देखता हूँ तो उसके ज्ञानी होने पर भी मैं उसे राजर्षि कहता हूँ। ब्रह्मर्षि का कोई बाह्य लक्षण नहीं रहता। शास्त्रों का उपयोग क्या है, जानते हो? एक ने चिट्ठी लिखी थी, उसमें था, पाँच सेर सन्देश और एक धोती भेजना। जिसे वह चिट्ठी मिली उसने पाँच सेर सन्देश और एक धोती, इतना याद करके चिट्ठी फेंक दी। चिट्ठी की क्या ज़रूरत थी?

विजय– सन्देश भेजे गए, यह समझ लिया!

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर आदमी की देह धारण करके आते हैं। यह सच है कि वे सब जगहों में और सर्व भूतों में हैं, परन्तु अवतार के बिना जीवों की आकांक्षा की पूर्ति नहीं होती, उनकी आवश्यकताएँ नहीं मिटतीं। वह इस तरह कि गौ को चाहे जहाँ छुओ वह गौ को ही छूना हुआ, सींग छूने पर भी गौ को छूना हुआ, परन्तु दूध गौ के थनों से ही आता है। (हास्य)

महिमा– दूध की अगर ज़रूरत हो तो गौ के सींगों में मुँह लगाने से क्या होगा ? उसके थनों में मुंह लगाना चाहिए। (सब हँसते हैं)

विजय– परन्तु बछड़ा पहले पहले इधर-उधर ही हूँथा मारता है।

श्रीरामकृष्ण–(हँसते हुए)– बछड़े को उस तरह भटकते हुए देखकर कोई कोई ऐसा भी करते हैं कि उसका मुँह थनों में लगा देते हैं ! (सब हँसते हैं)

(५)

भक्तों के साथ प्रेमानन्द में

ये सब बातें हो रही थीं कि श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए डाक्टर आ पहुँचे और आसन ग्रहण किया। वे कह रहे हैं, 'कल रात तीन बजे से मेरी आँख नहीं लगी। बस तुम्हारी ही चिन्ता थी कि कहीं ऐसा न हो कि सरदी लग जाय। और भी मैं बहुत कुछ सोच रहा था।'

श्रीरामकृष्ण– खाँसी हुई है, गले में भी सूजन है। सबेरे तड़के मुँह में पानी आ गया था। मेरा पूरा शरीर टूट रहा है।

डाक्टर– सुबह को सब ख़बर मुझे मिली है।

महिमाचरण अपने भारतवर्ष-भ्रमण की चर्चा कर रहे हैं। कहा, 'लंकाद्वीप में हँसता हुआ आदमी नहीं दीख पड़ता।' डाक्टर सरकार ने कहा, 'हाँ होगा, परन्तु इसकी खोज होनी चाहिए।' (सब हँसते हैं)

डाक्टरी कार्य की बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– बहुतों का यह ख्याल है कि डाक्टरी का स्थान अन्य कार्यों से बहुत ऊँचा है। यदि रुपया न लेकर, दूसरे का दुःख देखकर कोई चिकित्सा करे तब तो वह

महान् व्यक्ति है, उसका कार्य भी महत्त्वपूर्ण है, नहीं तो जो लोग रुपया लेकर यह सब काम करते हैं, वे तो निर्दय हैं, और निर्दय होते जाते हैं। व्यवसाय की दृष्टि से मल-मूत्र देखना तो नीचों का काम है।

डाक्टर– महाराज, आप बिलकुल ठीक कहते हैं। डाक्टर के लिए उस भाव से काम करना तो सचमुच बहुत बुरा है। परन्तु आपके सम्मुख मैं अपने ही मुँह से क्या कहूँ—

श्रीरामकृष्ण– हाँ, डाक्टरी में निस्वार्थ भाव से अगर दूसरे का उपकार किया जाय, तब तो बहुत अच्छा है।

"चाहे जो काम आदमी करे, संसारी मनुष्य के लिए बीच-बीच में साधुसंग की बड़ी आवश्यकता है। ईश्वर में भक्ति रहने पर लोग साधुसंग आप खोज लेते हैं। मैं उपमा दिया करता हूँ— गंजेड़ी गंजेड़ी के साथ ही रहता है। दूसरे आदमी को देखता है तो वह सिर झुकाकर चला जाता है या छिप रहता है; परन्तु एक दूसरे गंजेड़ी को देखकर उसे परम प्रसन्नता होती है। कभी तो मारे प्रेम के दोनों गले लग जाते हैं। (सब हँसते हैं) और, गीध भी गीध ही के साथ रहता है।"

डाक्टर– परन्तु कौए के डर से ही गीध भाग जाता है। मैं कहता हूँ, सिर्फ मनुष्य की ही नहीं, सब जीवों की सेवा करनी चाहिए। मैं प्रायः गौरैयों को आटे की गोलियाँ दिया करता हूँ। और छत पर हजारों गौरैयाँ इकट्ठी हो जाती हैं।

श्रीरामकृष्ण– वाह ! यह तो बड़ी अच्छी बात है। जीवों को खिलाना तो साधुओं का काम है। साधु-महात्मा चीटियों को शक्कर देते हैं।

डाक्टर– आज गाना नहीं होगा ?

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– कुछ गाओ ।

नरेन्द्र गा रहे हैं, हाथ में तानपूरा लिए हुए । आज बाजा भी बज रहा है ।

गाना– हे दीनों के शरण ! तुम्हारा नाम बड़ा सुन्दर है। ऐ प्राणों में रमण करनेवाले ! अमृत की धारा बरस रही है, कर्ण शीतल बज जाते हैं...।

नरेन्द्र फिर गा रहे हैं–

गाना– माँ ! मुझे पागल कर दे, ज्ञान और विचार की अब कोई आवश्यकता नहीं है...।

गाने के साथ ही इधर अद्भुत दृश्य दिखाई देने लगा–– भावावेश में सब लोग पागल हो रहे हैं । पण्डित अपने पाण्डित्य का अभिमान छोड़कर खड़े हो गए । कह रहे हैं–– 'माँ, मुझे पागल कर दे, ज्ञान और विचार की अब कोई आवश्यकता नहीं है ।' सब से पहले आसन छोड़कर भावावेश में विजय खड़े हुए, फिर श्रीरामकृष्ण । श्रीरामकृष्ण देह की कठिन असाध्य व्याधि को बिलकुल भूल गए हैं। सामने डाक्टर हैं । वे भी खड़े हो गए । न रोगी को होश है, न डाक्टर को । छोटे नरेन्द्र और लाटू दोनों को भावसमाधि हो गई । डाक्टर ने साइन्स (विज्ञान) पढ़ी है, परन्तु यह विचित्र अवस्था देखते हुए अवाक् हो रहे हैं । देखा, जिन्हें भावावेश है उनमें बाह्यज्ञान बिलकुल नहीं रह गया । सब के सब स्थिर और निःस्पन्द हो रहे हैं। भाव का उपशम होने पर कोई हँस रहे हैं, कोई रो रहे हैं, मानो कुछ मतवाले इकट्ठे हो गए हों।

(६)

भक्तों के संग में । श्रीरामकृष्ण तथा क्रोध-जय

इस घटना के बाद लोगों ने आसन ग्रहण किया । रात के

आठ बज गए हैं। फिर बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण–(डाक्टर से)–यह जो भाव तुमने देखा, इसके सम्बन्ध में तुम्हारी साइन्स क्या कहती है? तुम्हें क्या यह जान पड़ता है कि यह सब ढोंग है?

डाक्टर–(श्रीरामकृष्ण से)–जहाँ इतने आदमियों को ऐसा हो रहा है, वहाँ तो स्वाभाविक ही जान पड़ता है; ढोंग नहीं मालूम होता। (नरेन्द्र से) जब तुम गा रहे थे, 'माँ, पागल कर दे, अब ज्ञान और विचार की आवश्यकता नहीं है', तब मुझसे रहा नहीं गया, खड़ा हो गया, फिर बड़ी मुश्किल से भाव को दबाना पड़ा। मैंने सोचा कि बाहरी दिखाव न होने देना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण–(डाक्टर से, हँसकर)–तुम तो अटल, अचल और सुमेरुवत् हो। (सब हँसते हैं) तुम गंभीरात्मा हो। रूप सनातन का भाव किसी को मालूम न हो पाता था। अगर किसी गड़ही में हाथी उतर जाता है तो पानी में उथल-पुथल मच जाती है, परन्तु बड़े सरोवर में कहीं कुछ नहीं होता। किसी को मालूम भी नहीं होता। श्रीमती ने सखियों से कहा, 'सखियो, कृष्ण के विरह में तुम लोग इतना रो रही हो, परन्तु मुझे देखो, मेरी आँखों में कहीं एक बूंद भी आँसू नहीं है।' तब वृन्दा ने कहा, 'सखि, तेरी आँखों में आँसू नहीं है, इसका बहुत बड़ा अर्थ है। तेरे हृदय में विरह की आग सदा जल रही है, आँखों में आँसू आते हैं पर उस अग्नि की ज्वाला से सूख जाते हैं।'

डाक्टर–आपके साथ बातचीत में पार पाना कठिन है। (हास्य)

फिर दूसरी चर्चा होने लगी। श्रीरामकृष्ण भावावेश की अपनी पहली अवस्था बतला रहे हैं। और काम, क्रोध आदि

को किस तरह वश में लाया जाय, ये बातें भी बतला रहे हैं।

डाक्टर–आप भावावेश में पड़े हुए थे, एक दूसरे ने उस समय आपको बूट से पाद-प्रहार किया था, ये सब बातें मैं सुन चुका हूँ।

श्रीरामकृष्ण–वह कालीघाट का चन्द्र हालदार था। वह मथुर बाबू के पास प्रायः आया करता था। मैं ईश्वरावेश में अँधेरे में जमीन पर पड़ा हुआ था। चन्द्र हालदार पहले ही से सोचा करता था कि यह ढोंग किया करता है, मथुर बाबू का प्रिय पात्र बनने के लिए। वह अँधेरे में आकर जूते पहने हुए पैरों से ठेलने लगा। देह में निशान बन गए थे। सब ने कहा, 'मथुर बाबू से कह दिया जाय।' मैंने मना कर दिया।

डाक्टर–यह भी ईश्वर की लीला है। इससे भी लोगों को शिक्षा होगी। क्रोध किस तरह जीता जाता है, क्षमा किसे कहते हैं, लोग समझेंगे।

श्रीरामकृष्ण के सामने विजय के साथ भक्तों की बातचीत हो रही है।

विजय–न जाने कौन मेरे साथ सब समय रहते हैं, मेरे दूर रहने पर भी वे मुझे बतला देते हैं, कहाँ क्या हो रहा है!

नरेन्द्र–स्वर्गीय दूत की तरह रखवाली करते हुए!

विजय–ढाके में इन्हें (श्रीरामकृष्ण को) मैंने देखा है! देह छूकर!

श्रीरामकृष्ण–(हँसते हुए)–तो वह कोई दूसरा होगा।

नरेन्द्र–मैंने भी इन्हें कई बार देखा है। (विजय से) अतएव किस तरह कहूँ कि आपकी बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।

परिच्छेद २१

भक्ति, विवेक-वैराग्य तथा पाण्डित्य

(१)

श्रीरामकृष्ण तथा शिष्य-प्रेम

आज आश्विन की कृष्ण तृतीया है, सोमवार, २६ अक्टूबर १८८५। श्रीरामकृष्णदेव की चिकित्सा डाक्टर सरकार उसी श्याम-पुकुर के घर में कर रहे हैं। रोज आते हैं। आदमी भी संवाद लेकर रोज जाता है।

शरद ऋतु है। कुछ दिन हुए, शारदीय पूजा हो गई है। श्रीरामकृष्ण की शिष्यमण्डली को हर्ष और विषाद में वह समय बिताना पड़ा था। श्रीरामकृष्ण की पीड़ा तीव्र है। डाक्टर सरकार ने सूचित किया है कि रोग असाध्य है। शिष्यों को तब से हार्दिक दुःख है। वे सदा ही चिन्तित और व्याकुल रहा करते हैं। कुमार-अवस्था से ही वैराग्ययुक्त उनके नरेन्द्र आदि शिष्य-गण अभी कामिनी और कांचन के त्याग की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

इतनी पीड़ा है फिर भी दल के दल आदमी श्रीरामकृष्ण के पास आते रहते हैं। उनके पास आते ही उन्हें आनन्द मिलता है। वे समागत मनुष्यों की मंगल-कामना करते हुए, अपनी असाध्य व्याधि को भूलकर उन्हें शिक्षा और उपदेश देते हैं। डाक्टरों ने, विशेषतः डाक्टर सरकार ने, बातचीत करने के लिए मना कर दिया है। परन्तु डाक्टर सरकार खुद छः-सात घण्टे तक रहते हैं। वे कहते हैं, 'किसी दूसरे के साथ बातचीत नहीं करने पाओगे, बस हमारे साथ किया करो।'

श्रीरामकृष्ण की बातें सुनते-सुनते डाक्टर एकदम मुग्ध हो जाते हैं। इसीलिए वे इतनी देर तक बैठे रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– बीमारी बहुत कुछ अच्छी सी हो गई है, इस समय तबीयत खूब अच्छी है। अच्छा, तो क्या दवा से ऐसा हुआ है ? तो इसी दवा का सेवन क्यों न किया जाय?

मास्टर– मैं डाक्टर के पास जा रहा हूँ, उनसे सब हाल कह दूँगा। वे जो कुछ अच्छा सोचेंगे, कहेंगे।

श्रीरामकृष्ण– देखो, दो-तीन दिन से पूर्ण नहीं आया। मन में न जाने कैसा हो रहा है।

मास्टर– कालीबाबू, तुम जाओ न ज़रा पूर्ण को बुलाने।

काली– अभी जाता हूँ।

पूर्ण की उम्र १४-१५ साल की होगी।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– डाक्टर का लड़का अच्छा है। ज़रा एक बार आने के लिए कहना।

(२)

मास्टर तथा डाक्टर का सम्भाषण

डाक्टर के घर पर पहुँचकर मास्टर ने देखा, डाक्टर दो-एक मित्रों के साथ बैठे हुए हैं।

डाक्टर– (मास्टर से)– अभी मिनट भर हुआ होगा, मैं तुम्हारी ही बातें कर रहा था। दस बजे आने के लिए तुमने कहा था, मैं डेढ़ घण्टे से बैठा हुआ हूँ। कैसे हैं, क्या हुआ, इसी सोच में पड़ा था। (मित्र से) अजी, ज़रा वही गाना गाओ तो।

मित्र गा रहे हैं —

गाना– देह में जब तक प्राण हैं तब तक उनके नाम और गुणों का कीर्तन करते रहो। उनकी महिमा एक ज्वलन्त ज्योति है—

संसार को प्रकाशित करनेवाली । सकल जीवों को सुख देनेवाला प्रेमामृत-प्रवाह बह रहा है । उनकी अपार करुणा का स्मरण कर शरीर पुलकित हो जाता है । वाणी क्या कभी उनकी थाह पा सकती है ? उनकी कृपा से पल भर में समस्त शोक दूर हो जाते हैं । मनुष्य उन्हें सर्वत्र—— ऊपर, नीचे, देश-देशान्तर, जल-गर्भ, आकाश में—— अक्लान्त ढूँढ़ते रहते हैं, और अनवरत जिज्ञासा करते रहते हैं, 'उनका अन्त कहाँ है, उनकी सीमा कहाँ तक है ?' वे चेतन-निकेतन हैं, पारस-मणि हैं, सदा जाग्रत और निरंजन हैं । उनके दर्शन से दुःख का लेशमात्र भी नहीं रह जाता ।

डाक्टर– (मास्टर से)– गाना बहुत अच्छा है, है न ? विशेषतः उस जगह, जहाँ यह है—— "लोग अनवरत जिज्ञासा करते रहते हैं, 'उनका अन्त कहाँ है, उनकी सीमा कहाँ तक है ?' "

मास्टर– हाँ, वह भाग बड़ा सुन्दर है, अनन्त के खूब भाव हैं ।

डाक्टर– (सस्नेह)– दिन बहुत चढ़ गया । तुमने भोजन किया या नहीं ? मैं दस बजे के भीतर भोजन कर लेता हूँ, फिर डाक्टरी करने निकलता हूँ । बिना खाए अगर निकल जाता हूँ, तो तबीयत खराब हो जाती है । एक दिन तुम लोगों को भोजन कराने की बात सोच रहा हूँ ।

मास्टर– यह तो बड़ी अच्छी बात है ।

डाक्टर– अच्छा, यहाँ या वहाँ ? तुम लोग जैसा कहो ।

मास्टर– महाशय, यहाँ हो चाहे वहाँ; सब लोग आनन्द से भोजन करेंगे ।

अब जगन्माता काली की बात चलने लगी ।

डाक्टर– काली तो एक भीलनी थी । (मास्टर हँसते हैं)

मास्टर– यह बात कहाँ लिखी है ?

डाक्टर– मैंने ऐसा ही सुना है। (मास्टर हँसते हैं)

पिछले दिन विजयकृष्ण और दूसरे भक्तों को भावसमाधि हुई थी। उस समय डाक्टर भी थे। वही बात हो रही है।

डाक्टर– भावावेश तो मैंने देखा। पर क्या अधिक भावावेश होना अच्छा है?

मास्टर– श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, ईश्वर की चिन्ता करके जो भावावेश होता है, उसके अधिक होने पर कोई हानि नहीं होती। वे कहते हैं, मणि की ज्योति से जो उजाला होता है उससे शरीर स्निग्ध हो जाता है, जलता नहीं।

डाक्टर– मणि की ज्योति; वह तो प्रतिबिम्बित ज्योति (Reflected light) है।

मास्टर– वे और भी कहते हैं कि अमृत-सरोवर में डूबने से कोई मरता नहीं। ईश्वर अमृत-सरोवर हैं, उनमें डूबने से आदमी का अनिष्ट नहीं होता, वरन् वह अमर हो जाता है; परन्तु तभी, अगर ईश्वर पर विश्वास हो।

डाक्टर– हाँ, यह बात ठीक है।

डाक्टर गाड़ी में बैठे, दो-चार रोगियों को देखकर श्रीरामकृष्ण-देव को देखने जाएंगे। रास्ते में फिर मास्टर के साथ बातचीत होने लगी। चक्रवर्ती के अहंकार की बात डाक्टर ने चलाई।

मास्टर– श्रीरामकृष्णदेव के पास वे आया-जाया करते हैं। अहं-कार अगर उनमें हो भी, तो कुछ दिनों में न रह जाएगा। श्रीराम-कृष्णदेव के पास बैठने से जीवों का अहंकार दूर हो जाता है, क्योंकि उनमें स्वयं में अहंकार नहीं है। नम्रता रहने से अहंकार नहीं रह सकता। विद्यासागर महाशय इतने बड़े आदमी हैं, फिर भी उन्होंने उस समय विनय और नम्रता प्रदर्शित की जब श्रीराम-

कृष्णदेव उन्हें देखने गए थे—— उनके बादुड़बागानवाले मकान में। जब वहाँ से बिदा हुए तब रात के नौ बजे का समय था। विद्यासागर महाशय लाइब्रेरीवाले कमरे से बराबर साथ-साथ हाथ में बत्ती लिए हुए उन्हें गाड़ी पर चढ़ा गए थे, और बिदा होते समय हाथ जोड़े हुए थे।

डाक्टर– अच्छा इनके (श्रीरामकृष्ण के) सम्बन्ध में विद्यासागर महाशय का क्या मत है ?

मास्टर– उस दिन बड़ी भक्ति की थी, परन्तु बातचीत करके मैंने देखा, वैष्णवगण जिसे भाव कहते हैं, इस तरह की बातें उन्हें पसन्द नहीं,—— जैसा आपका मत है।

डाक्टर– हाथ जोड़ना, पैरों पर सिर रखना, यह सब मुझे पसन्द नहीं। सिर जो कुछ है, पैर भी वही है। परन्तु जिसे यह ज्ञान है कि सिर कुछ है और पैर कुछ, वह ऐसा कर सकता है।

मास्टर– आपको भाव पसन्द नहीं है। श्रीरामकृष्णदेव आपको कभी कभी गंभीरात्मा कहा करते हैं, आपको शायद याद हो। उन्होंने कल आपके लिए कहा था, 'छोटी सी गड़ही में हाथी उतर जाता है तो पानी में उलथपुथल मच जाती है, परन्तु बड़े सरोवर में कहीं कुछ नहीं होता।' गंभीरात्मा के भीतर भावहाथी के उतरने पर उसका कहीं कुछ नहीं होता। वे कहते हैं, आप गंभीरात्मा हैं।

डाक्टर– मैं किसी तरह की प्रशंसा नहीं चाहता। आखिर भाव और है क्या ? यह केवल एक प्रकार की 'feeling' है। इसी प्रकार की अन्य 'feelings' भी होती हैं, उदाहरणार्थ 'भक्ति'। जब यह अत्यधिक हो जाती है तो कोई तो उसे दबाकर रख सकता है, और कोई नहीं।

मास्टर– 'भाव' का अर्थ कोई एक तरह से समझाता है, और कोई समझा ही नहीं सकता। परन्तु महाशय, यह बात तो माननी ही होगी कि भाव और भक्ति ये अपूर्व वस्तुएँ हैं। मैंने आपके पुस्तकालय में डारविन के सिद्धान्तों पर लिखी हुई स्टेबिङ्ग की एक पुस्तक देखी है। स्टेबिङ्ग साहब का मत है कि मनुष्य का मन बड़ा ही आश्चर्यजनक है— उसका निर्माण चाहे क्रम-विकास (Evolution) द्वारा हुआ हो, अथवा ईश्वर के एक खास सृष्टि-उत्पादन से। स्टेबिङ्ग साहब ने एक बड़ी अच्छी उपमा दी है। उन्होंने कहा है, 'प्रकाश को ही लीजिए। चाहे आप प्रकाश की तरंगों के सिद्धान्त को जानें या न जानें, प्रत्येक दशा में प्रकाश आश्चर्यजनक ही है।'

डाक्टर– हाँ, और देखते हो, स्टेबिङ्ग डारविन के सिद्धान्त को मानता है, फिर ईश्वर को भी मानता है!

फिर श्रीरामकृष्णदेव की बात चली।

डाक्टर– देखता हूँ, ये (श्रीरामकृष्णदेव) काली के उपासक हैं।

मास्टर– उनका काली का अर्थ और कुछ है। वेद जिन्हें पर-ब्रह्म कहते हैं, वे उन्हें ही काली कहते हैं। मुसलमान जिन्हें अल्ला कहते हैं, ईसाई जिन्हें गॉड (God) कहते हैं, उन्हें ही वे काली कहते हैं। वे बहुत से ईश्वर नहीं देखते, एक देखते हैं। पुराने ब्रह्मज्ञानी जिन्हें ब्रह्म कह गए हैं, योगी जिन्हें आत्मा कहते हैं, भक्त जिन्हें भगवान कहते हैं, श्रीरामकृष्णदेव उन्हीं को काली कहते हैं।

"उनसे मैंने सुना है, एक आदमी के पास एक गमला था, उसमें रंग घोला हुआ था। किसी को अगर कपड़ा रँगाने की ज़रूरत होती थी, तो वह उसके पास जाता था। रँगनेवाला

पूछता था, 'तुम किस रंग में कपडा रँगाना चाहते हो?' रँगानेवाला अगर कहता, 'हरे रंग में,' तो वह गमले में डुबाकर कपड़ा निकाल लेता और कहता था, 'यह लो अपना हरे रंग का कपड़ा।' अगर कोई कहता, 'मेरी धोती लाल रंग से रँगो,' तो भी वह उसी गमले में डुबाकर निकाल लेता और कहता था, 'यह लो तुम्हारी धोती लाल रंग से रँग गई।' इस एक ही गमले के रंग से वह लाल, पीला, हरा, आसमानी, सब रंगों के कपड़े रँगा करता था। यह विचित्र तमाशा देखकर एक ने कहा, 'भाई, मुझे तो वही रंग चाहिए जो तुमने इस गमले में घोल रखा है।' उसी तरह श्रीरामकृष्णदेव के भीतर सब भाव हैं,—सब धर्मों और सब सम्प्रदायों के आदमी उनके पास शान्ति और आनन्द पाते हैं। उनका खास भाव क्या है, वे कितने गहरे हैं, यह भला कौन समझ सकता है?"

डाक्टर—'सब मनुष्यों के लिए सब चीजें।' यह मुझे अच्छा नहीं लगता, यद्यपि सेंट पॉल ऐसा ही कहते हैं।

मास्टर—श्रीरामकृष्णदेव की अवस्था कौन समझेगा? उनके श्रीमुख से मैंने सुना है, सूत का व्यवसाय बिना किए, कौन सूत ४० नंबर का है और कौन ४१ नंबर का, यह समझ में नहीं आता। चित्रकार हुए बिना चित्रकार की कुशलता समझ में नहीं आती। महापुरुषों का भाव गंभीर होता है। ईशु की तरह बिना हुए, ईशु के सारे भाव समझ में नहीं आते। श्रीरामकृष्णदेव का यह गंभीर भाव, बहुत संभव है, वही है जो ईशु ने कहा था—'अपने स्वर्गस्थ पिता की तरह पवित्र होओ।'

डाक्टर—अच्छा, उनकी बीमारी में तुम लोग किस तरह उनकी सेवा और देख-भाल करते हो?

मास्टर– जिनकी उम्र अधिक है, सेवा करने का भार उन्हीं पर रहता है। किसी दिन गिरीश बाबू परिदर्शक रहते हैं, किसी दिन राम बाबू, किसी दिन बलराम, किसी दिन सुरेश बाबू, किसी दिन नवगोपाल, और किसी दिन काली बाबू, इस तरह।

(३)

पाण्डित्य तथा विवेक-वैराग्य

इस तरह बातें करते हुए, श्रीरामकृष्ण जिस मकान में रहते थे उसके सामने आकर गाड़ी खड़ी हुई। दिन के एक बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण दुमंज़लेवाले कमरे में बैठे हुए हैं। बहुत से भक्त सामने बैठे हैं। उनमें श्रीयुत गिरीश घोष, छोटे नरेन्द्र, शरद आदि भी हैं। सब की दृष्टि उस महायोगी सदानन्द महापुरुष की ओर लगी हुई है।

डाक्टर को देखकर हँसते हुए श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'आज बहुत अच्छी है तबीयत।'

धीरे धीरे भक्तों के साथ ईश्वरीय चर्चा होने लगी।

श्रीरामकृष्ण– सिर्फ पाण्डित्य से क्या लाभ, अगर उसमें विवेक और वैराग्य न हों? ईश्वर के पादपद्मों की चिन्ता करते हुए मेरी एक़ ऐसी अवस्था होती है कि कमर से धोती खुल जाती है, पैरों से सिर तक न जाने क्या सरसराता हुआ चढ़ जाता है। तब सब लोग तृण के समान जान पड़ते हैं। उन पण्डितों को जिनमें विवेक, वैराग्य और ईश्वर-प्रेम नहीं हैं, मैं घास-फूस की तरह देखता हूँ।

"रामनारायण डाक्टर ने मेरे साथ तर्क किया था। एका-एक मुझे वही अवस्था हो गई। तब मैंने कहा, 'तुम क्या कहते हो? उन्हें तर्क करके क्या ख़ाक समझोगे? उनकी सृष्टि भी

क्या समझोगे ? तुम्हारी तो यह बड़ी हीन बुद्धि है ! ' मेरी अवस्था देखकर वह रोने लगा, और मेरे पैर दबाने लगा । "

डाक्टर– रामनारायण डाक्टर हिन्दू हैं न ! और फूल-चन्दन भी धारण करता है ! सच्चा हिन्दू है !

श्रीरामकृष्ण—बंकिम * तुम लोगों के दल का एक पण्डित है। बंकिम से साथ मुलाकात हुई थी । मैंने पूछा, 'आदमी का कर्तव्य क्या है? ' तब उसने कहा, 'आहार, निद्रा और मैथुन । ' इस तरह की बातें सुनकर मुझे घृणा हो गई । मैंने कहा, 'तुम्हारी ये कैसी बातें हैं ? तुम तो बड़े छिछोड़े हो ! तुम दिन-रात जैसी चिन्ताएँ किया करते हो, वही मुँह से भी निकल रहा है ! मूली खाने से मूली ही की डकार आती है । ' फिर बहुत सी ईश्वरीय बातें हुईं । कमरे में संकीर्तन हुआ । मैं नाचा भी । तब उसने कहा, 'महाराज, एक बार हमारे यहाँ भी पधारिएगा । ' मैंने कहा, 'देखो, ईश्वर की इच्छा । ' तब उसने कहा, 'हमारे यहाँ भी भक्त हैं, आप देखिएगा । ' मैंने हँसते हुए कहा, 'किस तरह के भक्त हैं जी ? गोपाल-गोपाल जिन लोगों ने कहा था, वैसे ? '

डाक्टर– 'गोपाल-गोपाल ' क्या है ?

श्रीरामकृष्ण – (सहास्य)– एक सुनार की दूकान थी । उस दूकान के सब लोग बड़े भक्त दिखते थे — परम वैष्णव । गले में माला, माथे में तिलक, हाथ में सुमिरनी, लोग विश्वास करके उन्हीं की दूकान में आते थे । वे सोचते थे, ये परम भक्त हैं, कभी ठग नहीं सकते । खरीददारों का एक दल जब वहाँ पहुँचता तो सुनता कि कोई कारीगर 'केशव-केशव ' कह रहा है, एक दूसरा कुछ देर बाद ' गोपाल-गोपाल ' रट रहा है, फिर

* बंकिमचन्द्र चटर्जी– बंगाल प्रान्त के एक प्रसिद्ध लेखक ।

थोड़ी देर बाद कोई 'हरि-हरि' बोल रहा है, फिर कुछ देर में कोई 'हर-हर' आदि आदि। ईश्वर के इतने नाम एक साथ सुनकर खरीददार सहज ही सोचते थे, इस घराने के सुनार बड़े अच्छे हैं। परन्तु इसका असल मतलब क्या था, जानते हो? जिसने 'केशव-केशव' कहा था, उसका मतलब यह पूछने का था कि ये सब कोन हैं? जिसने कहा था 'गोपाल-गोपाल', उसका अर्थ यह है कि मैं समझ गया, ये सब गौओं के दल (पाल) हैं। (हास्य) जिसने कहा 'हरि-हरि', उसका अर्थ यह है—अगर ये गौओं के दल हैं तो क्या हम इनका हरण करें? (हास्य) जिसने कहा 'हर-हर', उसने इशारा किया कि हाँ, हरण करो; हाँ, हरण करो; यह तो गौओं का दल ही है। (हास्य)

"मथुरबाबू के साथ मैं एक जगह और गया था। कितने ही पण्डित मेरे साथ विचार करने के लिए आए थे। मैं तो मूर्ख हूँ ही। (सब हँसते हैं।) उन लोगों ने मेरी वह अवस्था देखी, और मेरे साथ बातचीत होने पर उन लोगों ने कहा, 'महाराज! पहले जो कुछ हमने पढ़ा है, तुम्हारे साथ बातचीत करने पर उस सारी विद्या से जी हट गया। अब समझ में आया, उनकी कृपा होने पर ज्ञान का अभाव नहीं रह जाता। मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है, मूक में भी बोलने की शक्ति आ जाती है।' इसीलिए कह रहा हूँ, पुस्तकें पढ़ने से ही कोई पण्डित नहीं हो जाता।

"हाँ, उनकी कृपा होने पर फिर ज्ञान की कमी नहीं रह जाती। देखो न, मैं तो मूर्ख हूँ, कुछ भी नहीं जानता, परन्तु ये सब बातें कौन कहता है? फिर इस ज्ञान का भाण्डार अक्षय है। उस देश (कामारपुकुर) में लोग जब धान नापते हैं, तो 'राम-

राम राम-राम' कहते जाते हैं। एक आदमी नापता है और एक दूसरा आदमी राशि पूरी करता जाता है। उसका काम यही है कि जब राशि घट जाय तब पूरी करता रहे। मैं भी जो बातें कह जाता हूँ, जब वे घटने पर आ जाती हैं, तब माँ अपने अक्षय ज्ञान-भाण्डार से राशि पूरी कर देती हैं।

"जब मैं बच्चा था, उस समय मेरे भीतर उनका आविर्भाव हुआ था। उम्र ग्यारह साल की थी। मैदान में एक विचित्र तरह का दर्शन हुआ। सब कहते थे, मैं उस समय बेहोश हो गया था। कोई भी अंग हिलता-डुलता न था। उसी दिन से मैं एक दूसरी तरह का हो गया। अपने भीतर एक दूसरे व्यक्ति को देखने लगा। जब श्रीठाकुरजी की पूजा करने के लिए जाता था, तब हाथ बहुधा ठाकुरजी की ओर न जाकर अपनी ही ओर आता था, और मैं अपने ही सिर पर फूल चढ़ा लेता था! जो लड़का मेरे पास रहता था, वह मेरे पास न आता था। कहता था, 'तुम्हारे मुख पर एक न जाने कैसी ज्योति देख रहा हूँ! तुम्हारे पास अधिक जाते भय उत्पन्न होता है।'"

(४)

ईश्वरेच्छा तथा स्वाधीन इच्छा

श्रीरामकृष्ण– मैं तो मूर्ख हूँ, कुछ जानता ही नहीं, तो यह सब कहता कौन है? मैं कहता हूँ, 'माँ, मैं यन्त्र हूं, तुम यन्त्री हो; मैं गृह हूँ, तुम गृहस्वामिनी हो; मैं रथ हूँ, तुम रथी हो; तुम जैसा कराती हो, मैं वैसा ही करता हूँ; जैसा चलाती हो, वैसा ही चलता हूँ; नाहम्-नाहम्, तुम हो, तुम हो।' उन्हीं की जय है, मैं तो केवल यंत्र मात्र हूँ। श्रीमती जब सहस्र छेदवाला घट लेकर जा रही थीं, तब उसमें से ज़रा भी पानी नहीं गिरा। यह

देखकर सब लोग उनकी प्रशंसा करने लगे, कहा, 'ऐसी सती दूसरी न होगी।' तब श्रीमती ने कहा, 'तुम लोग मेरी जय क्यों मनाते हो? कहो, कृष्ण की जय हो। मैं तो उनकी एक दासी मात्र हूँ।' एक दिन ऐसी ही भाव की अवस्था में विजय की छाती पर मैंने एक पैर रख दिया। इधर तो विजय पर मेरी श्रद्धा है, परन्तु उस अवस्था में उस पर पैर रख दिया, इसके लिए भला क्या किया जाय!

डाक्टर– उसके बाद से सावधान रहना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण– (हाथ जोड़कर)– मैं क्या करूँ? उस अवस्था के आने पर बेहोश हो जाता हूँ। क्या करता हूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

डाक्टर– सावधान रहना चाहिए। हाथ जोड़ने से क्या होगा?

श्रीरामकृष्ण– तब मुझमें करने-धरने की शक्ति थोड़े ही रह जाती है! –– परन्तु मेरी अवस्था के सम्बन्ध में क्या सोचते हो? यदि इसे ढोंग समझते हो तो मैं कहूँगा, तुम्हारी साइन्स-वाइन्स सब ख़ाक है।

डाक्टर– महाराज, यदि मैं ढोंग समझता तो क्या कभी इस तरह आया करता? देखो न, सब काम छोड़कर यहाँ आता हूँ। कितने ही रोगियों के यहाँ जा नहीं पाता। यहाँ आकर छः-सात घण्टे तक रह जाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– मथुरबाबू से मैंने कहा था, 'तुम यह न सोचना कि तुम एक बड़े आदमी हो, मुझे मानते हो, इसलिए मैं कृतार्थ हो गया। तुम मानो या न मानो।' परन्तु एक बात है, आदमी क्या कर सकता है, वे (ईश्वर) स्वयं आकर मनाएँगे। ईश्वरीय शक्ति के सामने मनुष्य घास-फूस की तरह है।

डाक्टर– क्या आप यह सोचते हैं कि अमुक मछुआ * आपको मानता था इसलिए मैं भी मानूंगा ?... परन्तु हाँ, आपका सम्मान ज़रूर करता हूँ, आपके प्रति भक्ति करता हूँ, परन्तु वैसी ही, जैसी मनुष्य के प्रति की जाती है––

श्रीरामकृष्ण– अजी, क्या मैं मानने के लिए कह रहा हूँ ?

गिरीश घोष– क्या वे आपको मानने के लिए कह रहे हैं ?

डाक्टर– (श्रीरामकृष्ण से)– आप क्या कहते हैं ? ईश्वर की इच्छा ?

श्रीरामकृष्ण– और नहीं तो क्या कह रहा हूँ ? ईश्वरीय शक्ति के निकट मनुष्य क्या कर सकता है ? कुरुक्षेत्र में अर्जुन ने कहा, 'लड़ाई मुझसे न होगी, अपने ही भाइयों का वध मैं न कर सकूँगा।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, तुम्हें लड़ना ही होगा। तुम्हारा स्वभाव तुमसे युद्ध कराएगा।' श्रीकृष्ण ने सब दिखला दिया कि ये सब आदमी मरे हुए हैं। ठाकुरबाड़ी में कुछ सिक्ख आए थे। उनके मत से पीपल का पत्ता भी ईश्वर की इच्छा से डोलता है— बिना उनकी इच्छा के पीपल का पत्ता तक नहीं डोल सकता।

डाक्टर– यदि ईश्वर की ही सब इच्छा है तो आप बातचीत क्यों करते हैं ? लोगों को ज्ञान देने के लिए इतनी बातें क्यों कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– कहलवाते हैं, इसलिए कहता हूँ। मैं यंत्र हूँ, वे यंत्री हैं।

डाक्टर– आप अपने को यंत्र कह रहे हैं। यह ठीक है। या

---

* यहाँ पर डाक्टर मथुरबाबू के सम्बन्ध में कह रहे हैं, क्योंकि मथुर बाबू मछुआ जाति के थे।

चुप ही रहिए, क्योंकि सब कुछ तो ईश्वर ही हैं।

गिरीश—(डाक्टर के प्रति)—महाशय, आप कुछ भी सोचें, परन्तु वे कराते हैं इसीलिए हम लोग करते हैं। क्या उस सर्वशक्तिमान ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल कोई एक पग भी चल सकता है?

डाक्टर—स्वाधीन इच्छा भी तो उन्होंने दी है। मैं यदि चाहूँ तो ईश्वर-चिन्ता कर भी सकता हूँ, और न चाहूँ तो नहीं भी कर सकता।

गिरीश—आप ईश्वर की चिन्ता या सत्कर्म इसलिए करते हैं कि वह आपको अच्छा लगता है। अतएव वह कर्म आप स्वयं नहीं करते, वह अच्छा लगना ही आपसे करवाता है।

डाक्टर—क्यों, मैं कर्तव्य समझकर करता हूँ——

गिरीश—वह भी इसलिए कि मन कर्तव्य कर्म करना पसन्द करता है——

डाक्टर—सोचो कि एक लड़का जला जा रहा है। उसे बचाने के लिए जाना कर्तव्य के विचार से ही तो होता है।

गिरीश—बच्चे को बचाते हुए आपको आनन्द मिलता है, इसलिए आप आग में कूद पड़ते हैं, आनन्द आपको खींच ले जाता है। मिठाई का मज़ा लेने के लिए जैसे पहले अफीम खाना। (सब हँसते हैं।)

श्रीरामकृष्ण—कर्म करने के पहले उस पर विश्वास चाहिए, उसके साथ वस्तु की याद करने पर आनन्द होता है, तभी काम करने में उस आदमी की प्रवृत्ति होती है। मिट्टी के नीचे एक घड़े में अशर्फियाँ भरी हैं, यह ज्ञान—यह विश्वास पहले होना चाहिए। घड़े को सोचने से ही आनन्द मिलता है—फिर खोदा जाता है। खोदते हुए घड़े में कुदाल के लगने पर जब ठनकार

होती है, तब आनन्द और भी बढ़ जाता है। फिर जब घड़े की कोर दीख पड़ती है तब आनन्द और बढ़ता है। इसी तरह आनन्द बढ़ता ही जाता है। मैंने स्वयं ठाकुरबाड़ी के बरामदे में खड़े होकर देखा है– साधुओं ने गाँजा मलकर तैयार किया कि चिलम पर चढ़ाते चढ़ाते उनका आनन्द उमड़ने लगा।

डाक्टर– परन्तु आग गरमी भी पहुँचाती है और प्रकाश भी। प्रकाश से पदार्थ दीख तो पड़ते हैं, परन्तु गरमी देह को जलाती है। कर्तव्य करते हुए आनन्द ही आनन्द मिलता हो सो बात नहीं, कष्ट भी होता है।

मास्टर–(गिरीश से)– पेट में दाना पड़ता है तो मार सहने के लिए पीठ भी मजबूत रहती है। कष्ट में भी आनन्द है।

गिरीश–(डाक्टर से)– कर्तव्य रूखा है।

डाक्टर– क्यों ?

गिरीश– तो सरस सही ! (सब हँसते हैं)

मास्टर– फिर हम उसी बात पर आ गए–– मिठाई के लोभ से अफीम खाना !

गिरीश–(डाक्टर से)– कर्तव्य सरस है, अन्यथा आप वह करते क्यों हैं ?

डाक्टर–मन की गति उसी ओर है।

मास्टर–(गिरीश से)– अभागा स्वभाव खींचता है। (हास्य) अगर एक ही ओर मन का झुकाव रहा तो स्वाधीन इच्छा फिर कहाँ रही ?

डाक्टर– मैं बिलकुल स्वाधीन नहीं कहता। गौ खूँटी से बँधी है, रस्सी की पहुँच जहाँ तक है, वहीं तक वह स्वाधीन है। परन्तु जहाँ उसे रस्सी का खिचाव लगा तो––

श्रीरामकृष्ण– यह उपमा यदु मल्लिक ने भी दी थी। (छोटे नरेन्द्र से) क्या यह अंग्रेजी में है ?

(डाक्टर से) "देखो, ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं। 'वे यंत्री हैं, मैं यंत्र हूँ", अगर किसी में यह विश्वास आ जाय, तब तो वह जीवन्मुक्त हो गया। 'हे ईश्वर, अपना काम तुम खुद करते हो, परन्तु लोग कहते हैं मैं करता हूँ।' यह किस तरह, जानते हो ? वेदान्त में एक उपमा है,— एक हण्डी में तुमने चावल चढ़ाए, आलू और भटे उसमें छोड़ दिए। कुछ देर बाद आलू, भटे और चावल उछलने लगते हैं, मानो अभिमान कर रहे हों कि 'मैं उछलता हूँ— मैं कूदता हूँ।' छोटे बच्चे आलू और परवरों को उछलते हुए देखकर उन्हें जीवित समझ लेते हैं। किन्तु जो जानते हैं वे समझा देते हैं कि आलू, भटे और परवरों में जान नहीं है, वे खुद नहीं उछल रहे; हण्डी के नीचे आग जल रही है, इसलिए वे उछल रहे हैं; अगर लकड़ी निकाल ली जाय, तो फिर वे नहीं हिलते। उसी तरह जीवों का यह अभिमान कि 'मैं कर्ता हूँ,' अज्ञान से होता है। ईश्वर की ही शक्ति से सब में शक्ति है। जलती हुई लकड़ी निकाल लेने पर सब चुप हैं! कठपुतलियाँ बाजीगर के हाथ से तो खूब नाचती हैं; किन्तु हाथ से छोड़ देने पर वे हिलती-डुलती तक नहीं!

"जब तक ईश्वर के दर्शन न हों, जब तक उस पारसमणि का स्पर्श न किया जाय, तब तक 'मैं कर्ता हूँ' यह भ्रम रहेगा ही; 'मैं सत् कार्य कर रहा हूँ, मैं असत् कर्म कर रहा हूँ,' इस तरह की भूलें होंगी ही। यह भेद-बोध उन्हीं की माया है; और इस मिथ्या संसार को चलाने के लिए इस माया का प्रयोजन है। किन्तु विद्यामाया का आश्रय लेने पर, सत्-मार्ग को पकड़

लेने पर लोग उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। जो ईश्वर को प्राप्त कर लेता है, जो उनके दर्शन करता है वही माया को पार कर सकता है। 'वे ही एकमात्र कर्ता हैं, मैं अकर्ता हूँ' यह विश्वास जिसे है, वही जीवन्मुक्त है। यह बात मैंने केशव सेन से कही थी।"

गिरीश– (डाक्टर से) –स्वाधीन इच्छा का ज्ञान आपको कैसे हुआ ?

डाक्टर– यह युक्ति के द्वारा नहीं जानी गई–– मैं इसका अनुभव कर रहा हूँ।

गिरीश– हम तथा दूसरे लोग बिलकुल इसके विपरीत भाव का अनुभव करते हैं, अर्थात् यह कि हम परतंत्र हैं। (सब हँसते हैं)

डाक्टर– कर्तव्य में दो बातें हैं। एक तो कर्तव्य के विचार से उसे करने के लिए जाना, और दूसरा बाद में आनन्द का होना। परन्तु आरम्भिक अवस्था में ही आनन्द होगा यह सोचकर हम कर्म करने नहीं जाते। मुझे स्मरण है कि जब मैं छोटा था तब भोग की मिठाई में चीटियों को देखकर पुरोहित महाराज को बड़ी चिन्ता हो जाती थी। उन्हें पहले से ही मिठाइयों को देखकर आनन्द नहीं होता था। (हास्य) पहले तो उन्हें चिन्ता ही होती थी।

मास्टर–(स्वगत)– बाद में आनन्द मिलता है या साथ-साथ, यह कहना कठिन है। आनन्द के बल से यदि कार्य होता रहा तो स्वाधीन इच्छा फिर कहाँ रह गई ?

(५)

अहेतुकी भक्ति । श्रीरामकृष्ण का दास्य-भाव

श्रीरामकृष्ण– ये (डाक्टर) जो कुछ कह रहे हैं, इसका नाम

है अहेतुकी भक्ति। महेन्द्र सरकार से मैं कुछ चाहता नहीं—कोई और आवश्यकता भी नहीं है; महेन्द्र सरकार को देखकर ही मुझे आनन्द होता है, यही अहेतुकी भक्ति है। ज़रा आनन्द मिलता है तो क्या करूँ ?

"अहल्या ने कहा था, 'हे राम! यदि शूकर-योनि में मेरा जन्म हो तो उसके लिए भी कोई चिन्ता नहीं, परन्तु ऐसा करना कि तुम्हारे पादपद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति बनी रहे। मैं और कुछ नहीं चाहती।'

"रावण को मारने की बात याद दिलाने के लिए नारद अयोध्या में श्रीरामचन्द्र से मिले थे। सीता और राम के दर्शन कर वे स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से सन्तुष्ट होकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, 'नारद, तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ, अब कोई वर की प्रार्थना करो।' नारद ने कहा, 'राम, यदि मुझे वर दोगे ही तो यही वर दो कि तुम्हारे पादपद्मों में मेरी शुद्धा भक्ति बनी रहे, और ऐसा करो कि फिर कभी तुम्हारी भुवन-मोहनी माया में मुग्ध न हो जाऊँ।' राम ने कहा, 'और कोई वर लो।' नारद ने कहा, 'मैं और कुछ भी नहीं चाहता, मुझे केवल तुम्हारे चरण-कमलों में शुद्धा भक्ति चाहिए।'

"इनका भी वही हाल है, जैसे ईश्वर को ही देखने की प्रार्थना करते हैं; देह-सुख, धन और मान यह कुछ नहीं चाहते। इसी का नाम शुद्धा भक्ति है।

"आनन्द कुछ होता है ज़रूर, परन्तु वह विषय का आनन्द नहीं है। वह भक्ति और प्रेम का आनन्द है। शम्भू ने कहा था, 'आप मेरे यहाँ अक्सर आते हैं, और यदि असल में देखा जाय तो आप इसीलिए आते हैं कि आपको मुझसे बातचीत करने में

आनन्द आता है ।' हाँ, इतना आनन्द तो है ही ।

"परन्तु इससे बढ़कर एक और अवस्था है । तब साधक बालक की तरह इधर-उधर घूमता है—इसका कोई कारण नहीं । कभी एक पतिंगे को ही पकड़ने लगता है ।

(भक्तों से) "इनके (डाक्टर के) मन का भाव क्या है, तुमने समझा ? वह है ईश्वर से यह प्रार्थना कि 'हे ईश्वर, सत्कर्म में मेरी मति हो, असत् कर्म से बचा रहूँ ।'

"मेरी भी वही अवस्था थी । इसे दास्य-भाव कहते हैं । मैं 'माँ, माँ' कहकर इतना रोता था कि लोग खड़े हो जाते थे । मेरी इस अवस्था के बाद मुझे बिगाड़ने के लिए और मेरा पागलपन अच्छा कर देने के विचार से एक आदमी मेरे कमरे में एक वेश्या ले आया— वह सुन्दरी थी, आँखें बड़ी बड़ी थीं । मैं 'माँ, माँ' कहता हुआ कमरे से निकल आया और हलधारी को पुकारकर कहा, 'दादा, आओ देखो तो, मेरे कमरे में कोई है !' हलधारी तथा अन्य लोगों से मैंने कह दिया । इस अवस्था में 'माँ, माँ' कहकर मैं रोता था और कहता था, 'माँ ! मुझे बचा; माँ, मुझे निर्दोष कर दे; सत् को छोड़ असत् में मेरा मन न जाय ।' तुम्हारा यह भाव तो अच्छा है— सच्चा भक्ति-भाव है, दास-भाव ।

"यदि किसी में शुद्ध सत्त्व आता है, तो बस वह ईश्वर की ही चिन्ता करता रहता है, उसे फिर और कुछ अच्छा नहीं लगता । कोई कोई प्रारब्ध के बल से जन्म के आरम्भ से ही सत्त्व गुण पाते हैं । कामनाशून्य होकर यदि कर्म करने का यत्न किया जाय, तो अन्त में शुद्ध सत्त्व का लाभ होता हैं ।

"रजोमिश्रित सत्त्व गुण रहने से मन भिन्न भिन्न वस्तुओं की

ओर खिंच जाता है। तब 'मैं संसार का उपकार करूँगा' यह अभिमान उत्पन्न होता है। मनुष्य जैसे क्षुद्र प्राणी के लिए संसार का उपकार करना बहुत ही कठिन है, परन्तु निष्काम भाव से पर-हित करने में दोष नहीं। यहीं निष्काम कर्म कहलाता है। उस तरह के कर्म करने की चेष्टा करना बहुत अच्छा है। परन्तु सब लोग नहीं कर सकते, बड़ा कठिन है। सभी को कार्य करना ही होगा, दो-एक आदमी ही कर्मों को छोड़ सकते हैं। दो-एक आदमियों में ही शुद्ध सत्त्व देखने को मिलता है। यह निष्काम कर्म करते करते रज से मिला हुआ सत्त्व गुण क्रमशः शुद्धसत्त्व हो जाता है।

'शुद्धसत्त्व होने पर उनकी कृपा से ईश्वर-प्राप्ति भी होती है।

"साधारण आदमी शुद्धसत्त्व की यह अवस्था नहीं समझ सकते। हेम ने मुझसे कहा था, 'क्यों भट्टाचार्य महाशय, संसार में सम्मान की प्राप्ति ही मनुष्य-जीवन का मुख्य उद्देश्य है— क्यों ?'"

परिच्छेद २२

ज्ञान-विज्ञान विचार

(१)

श्रीरामकृष्ण तथा नरेन्द्र

नरेन्द्र आदि भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुरवाले मकान में बैठे हुए हैं। दिन के दस बजे का समय होगा--- २७ अक्टूबर १८८५, मंगलवार, आश्विन कृष्ण चतुर्थी।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र तथा मणि आदि से बातचीत कर रहे हैं।

नरेन्द्र– डाक्टर कल कैसी कैसी बातें कर गया !

एक भक्त– मछली काँटे में पड़ गई थी, पर डोर तोड़कर निकल गई।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– नहीं, तोड़ते समय काँटा उसके मुँह में रह गया। इसलिए वह लापता नहीं हो सकती; देखो, मरकर अभी उतराएगी।

नरेन्द्र ज़रा बाहर गए, फिर आएँगे। श्रीरामकृष्ण मणि के साथ पूर्ण के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– भक्त स्वयं को प्रकृति तथा भगवान को पुरुष मानकर उसे गले लगाने तथा चुम्बन करने की इच्छा करता है। पर यह तुम्हीं से कह रहा हूँ, सामान्य जीवों के सुनने की यह बात नहीं।

मणि– ईश्वर अनेक तरह से लीलायें करते हैं–– आपका रोग भी लीला ही है। इस रोग के होने के कारण यहाँ नये नये भक्त आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– भूपति कहता है, 'अगर आपको

रोग न होता और किराए से मकान लेकर सिर्फ यहाँ रहते होते तो लोग क्या कहते ? '—— अच्छा, डाक्टर की क्या ख़बर है ?

मणि– इधर दास्य-भाव मानता भी है—— 'तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ,' उधर यह भी कहता है कि आदमी के लिए ईश्वर की उपमा क्यों ले आते हो ?

श्रीरामकृष्ण– खैर, क्या आज भी तुम उसके पास जा सकोगे ?

मणि– ख़बर देने की अगर आवश्यकता होगी तो जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– भला बंकिम कैसा लड़का है ? यहाँ अगर वह न आ सके तो तुम्हीं उसे कुछ बता देना। उससे उसका आध्यात्मिक ज्ञान जागृत होगा।

नरेन्द्र पास आकर बैठे। नरेन्द्र के पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण नरेन्द्र बड़ी चिन्ता में पड़ गए हैं। माँ और छोटे भाई हैं, उनके भरण-पोषण की चिन्ता रहतीं है। नरेन्द्र कानून की परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे हैं। इधर कुछ दिन विद्यासागर के बहू-बाजार वाले स्कूल में अध्यापक रह चुके हैं। घर का कोई प्रबन्ध करके निश्चिन्त होने की चेष्टा में लगे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण को सब कुछ मालूम है। वे नरेन्द्र की ओर स्नेह की दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– अच्छा, केशव सेन से मैंने कहा, 'यदृच्छा लाभ' (जो कुछ मिल जाय)। जो बड़े घराने का लड़का है, उसे भोजन की चिन्ता नहीं रहती—— वह हर महीना जेब-खर्च पाता ही रहता है; परन्तु नरेन्द्र इतने ऊँचे घराने का है, उसके लिए कोई व्यवस्था क्यों नहीं हो जाती ? ईश्वर को मन दे देने पर वे सब व्यवस्था कर देते हैं।

मास्टर– जी हाँ, कर देंगे। अभी सब समय बीता भी तो नहीं।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु तीव्र वैराग्य होने पर यह सब हिसाब नहीं रहता। 'घर का कुल प्रबन्ध करके तब साधना करूँगा'–– तीव्र वैराग्य के होने पर इस तरह की बात पर ध्यान नहीं जाता। (सहास्य) गोसाईं ने लेक्चर दिया था। उसने कहा, 'दस हजार रुपये हों तो इतने से भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध आनन्द से हो सकता है और तब निश्चिन्त होकर ईश्वर का चिन्तन किया जा सकता है।'

"केशव सेन ने भी ऐसा ही इशारा किया था। उसने पूछा था–– 'महाराज, कोई कुछ पूँजी जोड़कर अगर ईश्वर की उपासना करे तो क्या वह कर सकता है या नहीं? और इससे क्या किसी तरह का पाप-स्पर्श हो सकता है?'

"मैंने कहा, तीव्र वैराग्य होने पर संसार कुआँ और आत्मीय साँप की तरह जान पड़ते हैं। तब 'रुपये इकट्ठा करूँगा,' 'विषय संचय करूँगा' यह हिसाब नहीं रह जाता। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु। ईश्वर को छोड़कर विषय की चिन्ता!

"एक स्त्री के ऊपर कोई बड़ा शोक आ पड़ा। पहले उसने अपनी नथ नाक से उतारकर सावधानी से कपड़े में लपेटकर बाँध ली, और फिर लगी रोने 'अरी मेरी मैया–– मुझे यह क्या हुआ?'–– और यह कहकर पछाड़ खाकर गिर पड़ी,–– परन्तु वह भी सावधानी से कि कहीं बँधी हुई नथ टूट न जाय!"

सब हँस रहे हैं। नरेन्द्र पर ये बातें तीर की तरह चोट करने लगीं–– वे एक ओर लेट रहे। उनके मन की अवस्था समझकर मास्टर ने हँसकर कहा, 'लेट क्यों रहे हो?'

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से, सहास्य)– यहाँ मुझे उस स्त्री की याद आती है जो अपने बहनोई के साथ रहने में लाज के

कारण मरी जाती थी। उसे यह समझ में ही नहीं आता था कि जब उसे इतनी शरम है तो अन्य स्त्रियों को, जो पर-पुरुषों के साथ रहती हैं, कैसे शरम नहीं लगती। वह कहती थी, 'आखिर बहनोई तो अपने ही घर का आदमी है, परन्तु फिर भी तो मैं शरम से मरी जाती हूँ।— और इन औरतों की हिम्मत कैसे पड़ती है कि ये दूसरे आदमियों के साथ रहें!'

मास्टर खुद संसार में हैं, उसके लिए उन्हें लज्जित होना चाहिए। वैसा न होकर वे नरेन्द्र पर हँस रहे हैं। अपना दोष कोई नहीं देखता, दूसरों के दोष देखने के लिए सब दौड़ पड़ते हैं, यही बात श्रीरामकृष्ण के वाक्य से सूचित हो रही है। इसीलिए उन्होंने उस स्त्री की बात चलाई जिसने दूसरी स्त्रियों के तो दोष देखे थे, यद्यपि वह स्वयं अपने बहनोई के साथ रहकर चरित्र-भ्रष्ट हो गई थी।

नीचे एक वैष्णव गा रहा था। गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने वैष्णव को कुछ पैसे देने के लिए कहा। एक भक्त नीचे गया। बाद में श्रीरामकृष्ण ने पूछा, 'कितने पैसे दिए?' उन्हें जब मालूम हुआ कि उस भक्त ने सिर्फ दो ही पैसे दिए तो वे बोले, "दो ही पैसे? हाँ, ठीक है। बड़ी मेहनत के रुपये हैं— मालिक की कितनी खुशामद करके उसने कमाया होगा! — अरे, मैंने सोचा था, कम से कम चार आने तो देगा!"

छोटे नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण से कहा था, "मैं यंत्र लाकर आपको दिखलाऊँगा, विद्युत्-प्रवाह कैसा होता है।" आज वह यंत्र लाकर उन्होंने दिखाया।

दिन के दो बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। अतुल एक मित्र मुनसिफ को ले आए हैं। शिकदारपारा के प्रसिद्ध

चित्रकार बागची आये हुए हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को कई चित्र भेंट किए।

श्रीरामकृष्ण आनन्दपूर्वक चित्र देख रहे हैं। षड्भुजा मूर्ति देखकर भक्तों से कह रहे हैं—'देखो, देखो, कैसा है यह चित्र!' भक्तों ने फिर से देखने के लिए अहल्या-पाषाणी का चित्र ले आने के लिए कहा। चित्र में श्रीरामचन्द्र को देखकर सब लोग प्रसन्न हो रहे हैं।

श्रीयुत बागची के केश स्त्रियों की तरह लम्बे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "बहुत दिन हो गए, दक्षिणेश्वर में एक संन्यासी को मैंने देखा था। उसके बाल नौ हाथ लम्बे थे। संन्यासी 'राधे-राधे' जपता था, कोई ढोंग उसमें न था।"

कुछ देर बाद नरेन्द्र गाने लगे। गाने वैराग्य के भावों से ओत-प्रोत हैं। श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से तीव्र वैराग्य और संन्यास की बातें सुनकर नरेन्द्र को मानो उद्दीपन हो गया है। नरेन्द्र गा रहे हैं—

गाना– क्या मेरे दिन विफल ही बीत जाएँगे?...

गाना– ऐ अन्तर्यामिनी माँ, तू अन्तर में सदा ही जाग रही है।...

गाना– हे दयामय, हे नाथ, यदि तुम्हारे चरण-सरोजों में मेरा मन-मधुप चिरकाल के लिए मग्न न हुआ तो मेरे जीवन में सुख ही क्या है?...

(२)

भजनानन्द में

साढ़े पाँच बजे का समय है। नरेन्द्र, श्याम वसु, गिरीश, डाक्टर दोकड़ी, छोटे नरेन्द्र, राखाल, मास्टर आदि बहुत से भक्त उपस्थित हैं। डाक्टर सरकार ने आकर नाड़ी देखी और औषधि

की व्यवस्था की ।

पीड़ा सम्बन्धी बातों के पश्चात्, श्रीरामकृष्ण के औषधि-सेवन के बाद डाक्टर सरकार ने कहा—'अब आप श्याम बाबू से बातचीत कीजिए, मैं अब चलूँ।' श्रीरामकृष्ण और एक भक्त बोल उठे, 'गाना सुनिएगा ?'

डाक्टर सरकार– आप गाते गाते जो नाचने लगते हैं वह भाव दबाना होगा ।

डाक्टर फिर बैठ गए । नरेन्द्र मधुर कण्ठ से गा रहे हैं । साथ ही तानपूरा और मृदंग बज रहे हैं ।

गाना– तुम्हारी रचना अपार चमत्कारों से भरी हुई है । यह विश्व-संसार शोभा का आगार हो रहा है ।...

गाना– माँ ! घोर अंधकार में तुम्हारी अरूपराशि चमक रही है ।...

डाक्टर मास्टर से कह रहे हैं—'यह गाना उनके (श्रीरामकृष्ण के) लिए खतरनाक है ।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से पूछा—'ये क्या कह रहे हैं ?' मास्टर ने कहा, 'डाक्टर को भय हो रहा है कि कहीं आपको भाव-समाधि न हो जाय ।'

कहते ही कहते श्रीरामकृष्ण भावस्थ हो रहें हैं । डाक्टर के मुँह की ओर हेर हाथ जोड़कर कह रहे हैं—'नहीं, नहीं, क्यों भाव होगा ?' परन्तु कहते ही कहते वे गंभीर भावसमाधि में मग्न हो गए । शरीर निश्चल और नेत्र स्थिर हो गए ! काठ के पुतले की तरह निर्वाक् बैठे हुए हैं ! बाह्य जगत् का ज्ञान लेश मात्र नहीं है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, सब अन्तर्मुख हैं । अब ये पहलेवाले मनुष्य नहीं दीख पड़ते । नरेन्द्र मधुर कण्ठ से

गा रहे हैं—

गाना— यह कैसी सुन्दर शोभा है ! तुम्हारा कैसा सुन्दर मुख देख रहा हूँ ! आज मेरे घर में हृदयनाथ आए हैं, प्रेम का फुहारा छूट रहा है।...

गाना— हे दयामय, हे नाथ, यदि तुम्हारे चरण-सरोजों में मेरा मन-मधुप चिरकाल के लिए मग्न न हुआ तो मेरे जीवन में सुख ही क्या है ?...

इस गीत को सुनकर डाक्टर मुग्ध हो अश्रुपुर्ण लोचनों से बोल उठे, 'अहा ! अहा !' नरेन्द्र ने पुनः गाया—

गाना— वह शुभ प्रभात कब आएगा जब मेरे हृदय में उस प्रेम का संचार होगा, जब मेरी कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी, मैं मधुर हरिनाम करता रहूँगा और आँखों से प्रेमाश्रु-धारा बह चलेगी ?...

(३)

ज्ञान-विज्ञान विचार। ब्रह्मदर्शन

श्रीरामकृष्ण को अब बाहरी संसार का ज्ञान हो गया है। गाना भी समाप्त हो गया। पण्डित, मूर्ख तथा आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के मन को मुग्ध करनेवाली उनकी बातचीत फिर होने लगी। सभी मनुष्य स्तब्ध हैं। सब लोग उस मुख की ओर एकटक देख रहे हैं। अब वह कठिन पीड़ा कहाँ है ? मुख अभी भी खिले हुए अरविंद के समान प्रफुल्ल है— मुख से मानो ईश्वरी ज्योति निकल रही है।

श्रीरामकृष्ण डाक्टर से कहने लगे— "लज्जा छोड़ो, ईश्वर का नाम लोगे, इसमें लज्जा क्या है ? लज्जा, घृणा और भय, इन तीनों के रहते ईश्वर नहीं मिलते। 'मैं इतना बड़ा आदमी,

और ईश्वर नाम लेकर नाचूँ ? यह बात जब बड़े बड़े आदमी सुनेंगे, तब मुझे क्या कहेंगे ? अगर वे कहें, अजी, डाक्टर तो अब ईश्वर का नाम लेकर नाचने लगा, तो यह मेरे लिए बड़ी ही लज्जा की बात होगी । ' इन सब भावों को छोड़ो । "

डाक्टर– मैं उस तरह का आदमी नहीं हूँ । लोग क्या कहेंगे, इसकी मुझे रत्ती भर परवाह नहीं ।

श्रीरामकृष्ण– इतना तो तुममें खूब है । (सब हँसते हैं)

' देखो, ज्ञान और अज्ञान के पार हो जाओ, तब उन्हें समझोगे । बहुत कुछ जानने का नाम है अज्ञान । पाण्डित्य का अहंकार भी अज्ञान है । एक ईश्वर ही सर्वभूतों में हैं, इस निश्चयात्मिका बुद्धि का नाम है ज्ञान । उन्हें विशेष रूप से जानने का नाम है विज्ञान । पैर में काँटा गड़ गया है, उसको निकालने के लिए एक दूसरे काँटे की जरूरत होती है । काँटे को काँटे से निकालकर फिर दोनों काँटे फेंक दिए जाते हैं । पहले अज्ञानरूपी काँटे को दूर करने के लिए ज्ञानरूपी काँटे को लाना होता है । इसके बाद ज्ञान और अज्ञान दोनों को ही फेंक देना पड़ता है; क्योंकि वे ज्ञान और अज्ञान से परे हैं । लक्ष्मण ने कहा था, ' राम, यह कैसा आश्चर्य है ! इतने बड़े ज्ञानी वशिष्ठ देव भी पुत्रों के शोक से विह्वल होकर रो रहे थे ! ' राम ने कहा, ' भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है; जिसे एक वस्तु का ज्ञान है, उसे अनेक वस्तुओं का भी ज्ञान है । जिसे उजाले का अनुभव है; उसे अँधेरे का भी है । ब्रह्म ज्ञान तथा अज्ञान से परे है; पाप और पुण्य, शुचिता और अशुचिता से परे है । ' "

यह कहकर श्रीरामकृष्ण रामप्रसाद के गाने की आवृत्ति करके कहने लगे--

"आ मन! चल टहलने चलें। काली-कल्पतरु के नीचे तुझे चारों फल पड़े मिल जाएँगे...।"

श्याम वसु– दोनों काँटों के फेंक देने पर फिर क्या रह जाएगा?

श्रीरामकृष्ण– नित्यशुद्धबोधरूपम्। यह तुम्हें भला कैसे समझाऊँ? अगर कोई पूछे कि तुमने जो घी खाया वह कैसा था, तो उसे किस तरह समझाया जाय? अधिक से अधिक इतना ही कह सकते हो कि घी जैसा होता है, वस वैसा ही था।

"एक स्त्री से उसकी एक सखी ने पूछा था, 'क्यों सखि, तेरा तो पति आया है, भला बता तो सही, पति के आने पर कैसा आनन्द मिलता है?' उस स्त्री ने कहा, 'यह तो तू तभी समझेगी जब तेरे भी स्वामी होगा; इस समय मैं तुझे भला कैसे समझाऊँ?' पुराण में है, भगवती जब हिमालय के यहाँ पैदा हुई तब माता ने गिरिराज को अनेक रूपों से दर्शन दिया। गिरीन्द्र ने सब रूपों के दर्शन करके भगवती से कहा, 'बेटी, वेद में जिस ब्रह्म की बात है, अब मुझे उस ब्रह्म के दर्शन हों।' तब भगवती ने कहा, 'पिताजी, अगर ब्रह्म के दर्शन करना चाहते हो तो साधुओं का संग करो।' ब्रह्म क्या वस्तु है यह मुख से नहीं कहा जा सकता। एक ने कहा था, 'सब जूठा हो गया है, पर ब्रह्म जूठा नहीं हुआ।' इसका अर्थ यह है कि वेदों, पुराणों, तंत्रों और शास्त्रों का मुख से उच्चारण करने के कारण वे सब जूठे हो गए हैं ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु ब्रह्म क्या वस्तु है, यह कोई अभी तक मुख से नहीं कह सका। इसीलिए ब्रह्म अभी तक जूठे नहीं हुए। सच्चिदानन्द के साथ क्रीड़ा और रमण कितने आनन्दपूर्ण हैं, यह मुख से नहीं कहा जा सकता। जिसे यह सौभाग्य मिला है, वही जानता है।"

(४)

पण्डित का अहंकार । पाप तथा पुण्य

श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर से फिर कहा– "देखो, अहंकार के बिना गए ज्ञान नहीं होता । मनुष्य मुक्त तभी होता है जब 'मैं' दूर हो जाता है । 'मैं' और 'मेरा'–– यही अज्ञान है । 'तुम' और 'तुम्हारा'––यही ज्ञान है । जो सच्चा भक्त है, वह कहता है, 'हे ईश्वर ! तुम्हीं कर्ता हो, तुम्हीं सब कुछ कर रहे हो, मैं तो बस यंत्र ही हूँ । मुझसे जैसा कराते हो, मैं वैसा ही करता हूँ । यह सब धन तुम्हारा है, ऐश्वर्य तुम्हारा है, संसार तुम्हारा है । तुम्हारा ही घर-परिवार है, मेरा कुछ भी नहीं, मैं दास हूँ । तुम्हारी जैसी आज्ञा होगी, उसी के अनुसार सेवा करने का मेरा अधिकार है । '

"जिन लोगों ने थोड़ी सी पुस्तकें पढ़ी हैं, उनमें अहंकार समा जाता है । कालीकृष्ण ठाकुर के साथ ईश्वरीय बातें हुई थीं । उसने कहा, 'वह सब मुझे मालूम है । ' मैंने कहा, 'जो दिल्ली हो आया है, क्या वह कहता फिरता है कि मैं दिल्ली हो आया–– मैं दिल्ली हो आया ?––क्या उसे इसके लिए घमण्ड हो सकता है ? जो बाबू है, क्या वह कहता फिरता है, मैं बाबू हूँ ? ' "

श्याम वसु– वे (कालीकृष्ण ठाकुर) आपको बहुत मानते हैं ।

श्रीरामकृष्ण– अजी क्या कहूँ, दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर की एक भंगिन को क्या ही अहंकार था ! उसकी देह में दो-एक गहने थे । वह जिस रास्ते से आ रही थी, उसी रास्ते से दो-एक आदमी उसकी बगल से निकल रहे थे । भंगिन ने उनसे कहा, 'ए, हट जा । ' तब फिर दूसरे आदमियों के अहंकार की बात क्या कहूँ !

श्याम वसु– महाराज, जब ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं तो फिर पाप का दण्ड कैसा ?

श्रीरामकृष्ण - तुम्हारी तो सुनार की-सी बुद्धि है !

नरेन्द्र-सुनार की बुद्धि अर्थात् calculating (बनियाई) बुद्धि ।

श्रीरामकृष्ण– अरे भाई, तू आम खा ले और प्रसन्न हो जा । बगीचे में कितने सौ पेड़ हैं, कितने हज़ार डालियाँ हैं, कितने कोटि पत्ते हैं, इन सब के हिसाब से तुझे क्या काम ? तू आम खाने के लिए आया है, आम खा जा । (श्याम वसु से) तुम्हें इस संसार में मनुष्य का शरीर ईश्वरप्राप्ति की साधना करने के लिए मिला है । ईश्वर के पाद-पद्मों में किस तरह भक्ति हो उसी की चेष्टा करो । तुम्हें इन सब वृथा बातों से क्या मतलब ? फिलॉसफी (दर्शन-शास्त्र) लेकर विचार करने से तुम्हारा क्या होगा ? देखो, आध पाव शराब से ही तुम्हें नशा होता है, फिर शराबवाले की दूकान में कितने मन शराब है, इसका हिसाब लगाकर क्या करोगे ?

डाक्टर– और ईश्वर की शराब अनन्त है । कुछ पता ही नहीं कि कितनी है !

श्रीरामकृष्ण– (श्याम वसु से)– ईश्वर को आममुख्तारी क्यों नहीं दे देते ? उन पर सारा भार छोड़ दो । अच्छे आदमी को अगर कोई भार दे दे, तो क्या वह कभी अन्याय कर सकता है ? पाप का दण्ड वे देंगे या नहीं यह वे जानें ।

डाक्टर– उनके मन में क्या है, यह वे जानें । आदमी हिसाब लगाकर क्या कहेगा ? वे हिसाब से परे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (श्याम वसु से)– तुम कलकत्तेवाले बस यही एक राग अलापते हो । तुम लोग यही कहा करते हो, 'ईश्वर में पक्षपात है, ' क्योंकि एक को उन्होंने सुख में रखा है, और दूसरे को दुःख में । ये मूर्ख खुद जैसे हैं, उनके स्वयं के भीतर जैसा है,

वैसा ही ये ईश्वर के भीतर भी देखते हैं।

"हेम दक्षिणेश्वर जाया करता था। मुलाकात होने पर ही मुझसे कहता था, 'क्यों भट्टाचार्य महाशय, संसार में एक ही वस्तु है---मान---क्यों ? ' मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ईश्वर-लाभ है, यह इने-गिने लोग ही कहते हैं।"

(५)

स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण

श्याम वसु– क्या कोई सूक्ष्म शरीर को दिखला सकता है ? क्या कोई यह दिखला सकता है कि वह शरीर बाहर चला जाता है ?

श्रीरामकृष्ण– ज़ो सच्चे भक्त हैं, उन्हें क्या गरज़ कि वे तुम्हें यह सब दिखलाएँ ? कोई साला माने या न माने, उनका इससे क्या वनता-बिगड़ता है ? उनमें इस तरह की इच्छा नहीं रहती कि कोई बड़ा आदमी उन्हें माने।

श्याम वसु– अच्छा, स्थूल देह, सूक्ष्म देह, इन सब में भेद क्या है?

श्रीरामकृष्ण– पंचभूत को लेकर जो देह है, वही 'स्थूल देह' है। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त को लेकर 'सूक्ष्म शरीर' है। जिस शरीर से ईश्वर का आनन्द मिलता है और ईश्वर से संभोग किया जाता है, वह 'कारण शरीर' है। तंत्रों में उसे 'भगवती तनु' कहा है। सब से अतीत है 'महाकारण' (तुरीय), यह मुख से नहीं कहा जा सकता।

"केवल सुनने से क्या होगा ? कुछ करो भी।

'भंग-भंग रटने से क्या होगा ? उससे क्या कभी नशा हो सकता है?

"भंग को कूटकर देह में लगाने से भी नशा नहीं होता। कुछ खाना चाहिए ! कौन सा सूत चालीस नम्बर का है, और कौन

सा इकतालीस नम्बर का, यह सब सूत का व्यवसाय बिना किए क्या कभी कहा जा सकता है? जिनका सूत का व्यवसाय है उनके लिए सूत की पहचान करना कोई कठिन बात नहीं। इसीलिए कहता हूँ, कुछ साधना करो, तब स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण किसे कहते हैं, यह समझ सकोगे। जब ईश्वर से प्रार्थना करोगे तब उनके पादपद्मों में केवल भक्ति की प्रार्थना करना।

"अहल्या के शापमोचन के बाद श्रीरामचन्द्र ने उससे कहा, 'तुम मुझसे कोई वर-याचना करो।' अहल्या ने कहा, 'राम, यदि वर देना ही है, तो यही वर दो कि चाहे शूकर-योनि में भी मेरा जन्म क्यों न हो, फिर भी तुम्हारे पादपद्मों में मेरा मन लगा रहे।'

"मैंने माता के पास एकमात्र भक्ति की प्रार्थना की थी। श्री माता के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर हाथ जोड़ मैंने कहा था—'माँ, यह लो तुम अपना ज्ञान और यह लो अज्ञान, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपनी शुचिता और यह लो अपनी अशुचिता, मुझे शुद्धा भक्ति दो; यह लो अपना पाप और यह लो अपना पुण्य; यह लो अपना भला और यह लो अपना बुरा, मुझे शुद्धा भक्ति दो। यह लो अपना धर्म और यह लो अपना अधर्म, मुझे शुद्धा भक्ति दो।'

"धर्म अर्थात् दानादि कर्म; धर्म को लेने ही से अधर्म को लेना होगा, पुण्य को लेने ही से पाप को लेना होगा, ज्ञान को लेने ही से अज्ञान को लेना होगा, शुचिता को लेने ही से अशुचिता को भी लेना होगा। जैसे, जिसे उजाले का ज्ञान है, उसे अंधेरे का भी ज्ञान है। जिसे एक का ज्ञान है, उसे अनेक का भी ज्ञान है। जिसे भले का विचार है, उसे बुरे का भी है।

"यदि शूकर का माँस ख़ाकर भी ईश्वर के पादपद्मों में किसी की भक्ति हो, तो वह पुरुष धन्य हैं। औरयदि हविष्य भोजन करके भी संसार में आसक्ति रही——"

डाक्टर— तो वह अधम है। यहाँ एक बात कहता हूँ। बुद्ध ने शूकर-माँस खाया था। शूकर-माँस खाया नहीं कि पेट में शूल होने लगा! इस बीमारी में बुद्ध अफीम का सेवन करते थे! निर्वाण-सिर्वाण जानते हो क्या है?—— बस अफीम खाकर पीनक में पड़े रहते थे—— बाह्य संसार का कुछ ज्ञान नहीं रहता था,—— यही निर्वाण हो गया!

बुद्धदेव के निर्वाण की यह अनोखी व्याख्या सुनकर सब लोग हँसने लगे। फिर दूसरी बातचीत होने लगी।

(६)

गृहस्थ तथा निष्काम कर्म। थियॉसफी

श्रीरामकृष्ण— (श्याम वसु से)— संसार-धर्म में दोष नहीं; परन्तु ईश्वर के पाद-पद्मों में मन रखकर, कामनारहित होकर कर्म करना चाहिए। देखो न, अगर किसी की पीठ में एक फोड़ा हो जाता है तो सब के साथ वह बातचीत भी करता है और घर के काम-काज भी देखता है, परन्तु उसका मन फोड़े पर ही लगा रहता है; इसी तरह, घर का कार्य करते हुए भी ईश्वर की ओर मन को लगाए रखना चाहिए।

"संसार में बदचलन औरत की तरह रहो। उसका मन तो यार पर लगा रहता है, पर वह घर का सब काम-काज संभालती रहती है। (डाक्टर से) समझे?"

डाक्टर— वह भाव अगर न रहे तो कैसे समझूँगा?

श्याम वसु— कुछ तो अवश्य ही समझते हो! (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए)– और यह व्यवसाय (समझने का) वे बहुत दिनों से कर रहे हैं ! क्यों जी ? (सब हँसते हैं)

श्याम वसु– महाराज ! थियॉसफी का क्या मत है ?

श्रीरामकृष्ण– असल बात यह है कि जो लोग चेला बनाते फिरते हैं, वे हलके दर्जे के हैं । और जो लोग सिद्धि अर्थात् अनेक तरह की शक्तियाँ चाहते हैं, वे भी हलके दर्जे के हैं । जैसे, पैदल गंगा पार कर जाना, यह सिद्धि है । दूसरे देश में एक आदमी क्या बातचीत कर रहा है, यह कह सकना एक सिद्धि है । इन सब आदमियों के लिए ईश्वर पर भक्ति होना बहुत कठिन है ।

श्याम वसु– परन्तु वे लोग (थियॉसफी सम्प्रदायवाले) हिन्दू धर्म को फिर से स्थापित करने की चेष्टा कर रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– मुझे उनके सम्बन्ध में काफी ज्ञान नहीं है ।

श्याम वसु–मृत्यु के बाद जीवात्मा कहाँ जाता है—चन्द्रलोक में, नक्षत्रलोक में या अन्य किसी लोक में—ये सब बातें थियॉसफी से समझ में आ जाती हैं ।

श्रीरामकृष्ण– होगा ! मेरा भाव कैसा है, जानते हो ? हनुमान से एक आदमी ने पूछा था, 'आज कौन सी तिथि है ?' हनुमान ने कहा, 'मैं वार, तिथि, नक्षत्र, यह कुछ नहीं जानता, मैं तो बस श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया करता हूँ ।' मेरा भी ठीक ऐसा ही भाव है ।

श्याम वसु– उन लोगों का 'महात्माओं' के अस्तित्व में विश्वास है । क्या आपका भी है ?

श्रीरामकृष्ण– यदि तुम मेरी बात पर विश्वास करो तो हाँ, मुझे है । परन्तु ये सब बातें इस समय रहने दो । मेरी बीमारी कुछ अच्छी होने पर फिर आना । यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास

है तो तुम्हारे लिए ऐसा कोई मार्ग निकल आएगा जिससे तुम्हें मन की शान्ति प्राप्त हो जाएगी। तुम तो देखते ही हो कि मैं धन या वस्त्र की कोई भेंट स्वीकार नहीं करता। यहाँ कोई अन्य भेंट भी नहीं देनी पड़ती, इसीलिए यहाँ इतने लोग आया करते हैं! (सब हँसते हैं)

(डाक्टर से) "यदि तुम बुरा मत मानो तो तुमसे एक बात कहूँ।— यह सब तो बहुत किया— रुपया, मान, लेक्चर; अब थोड़ासा मन ईश्वर पर भी लगाओ। और यहाँ कभी कभी आया करो। ईश्वर की बातें सुनकर उद्दीपन होगा।"

कुछ देर बाद डाक्टर चलने के लिए उठे। इसी समय श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष आ गए और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के चरणों की धूलि धारणकर आसन ग्रहण किया। उन्हें देखकर डाक्टर को प्रसन्नता हुई, वे फिर बैठ गए।

डाक्टर– मेरे रहते रहते ये नहीं आएँगे! ज्योंही चलने का समय आया कि आकर हाज़िर हो गए! (सब हँसते हैं)

गिरीश के साथ डाक्टर की विज्ञान-सभा (Science Association) सम्बन्धी बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण– मुझे एक दिन वहाँ ले चलोगे?

डाक्टर– आप अगर वहाँ जाएँगे तो ईश्वर की आश्चर्यपूर्ण कारीगरी देखकर बेहोश हो जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण– हूँ?

डाक्टर– (गिरीश से)–और चाहे सब काम करो, पर ईश्वर समझकर इनकी पूजा न किया करो। ऐसे भले आदमी को क्यों बिगाड़ रहे हो?

गिरीश– क्या करूँ महाशय? जिन्होंने इस संसार-समुद्र और

सन्देह-सागर से मुझे पार किया, उन्हें और क्या मानूँ बतलाइये। उनमें ऐसी एक भी चीज़ नहीं है जिसे मैं पवित्र न मानूँ। उनकी विष्ठा तक को तो मैं गन्दी नहीं मानता।

डाक्टर– मैं विष्ठा के लिए नहीं कहता; मुझे भी उससे घृणा नहीं है। एक दिन एक दूकानदार अपने बच्चे को दिखाने मेरे पास आया था। उस बच्चे ने वहीं टट्टी कर डाली। सब लोग कपड़े से नाक ढकने लगे। मैं वहीं बाजू से आध घन्टे बैठा रहा, पर नाक में कपड़ा तक न लगाया। फिर, जब मेहतर मैले की टोकरी लिए मेरे पास से निकल जाता है, तब भी मैं अपना नाक नहीं ढकता। मैं जानता हूँ, वह जो है मैं भी वही हूँ— मुझमें और उसमें कोई अंतर नहीं। तब फिर उस पर क्यों घृणा करूँ? क्या मैं इनके पैरों की धूलि नहीं ले सकता?— यह देखो— (श्रीरामकृष्ण की पद-धूलि धारण करते हैं।)

गिरीश– इस शुभ मुहूर्त पर देवदूत भी बधाई दे रहे हैं!

डाक्टर– तो पैरों की धूल लेने में इतना आश्चर्य क्या है? मैं तो सब के पैरों की धूल ले सकता हूँ। दीजिए, दीजिए— (सब के पैरों की धूलि लेते हैं।)

नरेन्द्र– (डाक्टर से)– इन्हें हम लोग ईश्वर की तरह मानते हैं। जैसे उद्भिद् और जीव-जन्तुओं के बीच में कुछ ऐसे जीव-धारी होते हैं जिन्हें उद्भिद् या जन्तु बतलाना मुश्किल है, उसी तरह नर-लोक और देव-लोक के बीच में एक ऐसा स्थल है जहाँ यह बतलाना कठिन है कि यह व्यक्ति मनुष्य है या ईश्वर।

डाक्टर– अजी, ईश्वर की बात पर उपमा नहीं काम करती।

नरेन्द्र– मैं ईश्वर तो कह नहीं रहा, ईश्वर-तुल्य मनुष्य कह रहा हूँ।

डाक्टर– अपने इस तरह के भावों को दबा रखना चाहिए, खोलना अच्छा नहीं। मेरा भाव किसी ने नहीं समझा। मेरे परम मित्र मुझे घोर निर्दयी समझते हैं। और तुम्हीं लोग शायद एक दिन मुझे जूतों से मारकर भगा दोगे।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– यह क्या कहते हो ? ऐसा मत कहो। ये लोग तुम्हें कितना प्यार करते हैं ! नववधू जिस उत्सुकता से शयन-गृह में पति की प्रतीक्षा करती है, उसी उत्सुकता से ये लोग तुम्हारे आने की बाट जोहते रहते हैं !

गिरीश–(डाक्टर से)– सब लोगों की आप पर अत्यन्त श्रद्धा है।

डाक्टर– मेरा लड़का, यहाँ तक कि मेरी स्त्री भी मुझे निष्ठुर हृदय का मनुष्य समझती है। मेरा दोष केवल इतना ही है कि मैं किसी के पास अपने भाव प्रकट नहीं होने देता।

गिरीश– तब तो महाशय, आपके लिए यह अच्छा है कि आप अपने हृदय के कपाट खोल दें–– कम से कम अपने मित्रों पर कृपा करके–– यह सोचकर कि वे आपकी थाह नहीं पा रहे हैं।

डाक्टर– अजी कहूँ क्या, तुम्हारे से भी मेरा भाव अधिक उमड़ चलता है। (नरेन्द्र से) मैं एकान्त में आँसू बहाया करता हूँ।

(श्रीरामकृष्ण से) "अच्छा, भाव के आवेश में तुम दूसरों की देह पर पैर रख देते हो, यह अच्छा नहीं।"

श्रीरामकृष्ण– मुझे यह ज्ञान थोड़े ही रहता है कि मैं किसी की देह पर पैर रख रहा हूँ !

डाक्टर– वह अच्छा नहीं, इतना तो बोध होता होगा ?

श्रीरामकृष्ण– भावावेश में मुझे क्या होता है, यह तुमसे कैसे

कहूँ ? उस अवस्था के बाद सोचता हूँ कि शायद इसीलिए मुझे रोग हो रहा है। ईश्वर के भावावेश में मुझे उन्माद हो जाता है। उन्माद में इस तरह हो जाता है; मैं क्या करूँ ?

डाक्टर– ये (श्रीरामकृष्ण) मान गए। अपने कार्य के लिए ये पश्चात्ताप कर रहे हैं। यह कार्य अन्यायपूर्ण है, यह ज्ञान भी इन्हें है।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– तू तो बड़ा चंट है, इसका अर्थ इन्हें समझा क्यों नहीं देता ?

गिरीश– (डाक्टर से)– महाशय, आपने समझने में भूल की है। उन्हें इस बात का दुःख नहीं है कि उन्होंने समाधि-अवस्था में भक्तों के शरीर को स्पर्श किया। उनका स्वयं का शरीर नितान्त शुद्ध तथा पापरहित है। वे जो दूसरों को इस प्रकार छूते हैं, यह उन्हीं लोगों के कल्याणार्थ है। कभी कभी उनके मन में यह बात उठती है कि शायद उन लोगों के पाप अपने ऊपर ले लेने के कारण ही उन्हें यह शारीरिक कष्ट हुआ हो।

"आप अपनी ही बात सोचिए। एक बार आप को उदरशूल हुआ था। उस समय क्या आप दुःखित नहीं होते थे कि रात को इतनी इतनी देर तक जगकर क्यों पढ़ा ? परन्तु इसका अर्थ क्या यह हुआ कि रात को देर तक पढ़ना कोई बुरी बात है ? इसी प्रकार वे (श्रीरामकृष्ण) भी, सम्भव है, दुःखित हों कि वे रुग्ण हैं। परन्तु उससे उनके मन में यह भाव नहीं आता कि दूसरों के कल्याण के लिए उन्होंने उन लोगों को जो स्पर्श किया वह ठीक न था।"

डाक्टर कुछ लज्जित से हुए और गिरीश से कहा, 'मैं तुमसे हार गया, अपनी चरण-धूलि मुझे लेने दो।' (गिरीश के पैरों

की धूल लेते हैं) (नरेन्द्र से) 'कोई कुछ भी कहे, गिरीश की बुद्धिमत्ता को मानना पड़ता है।'

नरेन्द्र– (डाक्टर से)– एक बात और देखिए। एक वैज्ञानिक आविष्कार के लिए आप अपने जीवन का उत्सर्ग कर सकते हैं, उस समय अपने शरीर और सुख:दुख पर ध्यान भी न देंगे परन्तु ईश्वर-सम्बन्धी विज्ञान सब विज्ञानों में बड़ा है। तब क्या यह उनके (श्रीरामकृष्ण के) लिए स्वाभाविक नहीं है कि वे ईश्वर की प्राप्ति के लिए अपना शरीर और स्वास्थ्य भी लगा दें?

डाक्टर– जितने भी धर्माचार्य हुए हैं–– ईशु, चैतन्य, बुद्ध, मुहम्मद इन सब में अन्त अन्त में अहंकार आ गया था–– कहा। 'जो कुछ मैं कहता हूँ, वही ठीक है।' कैसा आश्चर्यजनक!

गिरीश– (डाक्टर से)– महाशय, वही दोष आप पर भी लागू है। आप इन सब पर अहंकार का दोष लगा रहे हैं; आप उनमें बुराई देख रहे हैं। बस इसीलिए तो आप पर भी अहंकार का दोष लगाया जा सकता है।

डाक्टर चुप हो गए।

नरेन्द्र– (डाक्टर से)– इन्हें जो हम लोग पूजते हैं, वह पूजा मानो ईश्वर की ही पूजा है।

इन बातों को सुनकर श्रीरामकृष्ण बालक की तरह हँस रहे हैं।

परिच्छेद २३

संसारी लोगों के प्रति उपदेश

(१)

' आम खाओ '

आज बृहस्पतिवार है । आश्विन की कृष्णा षष्ठी, २९ अक्टूबर, १८८५ । श्रीरामकृष्ण बीमार हैं । श्यामपुकुर में हैं । डाक्टर सरकार चिकित्सा कर रहे हैं । उनका मकान शाँखारिटोला में है । श्रीरामकृष्ण की हालत प्रति दिन कैसी रहती है, इसकी खबर लेकर डाक्टर के यहाँ रोज आदमी भेजा जाता है । दिन के दस बजे का समय होगा, कलकत्ते में डा. सरकार के मकान पर मास्टर श्रीरामकृष्ण की हालत बताने के लिए आ पहुँचे ।

डाक्टर– देखो, डा. बिहारी भादुड़ी की एक धुन है ! कहता है, गटे (एक विक्यात जर्मन लेखक) की 'स्पिरिट' (सूक्ष्म शरीर) निकल गई और गटे स्वयं उसे देख रहा था ! कितने आश्चर्य की बात है !

मास्टर– श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, इन सब बातों से हमें क्या मतलब ? हम लोग ससार में इसलिए आए हैं कि ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति हो । वे कहते हैं, एक आदमी एक बगीचे में आम खाने के लिए गया था । वह एक कागज़ और पेन्सिल लेकर कितने पेड़ हैं, कितनी डालियाँ हैं, कितने पत्ते हैं, गिन-गिनकर लिखने लगा । बगीचे के एक आदमी से उसकी भेंट हुई । उस आदमी ने पूछा, ' यह तुम क्या कर रहे हो ?—और यहाँ तुम आए भी क्यों ? ' तब उसने कहा, ' यहाँ कितने पेड़ हैं, कितनी डालियाँ हैं, कितने पत्ते हैं, यही गिन रहा हूँ । यहाँ आम खाने

के लिए आया हूँ।' बगीचे के आदमी ने कहा,'आम खाने आए हो तो आम खा जाओ,— कितने पत्ते हैं, कितनी डालियाँ हैं, इन सब बातों से तुम्हें क्या काम ?'

डाक्टर– परमहंस ने सार पदार्थ ग्रहण किया है।

फिर डाक्टर अपने होमिओपैथिक अस्पताल के सम्बन्ध में बहुत सी बातें कहने लगे। कितने रोगी रोज आते हैं उनकी तालिका दिखलाई, और कहा, 'पहले पहल डाक्टरों ने मुझे निरुत्साहित कर दिया था। वे लोग अनेक मासिक पत्रों में भी मेरे विरोध में लिखते थे'— आदि।

डाक्टर गाड़ी पर बैठे। साथ मास्टर भी चढ़े। डाक्टर रोगियों को देखते हुए जाने लगे। पहले चोरबागान, फिर माथाघसा गली, फिर पथरिया घट्टा, सब जगह के रोगियों को देखकर श्रीरामकृष्ण को देखने जाएँगे। डाक्टर पथरिया घट्टा में ठाकुरों के एक मकान में गए। वहाँ कुछ देर हो गई। गाड़ी में आकर फिर गप्प लड़ाने लगे।

डाक्टर– इस बाबू के साथ मेरी श्रीरामकृष्णदेव के बारे में बातचीत हुई, थियॉसफी की बातचीत हुई और फिर कर्नल अलकट की। इस बाबू से श्रीरामकृष्णदेव नाराज़ रहते हैं। इसका कारण जानते हो ? यह बाबू कहता है, 'मैं सब जानता हूँ।'

मास्टर– नहीं, नाराज क्यों होंगे ? परन्तु इतना मैंने भी सुना है कि एक बार भेंट हुई थी। श्रीरामकृष्णदेव ईश्वर की बातचीत कर रहे थे। तब इन्होंने कहा था, 'हाँ, यह सब मैं जानता हूँ।'

डाक्टर– इस बाबू ने विज्ञान परिषद को ३२५००) का दान दिया है।

गाड़ी चलने लगी। बड़ाबाजार होकर लौट रही है। डाक्टर

श्रीरामकृष्ण की सेवा के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

डाक्टर– तुम लोगों की क्या यह इच्छा है कि इन्हें दक्षिणेश्वर भेज दिया जाय ?

मास्टर– नहीं, इससे भक्तों को बड़ी असुविधा होगी। कलकत्ते में रहने से हर समय आना-जाना लगा रह सकता है–– देखने में सुविधा होती है।

डाक्टर– यहाँ खर्च तो बहुत हो रहा होगा।

मास्टर– इसके लिए भक्तों को कोई कष्ट नहीं है। वे लोग जिस प्रकार भी सेवा हो सके यही चेष्टा कर रहे हैं। खर्च तो यहाँ भी है, वहाँ भी है। वहाँ जाने पर हम लोग हमेशा देख नहीं सकेंगे, यही एक चिन्ता की बात है।

(२)

संसार का स्वरूप तथा ईश्वरलाभ का उपाय

डाक्टर और मास्टर श्यामपुकुर के दुमंज़ले मकान में गए। उस मकान के ऊपर बाहरवाले बारामदे में दो कमरे हैं। एक की लम्बाई पूर्व और पश्चिम की ओर है, दूसरे की उत्तर और दक्षिण की ओर। इनमें से पहलेवाले कमरे में जाकर उन्होंने देखा, श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए हैं। पास में डाक्टर भादुड़ी तथा दूसरे भक्त हैं।

डाक्टर ने नाड़ी देखी। पीड़ा का सब हाल उन्होंने पूछकर मालूम किया।

क्रमशः ईश्वर के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी।

भादुड़ी– बात जानते हो, क्या है ? सब स्वप्नवत्।

डाक्टर– सब कुछ भ्रम है। परन्तु किसको भ्रम है और क्यों भ्रम है ? और सब लोग भ्रम जानकर भी फिर बातचीत क्यों

करते हैं ? 'ईश्वर सत्य है और उसकी सृष्टि मिथ्या है' इसमें मैं विश्वास नहीं कर सकता ।

श्रीरामकृष्ण– 'तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ' यह बड़ा सुन्दर भाव है । जब तक यह बोध है कि देह सत्य है, जब तक 'मैं' और 'तुम' का भाव बना हुआ है, तब तक सेव्य और सेवक भाव ही अच्छा है । 'मैं वही हूँ' इस तरह की बुद्धि अच्छी नहीं ।

"अच्छा, मैं तुम्हें एक और बात बताऊँ? किसी कमरे को चाहे तुम एक किनारे से देखो या कमरे के भीतर से देखो, कमरा वही है ।"

भादुड़ी– (डाक्टर से)– ये सब बातें वेदान्त में हैं । शास्त्र पढ़ो, तब समझोगे ।

डाक्टर– क्यों ? क्या ये शास्त्रों को पढ़कर विद्वान् हुए हैं ? और यही बात तो ये भी कहते हैं । क्या बिना शास्त्रों को पढ़े हो नहीं सकता ?

श्रीरामकृष्ण– अजी, पर मैंने कितने शास्त्र सुने हैं !

डाक्टर– केवल सुनने से बहुत सी भूलें रह सकती हैं । आपने केवल सुना ही नहीं !

फिर दूसरी बातचीत होने लगी ।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– मैंने सुना है, तुम कहते हो कि मैं (श्रीरामकृष्ण) पागल हूँ । इसी से ये लोग (मास्टर आदि की ओर इशारा करके) तुम्हारे पास नहीं जाना चाहते ।

डाक्टर– (मास्टर की ओर देखकर)– मैं इन्हें पागल क्यों कहने लगा ?

"परतु हाँ, इनके अहंकार की बात अवश्य कही थी । भला ये आदमियों को पैरों की धूल क्यों लेने देते हैं ?"

मास्टर– नहीं तो लोग रोने लगते हैं।

डाक्टर– वह उनकी भूल है, उन्हें समझाना चाहिए।

मास्टर– क्यों ? सर्वभूतों में क्या नारायण नहीं हैं ?

डाक्टर इसके लिए मुझे कोई आपत्ति नहीं। तो फिर तुम्हें सबके पैरों की धूल लेनी चाहिए।

मास्टर– किसी किसी मनुष्य में उनका प्रकाश अधिक है। पानी सब जगह है, परन्तु तालाब में, नदी में, समुद्र में वह अधिक है। आप फैराडे को जितना मानिएगा, उतना ही क्या किसी नये 'बैचेलर ऑफ साइन्स' (Bachelor of Science) को भी मानिएगा ?

डाक्टर– हाँ, यह मैं मानता हूँ। परन्तु ईश्वर को बीच में क्यों लाते हो ?

मास्टर–हम लोग एक दूसरे को नमस्कार इसलिए करते हैं कि सब के हृदय में ईश्वर का वास है। इन विषयों को आपने न तो अधिक पढ़ा है और न इन पर विचार ही किया है।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– किसी किसी वस्तु में उनका प्रकाश अधिक है। तुमसे तो मैंने कहा, सूर्य की किरणें मिट्टी में गिरती हैं तो प्रकाश एक तरह का होता है, पेड़ों में और तरह का, फिर आईने में एक दूसरा ही प्रकाश देखने को मिलता है। देखो न, प्रह्लाद आदि और ये लोग क्या बराबर हैं ? प्रह्लाद का जीवन और मन, सर्वस्व ही ईश्वर को अर्पित हो चुका था।

डाक्टर चुप हो रहे। सब लोग चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– देखो, यहाँ के लिए (स्वयं को इंगित करके) तुम्हारे हृदय में कुछ प्रेम का आकर्षण है। तुमने मुझसे कहा था कि तुम मुझे चाहते हो।

डाक्टर– तुम प्रकृति के शिशु हो, इसीलिए इतना कहता हूँ। लोग पैरों पर हाथ रखकर नमस्कार करते हैं, इससे मुझे कष्ट होता है। मैं सोचता हूँ, ऐसे भले आदमी को भी ये लोग बिगाड़ रहे हैं। केशव सेन को उसके चेलों ने ऐसे ही बिगाड़ा था। तुम्हें यह बतलाता हूँ, सुनो–

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारी बात मैं क्या सुनूँ? तुम लोभी, कामी और अहंकारी हो।

भादुड़ी– (डाक्टर से)–अर्थात् तुममें जीवत्व है। जीवों का धर्म यही है––रुपया-पैसा, मान-मर्यादा का लोभ, काम और अहंकार। सब जीवों का यही धर्म है।

डाक्टर– ऐसा अगर कहो तो बस तुम्हारे गले की बीमारी देखकर चला जाया करूँगा। दूसरी बातों की आवश्यकता न रह जाएगी। तर्क अगर करना होगा तो ठीक ही ठीक कहूँगा।

सब चुप हैं। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण फिर भादुड़ी से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– बात यह है कि ये (डा. सरकार) इस समय नेति-नेति करके अनुलोम में जा रहे हैं। जब विलोम में आएँगे तब सब मानेंगे।

"केले के खोल निकालते रहने से उसका माझा मिलता है।

"खोल एक अलग चीज़ है और माझा एक अलग चीज़। न माझा को कोई खोल कह सकता है और न खोल को माझा, परन्तु अन्त में आदमी देखता है, खोल का ही माझा है और माझे का ही खोल। चौबीसों तत्त्व वे ही हुए हैं और मनुष्य भी वे ही हुए हैं। (डाक्टर से) भक्त तीन तरह के हैं–– अधम भक्त, मध्यम भक्त और उत्तम भक्त। अधम भक्त कहता है, 'ईश्वर वहाँ दूर हैं;

सृष्टि अलग है, ईश्वर अलग हैं।' मध्यम भक्त कहता है, 'वे अन्तर्यामी हैं, वे हृदय में हैं।' वह हृदय के भीतर ईश्वर को देखता है। उत्तम भक्त देखता है, वे ही यह सब हुए हैं, चौबीसों तत्त्व वे ही हुए हैं। वह देखता है, ईश्वर ऊर्ध्व और अधोभाग में पूर्ण रूप से विराजमान हैं।

"तुम गीता, भागवत, वेदान्त आदि पढ़ो तो सब समझ सकोगे।

"क्या ईश्वर इस सृष्टि में नहीं हैं?"

डाक्टर– नहीं, वे सब जगह हैं, और इसीलिए उनकी खोज हो नहीं सकती।

कुछ देर बाद दूसरी बातें होने लगीं। श्रीरामकृष्ण को सदा ही ईश्वरभाव हुआ करता है, इससे बीमारी के बढ़ने की सम्भावना है।

डाक्टर–(श्रीरामकृष्ण से)– भाव को दबा रखिए। मुझे भी बहुत भाव होता है। तुमसे भी अधिक नाच सकता हूँ।

छोटे नरेन्द्र– (हँसकर)– भाव अगर कुछ और बढ़ जाय तब आप क्या करेंगे?

डाक्टर– उसके दबाने की मेरी शक्ति भी साथ ही बढ़ती जाएगी।

श्रीरामकृष्ण तथा मास्टर– अभी आप वैसा कह सकते हैं।

मास्टर– भाव होने पर क्या आप कह सकते हैं?

कुछ देर बाद रुपये-पैसे की बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– मैं तो इसके बारे में सोचता ही नहीं हूँ; और यह बात तुम भी जानते हो। क्यों ठीक है न? यह ढोंग नहीं है।

डाक्टर– मेरा भी यही हाल है। आपकी बात तो अलग।

मेरा रुपयों का सन्दूक तो खुला ही पड़ा रहता है।

श्रीरामकृष्ण– यदु मल्लिक भी इसी तरह दूसरे ख्याल में पड़ा रहता है। जब भोजन करने बैठता है, उस समय भी इतना अन्यमनस्क रहता है कि भला-बुरा जो कुछ सामने आया वही खा लेता है। किसी ने अगर कहा, 'इसे मत खाना, यह अच्छी नहीं लगती,' तब कहता है, 'क्या ? यह तरकारी अच्छी नहीं ? हाँ, सच ही तो है।'

क्या श्रीरामकृष्ण यह सूचित कर रहे हैं कि ईश्वर-चिन्तन से होनेवाली अन्यमनस्कता तथा विषय-चिन्तन से होनेवाली अन्यमनस्कता में बहुत अन्तर है ?

फिर भक्तों की ओर देख श्रीरामकृष्ण डाक्टर की ओर इशारा करके कह रहे हैं–– "देखो, सिद्ध होने पर चीज़ नरम हो जाती है। पहले ये बड़े कड़े थे, अभी भीतर से नरम हो रहे हैं।"

डाक्टर– सिद्ध होने पर चीज़ ऊपर से ही नरम होती है, परन्तु इस जीवन में मेरे लिए यह बात नहीं होने की! (सब हँसते हैं)

डाक्टर बिदा होनेवाले हैं। श्रीरामकृष्ण से कह रहे हैं––

"पैरों की धूल लोग लेते हैं, उन्हें क्या तुम मना नहीं कर सकते ?"

श्रीरामकृष्ण– क्या सब लोग अखण्ड सच्चिदानन्द को पकड़ सकते हैं ?

डाक्टर– इसलिए क्या जो मत ठीक है वह आप लोगों को नहीं बतलाएँगे ?

श्रीरामकृष्ण– लोगों की अलग अलग रुचि होती है। और फिर आध्यात्मिक जीवन के लिए सब लोग एक समान अधिकारी

नहीं होते।

डाक्टर– वह किस प्रकार ?

श्रीरामकृष्ण– रुचि-भेद किस तरह का है, जानते हो ? जिसे जो भोजन रुचता है तथा सह्य है, उसी प्रकार का भोजन वह करता है। कोई मछली का शोरवा पसन्द करता है, तो किसी को तली हुई मछलियाँ अच्छी लगती हैं, कोई उनकी तरकारी बनाकर खाता है, तो कोई पुलावा बनाकर। उसी तरह अधिकारी-भेद भी है। मैं कहता हूँ, पहले केले के पेड़ में निशाना साधो, फिर दीपक की लौ पर, बाद में उड़ती हुई चिड़िया पर।

शाम हो गई। श्रीरामकृष्ण ईश्वर-चिन्तन में मग्न हुए। इतनी पीड़ा है, परन्तु वह मानो एक ओर पड़ी रही। दो-चार अन्तरंग भक्त पास बैठे हुए सब देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण बड़ी देर तक इसी अवस्था में रहे।

श्रीरामकृष्ण प्राकृत अवस्था में आए। मणि पास बैठे हुए हैं। उनसे एकान्त में कह रहे हैं— "देखो, अखण्ड में मन लीन हो गया था। इसके बाद जो कुछ देखा, उसके सम्बन्ध में बहुत सी बातें हैं। डाक्टर को देखा, उसकी बन जाएगी–– कुछ दिन बाद। अब अधिक कुछ उससे कहने की आवश्यकता नहीं। एक आदमी को और देखा। मन में यह उठा कि उसे भी ले लूँ। उसकी बात तुम्हें बाद में बताऊँगा।"

श्रीयुत श्याम वसु, डा. दोकड़ी तथा और भी दो-एक आदमी आए हुए हैं। अब श्रीरामकृष्ण उन लोगों के साथ बातचीत कर रहे हैं।

श्याम वसु– अहा ! उस दिन वह बात जो आपने कही थी कितनी सुन्दर है !

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– वह कौनसी बात है ?

श्याम वसु– वही, ज्ञान और अज्ञान से पार हो जाने पर क्या रहता है, इसके सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा था।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– वह विज्ञान है। और अनेक प्रकार के ज्ञान का नाम अज्ञान है। सर्वभूतों में ईश्वर का वास है, इसका नाम है ज्ञान। विशेष रूप से जानने का नाम है विज्ञान। ईश्वर के साथ आलाप, उनमें आत्मीयों जैसा भाव अगर हो तो वह विज्ञान है।

"लकड़ी में आग है, अग्नितत्त्व है, इस बोध का नाम है ज्ञान। लकड़ी जलाकर रोटियाँ सेंककर खाना और खाकर हृष्ट-पुष्ट होना यह है विज्ञान।"

श्याम वसु– (सहास्य)– और वह काँटों की बात !

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– हाँ, जैसे पैर में काँटा लग जाने से उसे निकालने के लिए एक और काँटा ले आया जाता है। फिर पैर में गड़े हुए काँटे को निकालकर दोनों ही काँटे फेंक दिए जाते हैं। उसी तरह अज्ञान काँटे को निकालने के लिए ज्ञान-काँटे की खोज की जाती है। अज्ञान-नाश के बाद फिर ज्ञान और अज्ञान दोनों को फेंक देना होता है। तब विज्ञान की अवस्था आती है।

श्रीरामकृष्ण श्याम वसु पर प्रसन्न हुए हैं। श्याम वसु की उम्र अधिक हो गई है, अब उनकी इच्छा है, कुछ दिन ईश्वर-चिन्तन करें। श्रीरामकृष्णदेव का नाम सुनकर यहाँ आए हुए हैं। इसके पहले वे एक दिन और आए थे।

श्रीरामकृष्ण–(श्याम वसु से)–विषय-चर्चा बिलकुल छोड़ देना। ईश्वरीय बातचीत छोड़ और किसी विषय की बातचीत न करना।

विषयी आदमी को देखकर धीरे धीरे वहाँ से हट जाना। इतने दिन संसार करके तुमने देखा तो, सब खोखलापन है। ईश्वर ही वस्तु हैं, और सब अवस्तु। ईश्वर ही सत्य हैं, और सब दो दिन के लिए है। संसार में है क्या? बस गुठली चाटना ही है। उसे चाटने की इच्छा तो होती है, परन्तु गुठली में है क्या?

श्याम वसु– जी हाँ, आप सच कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– बहुत दिनों तक लगातार तुम विषय-कार्य करते रहे हो, अतएव इस समय इस गुल-गपाड़े में ध्यान और ईश्वर की चिन्ता न होगी। ज़रा निर्जन में रहना चाहिए। निर्जन के बिना मन स्थिर न होगा, इसीलिए घर से कुछ दूर पर ध्यान करने का स्थान तैयार करना चाहिए।

श्यामबाबू कुछ देर के लिए चुप हो रहे, जैसे कुछ सोचते हों।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– और देखो, तुम्हारे दाँत भी सब गिर गए हैं, अब दुर्गा-पूजा के लिए इतना उत्साह क्यों? (सब हँसते हैं)

"एक ने एक से पूछा, 'क्यों जी, तुम दुर्गा-पूजा अब क्यों नहीं करते?' उस आदमी ने उत्तर देते हुए कहा, 'भाई, अब दाँत नहीं रह गए, माँस खाने की शक्ति अब नहीं रह गई।' "

श्याम वसु– अहा! बातों में मानो मिश्री घुली हुई है!

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– इस संसार में बालू और शक्कर एक साथ मिले हुए हैं। चींटी की तरह बालू का त्याग करके चीनी को निकाल लेना चाहिए। जो चीनी ले सकता है, वही चतुर है। उनकी चिन्ता करने के लिए एक निर्जन स्थान ठीक करो–– ध्यान करने की जगह। तुम एक बार करो तो। मैं भी आऊँगा।

सब लोग कुछ देर के लिए चुप हैं।

श्याम वसु– महाराज, क्या जन्मान्तर है? क्या फिर जन्म लेना होगा?

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर से कहो, अन्तर से उन्हें पुकारो, वे सुझा देते हैं, सुझा देंगे। यदु मल्लिक से बातचीत करो तो वह बता देगा कि उसके कितने मकान हैं और कितने रुपयों के कम्पनी के कागज़ हैं। पहले से इन सब बातों को जानने की चेष्टा करना ठीक नहीं। पहले ईश्वर को प्राप्त करो, फिर जो कुछ जानने की तुम्हारी इच्छा होगी, वे तुम्हें बतला देंगे।

श्याम वसु– महाराज, मनुष्य संसार में रहकर न जाने कितने अन्याय, कितने पापकर्म करता है। क्या वह मनुष्य ईश्वर को पा सकता है?

श्रीरामकृष्ण– देह-त्याग से पहले अगर कोई ईश्वर-दर्शन के लिए साधना करे और साधना करते हुए, ईश्वर को पुकारते हुए यदि देह का त्याग हो, तो पाप उसे कब स्पर्श कर सकेगा? हाथी का स्वभाव है कि नहला देने के बाद भी वह देह पर धूल डालने लगता है, परन्तु महावत अगर नहलाकर उसे फीलखाने में बाँध दे, तो फिर हाथी देह पर धूल नहीं डाल सकता।

खुद को कठिन पीड़ा होते हुए भी अहेतुक कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण जीवों के दुःख से कातर हो उठा करते हैं; दिवानिशि जीवों की मंगल-कामना किया करते हैं। यह देखकर भक्तगण निर्वाक् हैं। श्रीरामकृष्ण श्याम वसु को हिम्मत बँधा रहे हैं–– "ईश्वर को पुकारते हुए अगर देह का नाश हो तो फिर पाप स्पर्श नहीं कर सकता।"

परिच्छेद २४

योग तथा पाण्डित्य

(१)

श्यामपुकुर में भक्तों के संग में

आज शुक्रवार है, आश्विन की सप्तमी, ३० अक्टूबर १८८५। श्रीरामकृष्ण चिकित्सा के लिए श्यामपुकुर आए हुए हैं। दुमंज़ले के एक कमरे में बैठे हुए हैं, दिन के नौ बजे का समय होगा, मास्टर से एकान्त में बातचीत कर रहे हैं। मास्टर डाक्टर सरकार के यहाँ जाकर पीड़ा की खबर देंगे और उन्हें साथ ले आएँगे। श्रीरामकृष्ण का शरीर इतना अस्वस्थ तो है, परन्तु इतने पर भी वे दिन-रात भक्तों की मंगल-कामना और उनके लिए चिन्ता किया करते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से, सहास्य)– आज सबेरे पूर्ण आया था। बहुत अच्छा स्वभाव हो गया है। मणीन्द्र का प्रकृति-भाव है। कितने आश्चर्य की बात है! चैतन्य-चरित पढ़कर उसके मन में गोपीभाव, सखीभाव की धारणा हो गई है— यह भाव कि 'ईश्वर पुरुष हैं और मैं मानो प्रकृति।'

मास्टर– जी हाँ।

पूर्णचन्द्र स्कूल में पढ़ता है, उम्र १५-१६ साल की होगी। पूर्ण को देखने के लिए श्रीरामकृष्ण बहुत व्याकुल होते हैं। परन्तु घरवाले उसे आने नहीं देते। पहले-पहल एक रात को पूर्ण को देखने के लिए वे इतने व्याकुल हुए थे कि उसी समय वे दक्षिणेश्वर से एकाएक मास्टर के घर चले गए थे। मास्टर ने पूर्ण को घर से ले आकर साक्षात् करा दिया था। ईश्वर को किस

तरह पुकारना चाहिए आदि बातें उसके साथ करने के पश्चात् वे दक्षिणेश्वर लौटे थे।

मणीन्द्र की उम्र भी १५-१६ साल की होगी, भक्तगण उसे 'खोखा' कहकर पुकारते थे। वह बालक ईश्वर के नाम-संकीर्तन को सुनकर भावावेश में नाचने लगता था।

(२)

डाक्टर तथा मास्टर

दिन के साढ़े दस बजे का समय है। मास्टर डाक्टर सरकार के घर आये हुए हैं। रास्ते पर दुमंजले के बैठकखाने का बरामदा है, वहीं वे डाक्टर के साथ बेंच पर बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। डाक्टर के सामने ग्लास-केस में पानी है और उसमें लाल मछलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। डाक्टर रह-रहकर इलायची का छिलका पानी में डाल रहे हैं और मैदे की गोलियाँ बनाकर छत पर फेंक रहे हैं, गौरैयों को चुगाने के लिए। मास्टर बैठे हुए देख रहे हैं।

डाक्टर– (मास्टर से, सहास्य)– यह देखो, ये (लाल मछलियाँ) मेरी ओर देख रही हैं, जैसे भक्त भगवान की ओर देख रहे हों; परन्तु इन्होंने यह नहीं देखा कि मैंने इधर इलायची का छिलका फेंका है। इसीलिए कहता हूँ; केवल भक्ति से क्या होगा ? ज्ञान चाहिए। (मास्टर हँस रहे हैं) और वह देखो, गौरैये उड़ गये; उधर मैंने मैदे की गोली फेंकी तो उन्हें इससे भय हो गया। उनमें भक्ति नहीं है, क्योंकि उनमें ज्ञान नहीं। वे जानती नहीं कि यह उनके खाने की चीज़ है।

डाक्टर बैठकखाने में आकर बैठे। चारों ओर आलमारी में ढेरों पुस्तकें रखी हैं। डाक्टर ज़रा विश्राम कर रहे हैं। मास्टर

पुस्तक देख रहे हैं और एक एक पुस्तक लेकर पढ़ रहे हैं। अन्त में कैनन-फैरर की लिखी ईशु की जीवनी थोड़ी देर पढ़ते रहे।

डाक्टर बीच-बीच में गप्पें भी लड़ा रहे हैं। कितने कष्ट से होमियोपैथिक अस्पताल बना था, इस सम्बन्ध की चिट्ठियाँ और दूसरे दूसरे कागज़ात मास्टर से पढ़ने के लिए कहा। और कहा, "ये सब चिट्ठियाँ १८७६ के 'कलकत्ता जरनल ऑफ मेडीसीन्' में मिलेंगी।" होमियोपैथी पर डाक्टर का बड़ा विश्वास है।

मास्टर ने एक और पुस्तक उठाई, मुंगर कृत 'नया धर्म' (Munger's New Theology)। डाक्टर ने उसे देखा।

डाक्टर– मुँगर के सिद्धान्त युक्तियों और तार्किक विचारों पर अवलम्बित हैं। इसमें ऐसा नहीं लिखा है कि चैतन्य, बुद्ध या ईशु ने अमुक बात कही है, अतएव इसे मानना चाहिए।

मास्टर– (हँसकर)– चैतन्य और बुद्ध की बातें नहीं, परन्तु मुँगर ने कही, इसलिए बात माननीय है!

डाक्टर– तुम्हारी इच्छा, चाहे जो कहो।

मास्टर– हाँ, किसी न किसी का नाम प्रमाण के लिए लेना ही पड़ता है, इसलिए मुँगर का ही नाम सही! (डाक्टर ज़ोर से हँसते हैं)

डाक्टर गाड़ी पर बैठे, साथ साथ मास्टर भी। गाड़ी श्याम-पुकुर की ओर जा रही है। दोपहर का समय है। दोनों बातचीत करते हुए जा रहे हैं। डाक्टर भादुड़ी की चर्चा भी बीच-बीच में आती है, क्योंकि ये श्रीरामकृष्ण के पास कभी-कभी आते हैं।

मास्टर– (सहास्य)– आपके लिए भादुड़ी ने कहा है कि ईंट और पत्थर से जन्म फिर शुरू करना होगा।

डाक्टर– वह कैसा ?

मास्टर– आप महात्मा, सूक्ष्म शरीर आदि बातें तो मानते नहीं। भादुड़ी महाशय, जान पड़ता है, थियोसफिस्ट हैं ; इसके अतिरिक्त आप अवतार-लीला भी नहीं मानते। इसीलिए उन्होंने शायद हँसी में कहा था कि अब की बार मरने पर आपका मनुष्य के घर जन्म तो होगा ही नहीं, कोई जीव-जन्तु, पेड़-पौधा भी आप न होंगे। आपको कंकड़-पत्थर से ही श्रीगणेश करना होगा! फिर बहुत से जन्मों के बाद आदमी हों तो हों।

डाक्टर– अरे बाप रे!

मास्टर– और यह भी कहा है कि साइन्स के सहारे आपका जो ज्ञान है, वह मिथ्या है; क्योंकि वह अभी अभी है और अभी अभी नहीं। उन्होंने उपमा भी दी है। जैसे दो कुएँ है। एक में नीचे स्रोत है, उसी से पानी आता है। दूसरे में स्रोत नहीं है, वह बरसात के पानी से भर गया है। वह पानी अधिक दिन रुक नहीं सकता। आपका साइन्स का ज्ञान भी बरसात के पानी की तरह है, वह सूख जाएगा।

डाक्टर– (ज़रा हँसकर)– अच्छा, यह बात!––

गाड़ी कार्नवालिस स्ट्रीट पर आई। डाक्टर सरकार ने डाक्टर प्रताप मुजुमदार को गाड़ी में बिठा लिया। डा. प्रताप कल श्रीरामकृष्ण को देखने गए थे। वे सब श्यामपुकुर आ पहुँचे।

(३)

ज्ञानी का ध्यान। जीवन का उद्देश्य

श्रीरामकृष्ण उसी दुमंज़ले के कमरे में बैठे हुए हैं। पास कई भक्त भी हैं। डाक्टर और प्रताप के साथ बातचीत हो रही है।

डाक्टर– (श्रीरामकृष्ण से)– फिर खाँसी * हुई? (सहास्य)

* बंगाली में खाँसी को 'काशी' कहते हैं, और काशी बनारस का भी नाम है।

काशी जाना अच्छा भी तो है! (सब हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– उससे तो मुक्ति होती है। मैं मुक्ति नहीं चाहता, मैं तो भक्ति चाहता हूँ। (डाक्टर और भक्तगण हँस रहे हैं)

श्रीयुत प्रताप डाक्टर भादुड़ी के जामाता हैं। श्रीरामकृष्ण प्रताप को देखकर भादुड़ी के गुणों का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (प्रताप से)– अहा! वे कैसे सुन्दर आदमी हो गए हैं! ईश्वर-चिन्ता, शुद्धाचार और निराकार-साकार सब भावों को उन्होंने ग्रहण कर लिया है।

मास्टर की बड़ी इच्छा है कि कंकड़ और पत्थरों की बात फिर हो। छोटे नरेन्द्र से धीरे धीरे कह रहे हैं, 'कंकड़-पत्थरों की कौनसी बात भादुड़ी ने कही थी, तुम्हें याद है?' मास्टर ने इस ढंग से कहा जिससे श्रीरामकृष्ण भी सुन सकें।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य, डाक्टर से)– और तुम्हारे लिए उन्होंने (डा. भादुड़ी ने) क्या कहा है, जानते हो? उन्होंने कहा कि तुम यह सब विश्वास नहीं करते इसलिए अगले कल्प में कंकड़-पत्थर के रूप में जन्म लेकर तुम्हें आरम्भ करना होगा। (सब लोग हँसते हैं)

डाक्टर– (सहास्य)– अच्छा, मान लीजिए कि कंकड़-पत्थर से ही आरम्भ कर कितने ही जन्मों के बाद मैं मनुष्य हो जाऊँ, पर यहाँ (श्रीरामकृष्ण के पास) आने से तो मुझे फिर एक बार कंकड़-पत्थर से ही शुरू करना होगा! (डाक्टर और सब लोग हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण इतने अस्वस्थ हैं, फिर भी उन्हें ईश्वरीय भावों का आवेश होता है। वे सदा ही ईश्वरीय चर्चा किया करते हैं।

इसी सम्बन्ध में बातचीत हो रही है।

प्रताप– कल मैं देख गया, आपकी भाव की अवस्था थी।

श्रीरामकृष्ण– वह आप ही आप हो गई थी, प्रबल नहीं थी।

डाक्टर– वातचीत करना और भावावेश होना, ये इस समय आपके लिए अच्छे नहीं।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– कल जो भावावस्था हुई थी, उसमें मैंने तुम्हें देखा। देखा, ज्ञान का आकर है, परन्तु भीतर एकदम सूखा हुआ–– आनन्द-रस नहीं मिला। (प्रताप से) ये (डाक्टर) यदि एक बार आनन्द पा जायँ तो अधः-ऊर्ध्व सब आनन्द से पूर्ण देखेंगे। फिर 'मैं जो कुछ कहता हूँ वही ठीक है, और दूसरे जो कुछ कहते हैं वह ठीक नहीं,' आदि बातें फिर ये बिलकुल ही न कहेंगे—और फिर इनकी लट्ठमार बातें भी छूट जाएँगी।

भक्तगण चुप हैं। एकाएक श्रीरामकृष्ण भावावेश में डाक्टर सरकार से कह रहे हैं—

"महीन्द्र बाबू, तुम क्या रुपया-रुपया कर रहे हो!–– बीवी-बीबी!—मान-मान! ये सब इस समय छोड़कर एकचित्त हो ईश्वर में मन लगाओ और ईश्वर के आनन्द का उपभोग करो!"

डाक्टर सरकार चुप हैं। सब लोग चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण– न्यांगटा ज्ञानी के ध्यान की बात कहता था। पानी ही पानी है, अधः-ऊर्ध्व उसी से पूर्ण है। जीव मानो मीन है, उस पानी में आनन्द से तैर रहा है। यथार्थ ध्यान होने पर इसे प्रत्यक्ष रूप से देख सकोगे।

"अनन्त समुद्र है, पानी का कहीं अन्त नहीं। उसके भीतर मानो एक घट है। उसके बाहर भी पानी है और भीतर भी।

ज्ञानी देखता है, भीतर और बाहर वे ही परमात्मा हैं। तो फिर वह घट क्या वस्तु है ? घट के रहने के कारण पानी के दो भाग जान पड़ते हैं। अन्दर और बाहर का बोध हो रहा है। 'मैं'-रूपी घट के रहते ऐसा ही बोध होता है। वह 'मैं' अगर मिट जाय, तो फिर जो कुछ हैं, वही रहेगा; मुख से वह कहा नहीं जा सकता।

"ज्ञानी का ध्यान और किस तरह का है, जानते हो ? अनन्त आकाश है, उसमें आनन्द से पंख फैलाए हुए पक्षी उड़ रहा है। चिदाकाश में आत्मा-पक्षी इसी तरह विहार कर रहा है। वह पिंजड़े में नहीं है, चिदाकाश में उड़ रहा है। आनन्द इतना है कि समाता ही नहीं।"

भक्तगण निर्वाक् होकर ध्यान-योग की बातें सुन रहे हैं। कुछ देर बाद प्रताप ने फिर बातचीत शुरू की।

प्रताप– (सरकार से)– सोचा जाय तो सब छाया ही छाया जान पड़ती है।

डाक्टर– छाया अगर कहते हो तो तीन चीज़ों की आवश्यकता है। सूर्य, वस्तु और छाया। बिना वस्तु के क्या छाया होती है ? इधर कह रहे हो, ईश्वर सत्य है, और फिर सृष्टि को असत्य बतलाते हो ! नहीं, सृष्टि भी सत्य है।

प्रताप– आईने में जैसे तुम प्रतिबिम्ब देखते हो उसी तरह मनरूपी आईने में यह संसार भासित हो रहा है।

डाक्टर– एक वस्तु के अस्तित्व के बिना क्या कोई प्रतिबिम्ब हो सकता है ?

नरेन्द्र– क्यों, ईश्वर तो वस्तु हैं।

डाक्टर चुप हो रहे।

श्रीरामकृष्ण– (डाक्टर से)– एक बात तुमने बहुत अच्छी

कही । भावावस्था ईश्वर के साथ मन के संयोग से होती है, यह बात केवल तुमने ही कही और किसी ने नहीं कही ।

"शिवनाथ ने कहा था, 'अधिक ईश्वर-चिन्तन करने पर मनुष्य का मस्तिष्क बिगड़ जाता है।' कहता है, संसार में जो चेतनस्वरूप हैं, उनके चिन्तन से अचेतन हो जाता है ! जो बोधस्वरूप हैं, जिनके बोध से संसार को बोध हो रहा है, उनकी चिन्ता करके अबोध हो जाना !!

"और तुम्हारी साइन्स क्या कहती है ? बस यही न कि इससे यह मिल जाय या उससे वह मिल जाय तो अमुक तैयार हो जाता है, आदि आदि । इन सब बातों की चिन्ता करके—जड़ वस्तुओं में पड़कर तो मनुष्य के और भी बोधहीन हो जाने की सम्भावना रहती है ।"

डाक्टर– उन जड़ वस्तुओं में मनुष्य ईश्वर का दर्शन कर सकता है ।

मणि– परन्तु मनुष्य में यह दर्शन और भी स्पष्ट हो सकता है, और महापुरुषों में और भी अधिक स्पष्ट । महापुरुषों में उनका प्रकाश अधिक है ।

डाक्टर– हाँ, मनुष्य में दर्शन अवश्य हो सकता है ।

श्रीरामकृष्ण– जिनके चैतन्य से जड़ भी चेतन हो रहे हैं,—हाथ, पैर और शरीर हिल रहे हैं, उनके चिन्तन से क्या कोई कभी अचेतन हो सकता है ? लोग कहते हैं, 'शरीर हिल रहा है,' परन्तु वे हिला रहे हैं, यह ज्ञान नहीं है । लोग कहते हैं, 'पानी से हाथ जल गया,' पर पानी से कभी कुछ नहीं जलता । पानी के भीतर जो ताप है, जो अग्नि है, उसी से हाथ जल गया ।

"हण्डी में चावल उबल रहे हैं । आलू और भटे उछल रहे

हैं। छोटे लड़के कहते हैं, 'आलू और भटे अपने आप उछल रहे हैं।' वे यह नहीं जानते कि नीचे आग है। मनुष्य कहते हैं, 'इन्द्रियाँ आप ही आप काम कर रहीं हैं;' भीतर जो चैतन्यस्वरूप हैं, उनकी बात नहीं सोचते।"

डाक्टर सरकार उठे। अब विदा होंगे। श्रीरामकृष्ण उठकर खड़े हो गए।

डाक्टर– लोगों पर जब कष्ट पड़ता है तब वे ईश्वर का स्मरण करते हैं। और नहीं तो क्या लोग केवल साध ही साध में 'हे ईश्वर, तू ही, तू ही' करते रहते हैं? गले में वह (घाव) हुआ है, इसलिए आप ईश्वर की चर्चा करते हैं। अब आप खुद धुनिये के हाथ में पड़ गए हैं, अब उसी से कहिए। यह मैं आप ही की कही हुई बात कह रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण– और क्या कहूँगा!

डाक्टर– क्यों, कहेंगे क्यों नहीं? हम उनकी गोद में हैं, उनकी गोद में खाते-पीते हैं, बीमारी होने पर उनसे नहीं कहेंगे तो किससे कहेंगे?

श्रीरामकृष्ण– ठीक है, कभी कभी कहता हूँ। परन्तु कहीं कुछ होता नहीं।

डाक्टर– और कहना भी क्यों, क्या वे जानते नहीं?

योगी के लक्षण। बिल्वमंगल

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– एक मुसलमान नमाज़ पढ़ते समय 'हो अल्ला, हो अल्ला' कहकर अज़ान दे रहा था। उससे एक आदमी ने कहा, 'तू अल्ला को पुकार रहा है तो इतना चिल्लाता क्यों है? क्या तुझे नहीं मालूम कि उन्हें चींटी के पैरों के नूपुरों की भी आहट मिल जाती है?'

"जब उनमें मन लीन हो जाता है, तब मनुष्य ईश्वर को बहुत समीप देखता है। हृदय में देखता है।

"परन्तु एक बात है। जितना ही यह योग होगा, उतना ही बाहर की चीज़ों से मन हटता जाएगा। 'भक्तमाल' में बिल्वमंगल नामक एक भक्त की बात लिखी हुई है। वह वेश्या के घर जाया करता था। एक दिन बहुत रात हो गई थी, और वह वेश्या के घर जा रहा था। घर में माँ-बाप का श्राद्ध था, इसलिए देर हो गई थी। श्राद्ध की पूड़ियाँ वेश्या को खिलाने के लिए ले जा रहा था। वेश्या पर उसका इतना मन था कि किसके ऊपर से और कहाँ से होकर वह जा रहा था, उसे कुछ भी ज्ञान न था, कुछ होश ही न था। रास्ते में एक योगी आँखें बन्द किए ईश्वर का ध्यान कर रहा था, उसे भी बेहोशी की हालत में वह लात मारकर निकल गया। योगी गुस्से में आकर बोल उठा, 'क्या तू देखता नहीं ? मैं ईश्वर-चिन्तन कर रहा हूँ और तू लात मारकर चला जा रहा है !' तब उस आदमी ने कहा 'मुझे क्षमा कीजिए; परन्तु मैं आपसे एक बात पूछता हूँ, वेश्या की चिन्ता करके तो मुझे होश नहीं, और आप ईश्वर की चिन्ता कर रहे हैं, फिर भी आपको बाहरी दुनिया का होश है ! यह कैसी ईश्वर-चिन्ता है ?' वह भक्त अन्त में संसार का त्याग करके ईश्वर की आराधना करने चला गया। वेश्या से उसने कहा था, 'तुम मेरी ज्ञानदात्री हो, तुम्हीं ने मुझे सिखलाया कि ईश्वर पर किस तरह अनुराग किया जाता है।' वेश्या को माता कहकर उसने उसका त्याग किया था।"

डाक्टर– यह तांत्रिक उपासना है, इसके अनुसार स्त्री को माता कहकर सम्बोधन किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण– देखो, एक कहानी सुनो। एक राजा था। एक पण्डित के पास वह नित्य भागवत सुनता था। रोज भागवत-पाठ के बाद पण्डित राजा से कहता था, 'राजा, तुम समझे?' राजा भी रोज कहता था, 'पहले तुम समझो।' भागवती पण्डित घर जाकर रोज सोचता था, 'राजा इस तरह क्यों कहता है? मैं रोज इतना समझाता हूँ और राजा उल्टा कहता है--तुम पहले समझो। यह क्या है?' पण्डित भजन-साधन भी करता था। कुछ दिनों बाद उसमें जागृति हुई, तब उसने समझा, ईश्वर ही वस्तु है और शेष सब-- घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, मान-मर्यादा-- अवस्तु हैं। संसार में सब विषय मिथ्या प्रतीत होने के कारण उसने संसार छोड़ दिया। जाते समय वह केवल एक आदमी से कह गया-- 'राजा से कहना, अब मैं समझ गया हूँ।'

"एक कहानी और सुनो। एक आदमी को भागवत के एक पण्डित की ज़रूरत पड़ी, जो रोज जाकर उसे भागवत सुना सके। इधर भागवती पण्डित मिल नहीं रहा था। बहुत खोजने के बाद एक आदमी ने आकर कहा, 'भाई, एक बहुत अच्छा भागवती पण्डित मिला है।' उसने कहा, 'फिर तो काम बन गया। उसे ले आओ।' आदमी ने कहा, 'परन्तु ज़रा कठिनाई है। उसके कुछ हल और बैल हैं; उन्हीं को लेकर वह दिन-रात काम में लगा रहता है, काश्तकारी संभालनी पड़ती हैं, उसे बिलकुल अवकाश नहीं मिलता।' तब जिसे पण्डित की ज़रूरत थी, उसने कहा, 'अजी, जिसे हल और बैलों के पीछे पड़ा रहना पड़ता है, उस तरह का पण्डित मैं नहीं चाहता। मैं तो ऐसा पण्डित चाहता हूँ जिसे अवकाश हो और जो मुझे भागवत सुना सके।' (डाक्टर से) समझे? (डाक्टर चुप हैं)

"परन्तु केवल पाण्डित्य से क्या होगा ? पण्डित लोग जानते तो वहुत हैं—वेदों, पुराणों और तंत्रों की बातें। परन्तु कोरे पाण्डित्य से होता क्या है ? विवेक और वैराग्य अगर किसी में हों तो उसकी बातें सुनी जा सकती हैं। पर जिसने संसार को ही सार समझ लिया है, उसकी बातों को सुनकर क्या होगा ?

"गीता के पाठ से क्या होता है ?—वही, जो दस बार 'गीता' 'गीता' उच्चारण करने से। 'गीता' 'गीता' कहते रहने से 'तागी' (त्यागी) 'तागी' (त्यागी) निकलता है। संसार में जिसकी कामिनी और कांचन पर आसक्ति छूट गई है, जो ईश्वर पर सोलहों आने भक्ति कर सका है, उसी ने गीता का मर्म समझा है। गीता को पूरा पढ़ने की आवश्यकता नहीं। 'त्यागी, त्यागी' कह सकने ही से हुआ—त्यागी बन सकने से ही हुआ।"

डाक्टर– 'त्यागी' कहने के लिए एक 'य' अधिक जोड़ना पड़ता है।

मणि– परन्तु 'य' के बिना भी काम चल जाता है। जब ये (श्रीरामकृष्ण) टेनेटी में महोत्सव देखने गए थे, तब वहाँ नवद्वीप के गोस्वामी से इन्होंने गीता की यह बात कही थी। यह सुनकर गोस्वामी ने कहा था, "तग् धातु में घञ प्रत्यय के लगने से 'ताग' होता है; फिर उसमें 'इन्' लगाने से 'तागी' बनता है; इस तरह 'त्यागी' और 'तागी' का अर्थ एक ही होता है।"

डाक्टर– मुझे एक ने राधा शब्द का अर्थ बतलाया था। कहा राधा का अर्थ क्या है, जानते हो ? इस शब्द को उलट लो, अर्थात् 'धारा-धारा'। (सब हँसते हैं) (सहास्य) आज 'धारा' तक ही रहा।

(४)

ऐहिक ज्ञान अर्थात् साइन्स

डाक्टर चले गए । श्रीरामकृष्ण के पास मास्टर बैठे हुए हैं। एकान्त में बातचीत हो रही है । मास्टर डाक्टर के यहाँ गए थे, वही सब बात हो रही है।

मास्टर– (श्रीरामकृष्ण से)– लाल मछलियों को इलायची का छिलका दिया जा रहा था, और गौरैयों को मैंदे की गोलियाँ। डाक्टर ने मुझसे कहा —'तुमने देखा, उन्होंने (मछलियों ने) इलायची का छिलका नहीं देखा, इसलिए चली गईं ! पहले ज्ञान चाहिए, फिर भक्ति । दो-एक गौरैयाँ भी मैंदे की गोलियों को फेंकते हुए देखकर उड़ गईं। उन्हें ज्ञान नहीं है, इसलिए भक्ति नहीं हुई । '

श्रीरामकृष्ण– (हँसकर)– उस ज्ञान का अर्थ है ऐहिक ज्ञान— साइन्स का ज्ञान ।

मास्टर– उन्होंने फिर कहा, 'चैतन्य कह गए हैं, बुद्ध कह गए हैं या ईशु कह गए हैं, क्या इसलिए विश्वास करूँ ?— यह ठीक नहीं । '

" उनके नाती हुआ है । नाती का मुँह देखकर वे अपनी पुत्र-वधू की प्रशंसा करने लगे। कहा—'घर में इस तरह रहती है कि मुझे कहीं आहट भी नहीं मिलती । इतनी शान्त और लजीली है,— ' "

श्रीरामकृष्ण– यहाँ की बातें ज्यों ज्यों सोच रहा है, त्यों त्यों उसमें श्रद्धा आ रही है । एकदम क्या कभी अहंकार जाता है ? उसमें इतनी विद्या है, मान है, धन है, परन्तु यहाँ की (स्वयं को इंगित करके) बातों से अश्रद्धा नहीं करता ।

(५)

श्रीरामकृष्ण की उच्च अवस्था

दिन के पाँच बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण उसी दुमंज़ले के कमरे में बैठे हुए हैं। चारों ओर भक्तगण चुपचाप बैठे हैं। बहुत से बाहर के आदमी उन्हें देखने के लिए आए हैं। कोई बात नहीं हो रही है।

मास्टर पास ही बैठे हुए हैं। उनके साथ एकान्त में बातचीत हो रही है। श्रीरामकृष्ण कुर्ता पहनेंगे। मास्टर ने कुर्ता पहना दिया।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– देखो, अब विशेष ध्यान आदि मुझे नहीं करना पड़ता। अखण्ड का एकदम ही बोध हो जाता है। ब्रह्मदर्शन निरन्तर ही चलता रहता है।

मास्टर चुप हैं। कमरा भी निस्तब्ध है।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण उनसे फिर एक बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, ये सब लोग एक ही आसन जमाकर चुपचाप बैठे हुए हैं और मुझे देख रहे हैं–– न बोलते हैं, न गाना होता है; इस तरह ये मुझमें क्या देखते हैं ?

श्रीरामकृष्ण क्या इंगित कर रहे हैं कि साक्षात् ईश्वर की शक्ति अवतीर्ण हुई है ! इसीलिए इतने लोगों का आकर्षण है, इसीलिए भक्त लोग अवाक् होकर उनकी ओर एकटक दृष्टि से निहारते रहते हैं !

मास्टर ने कहा, "महाराज, ये लोग आपकी बात बहुत पहले ही सुन चुके हैं। ये लोग वह चीज़ देखते हैं जो कभी इन्हें देखने को नहीं मिल सकती। देखते हैं, सदा ही आनन्द में मग्न रहने-वाले, निरहंकार, बालस्वभाव, ईश्वर के प्रेम में मग्न रहनेवाले

महापुरुष को। उस दिन आप ईशान मुखर्जी के यहाँ गए हुए थे। आप बाहर के कमरे में टहल रहे थे, हम लोग भी गए हुए थे। एक ने आपसे आकर कहा, 'इस तरह का सदानन्द पुरुष हमने कभी देखा नहीं।' "

मास्टर फिर चुप हो रहे। कमरा फिर निस्तब्ध है। कुछ देर बाद धीमे स्वर में मास्टर से श्रीरामकृष्ण ने फिर कहा—

"अच्छा, डाक्टर का क्या हो रहा है? क्या यहाँ की सब बातों को वह ग्रहण करता है?"

मास्टर— यह अमोघ बीज कहाँ जाएगा? किसी न किसी तरफ से कभी न कभी निकलेगा ही। उस दिन की एक-एक बात पर हँसी आ रही है।

श्रीरामकृष्ण— कौन सी बात?

मास्टर— आपने उस दिन कहा था, यदु मल्लिक यह नहीं समझ सकता कि किस तरकारी में नमक अधिक है, कौन तरकारी कैसी हुई। वह इतना अन्यमनस्क रहता है! जब कोई कह देता है कि अमुक व्यंजन में नमक नहीं पड़ा, तब 'आयँ आयँ' करके कहता है, 'हाँ, ठीक तो है, नमक नहीं पड़ा।' डाक्टर को यह बात आप सुना रहे थे। उन्होंने कहा था न, कि वे बहुत ही अन्यमनस्क हो जाया करते हैं। आप समझा रहे थे कि वे विषय की चिन्ता करके अन्यमनस्क होते हैं, ईश्वर की चिन्ता करके नहीं।

श्रीरामकृष्ण— क्या इन बातों को वह न सोचेगा?

मास्टर— सोचेंगे क्यों नहीं? परन्तु उन्हें बहुत से काम रहते हैं, इसलिए भूल भी जाते हैं। आज भी उन्होंने क्या ही अच्छा कहा कि स्त्री को मातृरूप देखना तांत्रिकों की एक उपासना है।

श्रीरामकृष्ण– मैंने क्या कहा ?

मास्टर– आपने बैलोंवाले भागवती पण्डित की बात कही थी। (श्रीरामकृष्ण हँसते हैं) और आपने कही थी उस राजा की बात, जिसने कहा था, 'तुम पहले समझो।' (श्रीरामकृष्ण हँसते हैं)

" फिर आपने गीता की बात कही थी। गीता का सार तत्त्व है कामिनी और कांचन का त्याग–– कामिनी और कांचन पर आसक्ति का त्याग। आपने डाक्टर से कहा, 'संसारी होकर कोई क्या शिक्षा देगा ?' यह बात शायद वे समझ नहीं सके। अन्त में 'धारा-धारा' कहकर बात को दबा गए।"

श्रीरामकृष्ण भक्तों के कल्याण के लिए सोच रहे हैं,–– पूर्ण और मणीन्द्र दोनों उनके बालक भक्तों में से हैं। श्रीरामकृष्ण ने मणीन्द्र को पूर्ण से मिलने के लिए भेजा।

(६)

श्रीराधाकृष्ण-तत्त्व। नित्य-लीला

सन्ध्या हो गई है। श्रीरामकृष्ण के कमरे में दीपक जल रहा है। कई भक्त जो श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए आए हैं, उसी कमरे में कुछ दूर पर बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण का मन अन्तर्मुख हो रहा है, इस समय बातचीत बन्द है। कमरे में जो लोग हैं, वे भी ईश्वर की चिन्ता करते हुए मौन हो रहे हैं।

कुछ देर बाद नरेन्द्र अपने एक मित्र को साथ लेकर आए। नरेन्द्र ने कहा, "ये मेरे मित्र हैं, इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की है। ये 'किरणमयी' लिख रहे हैं।" किरणमयी के लेखक ने प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण के साथ बातचीत करेंगे।

नरेन्द्र– इन्होंने राधाकृष्ण के सम्बन्ध में भी लिखा है।

श्रीरामकृष्ण– (लेखक से)– क्यों जी, क्या लिखा है ? ज़रा कहो तो।

लेखक– राधाकृष्ण ही परब्रह्म हैं, ओंकार के बिन्दुस्वरूप हैं। उसी राधाकृष्ण—– परब्रह्म—– से महाविष्णु की सृष्टि हुई, महाविष्णु से पुरुष और प्रकृति, शिव और दुर्गा की।

श्रीरामकृष्ण– वाह ! नन्दघोष ने नित्यराधा को देखा था। प्रेम-राधा ने वृन्दावन में लीलाएँ की थीं, काम-राधा चन्द्रावली हैं।

"काम-राधा और प्रेम-राधा। और भी बढ़ जाने पर हैं नित्य-राधा। प्याज के छिलके निकालते रहने पर पहले लाल छिलका निकलता है, फिर जो छिलके निकलते हैं उनमें ललाई नाम मात्र की रहती है, फिर बिलकुल सफेद छिलके निकलते हैं। ऐसा ही नित्य-राधा का स्वरूप है—– वहाँ 'नेति, नेति' का विचार रुक जाता है।

"नित्य-राधाकृष्ण, और लीला-राधाकृष्ण—– जैसे सूर्य और उसकी किरणें। नित्य की तुलना सूर्य से की जा सकती है और लीला की, रश्मियों से।

"शुद्ध भक्त कभी 'नित्य' में रहता है और कभी 'लीला' में। जिनकी नित्यता है, लीला भी उन्हीं की है। वे केवल एक ही हैं—– दो या अनेक नहीं।"

लेखक– जी, वृन्दावन के कृष्ण और मथुरा के कृष्ण, इस तरह दो कृष्ण क्यों कहे जाते हैं ?

श्रीरामकृष्ण– वह गोस्वामियों का मत है। पश्चिम के पण्डित लोग ऐसा नहीं कहते। उनके मत में कृष्ण एक ही हैं, राधा हैं ही नहीं। द्वारका के कृष्ण भी वैसे ही हैं।

लेखक– जी, राधाकृष्ण ही परब्रह्म हैं।

श्रीरामकृष्ण– वाह! परन्तु उनके द्वारा सब कुछ संभव है। वे ही निराकार हैं और वे ही साकार। वे ही स्वराट हैं और वे ही विराट। वे ही ब्रह्म हैं और वे ही शक्ति।

"उनकी इति नहीं हो सकती––उनका अन्त नहीं है, उनमें सब कुछ सम्भव है। चील या गीध चाहे जितना ऊपर चढ़े, पर आकाश को उसकी पीठ कभी छू नहीं सकती। अगर पूछो कि ब्रह्म कैसा है, तो यह कहा नहीं जा सकता। साक्षात्कार होने पर भी मुख से नहीं कहा जाता। अगर कोई पूछे कि घी कैसा है, तो इसका उत्तर है कि घी घी के सदृश ही है। ब्रह्म की उपमा ब्रह्म ही है, और कोई उपमा नहीं।

परिच्छेद २५

सर्व-धर्म-समन्वय

(१)

बलराम के लिए चिन्ता । श्री हरिवल्लभ वसु

श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुरवाले मकान में चिकित्सा के लिए भक्तों के साथ ठहरे हुए हैं। आज शनिवार है, आश्विन की कृष्णा अष्टमी, ३१ अक्टूबर १८८५। दिन के नौ बजे का समय होगा।

यहाँ दिन-रात भक्तगण रहा करते हैं, श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए। अभी किसी ने संसार का त्याग नहीं किया है।

बलराम सपरिवार श्रीरामकृष्ण के सेवक हैं। उन्होंने जिस वंश में जन्म लिया है, वह बड़ा ही भक्त-वंश है। इनके पिता वृद्ध होकर अब श्रीवृन्दावन में अपने ही प्रतिष्ठित श्रीश्यामसुन्दर कुँज में रहा करते हैं। उनके चचेरे भाई श्रीयुत हरिवल्लभ वसु और घर के दूसरे सब लोग वैष्णव हैं।

हरिवल्लभ कटक के सब से बड़े वकील हैं। उन्होंने जब यह सुना कि बलराम श्रीरामकृष्णदेव के पास आया-जाया करते हैं और विशेषकर स्त्रियों को ले जाते हैं, तब वे बहुत नाराज़ हुए। उनसे मिलने पर बलराम ने कहा था, 'तुम पहले एक बार उनके दर्शन करो, फिर जो जी में आए मुझे कहना।'

अतएव आज हरिवल्लभ आए हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को बड़े भक्तिभाव से प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण– किस तरह बीमारी अच्छी होगी? आपकी राय में क्या यह कोई कठिन बीमारी है?

हरिवल्लभ– जी, यह तो डाक्टर ही कह सकेंगे।

श्रीरामकृष्ण– स्त्रियाँ जब मेरे पैरों की धूलि लेती हैं तब यही सोचता हूँ कि भीतर तो वे ही हैं, वे उन्हीं को प्रणाम कर रही हैं। इसी दृष्टि से मैं देखता हूँ।

हरिवल्लभ– आप साधु हैं, आपको सब लोग प्रणाम करेंगे, इसमें दोष क्या है?

श्रीरामकृष्ण– हाँ, वह हो सकता था अगर ध्रुव, प्रह्लाद, नारद, कपिल, ये कोई होते; पर मैं क्या हूँ? अच्छा आप फिर आइएगा।

हरिवल्लभ– जी, हम लोग आप ही खिचकर आएँगे, आप कहते क्यों हैं?

हरिवल्लभ बिदा होंगे, प्रणाम कर रहे हैं। पैरों की धूलि लेने जा रहे हैं, श्रीरामकृष्ण ने पैर हटा लिए। परन्तु हरिवल्लभ ने छोड़ा नहीं, ज़बरदस्ती उन्होंने पैरों की धूलि ली।

हरिवल्लभ उठे। श्रीरामकृष्ण उनकी खातिर करने के लिए उठकर खड़े हो गए। कह रहे हैं, "बलराम बहुत दुःख करता है। मैंने सोचा, एक दिन जाऊँ, जाकर तुम लोगों से मिलूँ। परन्तु भय भी होता है कि तुम लोग कहीं यह न कहो कि इसे कौन यहाँ लाया!"

हरिवल्लभ– इस तरह की बातें कहीं किसने? आप कुछ सोचिएगा नहीं।

हरिवल्लभ चले गए।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– उसमें भक्ति है; नहीं तो ज़बरदस्ती पैरों की धूलि क्यों लेता?

"वह बात जो तुमसे मैंने कही थी कि भाव में मैंने डाक्टर

को देखा था तथा एक आदमी और था— यह वही है ! इसीलिए देखो आया ! ”

मास्टर– जी, सचमुच वह भक्त है ।

श्रीरामकृष्ण– कितना सरल है !

श्रीरामकृष्ण की बीमारी का हाल लेकर मास्टर डाक्टर सरकार के पास शाँकारिटोला आए हुए हैं । डाक्टर आज फिर श्रीरामकृष्ण को देखने जाएँगे ।

डाक्टर श्रीरामकृष्ण और महिमाचरण आदि की बातें कह रहे हैं ।

डाक्टर– महिमाचरण वह पुस्तक तो नहीं लाए जिसे उन्होंने दिखाने के लिए कहा था । उन्होंने कहा, 'भूल गया ।' हो सकता है । मैं भी प्राय: इसी तरह भूल जाता हूँ ।

मास्टर– उनका अध्ययन बहुत अच्छा है ।

डाक्टर– तो फिर उनकी ऐसी दशा क्यों है ?

श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में डाक्टर कह रहे हैं— “केवल भक्ति लेकर क्या होगा, अगर ज्ञान न रहा ? ”

मास्टर–श्रीरामकृष्ण तो कहते हैं, ज्ञान के बाद भक्ति है; परन्तु उनके ज्ञान और भक्ति से आप लोगों के ज्ञान और भक्ति में बड़ा अन्तर है ।

“वे जब कहते हैं, ज्ञान के बाद भक्ति है तो उसका अर्थ यह है कि पहले तत्वज्ञान होता है और बाद में भक्ति; पहले ब्रह्मज्ञान और बाद में भक्ति; पहले भगवान का ज्ञान, फिर उनके प्रति प्रेम । आप लोगों के ज्ञान का अर्थ है, इन्द्रियजन्य ज्ञान । श्रीरामकृष्ण जिस ज्ञान की चर्चा करते हैं, उसकी परख हमारे मापदण्ड द्वारा नहीं हो सकती । परन्तु आपका ज्ञान तो

इन्द्रियजन्य है, उसकी परख हो सकती है।"

डाक्टर कुछ देर चुप रहे, फिर अवतार के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

डाक्टर– अवतार क्या है? और पैरों की धूलि लेना, यह क्या है?

मास्टर– क्यों? आपही तो कहते हैं कि अपनी साइन्स की प्रयोगशाला में अन्वेषण करते समय ईश्वर की सृष्टि के बारे में सोचने से आपको भावावस्था हो जाती है, और फिर आदमी को देखने से भी आपमें उसी भाव का उद्रेक होता है। अगर यह ठीक है तो ईश्वर को फिर हम सिर क्यों न झुकावें? मनुष्य के हृदय में ईश्वर हैं।

"हिन्दू धर्म के अनुसार सर्वभूतों में ईश्वर का वास है। यह विषय आपको अच्छी तरह मालूम नहीं है। सर्वभूतों में जब ईश्वर हैं तो मनुष्य को प्रणाम करने में क्या बुराई है?

"श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं किसी किसी वस्तु में उनका प्रकाश अधिक है। सूर्य का प्रकाश पानी में, आईने में अधिक है। पानी सब जगह है, परन्तु नदी और सरोवर में अधिक है। नमस्कार ईश्वर को ही किया जाता है, मनुष्य को नहीं। God is God—not, man is God. (ईश्वर ही ईश्वर हैं, मनुष्य ईश्वर नहीं।)

"ईश्वर को कोई साधारण विचार द्वारा समझ ही नहीं सकता। सब विश्वास पर अवलम्बित है। यही सब बातें श्रीरामकृष्ण कहते हैं।"

आज डाक्टर ने मास्टर को अपनी लिखी पुस्तक 'मनोविज्ञान शारीरक' (Physiological Basis of Psychology) की एक प्रति उपहार-स्वरूप दी।

(२)

श्रीरामकृष्ण तथा ईशु

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। दिन के ग्यारह बजे का समय होगा। मिश्र नाम के एक ईसाई भक्त के साथ बातचीत हो रही है। मिश्र की आयु पैंतीस वर्ष की होगी। इनका जन्म ईसाई वंश में हुआ है। बाहर से तो ये साहबी वेश-भूषा धारण किये हुए हैं, परन्तु भीतर गेरुआ वस्त्र पहने हैं। इस समय इन्होंने संसार का त्याग कर दिया है। इनका जन्म-स्थान पश्चिम है। इनके एक भाई के विवाह के दिन इनके दूसरे दो भाइयों की मृत्यु हो गई थी, तब से मिश्र ने संसार का त्याग कर दिया है। ये Quaker (क्वेकर) सम्प्रदाय के हैं।

मिश्र– 'वही राम घट-घट में लेटा।'

श्रीरामकृष्ण छोटे नरेन्द्र से धीरे-धीरे कह रहे हैं, परन्तु इस ढंग से कि मिश्र भी सुनें—

"राम एक ही हैं, परन्तु उनके नाम हज़ारों हैं।

"ईसाई जिन्हें गाड (God) कहते हैं, हिन्दू उन्हें ही राम, कृष्ण और ईश्वर कहकर पुकारते हैं। तालाब में बहुत से घाट हैं। हिन्दू एक घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'जल'; ईसाई दूसरे घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'वाटर' (Water); मुसलमान तीसरे घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'पानी'।

"इसी प्रकार जो ईसाइयों का 'गाड' (God) है, वही मुसलमानों का 'अल्ला' है।"

मिश्र– ईशु मेरी का लड़का नहीं है, ईशु साक्षात् ईश्वर हैं।

(भक्तों से) "ये (श्रीरामकृष्ण) अभी तो ऐसे दिखते हैं, पर ये साक्षात् ईश्वर हैं। आप लोगों ने इन्हें पहचाना नहीं।

मैं पहले ही इनके दर्शन ध्यान में कर चुका हूँ— अब इस समय इन्हें साक्षात् देख रहा हूँ। मैंने देखा था, एक बगीचा है, ये ऊँचे आसन पर बैठे हुए हैं; जमीन पर एक व्यक्ति और बैठे हुए हैं,— वे उतने पहुँचे हुए नहीं थे।

"इस देश में ईश्वर के चार द्वारपाल हैं। बम्बई प्रान्त में तुकाराम, काश्मीर में रॉबर्ट माइकेल (Robert Michael), यहाँ ये, और पूर्व बंगाल में एक और हैं।"

श्रीरामकृष्ण– क्या तुम्हें कुछ दर्शन होता है ?

मिश्र– जी, जब मैं घर पर था, तब ज्योति-दर्शन होता था। इसके बाद ईशु को मैंने देखा। उस रूप की बात अब क्या कहूँ !— उस सौन्दर्य के सामने स्त्री का सौन्दर्य ख़ाक है !

कुछ देर बाद भक्तों के साथ बातचीत करते हुए मिश्र ने कोट और पतलून खोलकर भीतर गेरुए की कौपीन दिखलाई।

श्रीरामकृष्ण बरामदे से आकर कह रहे हैं—"इसे (मिश्र को) देखा, वीर की तरह खड़ा है।"

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो रहे हैं। पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए वे समाधिमग्न हो गए।

कुछ प्रकृतिस्थ होने पर मिश्र पर दृष्टि लगाकर हँस रहे हैं। अब भी खड़े हैं। भावावेश में मिश्र से हाथ मिलाते हुए हँस रहे हैं। हाथ पकड़कर कह रहे हैं, 'तुम जो चाहते हो, वह प्राप्त हो जाएगा।'

श्रीरामकृष्ण ईशु के भाव में हैं।

मिश्र– (हाथ जोड़कर)– उस दिन से मैंने अपना मन, अपने प्राण, अपना शरीर, सब कुछ आपको समर्पित कर दिया है।

श्रीरामकृष्ण भावावस्था में अब भी हँस रहे हैं। वे बैठे।

मिश्र भक्तों से अपने सांसारिक जीवन का वर्णन कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि किस प्रकार विवाह के समय शामियाना के नीचे गिर जाने से उनके दो भाइयों की मृत्यु हो गई।

श्रीरामकृष्ण ने भक्तों से मिश्र की खातिर करने को कहा।

डाक्टर सरकार आए। डाक्टर को देखकर श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। भाव का कुछ उपशम होने पर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"कारणानन्द के बाद है सच्चिदानन्द! —कारण का कारण!"

डाक्टर कह रहे हैं—"जी, हाँ।"

श्रीरामकृष्ण—मैं बेहोश नहीं हूँ।

डाक्टर समझ गए कि श्रीरामकृष्ण को ईश्वरावेश है। इसीलिए उत्तर में कहा—"हाँ, आप खूब होश में हैं!"

श्रीरामकृष्ण हँसकर गाने लगे—"मैं सुरा-पान नहीं करता, किन्तु 'जय काली' कह-कहकर सुधापान करता हूँ। इससे मेरा मन मतवाला हो जाता है, पर लोग बोलते हैं कि मैं सुरा-पान करके मत्त हो गया हूँ! गुरुप्रदत्त रस को लेकर, उसमें प्रवृत्ति रूपी मसाला छोड़कर, ज्ञान-कलार शराब बनाकर भाँड़े में छान लेता है। मूलमंत्ररूपी बोतल से ढालकर मैं 'तारा-तारा' कहकर उसे शुद्ध कर लेता हूँ; और मेरा मन उसका पान कर मतवाला हो जाता है। प्रसाद कहता है, ऐसी सुरा का पान करने से चारों फलों की प्राप्ति होती है।"

गाना सुनकर डाक्टर को भावावेश-सा हो गया। श्रीरामकृष्ण को भी पुनः भावावेश हो गया। उसी आवेश में उन्होंने डाक्टर की गोद में एक पैर बढ़ाकर रख दिया। कुछ देर बाद भाव का उपशम हुआ। तब पैर खींचकर उन्होंने डाक्टर से कहा—"अहा,

तुमने कैसी सुन्दर बात कही है ! 'उन्हीं की गोद में बैठा हुआ हूँ। बीमारी की बात उनसे नहीं कहूँगा तो और किससे कहूँगा ? '—बुलाने की आवश्यकता होगी तो उन्हें ही बुलाऊँगा।"

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण की आँखें आँसुओं से भर गईं। वे फिर भावाविष्ट हो गए। उसी अवस्था में डाक्टर से कह रहे हैं—"तुम खूब शुद्ध हो। नहीं तो मैं पैर न रख सकता !" फिर कह रहे हैं—"'शान्त वही है जो रामरस चखे।'

"विषय हैं क्या ?—उसमें क्या है ?—रुपया, पैसा, मान, शरीर-सुख इनमें क्या रखा है ? 'ऐ दिल, जिसने राम को नहीं पहचाना, उसने फिर पहचाना ही क्या ?'"

बीमारी की इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण को भावावेश में रहते देखकर भक्तों को चिन्ता हो रही है। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"उस गाने के हो जाने पर मैं रुक जाऊँगा—'हरि-रस-मदिरा—'।" नरेन्द्र एक दूसरे कमरे में थे, बुलाए गए। गन्धर्वोपम कण्ठ से नरेन्द्र गाने लगे—(भावार्थ)—"ऐ मेरे मन हरि-रस-मदिरा का पान करके तुम मस्त हो जाओ। मधुर हरि-नाम करते हुए धरती पर लोटो और रोओ। हरि-नाम के गंभीर निनाद से गगन को छा दो। 'हरि-हरि' कहते हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर नाचो, और सब में इस मधुर हरि-नाम का वितरण कर दो। ऐ मन, हरि के प्रेमानन्द-रस रूपी समुद्र में रात्रन्दिवा तैरते रहो। हरि का पावन नाम ले-लेकर नीच वासना का नाश कर दो और पूर्णकाम बन जाओ।"

श्रीरामकृष्ण—और वह गाना, 'चिदानन्द-सागर में . . . ?'

नरेन्द्र गा रहे हैं—(भावार्थ)—"चिदानन्द-सागर में आनन्द और प्रेम की तरंगें उठ रही हैं; उस महाभाव और रास-

लीला की कैसी सुन्दर माधुरी है ! ..."

डाक्टर सरकार ने गानों को ध्यानपूर्वक सुना। जब गाना समाप्त हो गया तो उन्होंने कहा, "यह गाना अच्छा है— 'चिदानन्द-सागर में ......' "

डाक्टर को इस प्रकार प्रसन्न देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, "लड़के ने बाप से कहा, 'पिताजी, आप थोड़ी सी शराब चख लीजिए और उसके बाद यदि मुझसे कहेंगे कि मैं शराब पीना छोड़ दूँ, तो छोड़ दूँगा।' शराब चखने के बाद बाप ने कहा, 'बेटा, तुम चाहो तो शराब छोड़ दो, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मैं स्वयं तो अब निश्चय ही न छोड़ूँगा !'

(डाक्टर तथा अन्य सब हँसते हैं)

"उस दिन माँ ने मुझे दो व्यक्ति दिखाए थे। उनमें से एक तुम (डाक्टर) थे। उन्होंने यह भी दिखाया कि तुम्हें बहुत ज्ञान होगा, पर वह शुष्क ज्ञान रहेगा। (डाक्टर के प्रति मुस्कराते हुए) पर धीरे-धीरे तुम नरम हो जाओगे।"

डाक्टर सरकार चुप रहे।

परिच्छेद २६

कालीपूजा तथा श्रीरामकृष्ण

(१)

कालीपूजा के दिन भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण श्यामपुकुरवाले मकान के ऊपर-दक्षिण के कमरे में खड़े हुए हैं। दिन के ९ बजे का समय होगा। आप शुद्ध वस्त्र पहने ललाट में चन्दन की बिन्दी लगाए हुए हैं। मास्टर आपकी आज्ञा पाकर सिद्धेश्वरी काली का प्रसाद ले आए हैं। प्रसाद को हाथ में ले, बड़े भक्ति-भाव से श्रीरामकृष्ण खड़े हुए उसका कुछ अंश ग्रहण कर रहे हैं और कुछ मस्तक पर धारण कर रहे हैं। प्रसाद ग्रहण करते समय आपने पादुकाओं को पैरों से उतार दिया। मास्टर से कह रहे हैं-- "बहुत अच्छा प्रसाद है।" आज शुक्रवार है, आश्विन की अमावस्या, ६ नवम्बर १८८५। आज कालीपूजा का दिन है।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर को आदेश दिया था ठनठनिया की सिद्धेश्वरी काली मूर्ति की पुष्प, नारियल, शक्कर और सन्देश चढ़ाकर पूजा करने के लिए। मास्टर स्नान करके नंगे पैर सबेरे पूजा समाप्त करके नंगे पैर ही श्रीरामकृष्ण के लिए प्रसाद लेकर आए हैं।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर को रामप्रसाद और कमलाकान्त की संगीत-पुस्तकें खरीद लाने के लिए कहा था। वे डाक्टर सरकार को ये पुस्तकें देना चाहते थे।

मास्टर कह रहे हैं-- "ये पुस्तकें भी लाया हूँ-- रामप्रसाद और कमलाकान्त के गाने की पुस्तकें।" श्रीरामकृष्ण ने कहा,

"डाक्टर के भीतर इन गीतों का भाव संचारित कर देना होगा।"

गाना— ऐ मेरे मन! ईश्वर का स्वरूप जानने के लिए तुम यह कैसी चेष्टा कर रहे हो? तुम तो अंधेरे कमरे में बन्द पागल की तरह भटक रहे हो...।

गाना— कौन कह सकता है कि काली कैसी है? षड्दर्शनों को भी जिसके दर्शन नहीं हो पाते...।

गाना— ऐ मन! तू खेती करना नहीं जानता। यह मनुष्य-जन्म परती जमीन की तरह पड़ा रह गया! अगर तू खेती करता तो इसमें सोना फल सकता था!...

गाना— आ मन, चल, टहलने चलें। काली-कल्पतरु के नीचे तुझे चारों फल पड़े मिल जाएँगे।...

मास्टर ने कहा, 'जी हाँ।' श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ कमरे में टहल रहे हैं—— पैरों में चट्टी-जूता है। इस तरह की कठिन बीमारी, परन्तु फिर भी श्रीरामकृष्ण सदा ही प्रसन्न रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— और वह गाना भी अच्छा है। 'यह संसार धोखे की टट्टी है।'

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण एकाएक चौंक पड़े। पादुकाओं को निकालकर वे स्थिर भाव से खड़े हो गए और गम्भीर समाधि में मग्न हो गए। आज जगन्माता की पूजा का दिन है, शायद इसीलिए बारम्बार उन्हें रोमाँच हो रहा है और समाधि में मग्न हो रहे हैं। बड़ी देर बाद एक लम्बी साँस छोड़ मानो बड़े कष्ट से उन्होंने अपना भाव संवरण किया।

(२)

भजनानन्द में

श्रीरामकृष्ण उसी ऊपरवाले कमरे में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। दिन के दस बजे का समय होगा। बिस्तरे पर तकिये के सहारे बैठे हुए हैं, चारों ओर भक्तगण हैं। राम, राखाल, निरंजन, कालीपद, मास्टर आदि बहुत से भक्त हैं। श्रीरामकृष्ण के भाँजे हृदय मुखर्जी की बात चल रही है।

श्रीरामकृष्ण– (राम आदि से)– हृदय अभी भी जमीन-जमीन रट रहा है! जब वह दक्षिणेश्वर में था, तब उसने कहा था, 'दुशाला दो, नहीं तो मैं नालिश कर दूँगा।'

"माँ ने उसे दक्षिणेश्वर से हटा दिया। आदमी जब आते थे, तब बस रुपया-रुपया करता था। वह अगर रहता तो ये सब आदमी न आते। इसीलिए माँ ने उसे हटा दिया।

"गो० भी पहले पहले उसी तरह किया करता था। नाक-भौं सिकोड़ता था। मेरे साथ गाड़ी में कहीं जाना पड़ता था तो देर करने लगता था। दूसरे लड़के अगर मेरे पास आते, तो उसे रंज होता था। उन्हें देखने के लिए अगर मैं कलकत्ते जाता था, तो मुझसे कहता था, 'क्या वे संसार छोड़कर आएँगे जो उन्हें देखने के लिए जाइएगा?' उन लड़कों को मिठाई आदि देने से पहले मैं उससे डरकर कहता था, 'तू भी खा और उन्हें भी दे।' अन्त में मालूम हो गया कि वह यहाँ न रहेगा।

"तब मैंने माँ से कहा, 'माँ, उसे हृदय की तरह बिलकुल न हटा देना।' फिर मैंने सुना वह वृन्दावन जाएगा।

"गो० अगर रहता तो इन सब लड़कों का कुछ न होता। वह वृन्दावन चला गया, इसीलिए वे सब लड़के आने-जाने लगे।"

गो०– (विनयपूर्वक)– पर वैसी कोई बात मेरे मन में नहीं थी, आप सच जानिए ।

राम दत्त– तुम्हारे मन के सम्बन्ध में वे जितना समझेंगे, उतना क्या तुम समझ सकोगे ?

गो० चुप हो रहे ।

श्रीरामकृष्ण– (गो० से)– तू क्यों ऐसा सोचता है ?––मैं तुझे पुत्र से भी अधिक प्यार करता हूँ ! . . .

" अब तू चुप रह । . . . अब तुझमें वह भाव नहीं रह गया । "

भक्तों के साथ बातचीत होने के पश्चात्, उन लोगों के दूसरे कमरे में चले जाने पर, श्रीरामकृष्ण ने गो० को बुलवाया और पूछा–– ' तूने कुछ और तो नहीं सोच लिया ? ' गो० ने कहा–– ' जी नहीं । '

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से कहा, ' आज कालीपूजा है, पूजा के लिए कुछ आयोजन किया जाय तो अच्छा हो । उन लोगों से एक बार कह आओ । '

मास्टर ने बैठकखाने में जाकर भक्तों से कहा । कालीपद तथा दूसरे भक्त पूजा के लिए प्रबन्ध करने लगे ।

दिन के दो बजे के लगभग डाक्टर श्रीरामकृष्ण को देखने आए; साथ में अध्यापक नीलमणि भी हैं । श्रीरामकृष्ण के पास बहुत से भक्त बैठे हुए हैं । गिरीश, कालीपद, निरंजन, राखाल, खोखा (मणीन्द्र), लाटू, मास्टर, आदि बहुत से भक्त हैं । श्रीरामकृष्ण प्रसन्नतापूर्वक बैठे हुए हैं । डाक्टर से पहले बीमारी और दवा की बातें हो जाने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, ' तुम्हारे लिए ये पुस्तकें मँगवाई गई हैं । ' डाक्टर को मास्टर ने दोनों

पुस्तकें दे दीं। डाक्टर ने गाना सुनना चाहा। श्रीरामकृष्ण की आज्ञा पा मास्टर और एक भक्त रामप्रसाद का गाना गा रहे हैं—

गाना— ऐ मेरे मन! ईश्वर का स्वरूप जानने के लिए तुम यह कैसी चेष्टा कर रहे हो! तुम तो अंधेरे कमरे में बन्द पागल की तरह भटक रहे हो...।

गाना— कौन जानता है कि काली कैसी है? षड्दर्शनों को भी जिसके दर्शन नहीं हो पाते।...

गाना— ऐ मन, तू खेती करना नहीं जानता।...

गाना— आ मन, चल घूमने चलें।...

डाक्टर गिरीश से कह रहे हैं—'तुम्हारा वह गाना बड़ा सुन्दर है— वीणावाला— बुद्धचरित का गाना।' श्रीरामकृष्ण का इशारा पाकर गिरीश और काली दोनों मिलकर गाना सुना रहे हैं—

गाना— मेरी यह बड़ी ही साध की वीणा है, बड़े यत्नपूर्वक इसके तारों का हार गूँथा गया है।...

गाना— मैं शान्ति के लिए व्याकुल हूँ, पर वह मिलती कहाँ है? न जाने कहाँ से आकर कहाँ बहा जा रहा हूँ।...

गाना— ऐ निताई, मुझे पकड़ो! मेरे प्राणों में आज न जाने यह क्या हो रहा है!...

गाना— आओ, आओ, ऐ जगाई-माधाई, प्राण भरकर, आओ, हरि का नाम लें!...

गाना— यदि तुझे किशोरी राधा का प्रेम लेना है तो चला आ, प्रेम की ज्वार बही जा रही है।...

गाना सुनते सुनते दो-तीन भक्तों को भावावेश हो गया। गाना हो जाने पर श्रीरामकृष्ण के साथ डाक्टर फिर बातचीत

करने लगे। कल डा. प्रताप मजूमदार ने श्रीरामकृष्ण को नक्स वोमिका (Nux Vomica) दी थी। डाक्टर सरकार को यह सुनकर क्षोभ हो रहा है।

डाक्टर– मैं मर तो गया नहीं था! फिर नक्स वोमिका कैसे दी गई!

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– तुम क्यों मरोगे? तुम्हारी अविद्या की मृत्यु हो!

डाक्टर– मेरे किसी समय अविद्या नहीं थी!

डाक्टर ने अविद्या का अर्थ भ्रष्ट-स्त्री समझ लिया था।

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– नहीं जी, संन्यासी की अविद्या-माँ मर जाती है, और विवेक-पुत्र हो जाता है। अविद्या-माँ के मर जाने पर अशौच होता है, इसीलिए कहते हैं—संन्यासी को छूना नहीं चाहिए।

हरिवल्लभ आए हुए हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'तुम्हें देखकर आनन्द होता है।' हरिवल्लभ बड़े विनयशील हैं। चटाई से अलग जमीन पर बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को पंखा झल रहे हैं। हरिवल्लभ कटक के सब से बड़े वकील हैं।

पास ही अध्यापक नीलमणि बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण उनकी मान-रक्षा करते हुए कह रहे हैं, 'आज मेरा शुभ दिन है।' कुछ देर बाद डाक्टर और उनके मित्र नीलमणि बिदा हो गए। हरि-वल्लभ भी उठे। चलते समय उन्होंने कहा, 'मैं फिर आऊँगा।'

(३)

श्रीकालीपूजा

शरद् ऋतु की अमावस्या है,— रात के आठ बजे होंगे। उसी ऊपरवाले कमरे में पूजा का सारा प्रबन्ध किया गया है। अनेक

प्रकार के पुष्प, चन्दन, बिल्वपत्र, जवापुष्प, खीर तथा अनेक प्रकार की मिठाइयाँ भक्तगण ले आए हैं। श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। चारों ओर से भक्त-मण्डली घेरे हुए बैठी है। शरद, राम, गिरीश, चुन्नीलाल, मास्टर, राखाल, निरंजन, छोटे नरेन्द्र, बिहारी आदि बहुत से भक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण ने कहा—'धूना ले आओ।' कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने जगन्माता को सब कुछ निवेदित कर दिया। मास्टर पास बैठे हुए हैं। मास्टर की ओर देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—'सब लोग थोड़ी देर ध्यान करो।' भक्तगण ध्यान करने लगे।

पहले गिरीश ने श्रीरामकृष्ण के श्रीचरणों में माला चढ़ाई, फिर मास्टर ने गन्ध-पुष्प चढ़ाए। तत्पश्चात् राखाल ने, फिर राम ने। इसी तरह सब भक्त श्रीचरणों में पुष्प-दल चढ़ाने लगे।

श्रीचरणों में फूल चढ़ाकर निरंजन 'ब्रह्ममयी' कहकर भूमिष्ठ हो प्रणाम करने लगे। भक्तगण 'जय माँ, जय माँ' कह रहे हैं।

देखते ही देखते श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो गए। भक्तों की आँखों के सामने ही श्रीरामकृष्ण में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। उन लोगों ने उनके मुख-मण्डल पर दैवी ज्योति का अवलोकन किया। उनके दोनों हाथ इस प्रकार उठे हुए थे जैसे कि वे भक्तों को वरदान तथा अभय-दान दे रहे हों। उनका शरीर निश्चल है, बाह्य संसार का उन्हें बिलकुल ज्ञान नहीं। वे उत्तर की ओर मुँह किए हुए बैठे हैं। क्या इनके भीतर साक्षात् जगन्माता आविर्भूत हुई हैं? सभी अवाक् हो, एकटक दृष्टि से इस अद्भुत वराभयदायिनी जगन्माता की जीवन्त मूर्ति का दर्शन कर रहे हैं।

भक्तगण स्तुतिपाठ कर रहे हैं। पहले एक भक्त गाता है, उसके पीछे सब एक ही स्वर में उसी पद की आवृत्ति करते हैं।

गिरीश गा रहे हैं--

(भावार्थ)– देवताओं के बीच वह कौन रमणी चमक रही है, जिसके घने काले केश मेघ-श्रेणी के समान जान पड़ते हैं? वह कौन है, जिसके रक्तोत्पल युगल चरण शिव की छाती पर विराजमान हैं? वह कौन है, जिसके नखों में रजनीकर का वास है और जिसके पैरों की दीप्ति सूर्य को भी मात कर रही है? वह कौन है, जिसके मुख पर मधुर हास्य शोभायमान है और जिसका विकट अट्टहास रह-रहकर दसों दिशाओं को गुँजा दे रहा है?

उन्होंने फिर गाया--

गाना– दीनतारिणी, दुरितहारिणी, सत्त्व-रजस्तम-त्रिगुण-धारिणी।

सृजन-पालन-निधन-कारिणी, सगुणा निर्गुणा सर्वस्वरूपिणी।..

बिहारी गा रहे हैं - (भावार्थ)–

"ऐ श्यामा! शवारूढ़ा माँ! सुनो, मैं तुम्हारे पास अपने हृदय की आन्तरिक कामना व्यक्त करता हूँ। जब मेरी अन्तिम साँस इस देह को छोड़ चलेगी तब, ऐ शिवे, तुम मेरे हृदय में प्रकाशित होना। उस समय, माँ, मैं मन-मन वन-वन घूमकर सुन्दर जवा-कुसुम चुनकर ले आऊँगा, और उसमें भक्ति-चन्दन मिलाकर तुम्हारे श्रीचरणों में पुष्पांजलि दूँगा।"

भक्तों के साथ मणि गा रहे हैं– (भावार्थ)–

"ओ माँ! सब कुछ तुम्हारी ही इच्छा से होता है। ऐ तारा! तुम इच्छामयी हो! तुम अपने कर्म आप ही करती हो, पर लोग बोलते हैं 'मैं करता हूँ।' माँ, तुम हाथी को कीचड़ में फँसा

देती हो, पंगु को गिरि लाँघने में समर्थ कर देती हो, किसी को तुम इन्द्रत्वपद दे देती हो, तो किसी को अधोगामी बना देती हो। अम्बे ! मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं गृह हूँ, तुम गृहिणी हो; मैं रथ हूँ, तुम रथी हो। माँ, तुम मुझे जैसा चलाती हो, वैसा ही चलता हूँ। "

पुनः——

" ऐ माँ, तुम्हारी करुणा से सभी कुछ सम्भव हो सकता है। अलंघ्य पर्वत के समान विघ्न-बाधा भी तुम्हारी कृपा से दूर हो जाती है। तुम मंगलनिधान हो, तुम सभी का मंगल करती हो—सभी को सुख और शान्ति प्रदान करती हो। तो फिर माँ, अपने फलाफल की चिन्ता करके मैं ही क्यों व्यर्थ जला जा रहा हूँ ? "

पुनः——

" ओ माँ आनंदमयी, मुझे निरानन्द न कर देना ! ... "

पुनः——

" निबिड़ अंधकार में, ऐ माँ, तेरी अरूप-राशि चमक उठती है। ... "

श्रीरामकृष्ण अब प्रकृतिस्थ हो गए हैं। उन्होंने इस गीत को गाने को कहा——" ऐ श्यामा ! सुधातरंगिणी ! नहीं मालूम, तुम कब किस रंग में रहती हो। "

इस गाने के समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण ' शिव के साथ सदा ही रंग में रँगी हुई तुम आनन्द में मग्न हो ' इस गीत को गाने के लिए आदेश कर रहे हैं।

भक्तों के आनंद के लिए श्रीरामकृष्ण कुछ खीर अपने मुख में लगा रहे हैं, परन्तु उसी समय भाव में विभोर हो बिलकुल

बाह्य संज्ञाशून्य हो गए ।

कुछ देर बाद भक्तगण श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके प्रसाद लेकर बैठकखाने में चले गए । सब एक साथ आनन्दपूर्वक प्रसाद पाने लगे ।

रात के नौ बजे का समय होगा । श्रीरामकृष्ण ने कहला भेजा, 'रात हो गई है, सुरेन्द्र के यहाँ आज कालीपूजा है, तुम लोगों का न्योता है, तुम लोग जाओ ।'

भक्तगण आनन्द करते हुए सिमला में सुरेन्द्र के यहाँ पहुँचे । सुरेन्द्र ने आदरपूर्वक उन्हें ऊपरवाले बैठकखाने में ले जाकर बैठाया । घर में उत्सव है, सब लोग गीत और वाद्य के द्वारा आनन्द मना रहे हैं ।

सुरेन्द्र के यहाँ से प्रसाद पाकर लौटते हुए भक्तों को आधी रात से अधिक हो गई ।

परिच्छेद २७

काशीपुर में श्रीरामकृष्ण

(१)

कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ काशीपुर में रहते हैं। शुक्रवार, ११ दिसम्बर १८८५ को श्यामपुकुर का मकान छोड़कर उन्हें यहाँ ले आया गया। यहाँ आए आज बारह दिन हो गए। इतनी कठिन बीमारी होते हुए भी उन्हें यही चिन्ता रहती है कि किस तरह भक्तों का कल्याण हो। दिन-रात किसी-न-किसी भक्त के सम्बन्ध में चिन्ता किया करते हैं।

श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए बालक भक्त क्रमशः काशीपुर में आकर रह रहे हैं। अभी भी बहुतेरे भक्त अपने घर आया-जाया करते हैं। गृही भक्त प्रायः रोज आकर देख जाया करते हैं, कभी कभी रात को भी रह जाते हैं।

इस समय तक लगभग सभी भक्त एकत्रित हो गए हैं। १८८१ ई. से भक्तों का समागम होने लगा था। अन्त के प्रायः सभी भक्त आ गए हैं। १८८४ ई. के अन्तिम भाग में शरद और शशि ने श्रीरामकृष्णं का प्रथम दर्शन किया था। कालेज की परीक्षा के बाद, १८८५ की मई-जून से वे सदा ही उनके पास आया-जाया करते हैं। गिरीश घोष ने श्रीरामकृष्ण का सर्वप्रथम दर्शन १८८४ ई. के सितम्बर मास में स्टार थिएटर में किया था, शारदा ने १८८४ दिसम्बर के अन्त में, तथा सुबोध और क्षीरोद ने १८८५ अगस्त में।

आज बुधवार है, २३ दिसम्बर १८८५। आज सुबह से प्रेम

की मानो लूट मची हुई है। श्रीरामकृष्ण निरंजन से कह रहे हैं, 'तू मेरा बाप है, मैं तेरी गोद में बैठूँगा।' कालीपद की छाती पर हाथ रखकर वे कह रहे हैं, 'चैतन्य हो,' और उनकी ठुड्डी पकड़कर उनका दुलार कर रहे हैं। कह रहे हैं, 'जिसने हृदय से ईश्वर को पुकारा होगा, जिसने सन्ध्योपासना की होगी, उसे यहाँ आना ही होगा।' आज प्रातःकाल दो भक्त-स्त्रियों पर भी कृपादृष्टि हो गई। समाधिस्थ होकर उन्होंने अपने पैर से उनका स्पर्श किया। उस समय उन स्त्रियों की आँखों में आँसू आ गए। एक ने रोते हुए कहा, 'आपकी इतनी कृपा!' सचमुच ही, आज श्रीरामकृष्ण ने प्रेम की लूट मचा रखी है। सींती के गोपाल पर कृपा करने की इच्छा है, इसलिए कह रहे हैं, 'उसे बुला ले आओ।'

सन्ध्या हो गई है। श्रीरामकृष्ण जगन्माता की चिन्ता कर रहे हैं।

कुछ देर बाद बड़े ही धीमे स्वर में दो-एक भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बातचीत कर रहे हैं। कमरे में काली, चुन्नीलाल, मास्टर, नवगोपाल, शशि, निरंजन आदि भक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण– एक स्टूल खरीद लाना—यहाँ के लिए। कितना लगेगा?

मास्टर– जी, दो-तीन रुपये के भीतर आ जाएगा।

श्रीरामकृष्ण– नहाने की चौकी जब बारह आने में मिलती है तो उसकी कीमत इतनी क्यों होगी?

मास्टर– कीमत ज्यादा न होगी—उतने के ही भीतर हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, कल तो बृहस्पतिवार है— तीसरा पहर

अशुभ होगा। क्या तुम तीन बजे से पहले न आ सकोगे ?

मास्टर– जी हाँ, आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, यह बीमारी कितने दिनों में अच्छी होगी ?

मास्टर– ज़रा बढ़ गई है, कुछ दिन लगेंगे।

श्रीरामकृष्ण– कितने दिन ?

मास्टर– पाँच-छः महीने लग सकते हैं।

यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बालक की तरह अधीर हो गए। कहते हैं— "कहते क्या हो ? "

मास्टर– जी, मैंने जड़-समेत अच्छी होने के लिए इतने दिन बतलाए हैं।

श्रीरामकृष्ण– यह कहो। अच्छा, ईश्वरी रूपों के इतने दर्शन होते हैं, भाव और समाधि होती है, फिर ऐसी बीमारी क्यों हुई ?

मास्टर– जी, आपको कष्ट तो बहुत हो रहा है, परन्तु इसका उद्देश है।

श्रीरामकृष्ण– क्या उद्देश है ?

मास्टर– आपकी अवस्था में परिवर्तन हो रहा है। निराकार की ओर झुकाव हो रहा है। आपका 'विद्या का मैं' भी नष्ट हुआ जा रहा है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, लोक-शिक्षा बन्द हो रही है। अब और नहीं कहा जाता। सब राममय देख रहा हूँ। कभी कभी मन में आता है, किससे कहूँ ? देखो न, यह मकान किराये पर लिया गया, इससे कितने प्रकार के भक्त आ रहे हैं।

"कृष्णप्रसन्न सेन या शशधर की तरह साइन बोर्ड तो न लटकाया जाएगा कि इतने समय से इतने समय तक लेक्चर होगा ! " (श्रीरामकृष्ण और मास्टर हँसते हैं)

मास्टर– एक उद्देश और है, भक्तों का चुनना। पाँच साल तक तपस्या करके जो कुछ न होता, वह इन्हीं कुछ दिनों में भक्तों को हो गया। उनका प्रेम, उनकी भक्ति आषाढ़ की बाढ़ के समान बढ़ती जा रही है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, यह तो हुआ। अभी निरंजन घर गया था। (निरंजन से) "तू बता, तुझे क्या मालूम पड़ता है ?"

निरंजन– जी, पहले प्यार ही था, परन्तु अब छोड़कर नहीं रहा जाता।

मास्टर– मैंने एक दिन देखा था, ये लोग कितना बढ़े-चढ़े हैं।

श्रीरामकृष्ण– कहाँ ?

मास्टर– एक तरफ खड़ा हुआ श्यामपुकुरवाले मकान में देखा था। जान पड़ा, ये लोग कितनी बड़ी बाधाओं को हटाकर वहाँ सेवा के लिए आकर बैठे हुए हैं।

यह बात सुनते ही श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो रहा है। कुछ देर तक वे स्तब्ध रहे, फिर समाधिस्थ हो गए।

भाव का उपशम होने पर मास्टर से कह रहे हैं–– "मैंने देखा, साकार से सब निराकार में जा रहे हैं। और सब बातें कहने की इच्छा हो रही है, परन्तु कहने की शक्ति नहीं है।

"अच्छा, यह निराकार की ओर का सुझाव केवल लीन होने के लिए है न ? "

मास्टर– (अवाक् होकर) – जी, ऐसा ही होगा।

श्रीरामकृष्ण– अब भी देख रहा हूँ, निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द–– ठीक इसी तरह...परन्तु बड़े कष्ट से मुझे भाव संवरण करना पड़ रहा है।

"तुमने जो भक्तों के चुनने की बात कही, वह ठीक है। इस

बीमारी में यह समझ में आ रहा है कि कौन अन्तरंग है और कौन बहिरंग। जो लोग संसार को छोड़कर यहाँ पर हैं, वे अंतरंग हैं। और जो लोग एक बार आकर केवल पूछ जाते हैं, 'कैसे हैं आप, महाशय ?' वे बहिरंग हैं।

"भवनाथ को तुमने देखा नहीं ? श्यामपुकुर में दूल्हा-सा सजकर आया और पूछा—'कैसे हैं आप ?' बस तब से फिर उसने इधर का नाम तक नहीं लिया। नरेन्द्र के कारण ही मैं उसका इतना ख्याल करता हूँ, परन्तु अब उस पर मेरा मन नहीं है।"

(२)

श्रीमुखकथित चरितामृत

श्रीरामकृष्ण—(मणि से)—जब ईश्वर भक्तों के लिए शरीर धारण करके आते हैं, तब उनके साथ साथ भक्त भी आते हैं। उनमें कोई अन्तरंग होते हैं, कोई बहिरंग, और कोई रसददार (आवश्यकताओं को पूरी करनेवाले) होते हैं।

"दस-ग्यारह साल की उम्र में विशालाक्षी के दर्शन करने के लिए जब मैं गया था, तब मैदान में मेरी पहली भावावस्था हुई थी। कितनी सुन्दर अवस्था थी वह ! मैं बिलकुल बाह्यज्ञान-शून्य हो गया था।

"जब बाईस-तेईस साल की उम्र थी तब उसने (जगन्माता ने) मुझसे कालीघर (दक्षिणेश्वर) में पूछा—'क्या तू अक्षर होना चाहता है ?' मैं अक्षर का अर्थ जानता ही न था। पूछने पर हलधारी ने बतलाया, 'क्षर का अर्थ है जीव और अक्षर का अर्थ है परमात्मा।'

"जब आरती होती थी, तब मैं कोठी के ऊपर से चिल्लाता

था, 'अरे भक्तो, तुम सब कहाँ हो ? आओ, जल्दी आओ। सांसारिक मनुष्यों के बीच में मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।' इंग्लिशमैनों (अंग्रेजी पढ़े आदमियों) से अपना हाल कहा तो उन्होंने बतलाया, 'यह सब मन की भूल है।' तब, अपने मन में यह कहकर 'शायद ऐसा ही हो' मैं चुप हो गया। परन्तु अब तो वह सब ठीक उतर रहा है।—अब भक्त आकर एकत्रित हो रहे हैं।

"फिर माँ ने दिखलाया, पाँच आदमी सेवा करनेवाले हैं। पहला मथुर बाबू है। फिर है शम्भू मल्लिक, उसे पहले मैंने कभी नहीं देखा था। भावावेश में मैंने देखा, गोरे रंग का आदमी, सिर पर टोपी पहने हुए। जब बहुत दिनों बाद शम्भू को देखा, तब याद आ गया कि इसी को मैंने भावावस्था में देखा था। सेवा करनेवाले और तीन आदमी अभी ठीक नहीं हुए; परन्तु सब गोरे रंग के हैं। सुरेन्द्र बहुत करके रसददार की तरह जान पड़ता है। यह अवस्था जब हुई, तब ठीक मेरी तरह का एक आदमी आकर मेरी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों को खूब हिला गया। षड्चक्रों के एक-एक पद्म के साथ जिह्वा के द्वारा रमण करता था, ऐसा करने से ही वे अधोमुख पद्म ऊर्ध्वमुख हो गए। अन्त में सहस्रार पद्म विकसित हो गया।

"कब किस तरह का आदमी आएगा, यह पहले ही से माँ मुझे दिखा देती थीं। इन्हीं आँखों से मैं देखा करता था—भावावेश में नहीं। मैंने देखा, चैतन्यदेव का संकीर्तन बकुल वृक्ष से वट वृक्ष की ओर जा रहा है। उसमें मैंने बलराम को देखा था और शायद तुम्हें भी देखा था। मेरे पास बार बार आने से तुममें और चुन्नी में आध्यात्मिक जागृति हुई है।

" शशि और शरद को देखा था, ये ईशु के दल में थे ।

" वट वृक्ष के नीचे एक बच्चे को देखा था। हृदय ने कहा, 'तब तो तुम्हारे एक लड़का होगा ? ' मैंने कहा, 'मेरे लिए तो सब मातृयोनि है, मेरे लड़का कैसे होगा ? ' वह लड़का राखाल है ।

" मैंने कहा, 'माँ, जब तुमने मेरी ऐसी ही अवस्था कर दी है तब एक बड़ा आदमी भी मिला दो । ' इसीलिए मथुर बाबू ने चौदह वर्ष तक सेवा की । और उसने कितना किया ! -- साधुओं की सेवा के लिए अलग भण्डार कर दिया; गाड़ी, पालकी, जो वस्तु जिसे देने के लिए मैं कहता था, वह तुरन्त दे देता था ! ब्राह्मणी उसे प्रताप रुद्र* कहती थी ।

" विजय ने इस रूप के (अपनी ओर इंगित कर) दर्शन किए थे । अच्छा, यह क्या है ?-- वह कहता है, तुम्हें इस समय छूने पर जैसा अनुभव होता है, वैसा ही मुझे उस समय हुआ था।

" लाटू ने गिना, इकतीस भक्त हैं । इतने तो बहुत नहीं हुए। पर हाँ, कुछ भक्त विजय तथा केदार के द्वारा भी बन रहे हैं ।

"भावावेश में माँ ने दिखलाया, अन्तिम दिनों में मुझे पायस खाकर ही रहना होगा ।

" इस बीमारी में वह (श्रीरामकृष्ण की धर्मपत्नी) मुझे एक दिन पायस खिला रही थी । तब यह कहकर मैं रोने लगा, 'क्या यही मेरा अन्तिम दिनों का पायस खाना है, और इतने कष्टपूर्वक ! ' "

---

* प्रताप रुद्र उड़ीसा के राजा तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। उन्होंने श्रीचैतन्य देव की अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्ति के साथ सेवा की थी ।

परिच्छेद २८

भक्तों का तीव्र वैराग्य

(१)

ईश्वर के लिए नरेन्द्र की व्याकुलता

श्रीरामकृष्ण काशीपुर के बगीचे में, मकान के ऊपरवाले मंज़ले में बैठे हुए हैं। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर से श्रीयुत राम चटर्जी उनका कुशल-समाचार लेने के लिए आए थे।

श्रीरामकृष्ण मणि के साथ इसी सम्बन्ध में बातचीत करते हुए पूछ रहे हैं—'क्या इस समय वहाँ (दक्षिणेश्वर में) ठंडक ज्यादा है ?'

आज पौष कृष्णा चतुर्दशी, सोमवार है, ४ जनवरी, १८८६। दिन के चार बजे का समय होगा।

नरेन्द्र आए और आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण उन्हें रह-रहकर देख रहे हैं और मुस्करा रहे हैं— मानो उनका स्नेह उछला जा रहा हो। श्रीरामकृष्ण ने मणि से इशारे से कहा कि नरेन्द्र रोए थे। फिर वे चुप हो गए। इसके बाद उन्होंने फिर इशारा किया कि नरेन्द्र घर से रास्ते भर रोते हुए आए थे।

सब लोग चुप हैं। अब नरेन्द्र बातचीत कर रहे हैं।

नरेन्द्र– सोच रहा हूँ, आज वहाँ चला जाऊँ।

श्रीरामकृष्ण– कहाँ ?

नरेन्द्र– दक्षिणेश्वर के बेलतल्ले में,—वहाँ रात को धूनी जलाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– नहीं, वे लोग (पड़ोस में 'मैगजीन' के पदाधिकारी) जलाने नहीं देंगे। पंचवटी बहुत अच्छी जगह

है,—— बहुत से साधुओं ने वहाँ जप-ध्यान किया है ।

"परन्तु बहुत ठंडा है, और अँधेरा भी है ।"

सब लोग चुप हैं । श्रीरामकृष्ण फिर बोले ।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से, सहास्य)– तू पढ़ेगा नहीं ?

नरेन्द्र– (श्रीरामकृष्ण और मणि की ओर देखकर)– एक दवा पाऊँ तो जी में जी आए,——वह दवा ऐसी कि उससे जो कुछ मैंने पढ़ा है, सब भूल जाऊँ ।

श्रीयुत गोपाल भी बैठे हुए हैं । उन्होंने कहा—— 'साथ में भी चलूँगा ।' श्रीयुत कालीपद घोष श्रीरामकृष्ण के लिए अंगूर लाए हैं । अंगूरों का डब्बा श्रीरामकृष्ण के पास ही रखा था । श्रीरामकृष्ण भक्तों को अंगूर दे रहे हैं । नरेन्द्र को पहले दिया । फिर प्रसादी बताशों की तरह सब अंगूर लुटा दिए । भक्तों ने, जिसने जहाँ पाया, बीन लिया ।

(२)

नरेन्द्र का तीव्र वैराग्य

शाम हो गई है, नरेन्द्र नीचे बैठे हुए एकान्त में मणि से अपने प्राणों की विकलता के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं ।

नरेन्द्र– (मणि से)– गत शनिवार को मैं यहाँ ध्यान कर रहा था, एकाएक छाती के भीतर न जाने कैसा होने लगा ।

मणि– कुण्डलिनी का जागरण हुआ होगा ।

नरेन्द्र– सम्भव है, वही हो । इड़ा और पिंगला का बिलकुल स्पष्ट अनुभव हुआ । हाजरा से मैंने कहा, छाती पर हाथ रखकर देखने के लिए । कल रविवार था, ऊपर जाकर मैं इनसे (श्रीरामकृष्ण से) मिला और सब बातें उन्हें कह सुनाईं ।

मैंने कहा, "सब की तो बन गई, कुछ मुझे भी दीजिए । सब

का तो काम हो गया और मेरा क्या न होगा ?"

मणि– उन्होंने तुमसे क्या कहा ?

नरेन्द्र– उन्होंने कहा, 'तू घर का कोई प्रबन्ध करके आ, सब हो जाएगा। तू क्या चाहता है ?'

मैंने कहा, 'मेरी इच्छा है, लगातार तीन-चार दिन तक समाधि-लीन रहा करूँ। कभी कभी बस भोजन भर के लिए उठूँ !'

उन्होंने कहा, 'तू तो बड़ी नीच बुद्धि का है। उस अवस्था से भी ऊँची अवस्था है। तू गाता भी तो है–– जो कुछ है, सो तू ही है।'

मणि– हाँ, वे तो सदा ही कहते हैं कि समाधि से उतरकर मन देखता है कि वे ही जीव और जगत् हुए हैं। यह अवस्था ईश्वरकोटि की हो सकती है। वे कहते हैं, जीवकोटि समाधि-अवस्था को प्राप्त करते हैं, परन्तु फिर वे वहाँ से उतर नहीं सकते।

नरेन्द्र– उन्होंने कहा, 'तू घर के लिए कोई व्यवस्था करके आ। समाधिलाभ की अवस्था से भी ऊँची अवस्था हो सकेगी।'

"आज सबेरे मैं घर गया तो सब लोग डाँटने लगे और कहा, 'तुम क्या इधर-उधर घूमते रहते हो ! कानून की परीक्षा सिर पर आ गई और तुम्हें न पढ़ना न लिखना–– आवारा घूमते फिरते हो !'"

मणि– तुम्हारी माँ ने भी कुछ कहा ?

नरेन्द्र– नहीं, वे मुझे खिलाने के लिए व्यस्त हो रही थीं।

मणि– फिर ?

नरेन्द्र– दीदी के घर में, उसी पढ़नेवाले कमरे में मैं पढ़ने लगा। पर पढ़ने बैठा तो हृदय में एक बहुत बड़ा आतंक छा गया,

जैसे पढ़ना एक भय का विषय हो ! छाती धड़कने लगी !— इस तरह मैं और कभी नहीं रोया ।

"फिर पुस्तकें फेंककर भागा ! — रास्ते से होकर भागता गया । जूते रास्ते में न जाने कहाँ पड़े रह गए ! धान के पयाल के ढेर के पास से होकर भाग रहा था । देह भर में पयाल लिपट गया । मैं काशीपुर के रास्ते की ओर भाग रहा था ।"

नरेन्द्र कुछ देर चुप रहे । फिर कहने लगे— "विवेकचूड़ामणि सुनकर मन और बिगड़ गया है । शंकराचार्य लिखते हैं— इन तीन संयोगों को बड़ी ही तपस्या का फल समझना चाहिए, ये बड़े भाग्य से मिलते हैं,— मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुसंश्रयः ।

"मैंने सोचा, मेरे लिए तीनों का संयोग हो गया है । बड़ी तपस्या का फल तो यह है कि मनुष्य-जन्म हुआ है, बड़ी तपस्या से मुक्ति की इच्छा हुई है, और सब से बड़ी तपस्या का फल यह है कि ऐसे महापुरुष का संग प्राप्त हुआ है !"

मणि– अहा !

नरेन्द्र– संसार अब अच्छा नहीं लगता । संसार में जो लोग हैं, उनसे भी जी हट गया है । दो-एक भक्तों को छोड़कर और कुछ अच्छा नहीं लगता ।

नरेन्द्र फिर चुप हो रहे । नरेन्द्र के भीतर तीव्र वैराग्य है । इस समय भी प्राणों में उथल-पुथल मची हुई है । नरेन्द्र फिर बातचीत कर रहे हैं ।

नरेन्द्र– (मणि के प्रति)– आप लोगों को तो शान्ति मिल गई है, परन्तु मेरे प्राण अस्थिर हो रहे हैं । आप ही लोग धन्य हैं ।

मणि ने कोई उत्तर नहीं दिया । चुप हैं । सोच रहे हैं— श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ईश्वर के लिए व्याकुल होना चाहिए,

तब उनके दर्शन होते हैं। सन्ध्या के बाद ही मणि ऊपरवाले कमरे में गए। देखा, श्रीरामकृष्ण सो रहे हैं।

रात के नौ बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण के पास निरंजन और शशि हैं। श्रीरामकृष्ण जागे। रह-रहकर वे नरेन्द्र की ही बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— नरेन्द्र की अवस्था कितने आश्चर्य की है ! देखो, यही नरेन्द्र पहले साकार नहीं मानता था। अब इसके प्राणों में कैसी खलबली मची हुई है, तुमने देखा ? जैसा उस कहानी में है-- किसी ने पूछा था, 'ईश्वर किस तरह मिल सकेंगे ?' तब गुरु ने कहा, 'मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें दिखलाता हूँ कि किस तरह की अवस्था में ईश्वर मिलते हैं।' यह कहकर गुरु ने एक तालाब में उसे ले जाकर डुबो दिया और ऊपर से दबाकर रखा, फिर कुछ देर बाद उसे छोड़कर गुरु ने पूछा— 'कहो तुम्हारे प्राण कैसे हो रहे थे ?' उसने कहा, 'प्राण छटपटा रहे थे— मानो अब निकलते ही हों।'

"ईश्वर के लिए प्राणों के छटपटाते रहने पर समझना कि अब दर्शन में देर नहीं है। अरुणोदय होने पर, पूर्व में लाली छा जाने पर समझ पड़ता है कि अब सूर्योदय होगा।"

आज श्रीरामकृष्ण की बीमारी बढ़ गई है। शरीर को इतना कष्ट है, फिर भी नरेन्द्र के सम्बन्ध में ये सब बातें संकेत द्वारा भक्तों को बतला रहे हैं।

आज रात को नरेन्द्र दक्षिणेश्वर चले गए। अमावस्या की रात्रि, घोर अन्धकारमयी हो रही है। नरेन्द्र के साथ दो-एक भक्त भी गए। रात को मणि बगीचे में ही हैं। स्वप्न में देख रहे हैं, वे संन्यासियों की मण्डली के बीच में बैठे हुए हैं।

(३)

भक्तों का तीव्र वैराग्य

दूसरे दिन मंगलवार है, ५ जनवरी। दिन के चार बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण शय्या पर बैठे हुए मणि से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– क्षीरोद अगर गंगासागर जाय, तो उसे एक कम्बल खरीद देना।

मणि– जी महाराज, जो आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, इन लड़कों को भला यह क्या हो रहा है? कोई पुरी भाग रहा है तो कोई गंगासागर जा रहा है!

"सब घर छोड़-छोड़कर आ रहे हैं! देखो न नरेन्द्र को। तीव्र वैराग्य के होने पर ससार कुआँ तथा आत्मीय काले साँप जैसे जान पड़ते हैं।"

मणि– जी, संसार में बड़ा कष्ट है।

श्रीरामकृष्ण– जन्म से ही नरक-यंत्रणा होती है। देख रहे हो न, बीबी और बच्चों को लेकर कितना कष्ट होता है!

मणि– जी हाँ, और आपने कहा था, उनको (बालक भक्तों को) न किसी से लेना है, न देना; इस लेने-देने के लिए ही अटका रहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– देखते हो न निरंजन को! उसका भाव है–– 'यह ले अपना और इधर ला मेरा।' बस, और कोई सम्बन्ध नहीं, और कोई खिंचाव नहीं।

"कामिनी-कांचन, यही संसार है। देखो न, धन होता है तो तुम्हें उसे भविष्य के लिए सुरक्षित रख छोड़ने की सूझती है।"

यह सुनकर मणि ठहाका मारकर हँसने लगे। श्रीरामकृष्ण

भी हँसे।

मणि– रुपया निकालते हुए बड़ा हिसाब पैदा होता है। (दोनों हँस पड़े) आपने दक्षिणेश्वर में कहा था, त्रिगुणातीत होकर अगर कोई संसार में रह सके तो हो सकता है।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, बालक की तरह।

मणि– जी, परन्तु है बड़ा कठिन, बड़ी शक्ति चाहिए।

श्रीरामकृष्ण कुछ चुप हैं।

मणि– कल वे लोग दक्षिणेश्वर में ध्यान करने के लिए गए। मैंने स्वप्न देखा।

श्रीरामकृष्ण– क्या देखा ?

मणि– देखा, नरेन्द्र आदि संन्यासी हो गए हैं, धूनी जलाकर बैठे हुए हैं। उनके बीच में मैं भी बैठा हुआ हूँ।

श्रीरामकृष्ण– मन से त्याग होने से ही हुआ; अगर ऐसा कोई कर सका तो वह भी संन्यासी है।

श्रीरामकृष्ण चुप हैं। फिर बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु वासना में आग लगाओ, तब होगा।

मणि– बड़ाबाजार में मारवाड़ियों के पण्डित से आपने कहा था, ' मुझमें भक्ति की कामना है, '— भक्ति की कामना की गणना शायद कामनाओं में नहीं होती।

श्रीरामकृष्ण– जैसे ' हिंचे ' का साग सागों में नहीं गिना जाता, क्योंकि उससे पित्त का दमन होता है।

" अच्छा, इतना आनन्द-भाव था, वह सब कहाँ गया ? "

मणि– गीता में जो त्रिगुणातीत अवस्था लिखी है, वही हुई होगी। सत्त्व, रज और तमोगुण आप ही आप काम कर रहे हैं, आप स्वयं निर्लिप्त हैं— सत्त्वगुण से भी आप निर्लिप्त हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, जगन्माता ने मुझे बालक की अवस्था में रखा है।

"क्या अबकी बार देह न रहेगी ?"

श्रीरामकृष्ण और मणि चुप हैं। नरेन्द्र नीचे से आए। एक वार घर जाएंगे। वहाँ की व्यवस्था करके आएँगे।

पिता के स्वर्गवास के बाद से नरेन्द्र की माँ और भाई बड़े कष्ट में हैं। कभी कभी फ़ाके भी हो जाते हैं। नरेन्द्र ही उनका एकमात्र भरोसा है कि वे रोज़गार करके उन्हें खिलाएँगे। परन्तु कानून की परीक्षा नरेन्द्र दे नहीं सके। इस समय उन्हें तीव्र वैराग्य है। इसीलिए आज घर का प्रबन्ध करने के लिए वे जा रहे हैं। एक मित्र ने उन्हें सौ रुपया कर्ज़ देने के लिए कहा है। उन्हीं रुपयों से घर के लिए तीन महीने तक के भोजन का प्रबन्ध करके आएँगे।

नरेन्द्र– ज़रा घर जाता हूँ एक बार। (मणि से) महिम चक्रवर्ती के घर से होकर जाऊँगा, क्या आप चलेंगे ?

मणि की जाने की इच्छा नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने उनकी ओर देखकर नरेन्द्र से पूछा—'क्यों ?'

नरेन्द्र– उसी रास्ते से जा रहा हूँ, उनके साथ ज़रा बातें करता।

श्रीरामकृष्ण एकदृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं।

नरेन्द्र– यहाँ के एक मित्र ने सौ रुपये उधार देने के लिए कहा है। उन्हीं रुपयों से घर का तीन महीने के लिए प्रबन्ध करके आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण चुप हैं। मणि की ओर उन्होंने देखा।

मणि– (नरेन्द्र से)– नहीं, तुम लोग चलो, मैं बाद में आऊँगा।

परिच्छेद २९

श्रीरामकृष्ण कौन हैं ?

(१)

ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का समन्वय

श्रीरामकृष्ण काशीपुर के बगीचे में भक्तों के साथ बड़े कमरे में रहते हैं। रात के आठ बजे का समय होगा। कमरे में नरेन्द्र, शशि, मास्टर, बूढ़े गोपाल और शरद हैं। आज बृहस्पतिवार है, फाल्गुन की शुक्ला षष्ठी, ११ मार्च, १८८६।

श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ हैं, ज़रा लेटे हुए हैं। पास ही भक्तगण बैठे हैं। शरद खड़े हुए पंखा झल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण बीमारी की बातें कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– भोलानाथ के पास जाना, वह तेल देगा; और किस तरह लगाया जाय, यह भी बतला देगा।

बूढ़े गोपाल– तो कल सबेरे हम लोग जाकर ले आएँगे।

मास्टर– यदि कोई आज शाम को जाय तो वही ले आएगा।

शशि– मैं जा सकता हूँ।

श्रीरामकृष्ण– (शरद की ओर दिखाकर)–वह जा सकता है।

शरद कुछ देर बाद दक्षिणेश्वर मन्दिर के मुहर्रिर श्रीयुत भोलानाथ मुखोपाध्याय के पास से तेल लाने के लिए गए।

श्रीरामकृष्ण लेटे हुए हैं। भक्तगण चुपचाप बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण एकाएक उठकर बैठ गए। नरेन्द्र के साथ वार्तालाप करने लगे।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– ब्रह्म अलेप हैं। उनमें तीनों गुण हैं; किन्तु फिर भी वे निर्लिप्त हैं।

"जैसे वायु में सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों मिलती हैं, परन्तु वायु निर्लिप्त है।

"काशी में रास्ते से शंकराचार्य जा रहे थे। उधर से माँस का भार लेकर चाण्डाल आया और एकाएक उसने इन्हें छू लिया। शंकर ने कहा, 'छू लिया !' चाण्डाल ने कहा, 'भगवन्, न आपने मुझे छुआ और न मैंने आपको। आत्मा निर्लिप्त है। आप वही शुद्ध आत्मा हैं।'

"ब्रह्म और माया। ज्ञानी माया को अलग कर देता है।

"माया पर्दे की तरह है। यह देखो, इस अँगौछे की आड़ कर देता हूँ। अब तुम दीपक की लौ नहीं देख सकते।"

श्रीरामकृष्ण ने अपने तथा भक्तों के बीच अँगौछे की आड़ करके कहा, "यह देखो, अब तुम मेरा मुँह नहीं देख सकते।

"रामप्रसाद ने जैसा कहा है, 'मसहरी उठाकर देखो--'

"परन्तु भक्त माया को नहीं छोड़ता। वह महामाया की पूजा करता है। शरणागत होकर कहता है, 'माँ, रास्ता छोड़ दो, तुम जब रास्ता छोड़ोगी, तभी मुझे ब्रह्मज्ञान होगा !' जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति— इन तीनों अवस्थाओं को ज्ञानी अस्तित्वहीन कहकर हटा देते हैं। भक्त इन सब अवस्थाओं को लेते हैं-- जब तक 'मैं' है, तब तक ये सब हैं।

"जब तक 'मैं' है, तब तक भक्त देखता है, जीव-जगत्, माया और चौबीस तत्त्व, सब कुछ वे ही हुए हैं।"

नरेन्द्र तथा अन्य भक्त चुपचाप सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– पर मायावाद शुष्क है। (नरेन्द्र से) मैंने क्या कहा, बतलाओ।

नरेन्द्र– माया शुष्क है।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के हाथ और मुख का स्पर्श करके कहने

लगे— "ये सब भक्तों के लक्षण हैं। ज्ञानियों के लक्षण और हैं— मुखाकृति में रूखापन रहता है।

"ज्ञान लाभ करने के बाद भी ज्ञानी विद्या-माया को लेकर रह सकता है— भक्ति, दया, वैराग्य, इन सब को लेकर रह सकता है। इसके दो उद्देश हैं। पहला, इससे लोक-शिक्षा होती है; दूसरा, रसास्वादन के लिए।

"ज्ञानी अगर समाधि लगाकर चुप हो जाय, तो लोक-शिक्षा नहीं होती। इसीलिए शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा था।

"और ईश्वरानन्द का भोग करने के लिए भक्त भक्ति लेकर रहता है।

"इस 'विद्या के मैं' में या 'भक्ति के मैं' में दोष नहीं है। दोष तो 'बदमाश मैं' में है। उनके दर्शन करने के बाद बालक-जैसा स्वभाव हो जाता है। 'बालक के मैं' में कोई दोष नहीं है, जैसे आईने का प्रतिबिम्ब। वह लोगों को गालियाँ नहीं दे सकता। जली रस्सी देखने ही में रस्सी की तरह है। फूँकने से वह उड़ जाती है। इसी तरह ज्ञानी और भक्त का अहंकार ज्ञानाग्नि में जल गया है। अब वह किसी की क्षति नहीं कर सकता। वह 'मैं' नाममात्र के लिए है।

"नित्य में पहुँचकर फिर लीला में रहना। जैसे उस पार जाकर फिर इस पार लौटना। लोक-शिक्षा और विलास के लिए— उनकी लीला में सहयोग देने के लिए।"

श्रीरामकृष्ण बड़े धीमे स्वर में वार्तालाप कर रहे हैं। वे कुछ देर चुप ही रहे। भक्तों से फिर कहने लगे—

"शरीर को यह रोग है, परन्तु उसने (माता ने) अविद्या-माया नहीं रखी। देखो न, रामलाल, घर या स्त्री, इनकी मुझे

याद भी नहीं आती। हाँ, यदि कोई चिन्ता है तो उसी पूर्ण नामक कायस्थ बालक की—उसी के लिए सोच रहा हूँ। औरों के बारे में तो मुझे कोई चिन्ता नहीं।

"विद्या-माया उन्होंने रख दी है—लोगों के लिए, भक्तों के लिए।

"परन्तु विद्या-माया के रहते फिर आना पड़ता है। अवतार आदि विद्या-माया रख छोड़ते हैं। ज़रा सी वासना के रहने पर फिर आना पड़ता है—बार बार आना पड़ता है। सब वासनाओं के मिट जाने पर मुक्ति होती है। भक्त मुक्ति नहीं चाहता। यदि काशी में किसी का देहान्त हो तो मुक्ति होती है; फिर उसे आना नहीं पड़ता। ज्ञानियों का लक्ष्य मुक्ति है।"

नरेन्द्र—उस दिन हम लोग महिम चक्रवर्ती के यहाँ गये थे।

श्रीरामकृष्ण—(हँसकर)—फिर ?

नरेन्द्र—उसकी तरह का शुष्क ज्ञानी मैंने नहीं देखा।

श्रीरामकृष्ण—(सहास्य)—क्या हुआ ?

नरेन्द्र—हम लोगों से गाने के लिए कहा। गंगाधर ने गाया—कृष्णगीत। गाना सुनकर उसने कहा, 'इस तरह का गाना क्यों गाते हो ? प्रेम-प्रेम अच्छा नहीं लगता। इसके अलावा बीबी-बच्चों को लेकर यहाँ रहता हूँ, यहाँ इस तरह के गाने क्यों ?'

श्रीरामकृष्ण—(मास्टर से)—देखा, उसे कितना भय है !

(२)

श्रीरामकृष्ण के देह-धारण का अर्थ

श्रीरामकृष्ण काशीपुर के बगीचे में हैं। शाम हो गई है, वे अस्वस्थ हैं। ऊपरवाले बड़े कमरे में उत्तर की ओर मुँह किए बैठे हैं। नरेन्द्र और राखाल दोनों पैर दबा रहे हैं। पास ही

मणि बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण ने इशारे से उन्हें पैर दबाने के लिए कहा। मणि चरण-सेवा करने लगे।

आज रविवार है, १४ मार्च १८८६, फागुन की शुक्ला नवमी। गत रविवार को श्रीरामकृष्ण की जन्म-तिथि की पूजा बगीचे में हो गई है। गत वर्ष दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में बड़े समारोह के साथ जन्म-महोत्सव मनाया गया था। इस वर्ष वे अस्वस्थ हैं। भक्तों के हृदय में विषाद छाया हुआ है। इसलिए पूजा और उत्सव नाममात्र के लिए हुए।

भक्तगण सदा ही बगीचे में उपस्थित रहकर श्रीरामकृष्ण की सेवा किया करते हैं। श्रीमाताजी दिनरात उनकी सेवा में लगी रहती हैं। किशोर भक्तों में से बहुतेरे सदा ही वहाँ उपस्थित रहते हैं-- नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरद, शशि, बाबूराम, योगीन, काली, लाटू आदि।

जो कुछ अधिक उम्रवाले भक्त हैं, वे प्रायः नित्य आकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर जाते हैं। कभी कभी वे रह भी जाते हैं। तारक, सींती के गोपाल भी वहाँ हर समय रहते हैं तथा छोटे गोपाल भी।

श्रीरामकृष्ण आज बहुत अस्वस्थ हैं। आधी रात का समय है। ऊपर के हाल में श्रीरामकृष्ण लेटे हुए हैं। तबीयत बहुत खराब है--- आँख नहीं लगती। दो-एक भक्त चुपचाप पास बैठे हुए हैं-- इसलिए कि कब कैसी ज़रूरत हो। एक आध बार झपकी आती है, और श्रीरामकृष्ण सोते हुए से जान पड़ते हैं।

मास्टर पास बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण इशारा करके और भी पास आने के लिए कह रहे हैं। उन्हें इतना कष्ट है कि पत्थर का हृदय भी पानी-पानी हो जाय। वे धीरे धीरे बड़े कष्ट के

साथ मास्टर से कह रहे हैं— "तुम लोग रोओगे, इसलिए इतना दु:ख-भोग कर रहा हूँ। सब लोग अगर कहो कि इतने कष्ट से तो देह का नाश हो जाना ही अच्छा है, तो देह नष्ट हो जाय।"

श्रीरामकृष्ण की इन बातों को सुनकर भक्तों का हृदय टूक-टूक हो रहा है। वे भक्तों के माता-पिता और रक्षक हैं। वे ऐसी बातें कह रहे हैं! सब लोग चुप हो रहे।

गम्भीर रात्रि है। श्रीरामकृष्ण की बीमारी मानो और बढ़ रही है। अब क्या किया जाय? बहुत सोचकर, भक्तों ने एक आदमी को कलकत्ता भेजा। उसी गम्भीर रात्रि में श्रीयुत उपेन्द्र डाक्टर तथा श्रीयुत नवगोपाल कविराज को लेकर गिरीश काशीपुर के घर में आए।

भक्तगण पास बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण ज़रा स्वस्थ हो रहे हैं— कह रहे हैं—"देह अस्वस्थ है, पंचभूतों से बना शरीर,— ऐसा तो होगा ही!"

गिरीश की ओर देखकर कह रहे हैं, "बहुत से ईश्वरीय रूपों को देख रहा हूँ। उनमें एक यह रूप भी (अपने रूप को) देख रहा हूँ।"

(३)

श्रीरामकृष्ण के दर्शन

आज चैत्र तृतीया है, सोमवार, १५ मार्च १८८६। सबेरे ७-८ बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण कुछ अच्छे हैं, भक्तों के साथ धीरे-धीरे, कभी इशारे से, बातचीत कर रहे हैं। पास में नरेन्द्र, राखाल, मास्टर, लाटू, सींती के गोपाल आदि बैठे हुए हैं।

भक्तमण्डली मौन है। पिछली रात की अवस्था सोचकर भक्तों के चेहरे पर विषाद की गम्भीरता छाई हुई है। सब चुप-

चाप बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर की ओर देखकर, भक्तों से)– क्या देख रहा हूँ ?–– सुनो, सब वे ही हुए हैं। मनुष्य और जिस-जिस जीव को मैं देख रहा हूँ, मानो सब चमड़े के बने हुए हैं, उनके भीतर से वे ही हाथ, पैर और सिर हिला रहे हैं। जैसा एक बार मैंने देखा था–– मोम का मकान, बगीचा, रास्ता, आदमी, बैल–– सब मोम के–– सब एक ही चीज़ के बने हुए थे।

"देखता हूँ, वे ही बलि हैं, वे ही बलि देनेवाले हैं तथा वे ही बलि का खम्भा हैं।"

यह कहते कहते श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर हो रहे हैं। वे ईश्वर की उस व्यापकता का अनुभव करते हुए कह रहे हैं–– 'अहा ! अहा !'

फिर वही भावावस्था हो गई। श्रीरामकृष्ण का बाह्य ज्ञान चला जा रहा है। भक्तगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुपचाप बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ होकर कह रहे हैं–– "अब मुझे कोई कष्ट नहीं है। बिलकुल पहले जैसी अवस्था है।"

श्रीरामकृष्ण की इस दुःख और सुख से अतीत अवस्था को देखकर भक्तों को आश्चर्य हो रहा है। लाटू की ओर देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं–– "यह लाटू है। सिर पर हाथ रखे बैठा है। मैं देख रहा हूँ, वे ही (ईश्वर ही) सिर पर हाथ रखे बैठे हुए हैं।"

श्रीरामकृष्ण भक्तों की ओर देख रहे हैं और स्नेहार्द्र हो रहे हैं। शिशु को जिस तरह प्यार किया जाता है, उसी तरह वे राखाल और नरेन्द्र के प्रति स्नेह-भाव दिखला रहे हैं–– उनके मुख पर हाथ फेर रहे हैं।

कुछ देर बाद मास्टर से कहते हैं—“शरीर अगर कुछ दिन और रहता तो बहुत से लोगों में आध्यात्मिकता की जागृति हो जाती।” इतना कहकर वे चुप हो रहे।

श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं—“पर अब यह न होगा—अब यह शरीर नहीं रहेगा।” भक्त सोच रहे हैं कि श्रीरामकृष्ण और क्या कहेंगे।

श्रीरामकृष्ण– इस शरीर को अब वे (ईश्वर) न रहने देंगे, इसलिए कि मुझे सरल और मूर्ख समझकर कहीं सब लोग घेर न लें, और मैं सरल और मूर्ख कहीं सभी को सब कुछ दे न डालूँ। कलिकाल में लोग तो ध्यान और जप से घृणा करते हैं।

राखाल– (सस्नेह)–आप उनसे कहिए जिससे आपका शरीर रहे।

श्रीरामकृष्ण– वह ईश्वर की इच्छा।

नरेन्द्र– आपकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा दोनों एक हो गई हैं।

श्रीरामकृष्ण कुछ देर चुप हैं, मानो कुछ सोच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र और राखाल आदि से)–और कहने से भी क्या होगा ?

“अब देखता हूँ, एक हो गया है। ननद के भय से राधिका ने श्रीकृष्ण से कहा, ‘तुम हृदय के भीतर रहो।’ जब फिर व्याकुल होकर श्रीकृष्ण को उन्होंने देखना चाहा— ऐसी व्याकुलता कि कलेजे में जैसे बिल्ली खरोंच रही हो— तब श्रीकृष्ण हृदय से बाहर निकले ही नहीं !”

राखाल– (भक्तों से, धीमे स्वर से)–यह बात इन्होंने श्रीगौरांगवतार के सम्बन्ध में कही है।

(४)

गुह्यकथा। श्रीरामकृष्ण कौन हैं

भक्तगण चुपचाप बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण भक्तों को स्नेह-भरी दृष्टि से देख रहे हैं। कुछ कहने के लिए उन्होंने अपनी छाती पर हाथ रखा।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्रादि से)– इसके भीतर दो व्यक्ति हैं। एक हैं जगन्माता––

भक्त उनकी ओर उत्सुक होकर देख रहे हैं, सोच रहे हैं, अब वे क्या कहेंगे।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, एक वे हैं, और दूसरा है उनका भक्त, जिसका हाथ टूट गया था। वही अब बीमार है। समझे ?

भक्तगण चुपचाप सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– किससे कहूँ, और समझेगा भी कौन ?

कुछ देर बाद फिर बोले––

" वे मनुष्य का आकार धारण करके, अवतार लेकर, भक्तों के साथ आया करते हैं। उन्हीं के साथ फिर भक्तगण चले भी जाते हैं। "

राखाल– इसीलिए कहता हूँ कि आप हम लोगों को छोड़कर चले मत ज़ाइएगा।

श्रीरामकृष्ण मुस्करा रहे हैं, कहते हैं–– " बाउलों का दल एकाएक आया, नाच-कूदकर गाया-बजाया और एकाएक चला गया। आया और गया, परन्तु किसी ने पहचाना नहीं। "

श्रीरामकृष्ण और दूसरे भक्त मन्द मन्द मुस्करा रहे हैं।

कुछ देर चुप रहकर श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं ––

" देह-धारण करने पर कष्ट तो है ही।

"कभी कभी कहता हूँ, अब जैसे इस संसार में न आना पड़े।

"परन्तु एक बात है— निमंत्रण में भोजन करते करते अब घर की बनी मटर की दाल अच्छी नहीं लगती, न घर के चावल ही अच्छे लगते हैं।

"और देह-धारण भक्तों के लिए है।"

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को स्नेह-भरी दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—(नरेन्द्र से)—चाण्डाल माँस का भार लिए हुए जा रहा था। उधर से नहा-धोकर शंकराचार्य आ रहे थे, वे उसके पास से होकर निकले। एकाएक चाण्डाल ने उन्हें छू लिया। शंकर ने विरक्ति-भाव से कहा— 'तूने मुझे छू लिया!' उसने कहा, 'भगवन्, न मैंने आपको छुआ और न आपने मुझे। विचार कीजिए, विचार कीजिए, क्या आप देह हैं, मन हैं या बुद्धि हैं? आप क्या हैं— विचार कीजिए। शुद्ध आत्मा निर्लिप्त है— सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों में से किसी में लिप्त नहीं है।'

"ब्रह्म कैसा है, जानता है?— जैसे वायु। वायु में सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों हैं, परन्तु वायु निर्लिप्त है।"

नरेन्द्र—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—वे गुणातीत हैं, माया से परे हैं। अविद्या-माया और विद्या-माया इन दोनों से परे हैं। कामिनी और कांचन अविद्या है; ज्ञान, भक्ति, वैराग्य ये सब विद्या के ऐश्वर्य हैं। शंकराचार्य ने विद्या या ऐश्वर्य रखा था। तुम सब लोग जो मेरे लिए सोच रहे हो, यह चिन्ता विद्या-माया है।

"विद्या-माया के सहारे चलते रहने पर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जैसे ऊपरवाली सीढ़ी, उसके बाद ही छत। कोई कोई

छत पर पहुँचने के बाद भी सीढ़ियों से चढ़ते-उतरते रहते हैं—ज्ञानप्राप्ति के बाद भी 'विद्या का मैं' रख छोड़ते हैं—लोक-शिक्षा के लिए और भक्ति का स्वाद लेने तथा भक्तों के साथ विलास करने के लिए भी।"

नरेन्द्र—त्याग करनें की बात चलानें से कोई कोई मुझसे नाराज़ हो जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण—(धीमे स्वर से)—त्याग आवश्यक है।

श्रीरामकृष्ण अपने शरीर के अंगों को दिखलाकर कह रहे हैं—"एक वस्तु के ऊपर अगर दूसरी वस्तु हो, तो एक को बिना हटाए दूसरी वस्तु कैसे मिल सकती है?"

नरेन्द्र—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—(नरेन्द्र से, धीमे स्वर में)—ईश्वरमय देखते रहने पर क्या फिर कोई दूसरी चीज़ दिखलाई पड़ सकती है?

नरेन्द्र—संसार का त्याग करना ही होगा?

श्रीरामकृष्ण—जैसा मैंने अभी कहा, ईश्वरमय देखते रहने पर फिर क्या दूसरी वस्तु दीख पड़ती है? संसार आदि क्या कुछ दिखलाई पड़ सकता है?

"परन्तु त्याग मन से होना चाहिए। यहाँ जो लोग आते हैं, उनमें संसारी कोई नहीं है। किसी किसी की इच्छा थी—स्त्री के साथ रहने की—(राखाल और मास्टर का हँसना) वह भी पूरी हो गई।"

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। देखते ही देखते मानो आनन्द से पूर्ण हो गए। भक्तों की ओर देखकर कहने लगे—"खूब हुआ।" नरेन्द्र ने हँसकर पूछा—"क्या खूब हुआ?"

श्रीरामकृष्ण— (मुस्कराते हुए)— मैं देख रहा हूँ कि महान् त्याग के लिए तैयारी हो रही है।

नरेन्द्र और भक्तगण चुप हैं। सब के सब श्रीरामकृष्ण को देख रहे हैं।

अब राखाल बातचीत करने लगे।

राखाल– (श्रीरामकृष्ण से, सहास्य)– नरेन्द्र ने आपको खूब समझ लिया है।

श्रीरामकृष्ण हँसकर कह रहे हैं— "हाँ। और देखता हूँ, बहुतों ने समझ लिया है। (मास्टर से) क्यों जी ?"

मास्टर– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र और मणि को देख रहे हैं और हाथ के इशारे राखाल आदि भक्तों को दिखा रहे हैं। पहले नरेन्द्र की ओर इशारा करके दिखलाया, फिर मास्टर की ओर। राखाल श्रीरामकृष्ण का इशारा समझ गए। उन्होंने कहा— "आप कहते हैं, नरेन्द्र का वीर-भाव है और इनका (मास्टर का) सखी-भाव।" (श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं)

नरेन्द्र– (सहास्य)– ये अधिक बोलते नहीं, और स्वभाव के लजीले हैं। शायद इसीलिए आप ऐसा कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से, हँसकर)– अच्छा, मेरा क्या भाव है ?

नरेन्द्र– वीरभाव, सखीभाव— सब भाव।

यह सुनकर मानो श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो गया। हृदय पर हाथ रखकर कुछ कहनेवाले हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्रादि भक्तों से)– देखता हूँ, जो कुछ है, सब इसी के भीतर से आया है।

नरेन्द्र से इशारा करके श्रीरामकृष्ण पूछ रहे हैं, "क्या समझे?"

नरेन्द्र– जो कुछ है, अर्थात् सृष्टि में जो कुछ पदार्थ हैं, सब आपके भीतर से ही आए हैं।

श्रीरामकृष्ण– (राखाल से, आनन्दपूर्वक)– देखा?

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से ज़रा गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र स्वर अलापकर गा रहे हैं। नरेन्द्र का त्याग-भाव है। वे गा रहे हैं––

"नलिनीदलगतजलमतितरलम्।
तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्॥
क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका।
भवति भवार्णवतरणे नौका॥"...

दो-एक पद गाने के बाद ही श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से इशारे से कह रहे हैं, "यह क्या है? यह तो बहुत छोटा भाव है!"

नरेन्द्र अब सखी-भाव का एक सुन्दर गीत गा रहे हैं–– (भावार्थ)–– "अरी सखि! जीवन और मृत्यु का यह कैसा विधान है! व्रज-किशोर कहाँ भाग गए? इस व्रज-गोपी के तो प्राणों पर आ गई है। सखि, माधव तो सुन्दर कन्याओं के प्रेम में बँधे हुए हैं। हाय! इस रूपविहीन गोप-कन्या को उन्होंने भुला दिया है। अरी, कौन जानता था कि वे रसमय प्रेमिक रूप के भिखारी होंगे? मैं मूर्ख थी जो पहले मैंने यह नहीं समझा; रूप देखकर भूल गई, और उनके युगलचरणों को हृदय में स्थापित किया। री सखि, अब तो जी यह चाहता है कि यमुना में डूबकर मर जाऊँ या जहर लाकर खा लूँ, अथवा कुंजों की लताओं से गला फाँसकर किसी नये तमाल में लटककर प्राण दे दूं, या श्याम-श्याम जपते-जपते इस अधम शरीर का नाश कर डालूं।"

गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण और भक्तगण मुग्ध हो गए। श्रीरामकृष्ण और राखाल की आँखों से आँसू बह चले। नरेन्द्र व्रज की गोपियों के भाव में मस्त होकर फिर गा रहे हैं—(भावार्थ)—

"हे कृष्ण ! प्रियतम ! तुम मेरे हो। तुमसे मैं क्या कहूँ, मेरे नाथ, तुमसे मैं क्या बोलूँ ? मैं नारी हूँ, अभागिनी हूँ, समझ नहीं पा रही हूँ कि मैं तुमसे क्या कहूँ। तुम मेरे हाथ के दर्पण हो, सिर के फूल हो। सखे, मैं तुम्हें फूल बनाकर केशों में खोंच लूँगी और खोपे में छिपा रखूँगी। श्याम-फूल खोंचने से तुम्हें कोई देख न पाएगा। तुम मेरी आँखों के अंजन हो, मुख के ताम्बूल हो। हे श्याम ! हे कृष्ण ! तुम्हें अंजन बनाकर आँखों में लगा लूँगी। श्याम-अंजन होने के कारण तुम्हें वहाँ कोई देख न सकेगा। तुम अंग की कस्तूरी हो, गले के हार हो। सखे, शरीर में श्याम-चन्दन लेपकर मैं अपने प्राण शीतल करूँगी। प्रियतम, तुम्हें मैं हार बनाकर कण्ठ में पहनूँगी। तुम देह के सर्वस्व हो, गेह के सार हो। पक्षी के लिए जिस तरह पंख हैं, और मछली के लिए जिस तरह पानी है, उसी तरह, हे नाथ, तुम मेरे लिए हो।"

परिच्छेद ३०

श्रीरामकृष्ण तथा श्रीबुद्धदेव

(१)

क्या बुद्धदेव नास्तिक थे

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ काशीपुर के बगीचे में हैं। आज शुक्रवार,शाम के पाँच बजे का समय होगा, चैत की शुक्ल पंचमी है, ९ अप्रैल, १८८६।

नरेन्द्र, काली, निरंजन और मास्टर नीचे बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं।

निरंजन– (मास्टर से)—— सुना है, विद्यासागर का एक नया स्कूल होनेवाला है। नरेन्द्र को इसमें अगर कोई काम ——

नरेन्द्र– अब विद्यासागर के पास नौकरी करने की ज़रूरत नहीं है।

नरेन्द्र बुद्ध-गया से अभी ही लौटे हैं। वहाँ वे बुद्ध की मूर्ति के दर्शन कर उसके सामने गंभीर ध्यान में मग्न हो गए थे। जिस पेड़ के नीचे तपस्या करके बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया था, उस पेड़ की जगह एक दूसरा पेड़ उगा है, इसे भी उन्होंने देखा है। काली ने कहा, 'एक दिन गया के उमेश बाबू के यहाँ नरेन्द्र का गाना हुआ, मृदंग के साथ—— ख्याल, ध्रुपद आदि।'

श्रीरामकृष्ण बड़े कमरे में बिस्तरे पर बैठे हुए हैं। संध्या का समय है। मणि अकेले पंखा झल रहे हैं। लाटू भी वहीं आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण– (मणि से)– एक चद्दर और एक जोड़ा जूता लेते आना।

मणि– जी, बहुत अच्छा।

श्रीरामकृष्ण– (लाटू से)– चद्दर तो दस आने की हुई, और जूतों को मिलाकर कितने दाम होंगे ?

लाटू– एक रुपया दस आने ।

श्रीरामकृष्ण ने मणि की ओर दामों की बात सुन लेने के लिए इशारा किया ।

नरेन्द्र भी आकर बैठे । शशि, राखाल तथा दो-एक भक्त और आए ।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से पैरों पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं। इशारे से श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से पूछा– तूने कुछ खाया ?

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से, सहास्य)– यह वहाँ (बुद्ध-गया) गया था ।

मास्टर– (नरेन्द्र से)– बुद्धदेव का क्या मत है ?

नरेन्द्र– तपस्या करके उन्होंने जो कुछ पाया था, वह मुख से नही कह सके । इसीलिए सब लोग उन्हें नास्तिक कहते हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (इशारा करके)– नास्तिक क्यों, नास्तिक नहीं । मुख से अपनी अवस्था का हाल वे नहीं कह सके । बुद्ध क्या हैं, जानते हो ? बोधस्वरूप की चिन्ता करके वही हो जाना— बोधस्वरूप बन जाना ।

नरेन्द्र– जी हाँ, इनके तीन दर्जे हैं, बुद्ध, अर्हत् और बोधिसत्व।

श्रीरामकृष्ण– यह उन्हीं की क्रीड़ा है, एक नई लीला ।

“ नास्तिक वे क्यों होने लगे ? जहाँ स्वरूप का बोध होता है, वहाँ अस्ति और नास्ति की बीचवाली अवस्था है । ”

नरेन्द्र– (मास्टर से)– यह वह अवस्था है, जिसमें विरोधी भावों का एकीकरण होता है । जिस हाईड्रोजन (Hydrogen) और ऑक्सीजन (Oxygen) से ठंडा पानी तैयार होता है, उसी

हाईड्रोज़न और ऑक्सीज़न से उष्ण अग्नि शिखाएँ भी (Oxy-hydrogen blow-pipe) उत्पन्न होती हैं।

"जिस अवस्था में कर्म और कर्मों का त्याग दोनों हो जाते हैं, अर्थात् निष्काम कर्म होता है, बुद्ध की वही अवस्था थी।

"जो लोग संसारी हैं, इन्द्रियों के विषयों को लेकर हैं, वे कहते हैं, सब 'अस्ति' है; उधर मायावादी कहते हैं— सब 'नास्ति' है; बुद्ध की अवस्था इस 'अस्ति' और 'नास्ति' से परे की है।"

श्रीरामकृष्ण– ये 'अस्ति' और 'नास्ति' प्रकृति के गुण हैं। जहाँ यथार्थ बोध है, वह 'अस्ति' और 'नास्ति' से परे की अवस्था है।

श्रीबुद्धदेव की दया तथा वैराग्य और नरेन्द्र

भक्तगण कुछ देर तक चुप हैं। श्रीरामकृष्ण फिर बातचीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– उनका (बुद्ध का) क्या मत है?

नरेन्द्र– ईश्वर हैं या नहीं, ये बातें बुद्ध नहीं कहते थे। परन्तु वे दया लेकर थे।

"एक बाज़ एक पक्षी को पकड़कर उसे खाना चाहता था। बुद्ध ने उस पक्षी के प्राणों को बचाने के लिए अपने शरीर का माँस काटकर बाज़ को खिला दिया था।"

श्रीरामकृष्ण चुप हैं। नरेन्द्र उत्साह के साथ बुद्ध की और और बातें कह रहे हैं।

नरेन्द्र –उन्हें वैराग्य भी कितना था! राजपुत्र होकर भी उन्होंने सर्वस्व का त्याग किया! जिनके कुछ नहीं है, कोई

ऐश्वर्य नहीं हैं, वे और क्या त्याग करेंगे ?

" जब बुद्ध होकर, निर्वाण प्राप्त करके एक बार वे घर आए, तब उन्होंने अपनी स्त्री को, पुत्र को और राजवंश के बहुत से लोगों को वैराग्य धारण करने के लिए कहा। कैसा तीव्र वैराग्य था ! परन्तु व्यास को देखो। उन्होंने अपने पुत्र शुकदेव को संसार-त्याग करने से मना किया और कहा, ' वत्स, धर्म का पालन गृहस्थ बने रहकर ही करो।' "

श्रीरामकृष्ण चुप रहे, अब तक उन्होंने एक शब्द भी न कहा।

नरेन्द्र– बुद्ध ने शक्ति अथवा अन्य किसी उस प्रकार की चीज़ की कभी परवाह नहीं की। वे तो केवल निर्वाण के ही इच्छुक थे। कैसा तीव्र उनका वैराग्य था ! जब वे बोधि-वृक्ष के नीचे तपस्या करने के लिए बैठे तो कहा, ' इहैव शुष्यतु मे शरीरम्।' —— अर्थात् अगर निर्वाण की प्राप्ति मैं न कर सकूँ तो मेरा शरीर यहीं शुष्क हो जाय—— ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा !

" शरीर ही तो बदमाश है ! —— उसे काबू में बिना किए क्या कुछ हो सकता है ? "

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण फिर वार्तालाप करने लगे। उन्होंने इशारे से फिर बुद्धदेव की बात पूछी।

श्रीरामकृष्ण– बुद्धदेव के सिर में क्या बड़े बड़े बाल थे ?

नरेन्द्र– जी नहीं। बहुत सी रुद्राक्षों की मालाएँ एकत्र करने पर जैसा होता है, मालूम होता है, उनके सिर में वैसे ही बाल थे।

श्रीरामकृष्ण– और आँखें ?

नरेन्द्र– आँखें समाधिलीन।

श्रीरामकृष्ण चुप हैं। नरेन्द्र तथा अन्य भक्त उन्हें एकदृष्टि से देख रहे हैं। एकाएक ज़रा मुस्कराकर वे फिर नरेन्द्र से

बातचीत करने लगे। मणि पंखा झल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– अच्छा, यहाँ तो सब कुछ है न ? मसूर और चने की दाल, और इमली तक !

नरेन्द्र–उन सब अवस्थाओं का भोग करके आप कुछ नीचे की अवस्था में रहते हैं।

मणि– (स्वगत)– उन सब उच्च अवस्थाओं का भोग करके भक्त की अवस्था में हैं।

श्रीरामकृष्ण– किसी ने मानो नीचे खींच रखा है।

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने मणि के हाथ से पंखा खींच लिया और कहने लगे––

"जैसे सामने यह पंखा देख रहा हूँ, प्रत्यक्ष रूप से, ठीक इसी तरह मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा है। और देखा है––"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने अपने हृदय पर हाथ रखा, और इशारे से नरेन्द्र से पूछा–– "बताओ, भला मैंने क्या कहा ?"

नरेन्द्र– मैं समझ गया।

श्रीरामकृष्ण– कहो तो सही ?

नरेन्द्र– अच्छी तरह मैंने नहीं सुना।

श्रीरामकृष्ण फिर इंगित कर रहे हैं–– "मैंने देखा, वे (ईश्वर) और हृदय में जो हैं, दोनों एक ही व्यक्ति हैं।"

नरेन्द्र– हाँ, हाँ, सोऽहम्।

श्रीरामकृष्ण– केवल एक रेखा मात्र है ('भक्त का मैं' है)–– संभोग के लिए।

नरेन्द्र– (मास्टर से)– महापुरुष स्वयं पार होकर जीवों को पार करने के लिए रहते हैं, इसीलिए वे अहंकार और शरीर के सुख-दुःखों को लेकर रहते हैं।

"जैसे कुलीगिरी—मज़दूरी। हम लोग कुलीगिरी बाध्य होकर करते हैं, परन्तु महापुरुष तो कुलीगिरी अपने शौक से करते हैं।"

श्रीरामकृष्ण तथा गुरु-कृपा

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्रादि भक्तों से)–छत दीख तो पड़ती है, परन्तु छत पर चढ़ना ज़रा कठिन काम है!

नरेन्द्र– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु अगर कोई चढ़ा हो तो रस्सी डालकर वह दूसरे को भी चढ़ा ले सकता है।

"हृषीकेश का एक साधु आया था। उसने मुझसे कहा—यह बड़े आश्चर्य की बात है, तुममें पाँच तरह की समाधि मैंने देखी।

"कभी तो कपिवत्,—देहरूपी वृक्ष पर बन्दर की तरह महावायु मानो इस डाल से उस डाल पर उछल-उछलकर चढ़ती है। और तब समाधि होती है।

"कभी मीनवत्—अर्थात् जिस प्रकार मछली पानी के भीतर फुर्ती से निकल जाती है और आनन्द से विहार करती रहती है, उसी तरह वायु भी देह के भीतर चलती रहती है और समाधि होती है।

"कभी पक्षीवत्,—देह-वृक्ष के भीतर महावायु पक्षी की तरह कभी इस डाल पर और कभी उस डाल पर फुदकते हुए चढ़ती है।

"कभी पिपीलिकावत्—चींटी की तरह धीरे-धीरे महावायु ऊपर चढ़ती रहती है। सहस्रार में चढ़ने पर समाधि होती है।

"और कभी तिर्यग्वत्,—अर्थात् महावायु की गति सर्प की तरह वक्र होती है, फिर सहस्रार में पहुँचकर समाधि होती है।"

राखाल– (भक्तों से)—अब बातचीत रहने दीजिए। बहुत देर हो गई। उनकी बीमारी बढ़ जाएगी।

परिच्छेद ३१

श्रीरामकृष्ण तथा कर्मफल

(१)

भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण काशीपुर के उद्यान-भवन के उसी ऊपरवाले कमरे में बैठे हुए हैं। भीतर शशि और मणि हैं। श्रीरामकृष्ण मणि को इशारे से पंखा झलने के लिए कह रहे हैं। मणि पंखा झलने लगे।

शाम के पाँच-छः बजे का समय होगा। सोमवार, शुक्ल अष्टमी, १२ अप्रैल १८८६।

उस मुहल्ले में संक्रान्ति का मेला भरा हुआ है। श्रीरामकृष्ण ने एक भक्त को मेले से कुछ चीज़ें खरीद लाने के लिए भेजा है। भक्त के लौटने पर श्रीरामकृष्ण ने उससे सामान के बारे में पूछा कि वह क्या क्या लाया।

भक्त– पाँच पैसे के बताशे, दो पैसे का एक चम्मच और दो पैसे का एक तरकारी काटनेवाला चाकू।

श्रीरामकृष्ण– और कलम बनानेवाला चाकू ?

भक्त– वह दो पैसे में नहीं मिला।

श्रीरामकृष्ण– (जल्दी से)– नहीं, नहीं, जा ले आ।

मास्टर नीचे बगीचे में टहल रहे हैं। नरेन्द्र और तारक कलकत्ते से लौटे। वे गिरीश घोष के यहाँ तथा कुछ अन्य जगह भी गए थे।

तारक– आज तो भोजन बहुत हुआ।

नरेन्द्र– हाँ, हम लोगों का मन बहुत कुछ नीचे आ गया है। आओ, अब हम तपस्या करें।

(मास्टर से) "क्या शरीर और मन की दासता की जाय ? बिलकुल जैसे गुलाम की-सी अवस्था हो रही है, शरीर और मन मानो हमारे नहीं, किसी और के हैं।"

शाम हो गई है। ऊपर के कमरे में और अन्य स्थानों में दीये जलाए गए। श्रीरामकृष्ण बिस्तर पर उत्तरास्य बैठे हुए हैं। जगन्माता की चिन्ता कर रहे हैं। कुछ देर बाद फकीर उनके सामने अपराध-भंजन स्तव पढ़ने लगे। फकीर बलराम के पुरोहित-वंश के हैं।

"प्राग्देहस्थो यदासं तव चरणयुगं नाश्रितो नार्चितोऽहम् ।
तेनीद्येऽकीर्तिवर्गैर्जठरजदहनैर्बाध्यमानो बलिष्ठैः ॥
स्थित्वा जन्मान्तरे नो पुनरिह भविता क्वाश्रयः क्वापि सेवा ।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितरदने कामरूपे कराले ।" इत्यादि

कमरे में शशि, मणि तथा दो-एक भक्त और हैं। स्तवपाठ समाप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण बड़े भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहे हैं।

मणि पंखा झल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण इशारा करके उनसे कह रहे हैं, "एक कूँड़ी ले आना। (यह कहकर कूँड़ी की गढ़न उँगलियों से लकीर खींचकर बता रहे हैं।) इसमें क्या एक पाव दूध आ जाएगा ? पत्थर सफेद हो।"

मणि– जी हाँ।

(२)

ईश्वर-कोटि तथा जीव-कोटि

दूसरे दिन मंगलवार है, रामनवमी, १३ अप्रैल, १८८६। सुबह का समय है; श्रीरामकृष्ण ऊपरवाले कमरे में छोटे तखत पर बैठे हुए हैं। दिन के आठ-नौ बजे का समय हुआ होगा मणि। रात

को यहीं थे। सबेरे गंगा-स्नान करके आए और श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। राम दत्त भी आज सुबह आ गए हैं, उन्होंने भी श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। राम फूलों की एक माला ले आए हैं, श्रीरामकृष्ण की सेवा में उसका समर्पण कर दिया। अधिकांश भक्त नीचे के कमरे में बैठे हुए हैं, श्रीरामकृष्ण के कमरे में दो ही एक हैं। राम श्रीरामकृष्ण-देव से वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (राम से)– किस तरह देख रहे हो?

राम– आप में सब कुछ है। अब आपके रोग की चर्चा उठने ही वाली है।

श्रीरामकृष्ण ज़रा मुस्कराए। फिर राम ही से उन्होंने संकेत करके पूछा–– "क्या रोग की बात भी उठेगी?"

श्रीरामकृष्ण के जो जूते हैं, वे अब पैरों में गड़ने लगे हैं। डाक्टर राजेन्द्र दत्त ने पैर की नाप माँगी है–– आर्डर देकर वे जूते बनवा देना चाहते हैं। पैर की नाप ली गई। (इस समय बेलुड़ मठ में इन्हीं पादुकाओं की पूजा हो रही है।)

श्रीरामकृष्ण मणि से संकेत से पूछ रहे हैं कि कूँड़ी कहाँ है। मणि कलकत्ते से कूँड़ी ले आने के लिए उसी समय उठकर खड़े हो गए। श्रीरामकृष्ण ने उस समय उन्हें रोका।

मणि– जी नहीं, ये लोग जा रहे हैं, इनके साथ मैं भी चला जाऊंगा।

मणि ने जोड़ासाखों की एक दूकान से एक सफेद कूँड़ी खरीदी। दोपहर के समय वे काशीपुर लौट आए और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके कूंड़ी उनके सामने रखी। श्रीरामकृष्ण सफेद कूंड़ी हाथ में लेकर देख रहे हैं। डाक्टर राजेन्द्र दत्त, हाथ में गीता

लिए हुए डाक्टर श्रीनाथ, श्रीयुत राखाल हालदार तथा अन्य भी कई सज्जन आए हैं। कमरे में राखाल, शशि आदि कई भक्त हैं। डाक्टरों ने श्रीरामकृष्ण से पीड़ा के सम्बन्ध की कुल बातें सुनीं।

डाक्टर श्रीनाथ– (मित्रों से)– सब लोग प्रकृति के अधीन हैं। कर्मफल से किसी का छुटकारा नहीं है। प्रारब्ध।

श्रीरामकृष्ण– क्यों, उनका नाम लेने पर, उनकी चिन्ता करने पर, उनकी शरण में जाने पर,––

श्रीनाथ– जी, प्रारब्ध कहाँ जाएगा ?–– पिछले जन्मों के कर्म ?

श्रीरामकृष्ण– कुछ कर्मभोग होता तो है, परन्तु उनके नामके गुण से बहुत सा कर्मपाश कट जाता है। एक मनुष्य को पिछले जन्म के कर्मों के लिए सात बार अन्धा होना पड़ता, परन्तु उसने गंगास्नान किया। गंगास्नान से मुक्ति होती है। इसलिए उस जन्म के लिए तो वह जैसे का वैसा ही अन्धा बना रहा, परन्तु अगले छः जन्मों के लिए न तो उसे जन्म लेना पड़ा और न अन्धा होना पड़ा।

श्रीनाथ– जी, शास्त्रों में तो है कि कर्मफल से किसी का छुटकारा नहीं हो सकता।

डाक्टर श्रीनाथ तर्क करने के लिए तुल गए।

श्रीरामकृष्ण– (मणि से)– कहो न ज़रा, ईश्वर-कोटि और जीव-कोटि में बड़ा अन्तर है। ईश्वर-कोटि कभी पाप नहीं कर सकते–– कहो।

मणि चुप हैं। वे राखाल से कह रहे हैं–– तुम कहो।

कुछ देर बाद डाक्टर चले गए। श्रीरामकृष्ण श्रीयुत राखाल हालदार के साथ बातचीत कर रहे हैं।

हालदार– डाक्टर श्रीनाथ वेदान्तचर्चा किया करता है––योग-वाशिष्ठ पढ़ता है ।

श्रीरामकृष्ण– संसारी होकर 'सब स्वप्नवत् है' यह मत अच्छा नहीं ।

एक भक्त– कालीदास नाम का वह जो आदमी है, वह भी वेदान्तचर्चा किया करता है । परन्तु मुकदमेबाज़ी में घर की लुटिया तक उसने बेच डाली !

श्रीरामकृष्ण– (सहास्य)– सब माया भी है और उधर मुकदमेबाज़ी भी होती है ! (राखाल से) जनाईवाले मुकर्जियों ने पहले बड़ी लम्बी-लम्बी बातें की थीं, फिर अन्त में खूब समझ गए । मैं अगर अच्छा रहता तो उनसे कुछ देर और बातचीत करता । क्या 'ज्ञान-ज्ञान' की डींग मारने से ही ज्ञान हो जाता है ?

हालदार– ज्ञान बहुत देखा है । कुछ भक्ति हो तो जी में जी आए । उस दिन मैं एक बात सोचकर आया था । उसकी आपने मीमांसा कर दी ।

श्रीरामकृष्ण– (आग्रह से)– वह क्या है ?

हालदार– जी, यह बच्चा आया तो आपने कहा कि यह जितेन्द्रिय है ।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, हाँ, उसके (छोटे नरेन्द्र के) भीतर विषय-बुद्धि का लेशमात्र भी नहीं है । वह कहता है, 'मुझे नहीं मालूम कि काम किसे कहते हैं ।'

(मणि से) "हाथ लगाकर देखो, मुझे रोमांच हो रहा है ।"

काम नहीं है, इस शुद्ध अवस्था की याद करके श्रीरामकृष्ण को रोमांच हो रहा है ।

राखाल हालदार बिदा हो गए। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ अब भी बैठे हुए हैं। एक पगली उन्हें देखने के लिए बड़ा उपद्रव मचाया करती है। वह मधुरभाव की उपासना करती है। बगीचे में प्रायः आया करती है। आकर एकाएक श्रीरामकृष्ण के कमरे में घुस आती है। भक्तगण मारते भी हैं, परन्तु इससे भी वह मौका नहीं चूकती।

शशि– अबकी बार अगर पगली दीख पड़ी तो धक्के मारकर हटा दूँगा।

श्रीरामकृष्ण– (करुणापूर्ण स्वर से)– नहीं, नहीं, आएगी तो फिर चली जाएगी।

राखाल– पहले पहल इनके पास अगर और पाँच आदमी आते थे तो मुझे एक तरह की ईर्ष्या होती थी। उन्होंने कृपा करके अब मुझे समझा दिया है कि वे मेरे भी गुरु हैं और संसार के भी गुरु हैं। वे केवल हमारे लिए थोड़े ही आए हुए हैं?

शशि– माना कि हमारे लिए ही नहीं आए, परन्तु बीमारी के समय आकर उपद्रव मचाना, यह क्या बात है?

राखाल– उपद्रव तो सभी करते हैं। क्या सभी उनके पास सच्चे भाव से आए हुए हैं? क्या हम लोगों ने उन्हें कष्ट नहीं दिया? नरेन्द्र आदि, सब पहले कैसे थे?—– कितना तर्क करते थे?

शशि– नरेन्द्र मुख से जो कुछ कहता था, उसे कार्य द्वारा पूरा भी उतार देता था।

राखाल– डाक्टर सरकार ने उन्हें न जाने कितनी बातें कही हैं!—– देखा जाय तो दूध का धोया कोई नहीं है।

श्रीरामकृष्ण– (राखाल से सस्नेह)– तू कुछ खाएगा?

राखाल– नहीं, फिर खा लूंगा।

श्रीरामकृष्ण मणि की ओर संकेत कर रहे हैं कि वे आज यहीं प्रसाद पाएँ।

राखाल– पाइए न, जब वे कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण पञ्चवर्षीय बालक की तरह दिगम्बर होकर भक्तों के बीच में बैठे हुए हैं। ठीक इसी समय पगली जीने से ऊपर चढ़कर कमरे के द्वार के पास आकर खड़ी हो गई।

मणि– (शशि से, धीरे-धीरे)– नमस्कार करके जाने के लिए कहो, कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है।

शशि ने पगली को नीचे उतार दिया।

आज नये वर्ष का पहला दिन है। बहुत सी भक्त स्त्रियाँ आई हुई हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण और माताजी को प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण किया। श्रीयुत बलराम की स्त्री, मणिमोहन की स्त्री, बागबाजार की ब्राह्मणी तथा अन्य बहुत सी स्त्रियाँ आई हुई हैं।

वे सब की सब श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करने के लिए ऊपरवाले कमरे में गईं। किसी किसी ने श्रीरामकृष्ण के पादपद्मों में अबीर और पुष्प चढ़ाए। भक्तों की दो लड़कियाँ––नौ-नौ दस-दस साल की––श्रीरामकृष्ण को गाना सुना रही हैं।

लड़कियों ने दो-तीन गाने सुनाए। श्रीरामकृष्ण ने संकेत द्वारा उन्हें बधाई दी।

ब्राह्मणी का स्वभाव बच्चों-जैसा है। श्रीरामकृष्ण हँसकर राखाल की ओर संकेत कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि वह उसे भी कुछ गाने के लिए कहे। ब्राह्मणी गा रही हैं।

गाना––हे कृष्ण, आज तुम्हारे साथ खेलने को जी चाहता

है, आज तुम मधुवन में अकेले मिल गए हो ।...

स्त्रियाँ ऊपरवाले कमरे से नीचे चली आईं । दिन का पिछला पहर है । श्रीरामकृष्ण के पास मणि तथा दो-एक और भक्त बैठे हुए हैं । नरेन्द्र भी कमरे में आए । श्रीरामकृष्ण ठीक ही कहते हैं कि नरेन्द्र मानो म्यान से तलवार निकालकर घूम रहा है ।

संन्यासी के कठिन नियम तथा नरेन्द्र

नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के पास आकर बैठे । श्रीरामकृष्ण को सुनाकर स्त्रियों के सम्बन्ध में नरेन्द्र बहुत ही विरक्ति-भाव प्रकाशित कर रहे हैं । कहते हैं, 'स्त्रियों के साथ रहकर ईश्वर की प्राप्ति में घोर विघ्न है ।'

श्रीरामकृष्ण कुछ कहते नहीं, केवल सुन रहे हैं ।

नरेन्द्र फिर कह रहे हैं, 'मैं शान्ति चाहता हूँ, मैं ईश्वर को भी नहीं चाहता ।' श्रीरामकृष्ण एकदृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं । मुख में कोई शब्द नहीं है । नरेन्द्र बीच बीच में स्वर के साथ कह रहे हैं, 'सत्यं ज्ञानमनन्तम् ।'

रात के आठ बजे का समय है । श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए हैं । सामने दो-एक भक्त भी बैठे हैं । ऑफिस का काम समाप्त करके सुरेन्द्र श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए आए हैं । हाथ में चार सन्तरे हैं और फूल की दो मालाएँ । सुरेन्द्र एक-एक बार भक्तों की ओर तथा एक-एक बार श्रीरामकृष्ण की ओर देख रहे हैं, और अपने हृदय की सारी बातें कहते जा रहे हैं ।

सुरेन्द्र– (मणि आदि की ओर देखकर)––ऑफिस का कुल काम समाप्त करके आया । मैंने सोचा, दो नावों पर पैर रखकर क्या होगा ? अतएव काम समाप्त करके जाना ही ठीक है । आज

एक तो पहला वैशाख है, दूसरे, मंगल का दिन; कालीघाट जाना नहीं हुआ। मैंने सोचा, काली की चिन्ता करके स्वयं ही जो काली बन गए हैं, अब चलकर उन्हीं के दर्शन करूँ; इसी से हो जाएगा।

श्रीरामकृष्ण मुस्करा रहे हैं।

सुरेन्द्र—मैंने सुना है, गुरु और साधु के दर्शन करने के लिए कोई जाय तो उसे कुछ फल-फूल लेकर जाना चाहिए। इसीलिए फल-फूल मैं ले आया। (श्रीरामकृष्ण से) आपके लिए यह सब खर्च,—ईश्वर ही मेरा मन जानते हैं। किसी को एक पैसा खर्च करते हुए भी कष्ट होता है, पर कुछ लोग लाखों रुपये बिना किसी हिचकिचाहट के खर्च कर डालते हैं। ईश्वर तो हृदय की भक्ति देखते हैं, तब ग्रहण करते हैं।

श्रीरामकृष्ण सिर हिलाकर संकेत कर रहे हैं कि तुमने ठीक ही कहा। सुरेन्द्र फिर कह रहे हैं—"कल संक्रान्ति थी, मैं यहाँ तो नहीं आ सका, परन्तु घर में फूलों से आपके चित्र को खूब सुसज्जित किया।"

श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र की भक्ति की बात मणि को संकेत करके सूचित कर रहे हैं।

सुरेन्द्र—आते हुए ये दो मालाएँ ले लीं, चार आने की।

अधिकांश भक्त चले गए। श्रीरामकृष्ण मणि से पैरों पर हाथ फेरने और पंखा झलने के लिए कह रहे हैं।

परिच्छेद ३२

ईश्वर-लाभ के उपाय

(१)

गिरीश तथा मास्टर

काशीपुर के बगीचे के पूर्व की ओर तालाब है, जिसमें पक्का घाट बँधा हुआ है। उद्यान, पथ और तरु-लताएँ चाँदनी की उज्ज्वल छटा में खूब चमक रही हैं। तालाब के पश्चिम की ओर दुमंज़ले मकान में दीपक जल रहा है। कमरे में श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे हुए हैं। दो-एक भक्त भी कमरे में चुपचाप बैठे हैं। कोई कोई इस कमरे से उस कमरे में आ-जा रहे हैं। घाट से नीचे के कमरों का उजाला भी दिखाई पड़ रहा है। एक कमरे में भक्तगण रहते हैं। यह कमरा दक्षिण की ओर है। मकान के बीच से जो प्रकाश आ रहा है, वह श्रीमाताजी के कमरे का है। श्रीमाताजी श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए आई हुई हैं। तीसरा प्रकाश भोजनगृह से आ रहा है। यह कमरा मकान के उत्तर की ओर है। उद्यान के भीतर से पूर्व की ओर घाट तक एक रास्ता गया है। रास्ते के दोनों ओर, विशेषकर, दक्षिण की ओर फूलों के बहुत से पेड़ हैं।

तालाब के घाट पर गिरीश, मास्टर, लाटू तथा दो-एक भक्त और बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में बातचीत हो रही है। आज शुक्रवार है, १६ अप्रैल, १८८६, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी।

कुछ देर बाद गिरीश और मास्टर उस रास्ते पर टहल रहे हैं और बीच बीच में वार्तालाप कर रहे हैं।

मास्टर– कैसी सुन्दर चाँदनी है! कितने अनन्त काल से

प्रकृति के ये नियम चले आ रहे हैं !

गिरीश– तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

मास्टर– प्रकृति के नियमों में परिवर्तन नहीं होता । विलायत के पण्डित टेलिस्कोप (Telescope) से नये नये नक्षत्र देख रहे हैं । उन्होंने देखा है, चन्द्रलोक में बड़े बड़े पहाड़ हैं ।

गिरीश– यह कहना कठिन है, उनकी बातों पर विश्वास नहीं होता ।

मास्टर– क्यों ? टेलिस्कोप से तो सब बिलकुल ठीक ठीक दीख पड़ता है ।

गिरीश– पर तुम कैसे कह सकते हो कि पहाड़ आदि सब ठीक-ठीक ही देखे गए हैं । मान लो, पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच में कुछ और चीज़े हों, तो उनमें से प्रकाश आने पर सम्भव है ऐसा दिखता हो ।

किशोर भक्त-मण्डली सदा ही बगीचे में रहती है, श्रीराम-कृष्ण की सेवा के लिए,—— नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरद, शशि, बाबूराम, काली, योगिन, लाटू आदि । जो संसारी भक्त हैं, उनमें से कोई कोई रोज आते हैं और रात में भी कभी कभी रह जाते हैं । उनमें से कोई कभी क़भी आया करते हैं । आज नरेन्द्र, काली और तारक दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर के बगीचे में गए हुए हैं । नरेन्द्र वहाँ पंचवटी के नीचे बैठकर तपस्या और साधना करेंगे । इसीलिए दो-एक गुरुभाइयों को भी साथ लेते गए हैं ।

(२)

श्रीरामकृष्ण का भक्तों के प्रति स्नेह

गिरीश, लाटू और मास्टर ने ऊपर जाकर देखा, श्रीरामकृष्ण

छोटे तखत पर बैठे हुए हैं। शशि और दो-एक भक्त उसी कमरे में श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए थे। क्रमशः बाबूराम, निरंजन और राखाल भी आ गए।

कमरा बड़ा है। श्रीरामकृष्ण की शय्या के पास औषधि तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ रखी हुई हैं। कमरे के उत्तर की ओर एक दरवाज़ा है, जीने से चढ़कर उस कमरे में प्रवेश किया जाता है। उस द्वार के सामनेवाले कमरे के दक्षिण की ओर एक और द्वार है। इस द्वार से दक्षिण की छोटी छत पर चढ़ सकते हैं। छत पर खड़े होने पर बगीचे के पेड़-पौधे, चाँदनी और पास का राजपथ भी दीख पड़ता है।

भक्तों को रात में जागना पड़ता है। वे बारी बारी से जागते हैं। मसहरी लगाकर, श्रीरामकृष्ण को शयन कराने के पश्चात् जो भक्त कमरे में रहते हैं, वे कमरे के पूर्व की ओर चटाई बिछाकर कभी बैठे रहते हैं और कभी लेटे। अस्वस्थता के कारण श्रीरामकृष्ण की आँख नहीं लगती। इसलिए जो रहते हैं, उन्हें कई घण्टे जागते ही रहना पड़ता है।

आज श्रीरामकृष्ण की बीमारी कुछ कम है। भक्तों ने आकर भूमिष्ठ हो प्रणाम किया, फिर सब के सब जमीन पर श्रीरामकृष्ण के सामने बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से दीपक ज़रा नजदीक ले आने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण गिरीश से आनन्दपूर्वक बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– कहो, अच्छे हो न? (लाटू से) इन्हें तम्बाकू पिला और पान दे।

कुछ क्षण के बाद बोले, 'इन्हें कुछ मिठाई दे।'

लाटू– पान दे दिया है । दूकान से मिठाई लेने के लिए आदमी भेजा है ।

श्रीरामकृष्ण बैठे हैं । एक भक्त ने कई मालाएँ लाकर श्रीरामकृष्ण को अर्पण कर दीं । श्रीरामकृष्ण ने मालाओं को लेकर गले में धारण कर लिया । फिर उनमें से दो मालाएँ निकालकर गिरीश को दे दीं ।

बीच-बीच में जलपान की मिठाई के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण पूछ रहे हैं–– 'क्या मिठाई आई ?'

मणि श्रीरामकृष्ण को पंखा झल रहे हैं । श्रीरामकृष्ण के पास किसी भक्त का दिया हुआ चन्दन की लकड़ी का एक पंखा था । श्रीरामकृष्ण ने उसे मणि के हाथ में दिया । उसी पंखे को लेकर मणि हवा कर रहे हैं । गले से दो मालाएँ निकालकर श्रीरामकृष्ण ने मणि को भी दीं ।

लाटू श्रीरामकृष्ण से एक भक्त की बात कह रहे हैं । उनका एक सात-आठ साल का लड़का आज डेढ़ साल हुए गुज़र गया है । उस लड़के ने भक्तों के बीच में श्रीरामकृष्ण को कई बार देखा था ।

लाटू– (श्रीरामकृष्ण से)– ये अपने लड़के की पुस्तक देखकर कल रात को बहुत रोए थे । इनकी स्त्री भी बच्चे के शोक से पागल-सी हो गई है । अपने दूसरे बच्चों को मारती है और उठाकर पटक देती है । ये कभी कभी यहाँ रहते हैं, इसलिए बड़ा हल्ला मचाती हैं ।

श्रीरामकृष्ण उस शोक-समाचार को सुनकर मानो चिन्तित हो चुप हो रहे ।

गिरीश– अर्जुन ने इतनी गीता पढ़ी परन्तु वे भी पुत्र के शोक

से मूर्च्छित हो गए, तो इनके शोक के लिए आश्चर्य प्रकट करने की कोई बात नहीं।

संसार में ईश्वर-लाभ किस प्रकार होता है

गिरीश के जलपान के लिए मिठाई आई है। फागू की दूकान की गर्म कचौड़ियाँ, पूड़ियाँ और दूसरी दूसरी मिठाइयाँ। फागू की दूकान बराहनगर में है। श्रीरामकृष्ण ने अपने सामने वह सब सामान रखकर प्रसाद कर दिया। फिर स्वयं उठाकर मिष्टान्न और पूड़ियों का दोना गिरीश को दिया। कहा, 'कचौड़ियाँ बहुत अच्छी हैं।' गिरीश सामने बैठकर खा रहे हैं। गिरीश को पीने के लिए पानी देना है। श्रीरामकृष्ण के पलंग के पश्चिम की ओर सुराही में पानी है। गरमी का समय है, वैशाख का महीना। श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'यहाँ बड़ा अच्छा पानी है।'

श्रीरामकृष्ण बहुत ही अस्वस्थ हैं। खड़े होने की शक्ति तक नहीं रह गई है। भक्तगण आश्चर्यचकित होकर देख रहे हैं—श्रीरामकृष्ण की कमर में वस्त्र नहीं है, दिगम्बर हो रहे हैं। बालक की तरह पलंग पर बैठे सरक-सरककर बढ़ रहे हैं—इच्छा है, खुद पानी दे दें। श्रीरामकृष्ण की वह अवस्था देखकर भक्तों की साँस मानो रुक गई। श्रीरामकृष्ण ने गिलास में पानी ढाला। गिलास से थोड़ा सा पानी हाथ में लेकर देख रहे हैं कि पानी ठंडा है या नहीं। उन्होंने देखा, पानी अधिक ठंडा नहीं है। अन्त में यह सोचकर कि दूसरा अच्छा पानी यहाँ मिल नहीं सकता, श्रीरामकृष्ण ने इच्छा न होते हुए भी गिरीश को वही पानी पीने के लिए दिया।

गिरीश मिठाइयाँ खा रहे हैं। चारों ओर भक्तगण बैठे हुए हैं। मणि श्रीरामकृष्ण को पंखे से हवा कर रहे हैं।

गिरीश– (श्रीरामकृष्ण से)– देवेन्द्र बाबू संसार का त्याग करेंगे।

श्रीरामकृष्ण सब समय बातचीत नहीं कर सकते, बड़ा कष्ट होता है। अपने ओंठों में उँगली छुलाकर उन्होंने इशारे से पूछा, 'फिर उनके घरवालों के भरण-पोषण की क्या व्यवस्था होगी,— संसार कैसे चल सकेगा ?'

गिरीश– मुझे नहीं मालूम कि वे क्या करेंगे।

सब लोग चुप हैं। गिरीश खाते-खाते फिर बातचीत करने लगे।

गिरीश– अच्छा महाराज, कौनसा ठीक है ?— कष्ट में संसार का त्याग करना या संसार में रहकर उन्हें पुकारना ?

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– क्या गीता में तुमने नहीं देखा ? अनासक्त हो संसार में रहकर कर्म करते रहने पर, सब मिथ्या समझकर ज्ञानलाभ के पश्चात् संसार में रहने पर अवश्य ही ईश्वर-प्राप्ति होती है।

"कष्ट में पड़कर जो लोग संसार का त्याग करते हैं, वे निम्न कोटि के मनुष्य हैं।

"संसार में रहनेवाला ज्ञानी कैसा है— जानते हो ?— जैसे काँच के घर में रहनेवाला मनुष्य,— वह भीतर-बाहर सब देखता है।"

सब लोग चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)— कचौड़ियाँ गर्म हैं, बहुत ही अच्छी हैं।

मास्टर– (गिरीश से)— फागू की दूकान की कचौड़ियाँ प्रसिद्ध हैं।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, प्रसिद्ध हैं।

गिरीश– (खाते ही खाते, सहास्य)– जी, बहुत ही अच्छी हैं।

श्रीरामकृष्ण– पूड़ियाँ रहने दो, कचौड़ियाँ खाओ। (मास्टर से) परन्तु कचौड़ी रजोगुणी भोजन है।

गिरीश– (श्रीरामकृष्ण से)– अच्छा महाराज, मन अभी इतनी उच्च भूमि पर है, फिर नीचे भला क्यों गिर जाता है ?

श्रीरामकृष्ण– संसार में रहने से ऐसा होता ही है। कभी मन ऊँचे चढ़ जाता है, कभी गिर जाता है ? कभी बहुत अच्छी भक्ति होती है, कभी भक्ति की मात्रा घट जाती है। कामिनी और कांचन लेकर रहना पड़ता है न, इसीलिए ऐसा होता है। संसार में रहकर भक्त कभी ईश्वर-चिन्ता करता है, कभी उनका स्मरण-कीर्तन करता है, कभी वही मन कामिनी और कांचन की ओर लगा देता है। जैसे साधारण मक्खी— कभी बर्फियों पर बैठती है, और कभी सड़े घाव और विष्ठा पर भी बैठती है।

"त्यागियों की बात और है। वे लोग कामिनी और कांचन से मन को हटाकर केवल ईश्वर में ही लगाते हैं। वे केवल हरि-रस का ही पान करते हैं। जो यथार्थ त्यागी हैं, उन्हें ईश्वर के सिवा और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती। विषय-चर्चा होने पर वे वहाँ से उठ जाते हैं। ईश्वरीय प्रसंग वे ध्यान से सुनते हैं। जो यथार्थ त्यागी है, वह ईश्वर की बात छोड़ और दूसरी चर्चा करता ही नहीं।

"मधुमक्खी फूल पर ही बैठती है— मधु पीने के लिए। और कोई चीज़ उसे अच्छी नहीं लगती।"

गिरीश दक्षिण की छोटी छत पर हाथ धोने के लिए गए।

अवतार वेद-विधि के परे हैं

गिरीश फिर कमरे में श्रीरामकृष्ण के सामने आकर बैठे, पान खा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— (गिरीश से)—राखाल आदि ने अव समझा है कि कौनसा अच्छा है और कौनसा बुरा, क्या सत्य है और क्या मिथ्या। ये लोग जो संसार में जाकर रहते हैं, जान-बूझकर ऐसा करते हैं। स्त्री है, लड़का भी हो गया है, परन्तु समझ में आ गया है कि यह सब मिथ्या है, अनित्य है। राखाल आदि जितने हैं ये संसार में लिप्त न होंगे।

"जैसे 'पाँकाल' मछली। वह रहती तो पंक (कीच) के भीतर है, परन्तु उसकी देह में कीच कहीं छू भी नहीं जाता।"

गिरीश— महाराज, यह सब मेरी समझ में नहीं आता। आप चाहें तो सब को निर्लिप्त और शुद्ध कर दे सकते हैं। संसारी हो या त्यागी, सब को आप शुद्ध कर सकते हैं। मेरा विश्वास है, मलयानिल के प्रवाहित होने पर सब काठ चन्दन बन जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण— सार वस्तु के बिना रहे चन्दन नहीं बनता। सेमर तथा इसी तरह के कुछ अन्य पेड़ चन्दन नहीं बनते।

गिरीश— यह मैं नहीं मानता।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु नियम तो ऐसा ही है।

गिरीश— आपका सब कुछ नियम के बाहर है।

भक्तगण निर्वाक् होकर सुन रहे हैं। मणि का हाथ पंखा झलते हुए कभी कभी रुक जाता है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हो सकता है। भक्ति-नदी के उमड़ने पर चारों ओर बाँस भर पानी चढ़ जाता है।

"जब भक्ति-उन्माद होता है, तब वेद-विधि नहीं रह जाती।

दूर्वादल तोड़कर भक्त फिर चुनता नहीं। हाथ में जो कुछ आ जाता है, वही ले लेता है। तुलसी-दल लेते समय उसकी डाल तक तोड़ लेता है। अहा, कैसी अवस्था बीत चुकी है!

(मास्टर से) "भक्ति के होने पर और कुछ नहीं चाहता।"

मास्टर– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण– किसी एक भाव का आश्रय लेना पड़ता है। रामावतार में शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, ये सब भाव थे; कृष्णावतार में ये सब तो थे ही, मधुरभाव एक ज्यादा था।

"श्रीमती (राधा) के मधुरभाव में प्रणय है। सीता में वह बात नहीं है, उसका शुद्ध सतीत्व है।

"उन्हीं की लीला है। जब जैसा भाव उचित हो, उसे धारण करते हैं।"

विजय गोस्वामी के साथ दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में एक पगली-सी स्त्री श्रीरामकृष्ण को गाना सुनाने के लिए जाया करती थी। वह काली-संगीत और ब्रह्मगीत गाती थी। सब लोग उसे पगली कहते थे। वह काशीपुर के बगीचे में भी प्रायः आया करती है और श्रीरामकृष्ण के पास जाने के लिए बड़ा उपद्रव मचाती है। भक्तों को इसीलिए सदा सतर्क रहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)– पगली का मधुरभाव है। दक्षिणेश्वर में एक दिन गई थी, एकाएक रोने लगी। मैंने पूछा, 'तू क्यों रोती है?' उसने कहा, 'सिर में दर्द हो रहा है।' (सब लोग हँसते हैं)

"एक दिन और गई थी। मैं भोजन करने के लिए बैठा था। एकाएक उसने कहा, 'आपकी कृपा नहीं हुई?' मैं भोजन कर रहा था, उसके मन में क्या था मुझे मालूम नहीं। उसने कहा,

'आपने मुझे मन से उतार क्यों दिया ? ' मैंने पूछा, ' तेरा भाव क्या है ? ' उसने कहा, ' मधुरभाव । ' मैंने कहा, ' अरे, मेरी मातृयोनि है । मेरे लिए सब स्त्रियाँ माताएँ हैं । ' तब उसने कहा, ' यह मैं कुछ नहीं जानती । ' तब मैंने रामलाल को पुकारकर कहा, 'रामलाल, ज़रा सुन तो, ' मन से उतारने ' का प्रयोग यह किस अर्थ में कर रही है ? ' उसमें वही भाव अब भी है । "

गिरीश– वह पगली धन्य है ! चाहे वह पगली हो, और चाहे भक्तों द्वारा मारी भी जाय, परन्तु आठों पहर वह करती तो आप ही की चिन्ता है ।— वह चाहे जिस भाव से करे, उसका अनिष्ट कभी हो ही नहीं सकता ।

" महाराज, क्या कहूँ, पहले मैं क्या था और आपको सोचकर क्या हो गया ! पहले आलस्य था, इस समय वह आलस्य ईश्वर-निर्भरता में परिणत हो गया है । पहले पापी था, परन्तु अब निरहंकार हो गया हूँ । और क्या क्या कहूँ ! "

भक्तगण चुप हैं । राखाल पगली की बातें कहते हुए दुःख प्रकट कर रहे हैं । उन्होंने कहा, ' क्या कहें, दुःख होता है, वह उपद्रव करती है, इसीलिए उसे बहुत कुछ कष्ट भी मिलता है ।'

निरंजन– (राखाल से)– तेरे बीबी है, इसीलिए तेरा मन इस तरह छटपटाता है । हम लोग तो उसे लेकर बलि चढ़ा सकते हैं !

राखाल– (विरक्ति से)– बड़ी बहादुरी करोगे ! उनके (श्रीरामकृष्ण के) सामने ये सब बातें कर रहे हो !

रुपये में आसक्ति । सद्व्यवहार

श्रीरामकृष्ण– (गिरीश से)–कामिनी और कांचन, यही संसार है । बहुत से लोग ऐसे हैं, जो रुपये को अपनी देह के खून

के बराबर समझते हैं। रुपये पर कितना भी प्यार क्यों न करो, परन्तु एक दिन वह अपने प्यार करनेवाले को सदा के लिए छोड़कर निकल जाएगा।

"हमारे देश में खेतों पर मेड़ बाँधते हैं। मेड़ जानते हो? जो लोग बड़े प्रयत्न से चारों ओर मेड़ बाँधते हैं, उनकी मेड़ें पानी के तेज़ बहाव से ढह जाती हैं, और जो लोग एक ओर घास जमा देते हैं, उनकी मेड़ें मजबूत हो जाती हैं और पानी के रुकने के कारण खूब धान पैदा होता है।

"जो लोग रुपये का सद्व्यवहार करते हैं-- श्रीठाकुरजी और साधुओं की सेवा में, दान आदि सत्कर्मों में खर्च करते हैं, वास्तव में उन्हीं का धनोपार्जन सफल होता है। उन्हीं की खेती तैयार होती है।

"डाक्टर और कविराजों की चीज़ें मैं नहीं खा सकता। जो लोग दूसरों के शारीरिक रोग-दुःखों का व्यापार करते हैं और उसी से अर्थोपार्जन करते हैं, उनका धन मानो खून और पीब है।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने दो चिकित्सकों के नाम लिए।

गिरीश-- राजेन्द्र दत्त बहुत ही श्रेष्ठ मनुष्य है। किसी से एक पैसा भी नहीं लेता। वह दान भी करता है।

परिच्छेद ३३

नरेन्द्र के प्रति उपदेश

(१)

नरेन्द्र आदि भक्तों के संग में

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ काशीपुर के बगीचे में हैं। शरीर बहुत ही अस्वस्थ है, परन्तु सदा ही व्याकुल भाव से ईश्वर के निकट भक्तों की कल्याणकामना किया करते हैं। आज शनिवार है, चैत्र की शुक्ला चतुर्दशी, १७ अप्रैल १८८६। पूर्णिमा लग गई है।

कुछ दिनों से नरेन्द्र लगातार दक्षिणेश्वर जा रहे हैं। वहाँ पंचवटी में ईश्वर-चिंतन, ध्यान-साधना आदि किया करते हैं। आज शाम को वे लौटे, साथ में श्रीयुत तारक और काली भी हैं।

रात के आठ बजे का समय होगा। चाँदनी और दक्षिणी वायु ने उद्यान को और भी मनोहर बना दिया है। भक्तों में से कितने ही नीचे के कमरे में बैठे हुए ध्यान कर रहे हैं। नरेन्द्र मणि से कह रहे हैं—'ये लोग अब छूट रहे हैं' (अर्थात् ध्यान करते हुए उपाधियों से मुक्त हो रहे हैं)।

कुछ देर बाद मणि ऊपरवाले कमरे में श्रीरामकृष्ण के पास जाकर बैठे। श्रीरामकृष्ण ने उनसे पीकदान और अँगौछा धो लाने के लिए कहा। वे पश्चिमवाले तालाब से चन्द्रमा के प्रकाश में सब धोकर ले आए।

दूसरे दिन सबेरे श्रीरामकृष्ण ने मणि को बुला भेजा। गंगा-स्नान करके श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के पश्चात् वे छत पर गए हुए थे।

उनकी स्त्री पुत्र के शोक से पागल हो रही है। श्रीरामकृष्ण ने उसे बगीचे में आकर प्रसाद पाने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण इशारे से बतला रहे हैं—“उसे यहाँ आने के लिए कहना। गोद में जो लड़का है, उसे भी ले आवे,—और यहाँ आकर भोजन करे।”

मणि—जी। ईश्वर पर उसकी भक्ति हो तो बहुत अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण इशारा करके बतला रहे हैं—“नहीं, शोक भक्ति को हटा देता है। और इतना बड़ा लड़का था!

“कृष्णकिशोर के भवनाथ की तरह दो लड़के थे, युनिवर्सिटी की दो-दो परीक्षाएँ पास की थीं। जब उनका देहान्त हुआ, तब कृष्णकिशोर इतना बड़ा ज्ञानी, परन्तु फिर भी संभल न सका! मुझे ईश्वर ही ने नहीं दिया, मेरा भाग्य!

“अर्जुन इतना बड़ा ज्ञानी था, साथ कृष्ण थे। फिर भी अभिमन्यु के शोक से बिलकुल अधीर हो गया।

“किशोरी भला क्यों नहीं आता?”

एक भक्त—वह रोज गंगा नहाने जाया करता है।

श्रीरामकृष्ण—यहाँ क्यों नहीं आता?

भक्त—जी, आने के लिए कहूँगा।

श्रीरामकृष्ण—(लाटू से)—हरीश क्यों नहीं आता?

मास्टर के घर की ९–१० साल की दो लड़कियाँ श्रीरामकृष्ण को गाना सुना रही हैं। इन लड़कियों ने उस समय भी श्रीरामकृष्ण को गाना सुनाया था, जब श्रीरामकृष्ण मास्टर के श्यामपुकुर के तेलीपारावाले मकान में पधारे थे। श्रीरामकृष्ण उनका गाना सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए थे। श्रीरामकृष्ण के पास गाना हो जाने पर भक्तों ने लड़कियों को नीचे बुलाकर

फिर गवाया।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– अपनी लड़कियों को अब गाना मत सिखाना। आप ही आप ये गावें तो और बात है। जिस-तिस के पास गाने से लज्जा जाती रहेगी। स्त्रियों के लिए लज्जा बड़ी आवश्यक है।

श्रीरामकृष्ण के सामने पुष्पपात्र में फूल-चन्दन लाकर रखा गया। श्रीरामकृष्ण पलंग पर बैठे हुए हैं। फूल-चन्दन से वे अपनी ही पूजा कर रहे हैं। सचन्दन पुष्प कभी मस्तक पर धारण कर रहे हैं, कभी कण्ठ में, कभी हृदय में और कभी नाभिस्थल में।

मनोमोहन कोन्नगर से आए। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। श्रीरामकृष्ण अब भी अपनी पूजा कर रहे हैं। अपने गले में उन्होंने फूलों की माला डाल ली।

कुछ देर बाद मानो प्रसन्न होकर मनोमोहन को निर्माल्य प्रदान किया। मणि को भी एक फूल दिया।

(२)

नरेन्द्र के प्रति उपदेश

दिन के नौ बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण मास्टर के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। कमरे में शशि भी हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– नरेन्द्र और शशि ये दोनों क्या कह रहे थे? क्या विचार कर रहे थे?

मास्टर– (शशि से)– क्या बातें हो रही थीं, जी?

शशि– शायद निरंजन ने कहा है?

श्रीरामकृष्ण– ईश्वर नास्ति-अस्ति, ये सब क्या बातें हो रही थीं?

शशि– (सहास्य)– नरेन्द्र को बुलाऊँ?

श्रीरामकृष्ण– बुला।

नरेन्द्र आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टरसे)– तुम भी कुछ पूछो। क्या बातें हो रही थीं ?–– बता।

नरेन्द्र– पेट कुछ ठीक नहीं है। उन बातों को अब और क्या कहूँ ?

श्रीरामकृष्ण– पेट अच्छा हो जाएगा।

मास्टर– (सहास्य)– बुद्ध की अवस्था कैसी है ?

नरेन्द्र– क्या मुझे वह अवस्था हुई है जो मैं बतलाऊँ ?

मास्टर– ईश्वर हैं, इस सम्बन्ध में वे क्या कहते हैं ?

नरेन्द्र– ईश्वर हैं, यह बात कैसे कह सकते हो ? तुम्हीं इस संसार की सृष्टि कर रहे हो। बर्कले ने क्या कहा है, जानते हो ?

मास्टर– हाँ, उन्होंने कहा है, 'Esse is percipi' (बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व उनके अनुभव होने पर ही निर्भर है।) ज़ब तक इन्द्रियों का काम चल रहा है, तभी तक संसार है।

श्रीरामकृष्ण– न्यांगटा कहता था, मन ही से संसार की उत्पत्ति है और मन ही में उसका लय भी होता है।

"परन्तु जब तक 'मैं' है तब तक सेव्य-सेवक का भाव ही अच्छा है।"

नरेन्द्र– (मास्टर से)– विचार अगर करो, तो ईश्वर हैं यह कैसे कह सकते हो ? और विश्वास पर अगर जाओ तो सेव्य-सेवक मानना ही होगा। यह अगर मानो––और मानना ही होगा––तो दयामय भी कहना होगा।

"तुमने केवल दुःख को ही सोच रखा है। उन्होंने जो इतना सुख दिया है, इसे क्यों भूल जाते हो ? उनकी कितनी कृपा है!

उन्होंने हमें बड़ी बड़ी चीजें दी हैं—मनुष्य-जन्म, ईश्वर को जानने की व्याकुलता और महापुरुष का संग। 'मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष-संश्रयः।'" (सब लोग चुप हैं)

श्रीरामकृष्ण—(नरेन्द्र से)—परन्तु मुझे बहुत साफ़ अनुभव होता है कि भीतर कोई एक है।

राजेन्द्रलाल दत्त आकर बैठे। वे होमिओपैथिक मत से श्रीरामकृष्ण की चिकित्सा कर रहे हैं। औषधि आदि की बातें हो जाने पर, श्रीरामकृष्ण मनोमोहन की ओर उँगली के इशारे से बतला रहे हैं।

डाक्टर राजेन्द्र—ये मेरे ममेरे भाई के लड़के हैं।

नरेन्द्र नीचे आए हैं। आप ही आप गा रहे हैं—(भावार्थ)—"प्रभो, तुमने दर्शन देकर मेरा समस्त दुःख दूर कर दिया है और मेरे प्राणों को मोह लिया है। तुम्हें पाकर सप्त लोक अपना दारुण शोक भूल जाते हैं, फिर, नाथ, मुझ अति दीन-हीन की बात ही क्या? . . ."

नरेन्द्र को पेट की कुछ शिकायत है, मास्टर से कह रहे हैं—'प्रेम और भक्ति के मार्ग में रहने पर देह की ओर मन आता है। नहीं तो मैं हूँ कौन? मैं न मनुष्य हूँ, न देवता हूँ; न मेरे सुख हैं, न दुःख हैं।'

रात के नौ बजे का समय हुआ। सुरेन्द्र आदि भक्तों ने श्रीरामकृष्ण को फूलों की माला लाकर समर्पण की। कमरे में बाबूराम, सुरेन्द्र, लाटू, मास्टर आदि हैं। श्रीरामकृष्ण ने सुरेन्द्र की माला स्वयं अपने गले में धारण कर ली। सब लोग चुपचाप बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण एकाएक सुरेन्द्र को इशारे से बुला रहे हैं। सुरेन्द्र

जब पलंग के पास आए, तब उस प्रसादी माला को लेकर श्रीरामकृष्ण ने सुरेन्द्र को पहना दिया।

माला पाकर सुरेन्द्र ने प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण फिर उन्हें इशारा करके पैरों पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं। कुछ देर तक सुरेन्द्र ने उनके पैर दबाए।

श्रीरामकृष्ण जिस कमरे में हैं, उसकी पश्चिम-ओर एक पुष्करिणी (तालाव) है। इस तालाब के घाट में कई भक्त खोल-करताल लेकर गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने लाटू से कहला भेजा, 'तुम लोग कुछ देर हरि-नाम-कीर्तन करो।'

मास्टर और बाबूराम आदि अभी भी श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हैं। वे वहीं से भक्तों का गाना सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण गाना सुनते सुनते बाबूराम और मास्टर से कह रहे हैं, 'तुम लोग नीचे जाओ। उनके साथ मिलकर गाना और नाचना।' वे लोग भी नीचे आकर कीर्तनवालों के साथ गाने लगे।

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने फिर आदमी भेजा। उससे उन्होंने कीर्तन के खास-खास पद गवाने के लिए कह दिया।

कीर्तन समाप्त हो गया। सुरेन्द्र भावावेश में आकर गा रहे हैं। गाना शंकर के सम्बन्ध में है।

(३)

नरेन्द्र तथा ईश्वर का अस्तित्व

श्रीरामकृष्ण के दर्शन कर हीरानन्द गाड़ी पर चढ़ रहे हैं। गाड़ी के पास नरेन्द्र और राखाल खड़े हुए उनसे साधारण कुशल-प्रश्न-सम्बन्धी बातचीत कर रहे हैं। दिन के दस बजे का समय होगा। हीरानन्द कल फिर आएँगे।

आज बुधवार है, चैत्र की कृष्णा तृतीया। २१ अप्रैल, १८८६।

नरेन्द्र बगीचे में टहलते हुए मणि से वार्तालाप कर रहे हैं। घर में उनकी माता और भाइयों को बड़ा कष्ट है। अभी भी वे कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं कर सके। इसके लिए उन्हें चिन्ता रहती है।

नरेन्द्र– विद्यासागर के स्कूल का काम मुझे नहीं चाहिए। मैं गया जाने की सोच रहा हूँ। वहाँ एक जमींदार के मैनेजर की जगह है, एक आदमी ने उसके सम्बन्ध में कहा था। ईश्वर-फीश्वर कहीं कुछ नहीं है।

मणि– (हँसकर)– तुम इस समय तो कहते हो, परन्तु बाद में फिर नहीं कहोगे। संशय भी ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग की एक अवस्था है, इन सब अवस्थाओं को पार कर जाने पर, और भी आगे बढ़ जाने पर ईश्वर मिलते हैं––ऐसा श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं।

नरेन्द्र– जिस तरह इस पेड़ को देख रहा हूँ, इसी तरह क्या किसी ने ईश्वर को देखा है?

मणि– हाँ, श्रीरामकृष्ण ने देखा है।

नरेन्द्र– वह मन की भूल हो सकती है।

मणि– जो जिस अवस्था में जैसा दर्शन करता है, उस अवस्था के लिए वही सत्य होता है। जब स्वप्न देख रहे हो कि तुम किसी के बगीचे में गए हुए हो, तब वह बगीचा तुम्हारे लिए सत्य है, परन्तु तुम्हारी उस अवस्था के बदलने पर––अर्थात् जाग्रत अवस्था में––तुम्हें वह बात भ्रम मालूम होगी। जिस अवस्था में ईश्वर के दर्शन होते हैं, उस अवस्था के होने पर ईश्वर सत्य ही मालूम होंगे।

नरेन्द्र– मैं सत्य चाहता हूँ। उस दिन श्रीरामकृष्णदेव के साथ ही मैंने घोर तर्क किया।

मणि– (सहास्य)– क्या हुआ था?

नरेन्द्र– उन्होंने मुझसे कहा था, 'मुझे कोई कोई ईश्वर कहते हैं।' मैंने कहा, 'दूसरे चाहे लाख कहें, परन्तु जब तक मुझे वह बात सच नहीं जँचेगी, तब तक मैं कदापि न कहूँगा।'

"उन्होंने कहा, 'अधिकतर लोग जो कुछ कहेंगे, वही तो सत्य है— वही तो धर्म है!'

"मैंने कहा, 'मै स्वयं जब तक अच्छी तरह समझ न लूंगा, तब तक मैं दूसरों की बातें नहीं मान सकता।'"

मणि– (सहास्य)— तुम्हारा भाव कोपरनिकस, बर्कले आदि की तरह का है। संसार के आदमी कहते हैं, 'सूर्य ही चलता है,' पर कोपरनिकस ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। संसार के आदमी कहते हैं, 'वाह्य संसार है,' पर बर्कले ने यह बात नहीं मानी। इसलिए लीविस कहते हैं, 'क्यों, बर्कले क्या एक दार्शनिक कोपरनिकस नहीं था?'

नरेन्द्र– एक History of Philosophy (दर्शन का इतिहास) आप दे सकेंगे?

मणि– क्या लीविस का लिखा हुआ?

नरेन्द्र– नहीं उहबरवेग का,— मैं जर्मन लेखक की पुस्तक पढ़ूंगा।

मणि– तुम कहते तो हो कि सामने के पेड़ की तरह क्या किसी ने ईश्वर को देखा है, परंतु ईश्वर अगर आदमी बनकर तुम्हारे सामने आएं और कहें कि में ईश्वर हूँ, तो क्या तुम विश्वास करोगे? तुम लेजरस की कहानी जानते हो न? जब लेजरस ने परलोक में एब्राहम से जाकर कहा कि अपने आत्मीयों और मित्रों से कह आऊँ कि परलोक वास्तव में है, तबं एब्राहम ने कहा, 'तुम्हारे जाकर कहने से वे लोग क्या विश्वास करेंगे? वे

कहेंगे, यह एक झूठा यहाँ आकर बेसिर-पैर की उड़ा रहा है।'

"श्रीरामकृष्ण ने कहा है, उन्हें विचार करके कोई जान नहीं सकता। विश्वास से ही सब कुछ होता है-- ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और आलाप, सब कुछ।"

भवनाथ ने विवाह किया है। उन्हें अब भोजन-वस्त्र की चिन्ता हो रही है। वे मास्टर के पास आकर कहते हैं, 'विद्यासागर का नया स्कूल खुलनेवाला है, मुझे भी तो भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध करना है। अगर स्कूल का कोई काम कर लूं तो क्या बुरा है ?'

दिन के तीन-चार बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण लेटे हुए हैं। रामलाल पैर दबा रहे हैं, कमरे में सींती के गोपाल और मणि भी हैं। रामलाल दक्षिणेश्वर से आज श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए आए हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण मणि से खिड़कियाँ बन्द कर देने और पैरों पर हाथ फेरने के लिए कह रहे हैं।

श्रीयुत पूर्ण को किराए की गाड़ी करके काशीपुर के बगीचे में ले आने के लिए श्रीरामकृष्ण ने कहा था। वे आकर दर्शन कर गए। गाड़ी का किराया मणि देंगे। श्रीरामकृष्ण गोपाल को इशारा करके पूछ रहे हैं, 'इनके पास से मिला ?'

गोपाल-- जी हाँ।

रात के नौ बजे का समय है। सुरेन्द्र, राम आदि कलकत्ता लौट जाने का प्रबन्ध कर रहे हैं।

वैशाख की धूप-- दिन के समय श्रीरामकृष्ण का कमरा बहुत ही तप जाता है। सुरेन्द्र इसीलिए खस की टट्टियाँ ले आए हैं। इन्हें खिड़कियों में लगा देने से कमरा खूब ठंडा रहता है।

सुरेन्द्र-- खस की टट्टी अभी तक किसी ने नहीं लगाई,--

मालूम होता है कोई ध्यान ही नहीं देता।

एक भक्त– (सहास्य)– भक्तों को इस समय ब्रह्मज्ञान की अवस्था है। इस समय सब 'सोऽहम्' है–– संसार मिथ्या हो रहा है। फिर जब 'तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ' यह भाव आएगा, तब यह सब सेवा होगी।

(सब हँसते हैं।)

परिच्छेद ३४

श्रीरामकृष्ण का भक्तों के प्रति प्रेम

(१)

राखाल, शशि आदि भक्तों के संग में

काशीपुर के बगीचे में शाम को राखाल, शशि और मास्टर टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण बीमार हैं, बगीचे में चिकित्सा कराने के लिए आए हुए हैं। वे ऊपर के कमरे में हैं। भक्तगण उनकी सेवा कर रहे हैं। आज बृहस्पतिवार है, २२ अप्रैल, १८८६।

मास्टर– वे तो तीनो गुणों से परे एक बालक हैं।

शशि और राखाल– श्रीरामकृष्ण ने वैसा ही कहा है।

राखाल– जैसे एक ऊँची मीनार। वहाँ बैठने पर सब समाचार मिलता रहता है, सब कुछ देख सकते हैं, परन्तु वहाँ कोई पहुँच नहीं सकता।

मास्टर– उन्होंने कहा है, 'इस अवस्था में सदा ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं।' विषयरूपी रस के न रहने के कारण सूखी लकड़ी आग जल्दी पकड़ती है।

शशि– बुद्धि में कितने भेद हैं, यह वे चारु को बतला रहे थे। जिस बुद्धि से ईश्वर की प्राप्ति होती है, वही बुद्धि ठीक है। जिस बुद्धि से रुपया मिलता है, घर बनता है, डिप्टी मैजिस्ट्रेट या वकील होता है, वह बुद्धि नाममात्र की है। वह पतले दही की तरह है, जिसमें पानी का भाग अधिक है। उसमें सिर्फ चिउड़ा भीग सकता है। वह जमे दही की तरह अच्छा दही नहीं है। जिस बुद्धि से ईश्वर की प्राप्ति होती है, वही बुद्धि जमे दही की तरह उत्कृष्ट कहलाती है।

मास्टर– अहा ! कैसी सुन्दर बात है !

शशि– काली तपस्वी ने श्रीरामकृष्ण से कहा था, "आनन्द क्या होगा ? आनन्द तो भीलों के भी है। जंगली लोग भी 'हो हो' करके नाचते और गाते हैं।"

राखाल– उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) कहा, 'यह क्या ? ब्रह्मानन्द और विषयानन्द क्या एक हैं ? जीव विषयानन्द लेकर है। सम्पूर्ण विषयासक्ति के बिना गए ब्रह्मानन्द कभी मिल नहीं सकता। एक ओर रुपये और इन्द्रिय-सुख का आनन्द है और दूसरी ओर है ईश्वर-प्राप्ति का आनन्द। क्या ये दो कभी समान हो सकते हैं ? ऋषियों ने इस ब्रह्मानन्द का भोग किया था।'

मास्टर– काली इस समय बुद्धदेव की चिन्ता करते हैं न; इसलिए आनन्द के उस पार की बातें कह रहे हैं।

राखाल– श्रीरामकृष्ण के पास भी बुद्धदेव की बातचीत काली ने उठाई थी। श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, 'बुद्धदेव अवतार-पुरुष हैं। उनके साथ किसी की क्या तुलना ? बड़े घर की बड़ी बातें।' काली ने कहा, 'ईश्वर की शक्ति ही तो सब कुछ है। उसी शक्ति से ईश्वर का आनन्द मिलता है, और उसी से विषय का भी।'

मास्टर– फिर उन्होंने क्या कहा ?

राखाल– उन्होंने कहा 'यह कैसा ?—सन्तानोत्पत्ति करने की शक्ति और ईश्वर-प्राप्ति की शक्ति दोनों क्या एक हैं ?'

बगीचे के दुमंज़ले कमरे में भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। शरीर अधिकाधिक अस्वस्थ होता जा रहा है। आज फिर डाक्टर महेन्द्र सरकार और डाक्टर राजेन्द्र दत्त देखने के लिए आए हैं। कमरे में राखाल, नरेन्द्र, शशि, मास्टर, सुरेन्द्र,

भवनाथ तथा अन्य बहुत से भक्त बैठे हैं।

बगीचा पाकपाड़ा के बाबुओं का है। किराये से है, ६०-६५ रुपये देने पड़ते हैं। भक्तों में जो कम उम्र के हैं, वे बगीचे में ही रहते हैं। दिन-रात श्रीरामकृष्ण की सेवा वहीं किया करते हैं। गृही भक्त भी बीचबीच में आते हैं और उनकी सेवा किया करते हैं। वहीं रहकर श्रीरामकृष्ण की सेवा करने की इच्छा उन्हें भी है, परन्तु अपने-अपने कार्य में लगे रहने के कारण सदा वहाँ रहकर वे उनकी सेवा नहीं कर सकते। बगीचे का खर्च चलाने के लिए अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार वे आर्थिक सहायता देते हैं। अधिकांश खर्च सुरेन्द्र ही देते हैं। उन्हीं के नाम से किराए पर बगीचे की लिखा-पढ़ी हुई है। एक रसोइया और दासी, ये दो नौकर भी सदा वहीं रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण तथा कामिनी-कांचन

श्रीरामकृष्ण–(डाक्टर सरकार आदि से)–बड़ा खर्च हो रहा है।

डाक्टर–(भक्तों की ओर इशारा करके)–ये सब लोग तैयार भी तो हैं। बगीचे का सम्पूर्ण खर्च देते हुए भी इन्हें कोई कष्ट नहीं है। (श्रीरामकृष्ण से) अब देखो, कांचन की आवश्यकता आ पड़ी।

श्रीरामकृष्ण–(नरेन्द्र से)–बोल न।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को उत्तर देने की आज्ञा दे रहे हैं। नरेन्द्र चुप हैं। डाक्टर फिर बातचीत कर रहे हैं।

डाक्टर–कांचन चाहिए। और फिर कामिनी भी चाहिए।

राजेन्द्र डाक्टर–इनकी स्त्री इनके लिए खाना पका दिया करती हैं।

डाक्टर सरकार– (श्रीरामकृष्ण से)– देखा ?

श्रीरामकृष्ण– (ज़रा मुस्कराकर)– है लेकिन बड़ा झंझट।

डाक्टर सरकार– झंझट न रहती, तो सब लोग परमहंस हो गए होते।

श्रीरामकृष्ण– स्त्री छू जाती है, तो तबीयत अस्वस्थ हो जाती है ! और जिस जगह छू जाती है, वहाँ बड़ी देर तक सींगी मछली के काँटे के चुभ जाने के समान पीड़ा होती रहती है।

डाक्टर– यह विश्वास तो होता है, परन्तु अपनी ओर से देखता हूँ तो कामिनी और कांचन के बिना काम ही नहीं चलता।

श्रीरामकृष्ण– रुपया हाथ में लेता हूँ तो हाथ टेढ़ा हो जाता है–– साँस रुक जाती है। रुपये से अगर कोई विद्या का संसार चला सके, ईश्वर और साधुओं की सेवा कर सके, तो उसमें दोष नहीं रह जाता।

"स्त्री लेकर माया का संसार करने से मनुष्य ईश्वर को भूल जाता है। जो संसार की माँ हैं, उन्हींने इस माया का रूप–– स्त्री का रूप धारण किया है। इसका यथार्थ ज्ञान हो जाने पर फिर माया के संसार पर जी नहीं लगता। सब स्त्रियों पर मातृज्ञान के होने पर मनुष्य विद्या का संसार कर सकता है। ईश्वर के दर्शन हुए बिना स्त्री क्या वस्तु है, यह समझ में नहीं आता।"

होमियोपैथिक दवा का सेवन करके श्रीरामकृष्ण कुछ दिनों से ज़रा अच्छे रहते हैं।

राजेन्द्र– अच्छे होकर आपको स्वयं होमियोपैथिक डाक्टरी करनी चाहिए, नहीं तो फिर इस मानव-जीवन का क्या उपयोग होगा ? (सब हँसते हैं।)

नरेन्द्र– जो मोची का काम करता है, वह कहता है कि इस संसार में चमड़े से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है ! (सब हँसे)

कुछ देर बाद दोनों डाक्टर चले गए ।

(२)

श्रीरामकृष्ण की उच्च अवस्था

श्रीरामकृष्ण मास्टर से बातचीत कर रहे हैं । कामिनी के सम्बन्ध में अपनी अवस्था बतला रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– ये लोग कहते हैं, कामिनी और कांचन के बिना चल नहीं सकता । मेरी क्या अवस्था है, यह ये लोग नहीं जानते ।

"स्त्रियों की देह में हाथ लग जाता है तो ऐंठ जाता है, वहाँ पीड़ा होने लगती है ।

"यदि आत्मीयता के विचार से किसी के पास जाकर बातचीत करने लगता हूँ तो बीच में एक न जाने किस तरह का पर्दा-सा पड़ा रहता है; उसके उस तरफ जाया ही नहीं जाता ।

"कमरे में अकेला बैठा हुआ हूँ, ऐसे समय अगर कोई स्त्री आए तो एकदम बालक की-सी अवस्था हो जाती है और उसे माता की दृष्टि से देखता हूँ ।"

मास्टर निर्वाक् होकर श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए ये सब बातें सुन रहे हैं । कुछ दूर भवनाथ के साथ नरेन्द्र बातचीत कर रहे हैं । भवनाथ ने विवाह किया है, अब नौकरी की खोज में हैं । काशीपुर के बगीचे में श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए अधिक नहीं आ सकते । श्रीरामकृष्ण भवनाथ के लिए बड़ी चिन्ता किया करते हैं । कारण, भवनाथ संसार में फँस गए हैं । भवनाथ की उम्र २३–२४ वर्ष की होगी ।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र से)– उसे खूब हिम्मत बँधाते रहना।

नरेन्द्र और भवनाथ श्रीरामकृष्ण की ओर देखकर मुस्कराने लगे। श्रीरामकृष्ण इशारा करके फिर भवनाथ से कह रहे हैं– "खूब वीर बनो। घूँघट के भीतर अपनी स्त्री के आँसू देखकर अपने को भूल न जाना। ओह ! औरतें कितना रोती हैं !— वे तो नाक छिनकने में भी रोती हैं !

(नरेन्द्र, भवनाथ और मास्टर हँसते हैं।)

"ईश्वर में मन को अटल भाव से स्थापित रखना। वीर वह है, जो स्त्री के साथ रहने पर भी उससे प्रसंग नहीं करता। स्त्री के साथ केवल ईश्वरीय बातें करते रहना।"

कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण फिर इशारा करके भवनाथ से कह रहे हैं–– "आज यहीं भोजन करना।"

भवनाथ– जी, बहुत अच्छा। आप मेरी चिन्ता बिलकुल न कीजिए।

सुरेन्द्र आकर बैठे। महीना वैशाख का है। भक्तगण सन्ध्या के बाद रोज श्रीरामकृष्ण को मालाएँ पहनाया करते हैं। सुरेन्द्र चुपचाप बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण ने प्रसन्न होकर उन्हें दो मालाएँ दीं। सुरेन्द्र ने प्रणाम करके मालाओं को पहले सिर पर धारण किया, फिर गले में डाल लिया।

सब लोग चुपचाप बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को देख रहे हैं। सुरेन्द्र उन्हें प्रणाम करके खड़े हो गए। वे चलनेवाले हैं। जाते समय भवनाथ को बुलाकर उन्होंने कहा, 'खस की टट्टी लगा देना।'

(३)

श्रीरामकृष्ण तथा हीरानन्द

श्रीरामकृष्ण ऊपरवाले कमरे में बैठे हैं। सामने हीरानन्द,

मास्टर तथा दो-एक भक्त और हैं। हीरानन्द के साथ दो-एक मित्र भी आए हैं। हीरानन्द सिन्ध में रहते हैं। कलकत्ते के कॉलेज में अध्ययन समाप्त करके देश चले गए थे, अब तक वहीं थे। श्रीरामकृष्ण की बीमारी का समाचार पाकर उन्हें देखने के लिए आए हैं। सिन्ध देश कलकत्ते से कोई बाईस सौ मील होगा। हीरानन्द को देखने के लिए श्रीरामकृष्ण भी उत्सुक रहते थे।

श्रीरामकृष्ण हीरानन्द की ओर उँगली उठाकर मास्टर को इशारा कर रहे हैं। मानो कह रहे हैं--'यह बड़ा अच्छा लड़का है।'

श्रीरामकृष्ण– क्या तुमसे परिचय है ?

मास्टर– जी हाँ, है।

श्रीरामकृष्ण– (हीरानन्द और मास्टर से)– तुम ोग ज़रा बातचीत करो, मैं सुनूँ।

मास्टर को चुप रहते हुए देखकर श्रीरामकृष्ण ने पूछा-- "क्या नरेन्द्र है ? उसे बुला लाओ।"

नरेन्द्र ऊपर श्रीरामकृष्ण के पास आकर बैठे।

श्रीरामकृष्ण– (नरेन्द्र और हीरानन्द से)– तुम दोनों ज़रा बातचीत तो करो।

हीरानन्द चुप हैं। बड़ी देर तक टाल-मटोल करके उन्होंने बातचीत करना आरम्भ किया।

हीरानन्द– (नरेन्द्र से)– अच्छा, भक्त को दुःख क्यों मिलता है ?

हीरानन्द की बातें बड़ी ही मधुर हैं। जिन-जिन लोगों ने उनकी बातें सुनीं, उन सब को यह जान पड़ा कि इनका हृदय प्रेम से भरा है।

नरेन्द्र– इस संसार का प्रबन्ध देखकर यह जान पड़ता है कि इसकी रचना किसी शैतान ने की है। मैं इससे अच्छे संसार की सृष्टि कर सकता था।

हीरानन्द– दुःख के बिना क्या कभी सुख का अनुभव होता है?

नरेन्द्र– मैं यह नहीं कहता कि संसार की सृष्टि किस उपादान से की जाय, किन्तु मेरा मतलब यह है कि संसार का अभी जो प्रबन्ध दीख पड़ रहा है, वह अच्छा नहीं।

"परन्तु एक बात पर विश्वास करने पर सब निपटारा हो जाएगा। सब ईश्वर हैं, यह विश्वास किया जाय तो उलझन सुलझ जाएगा। ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं।"

हीरानन्द– यह कहना सहज है।

नरेन्द्र मधुर स्वर से निर्वाणषट्क कह रहे हैं—

ॐ मनोबुद्धचहंकारचित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥

न च प्राणसंज्ञो न वै पंचवायु-
र्न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोषः।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थो न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥
न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेदः
पिता नैव मे नैव माता न जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुनैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूप, शिवोऽहं शिवोऽहम्
अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेय-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

हीरानन्द—वाह !

श्रीरामकृष्ण ने हीरानन्द को इसका उत्तर देने के लिए कहा।

हीरानन्द— एक कोने से घर को देखना जैसा है, वैसा ही घर के बीच में रहकर भी देखना है। 'हे ईश्वर ! मैं तुम्हारा दास हूँ' — इससे भी ईश्वर का अनुभव होता है और 'मैं वही हूँ, सोऽहम्' — इससे भी ईश्वर का अनुभव होता है। एक द्वार से भी कमरे में जाया जाता है और अनेक द्वारों से भी जाया जाता है।

सब लोग चुप हैं। हीरानन्द ने नरेन्द्र से गाने के लिए अनुरोध किया। नरेन्द्र कौपीनपंचक गा रहे हैं—

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
अशोकमन्तःकरणे चरन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ १ ॥

मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः
पाणिद्वयं भोक्तुममंत्रयन्तः ।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ २ ॥
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः
सुशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ ३ ॥

श्रीरामकृष्ण ने ज्योंही सुना-- ' अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः ' कि धीरे धीरे कहने लगे-- ' अहा ! ' और इशारा करके बतलाने लगे कि यही योगियों का लक्षण है ।

नरेन्द्र कौपीनपंचक समाप्त करने लगे--

देहादिभावं परिवर्तयन्तः
स्वात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ ४ ॥
ब्रह्माक्षरं पावनमुच्चरन्तः
ब्रह्माहमस्मीति विभावयन्तः ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ ५ ॥

नरेन्द्र फिर गा रहे हैं-- " परिपूर्णमानन्दम् ।
अंगविहीनं स्मर जगन्निधानम् ।
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचम् ।
वागतीतं प्राणस्य प्राणं परं वरेण्यम् । "

नरेन्द्र ने एक गाना और गाया ।

इस गाने में कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार की हैं:--

"तुझसे हमने दिल है लगाया,
जो कुछ है सो तू ही है।
हर एक के दिल में तू ही समाया,
जो कुछ है सो तू ही है।
जहाँ देखा नज़र तू ही आया,
जो कुछ है सो तू ही है।"

'हर एक के दिल में' यह सुनकर श्रीरामकृष्ण इशारा करके कह रहे हैं कि वे हर एक के हृदय में हैं, वे अन्तर्यामी हैं।

'जहाँ देखा नज़र तू ही आया' यह सुनकर हीरानन्द नरेन्द्र से कह रहे हैं, "सब तू ही है, अब 'तुम तुम' हो रहा है। मैं नहीं, तुम।"

नरेन्द्र– तुम मुझे एक दो, मैं तुम्हें एक लाख दूँगा। (अर्थात्, एक के मिलने पर आगे शून्य रखकर एक लाख कर दूँगा।) तुम ही मैं; मैं ही तुम, मेरे सिवा और कोई नहीं है।

यह कहकर नरेन्द्र अष्टावक्रसंहिता से कुछ श्लोकों की आवृत्ति करने लगे। सब लोग चुपचाप बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (हीरानन्द से, नरेन्द्र की ओर संकेत करके)– मानो म्यान से तलवार निकालकर घूम रहा है।

(मास्टर से, हीरानन्द की ओर संकेत करके) "कितना शान्त है! सँपेरे के पास विषधर साँप जैसे फन फैलाकर चुपचाप पड़ा हो!"

(४)

गुह्य कथा

श्रीरामकृष्ण अन्तर्मुख हैं। पास ही हीरानन्द और मास्टर बैठे

हैं। कमरे में सन्नाटा छाया हुआ है। श्रीरामकृष्ण की देह में घोर पीड़ा हो रही है। भक्तगण जब एक-एक बार देखते हैं, तब उनका हृदय विदीर्ण हो जाता है। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने सब को दूसरी बातों में डालकर उधर से मन हटा रखा है। बैठे हुए हैं, श्रीमुख से प्रसन्नता टपक रही है।

भक्तों ने फूल और माला लाकर समर्पण किया है। फूल लेकर कभी सिर पर चढ़ाते हैं, कभी हृदय से लगाते हैं, जैसे पाँच वर्ष का बालक फूल लेकर क्रीड़ा कर रहा हो।

जब ईश्वरी भाव का आवेश होता है, तब श्रीरामकृष्ण कहा करते हैं कि शरीर में महावायु ऊर्ध्वगामी हो रही है। महावायु के चढ़ने पर ईश्वरानुभव होता है। यह बात सदा वे कहा करते हैं। अब श्रीरामकृष्ण मास्टर से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– वायु कब चढ़ गई, मुझे मालूम भी नहीं हुआ।

"इस समय बालकभाव है; इसीलिए फूल लेकर इस तरह किया करता हूँ। क्या देख रहा हूँ, जानते हो? शरीर मानो बाँस की कमानियों का बनाया हुआ है और ऊपर से कपड़ा लपेट दिया गया है। वही मानो हिल रहा है। भीतर कोई है इसी-लिए हिल रहा है।

"जैसे बिना बीज और गूदे का कद्दू। भीतर कामादि आस-क्तियाँ नहीं हैं, सब साफ है। और––"

श्रीरामकृष्ण को बातचीत करते हुए कष्ट हो रहा है। बहुत ही दुर्बल हो गए हैं। वे क्या कहने जा रहे हैं -इसका अनुमान लगाकर मास्टर शीघ्र ही कह उठे––"और भीतर आप ईश्वर को देख रहे हैं।"

श्रीरामकृष्ण– भीतर बाहर दोनों जगह देख रहा हूँ— अखण्ड सच्चिदानन्द। सच्चिदानन्द इस शरीर का आश्रय लेकर, इसके भीतर भी हैं और बाहर भी। यही मैं देख रहा हूँ।

मास्टर और हीरानन्द यह ब्रह्मदर्शन की बात सुन रहे हैं। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण उनकी ओर सस्नेह दृष्टि करके बात-चीत करने लगे।

श्रीरामकृष्ण तथा योगावस्था। अखण्ड दर्शन

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर और हीरानन्द से)– तुम लोग आत्मीय जान पड़ते हो। कोई दूसरे नहीं मालूम पड़ते।

"सब को देख रहा हूँ, एक-एक गिलाफ के अन्दर रहकर सिर हिला रहे हैं।

"देख रहा हूँ, जब उनसे मन का संयोग हो जाता है तब कष्ट एक ओर पड़ा रहता है।

"इस समय केवल यही देख रहा हूँ कि अखण्ड सच्चिदानन्द ही इस त्वचा से ढका हुआ है और इसी में एक ओर यह गले का घाव पड़ा है।"

श्रीरामकृष्ण चुप हो रहे। कुछ देर बाद फिर कहने लगे— "जड़ की सत्ता को चेतन समझ लिया जाता है और चेतन की सत्ता को जड़। इसीलिए शरीर में रोग होने पर मनुष्य कहता है, 'मैं बीमार हूँ।'"

इस बात को समझाने के लिए हीरानन्द ने आग्रह किया। मास्टर कहने लगे— "गर्म पानी में हाथ के जल जाने पर लोग कहते हैं, पानी में हाथ जल गया; परन्तु बात ऐसी नहीं, वास्तव में ताप से ही हाथ जला है।"

हीरानन्द– (श्रीरामकृष्ण से)– आप बतलाइये, भक्त को

कष्ट क्यों होता है ?

श्रीरामकृष्ण– कष्ट तो देह का है।

श्रीरामकृष्ण शायद कुछ और कहें, इसलिए दोनों प्रतीक्षा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– समझे ?

मास्टर धीरे धीरे हीरानन्द से कुछ कह रहे हैं।

मास्टर– लोक-शिक्षा के लिए। उदाहरण सामने है कि इतने कष्ट के भीतर भी मन का संयोग सोलहों आने ईश्वर से हो रहा है।

हीरानन्द– हाँ, जैसे ईशू को सूली देना। परन्तु रहस्य की बात तो यह है कि इन्हें इतना कष्ट क्यों मिला ?

मास्टर– ये जैसा कहते हैं—माता की इच्छा। यहाँ उनकी ऐसी ही लीला हो रही है।

ये दोनों आपस में धीरे धीरे बातचीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण इशारा करके हीरानन्द से पूछ रहे हैं। हीरानन्द इशारा समझ नहीं सके। इसलिए श्रीरामकृष्ण फिर इशारा करके पूछ रहे हैं, 'वह क्या कहता है ?'

हीरानन्द– ये कहते हैं कि आपकी बीमारी लोक-शिक्षा के लिए है।

श्रीरामकृष्ण– यह बात अनुमान की ही तो है।

(मास्टर और हीरानन्द से) "अवस्था बदल रही है। सोच रहा हूँ, सब के लिए न कहूँ कि चैतन्य हो। कलिकाल में पाप अधिक है, वह सब पाप आ जाता है।"

मास्टर– (हीरानन्द से)– समय को बिना देखे हुए ये ऐसी बात न कहेंगे। जिसके लिए चैतन्य होने का समय आया है, उसे

ही कहेंगे ।

(५)

प्रवृत्ति या निवृत्ति ? हीरानन्द के प्रति उपदेश

हीरानन्द श्रीरामकृष्ण के पैरों पर हाथ फेर रहे हैं । पास ही मास्टर बैठे हैं । लाटू तथा अन्य दो-एक भक्त कमरे में आते-जाते हैं । आज शुक्रवार है, २३ अप्रैल, १८८६ । दिन के १२-१ बजे का समय होगा । हीरानन्द ने आज यहीं भोजन किया है । श्रीरामकृष्ण की बड़ी इच्छा थी कि हीरानन्द यहीं रहें ।

हीरानन्द श्रीरामकृष्ण के पैरों पर हाथ फेरते हुए उनसे वार्तालाप कर रहे हैं । वैसी ही मधुर बातें, मुख हास्य और प्रसन्नता से भरा हुआ,—जैसे बालक को समझा रहे हों । श्रीरामकृष्ण अस्वस्थ हैं, डाक्टर सदा ही उन्हें देख रहे हैं ।

हीरानन्द– आप इतना सोचते क्यों हैं ? डाक्टर पर विश्वास करके निश्चिन्त हो जाइए । आप बालक तो हैं ही ।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– डाक्टर पर विश्वास कैसे होगा? सरकार (डाक्टर) ने कहा है, बीमारी अच्छी न होगी ।

हीरानन्द– तो इतनी चिन्ता क्यों करते हैं ? जो कुछ होना है, होगा ।

मास्टर– (हीरानन्द से, एकान्त में)– ये अपने लिए कुछ नहीं सोच रहे हैं । इनकी शरीर-रक्षा भक्तों के लिए है ।

गर्मी ज़ोरों की हो रही है । और फिर दोपहर का समय । खस की टट्टी लगाई गई है । हीरानन्द उठकर टट्टी ठीक कर रहे हैं । श्रीरामकृष्ण देख रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (हीरानन्द से)– तो पाजामा भेज देना ।

हीरानन्द ने कहा है कि उनके देश का पाजामा पहनकर

श्रीरामकृष्ण को आराम होगा। इसीलिए श्रीरामकृष्ण उन्हें पाजामा भेज देने की याद दिला रहे हैं।

हीरानन्द का भोजन ठीक नहीं हुआ। चावल अच्छी तरह पके नहीं थे। श्रीरामकृष्ण को सुनकर बड़ा दुःख हुआ। बार बार उनसे जलपान करने के लिए कह रहे हैं। इतना कष्ट है कि बोल भी नहीं सकते, परन्तु फिर भी बार बार पूछ रहे हैं।

फिर लाटू से पूछ रहे हैं, 'क्या तुम लोगों को भी वही चावल दिया गया था ?'

श्रीरामकृष्ण कमर में कपड़ा नहीं संभाल सकते। प्रायः बालक की तरह दिगम्बर होकर ही रहते हैं। हीरानन्द के साथ दो ब्राह्म भक्त आए हुए हैं; इसीलिए एक-आध बार श्रीरामकृष्ण धोती को कमर की ओर खींच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (हीरानन्द से)– धोती के खुल जाने पर क्या तुम लोग असभ्य कहते हो ?

हीरानन्द– आपको इससे क्या ? आप तो बालक हैं।

श्रीरामकृष्ण– (एक ब्राह्म भक्त प्रियनाथ की ओर उँगली उठाकर)– वे ऐसा कहते हैं।

हीरानन्द अब बिदा होंगे। दो-एक रोज कलकत्ते में रहकर वे फिर सिंध देश जाएँगे। वे वहीं काम करते हैं। दो अखबारों के सम्पादक हैं। १८८४ ई० से लगातार चार साल तक उन्होंने सम्पादन-कार्य किया था। उनके पत्रों के नाम थे—सिन्ध टाइम्स (Sind Times) और सिन्ध-सुधार (Sind Sudhar)। हीरानन्द ने १८८३ ई० में बी. ए. की उपाधि प्राप्त की थी।

श्रीरामकृष्ण– (हीरानन्द से)– वहाँ न जाओ तो ?

हीरानन्द– (सहास्य)– वहाँ और कोई मेरा काम करनेवाला

नहीं है। मुझे तो वहाँ नौकरी करनी पड़ती है।

श्रीरामकृष्ण– क्या वेतन पाते हो?

हीरानन्द– इन सब कामों में वेतन कम है।

श्रीरामकृष्ण– कितना?

हीरानन्द हँस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– यहीं रहो न।

हीरानन्द चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण– काम करके क्या होगा?

हीरानन्द चुप हैं।

थोड़ी देर और बातचीत करके हीरानन्द बिदा हुए।

श्रीरामकृष्ण– कब आओगे?

हीरानन्द– परसों सोमवार को देश जाऊँगा। सोमवार को सुबह आकर दर्शन करूँगा।

(६)

मास्टर, नरेन्द्र आदि के संग में

मास्टर श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए हैं। हीरानन्द को गए अभी कुछ ही समय हुआ होगा।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– बहुत अच्छा है, न?

मास्टर– जी हाँ, स्वभाव बड़ा मधुर है।

श्रीरामकृष्ण– उसने बतलाया २२ सौ मील–– इतनी दूर से देखने आया है!

मास्टर– जी हाँ, बिना अधिक प्रेम के ऐसी बात नहीं होती।

श्रीरामकृष्ण– मेरी बड़ी इच्छा है कि मुझे भी उस देश में कोई ले जाय।

मास्टर– जाते हुए बड़ा कष्ट होगा, चार-पाँच दिन तक रेल

पर बैठे रहना होगा।

श्रीरामकृष्ण– तीन पास कर चुका है! (युनिवर्सिटी की तीन उपाधियाँ हैं।)

मास्टर– जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण कुछ शान्त हैं, विश्राम करेंगे।

श्रीरामकृष्ण– (मास्टर से)– खिड़की की झँझरियों को खोल दो और चटाई बिछा दो।

मास्टर पंखा झल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण को नींद आ रही है।

श्रीरामकृष्ण– (ज़रा सोकर, मास्टर से)– क्या मेरी आँख लगी थी ?

मास्टर– जी हाँ, कुछ लगी थी।

नरेन्द्र, शरद, और मास्टर नीचे हॉल (Hall) के पूर्व ओर बातचीत कर रहे हैं।

नरेन्द्र– कितने आश्चर्य की बात है! इतने साल तक पढ़ने पर भी विद्या नहीं होती! फिर किस तरह लोग कहते हैं कि 'मैंने दो-तीन दिन साधना की; अब क्या, अब ईश्वर मिलेंगे!' ईश्वर-प्राप्ति क्या इतनी सीधी है? (शरद से) तुझे शान्ति मिली है, मास्टर महाशय को भी शान्ति मिली है, परन्तु मुझे अभी तक शान्ति नहीं मिली।

(७)

केदार, सुरेन्द्र आदि भक्तों के संग में

दिन का पिछला पहर है। ऊपरवाले हॉल में कई भक्त बैठे हुए हैं। नरेन्द्र, शरद, शशि, लाटू, नित्यगोपाल, गिरीश, राम, मास्टर और सुरेश आदि अनेक भक्त बैठे हुए हैं।

केदार आए। बहुत दिनों के बाद वे श्रीरामकृष्ण को देखने

आए हैं। वे अपने ऑफिस के कार्य के सम्बन्ध में ढाके में थे। वहाँ से श्रीरामकृष्ण की बीमारी का हाल पाकर आए हैं। केदार ने कमरे में प्रवेश करके श्रीरामकृष्ण की पदधूलि पहले अपने सिर पर धारण की, फिर आनन्दपूर्वक उसे औरों को भी देने लगे। भक्तगण नतमस्तक होकर उसे ग्रहण कर रहे हैं। केदार शरद को भी देने के लिए बढ़े, परन्तु उन्होंने स्वयं श्रीरामकृष्ण की धूलि लेकर मस्तक पर धारण की। यह देखकर मास्टर हँसने लगे। उनकी ओर देखकर श्रीरामकृष्ण भी हँसे। भक्तगण चुपचाप बैठे हुए हैं। इधर श्रीरामकृष्ण के भावावेश के पूर्व लक्षण प्रकट हो रहे हैं। रह-रहकर साँस छोड़ते हुए मानो वे भाव को दबाने की चेष्टा कर रहे हैं। अन्त में गिरीश घोष के साथ तर्क करने के लिए केदार के प्रति इशारा करने लगे। गिरीश अपने कान ऐंठकर कह रहे हैं, "महाराज, कान पकड़ा। पहले मैं नहीं जानता था कि आप कौन हैं। उस समय जो मैंने तर्क किया, वह और बात थी।" (श्रीरामकृष्ण हँसते हैं)

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र की ओर उँगली उठाकर इशारा करते हुए केदार से कह रहे हैं— "इसने सर्वस्व का त्याग कर दिया है। (भक्तों से) केदार ने नरेन्द्र से कहा था, 'अभी चाहे तर्क करो और विचार करो, परन्तु अन्त में ईश्वर का नाम लेकर धूलि में लोटना होगा।' (नरेन्द्र से) केदार के पैरों की धूलि लो।"

केदार— (नरेन्द्र से)— उनके पैरों की धूलि लो, इसी से हो जाएगा।

सुरेन्द्र भक्तों के पीछे बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण ने ज़रा मुस्कराकर उनकी ओर देखा। केदार से कह रहे हैं, "अहा! कैसा स्वभाव है!" केदार श्रीरामकृष्ण का इशारा समझकर

सुरेन्द्र की ओर बढ़कर बैठे।

सुरेन्द्र जरा अभिमानी हैं। भक्तों में से कुछ लोग बगीचे के खर्च के लिए बाहर के भक्तों के पास से अर्थ-संग्रह करने गए थे। इस पर सुरेन्द्र को बड़ा दुःख है। बगीचे का अधिकतर खर्च सुरेन्द्र ही देते हैं।

सुरेन्द्र– (केदार से)– इतने साधुओं के बीच मैं क्या बैठूँ ! और कोई कोई (नरेन्द्र) तो कुछ दिन हुए, संन्यासी बनकर बुद्ध-गया गए हुए थे,— बड़े बड़े साधुओं के दर्शन करने।

श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र को शान्त कर रहे हैं। कह रहे हैं, "हाँ, वे अभी बच्चे हैं, अच्छी तरह समझ नहीं सकते।"

सुरेन्द्र–(केदार से)– क्या गुरुदेव जानते नहीं, किसका क्या भाव है ? वे रुपये से नहीं, वे तो भाव लेकर सन्तुष्ट होते हैं।

श्रीरामकृष्ण सिर हिलाकर सुरेन्द्र की बात का समर्थन कर रहे हैं। 'भाव लेकर सन्तुष्ट होते हैं' इस कथन को सुनकर केदार भी प्रसन्न हुए।

भक्तों ने मिठाइयाँ लाकर श्रीरामकृष्ण के सामने रखीं। उनमें से एक छोटा सा टुकड़ा ग्रहण करके श्रीरामकृष्ण ने सुरेन्द्र के हाथ में प्रसाद की थाली दी और कहा, 'दूसरे भक्तों को भी प्रसाद दे दो।'

सुरेन्द्र नीचे गए। प्रसाद नीचे ही दिया जाएगा।

श्रीरामकृष्ण–(केदार से)– तुम समझा देना। जाओ बक-झक करने की मनाही कर देना।

मणि पंखा झल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने पूछा, 'क्या तुम नहीं खाओगे ?' उन्होंने प्रसाद पाने के लिए नीचे मणि को भी भेज दिया।

* * *

संध्या हो रही है। गिरीश और श्री 'म' (मास्टर) तालाब के किनारे टहल रहे हैं।

गिरीश– क्यों जी, सुना है, तुमने श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में कुछ लिखा है ?

श्री 'म'– किसने कहा आपसे ?

गिरीश– मैंने सुना है। क्या मुझे दोगे–– पढ़ने के लिए ?

श्री 'म'– नहीं, जब तक मैं यह न समझ लूँ कि किसी को देना उचित है, मैं न दूँगा। वह मैंने अपने लिए लिखा है, किसी दूसरे के लिए नहीं।

गिरीश– क्या बोलते हो ?

श्री 'म'– जब मेरा देहान्त हो जाएगा तब पाओगे।

श्रीरामकृष्ण––अहेतुक कृपासिन्धु

सन्ध्या होनेपर श्रीरामकृष्ण के कमरे में दीपक जलाये गए। ब्राह्मभक्त श्रीयुत अमृत वसु उन्हें देखने के लिए आए हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें देखने के लिए पहले ही से उत्सुक थे। मास्टर तथा दो चार भक्त और बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण के सामने केले के पत्ते में बेला और जुही की मालाएँ रखी हुई हैं। कमरे में सन्नाटा छाया है। एक महायोगी मानो चुपचाप योगयुक्त होकर बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण एक-एक बार मालाओं को उठा रहे हैं। जैसे गले में डालना चाहते हों।

अमृत– (सस्नेह)– क्या मालाएँ पहना दूँ ?

मालाएँ पहन लेने पर श्रीरामकृष्ण अमृत से बड़ी देर तक बातचीत करते रहे। अमृत अब चलनेवाले हैं।

श्रीरामकृष्ण– तुम फिर आना।

अमृत– जी, आने की तो बड़ी इच्छा है। बड़ी दूर से आना

पड़ता है, इसलिए हमेशा में नहीं आ सकता।

श्रीरामकृष्ण– तुम आना, यहाँ से बग्घी का किराया ले लिया करना।

अमृत के लिए श्रीरामकृष्ण का यह अकारण स्नेह देखकर भक्तगण आश्चर्यचकित हो गए।

दूसरे दिन शनिवार है, २४ अप्रैल। श्री 'म' अपनी स्त्री तथा सात साल के लड़के को लेकर श्रीरामकृष्ण के पास आए हैं। एक साल हुआ, उनके एक आठ वर्ष के लड़के का देहान्त हो गया है। उनकी स्त्री तभी से पागल की तरह हो गई है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कभी कभी उसे आने के लिए कहते हैं।

रात को श्रीमाताजी ऊपरवाले कमरे में श्रीरामकृष्ण को भोजन कराने के लिए आईं। श्री 'म' की स्त्री उनके साथ साथ दीपक लेकर गई।

भोजन करते हुए श्रीरामकृष्ण उससे घर-गृहस्थी की बातें पूछने लगे। फिर उन्होंने कुछ दिन श्रीमाताजी के पास आकर रहने के लिए कहा; इसलिए कि इससे उसका शोक बहुत-कुछ घट जाएगा। उसके एक छोटी लड़की थी। श्रीमाताजी उसे मान-मयी कहकर पुकारती थीं। श्रीरामकृष्ण ने उसे भी ले आने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण के भोजन के पश्चात् श्री 'म' की स्त्री ने उस जगह को साफ कर दिया। श्रीरामकृष्ण के साथ कुछ देर तक बातचीत हो जाने के बाद श्रीमाताजी जब नीचे के कमरे में गईं, तब श्री 'म' की स्त्री भी उन्हें प्रणाम करके नीचे चली आई।

रात के नौ बजे का समय हुआ। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ उसी कमरे मे बैठे हैं। गले में फूलों की माला पड़ी हुई है। श्री

'म' पंखा झल रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण गले से माला हाथ में लेकर अपने-आप कुछ कह रहे हैं। उसके पश्चात् प्रसन्न होकर उन्होंने श्री 'म' को वह माला दे दी।

परिशिष्ट

(क)

परिच्छेद १

केशव के साथ दक्षिणेश्वर मन्दिर में

(१)

श्रीरामकृष्ण तथा श्री केशवचन्द्र सेन

शनिवार, १ जनवरी, १८८१ ई.

ब्राह्मसमाज का माघोत्सव आनेवाला है। राम, मनोमोहन आदि अनेक व्यक्ति उपस्थित हैं।

ब्राह्म भक्तगण तथा अन्य लोग केशव के आने से पहले ही कालीबाड़ी में आ गए हैं और श्रीरामकृष्णदेव के पास बैठे हुए हैं। सभी बेचैन हैं, बार-बार दक्षिण की ओर देख रहे हैं कि कब केशव आएँगे, कब केशव जहाज़ से आकर उतरेंगे।

प्रताप, त्रैलोक्य, जयगोपाल सेन आदि अनेक ब्राह्मभक्तों को साथ लेकर केशवचन्द्र सेन श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर के मन्दिर में आए। हाथ में दो बेल फल तथा फूल का एक गुच्छा है। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के चरण स्पर्श कर उन चीज़ों को उनके पास रख दिया और भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण ने भी भूमिष्ठ होकर प्रति-नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण आनन्द से हँस रहे हैं और केशव के साथ बात कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (केशव के प्रति, हँसते हुए)– केशव, तुम मुझे चाहते हो, परन्तु तुम्हारे चेले लोग मुझे नहीं चाहते। तुम्हारे

चेलों से कहा था, 'आओ, हम खंजन-मंजन करें, उसके बाद गोविन्द आ जाएँगे।'

(केशव के शिष्यों के प्रति) "वह देखो जी, तुम्हारे गोविन्द आ गए। मैं इतनी देर तक खंजन-मंजन कर रहा था, भला आएँगे क्यों नहीं? (सभी हँसे)

"गोविन्द का दर्शन सहज नहीं मिलता। कृष्ण-लीला में देखा होगा, नारद जब व्याकुल होकर ब्रज में कहते हैं—'प्राण! हे गोविन्द! मम जीवन!'—उस समय गोपालों के साथ श्रीकृष्ण आते हैं, पीछे पीछे सखियाँ और गोपियाँ। व्याकुल हुए बिना ईश्वर का दर्शन नहीं होता।

(केशव के प्रति) "केशव, तुम कुछ कहो; ये सब तुम्हारी बात सुनना चाहते हैं।"

केशव— (विनीत भाव से, हँसते हुए)—यहाँ पर बात करना लोहार के पास सूई बेचने की चेष्टा-जैसा होगा!

श्रीरामकृष्ण— (हँसते हुए)—बात क्या है, जानते हो? भक्तों का स्वभाव गाँजा पीनेवालों-जैसा है। तुमने एक बार गाँजे की चिलम लेकर दम लगाया, और मैंने भी एक बार लगाया। (सभी हँसे)

दिन के चार बजे का समय है। कालीबाड़ी के नौबतखाने का वाद्य सुनाई दे रहा हे।

श्रीरामकृष्ण— (केशव के प्रति)—देखा, कैसा सुन्दर वाद्य है! लेकिन एक आदमी केवल एक राग—'पों'—निकाल रहा है और दूसरा अनेक सुरों की लहर उठाकर कितनी ही राग-रागिनियाँ निकाल रहा है। मेरा भी वही भाव है। मेरे सात सूराख रहते हुए फिर मैं क्यों केवल 'पों' निकालूं— क्यों केवल 'सोऽहम्'

'सोऽहम्' करूँ? मैं सात सूराखों से अनेक प्रकार की राग-रागिनियाँ बजाऊँगा। केवल 'ब्रह्म-ब्रह्म' ही क्यों करूँ? शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, मधुर सभी भावों से उन्हें पुकारूँगा, आनन्द करूँगा, विलास करूँगा।

केशव अवाक् होकर इन बातों को सुन रहे हैं और कह रहे हैं, "ज्ञान और भक्ति की इस प्रकार अद्भुत और सुन्दर व्याख्या मैंने कभी नहीं सुनी।"

केशव– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– आप कितने दिन इस प्रकार गुप्त रूप में रहेंगे—धीरे धीरे यहाँ पर लोगों का मेला लग जाएगा।

श्रीरामकृष्ण– तुम्हारी यह कैसी बात है! मैं खाता-पीता रहता हूँ और उनका नाम लेता हूँ। लोगों का मेला लगाना मैं नहीं जानता। हनुमानजी ने कहा था, 'मैं वार, तिथि, नक्षत्र यह सब कुछ नहीं जानता, केवल एक राम का चिन्तन करता हूँ।'

केशव– अच्छा, मैं लोगों का मेला लगाऊँगा, परन्तु आपके यहाँ सभी को आना पड़ेगा।

श्रीरामकृष्ण– मैं सभी के चरणों की धूलि की धूलि हूँ। जो दया करके आएँगे, वे आवें!

केशव– आप जो भी कहें; आपका आगमन (अवतार-ग्रहण) व्यर्थ न होगा।

(२)

ईश्वर-दर्शन का उपाय

इधर कीर्तन का आयोजन हो रहा है। अनेक भक्त जुट गए हैं। पंचवटी से कीर्तन का दल दक्षिण की ओर आ रहा है। हृदय शहनाई बजा रहा है। गोपीदास रमोल तथा अन्य दो व्यक्ति

करताल बजा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण गाना गाने लगे--

संगीत– (भावार्थ)--

"रे मन ! यदि सुख से रहना चाहता है तो हरि का नाम ले। हरिनाम के गुण से सुख से रहेगा, वैकुण्ठ में जाएगा, सदा मोक्षफल प्राप्त करेगा। जिस नाम का जप शिवजी पंचमुखों से करते हैं, आज तुझे वही हरिनाम दूँगा।"

श्रीरामकृष्ण सिंह-बल से नृत्य कर रहे हैं। अब समाधिमग्न हो गए।

समाधि-भंग होने के बाद कमरे में बैठे हैं। केशव आदि के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– सभी पथों से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है-- जैसे, तुममें से कोई गाड़ी पर, कोई नौका पर, कोई जहाज़ पर सवार होकर और कोई पैदल आया है-- जिसकी जिसमें सुविधा और जिसकी जैसी प्रकृति है, वह उसी के अनुसार आया है। उद्देश एक ही है। कोई पहले आया, कोई बाद में।

"उपाधि जितनी दूर रहेगी, उतना ही वे निकट अनुभूत होंगे। ऊँचे ढेर पर वर्षा का जल नहीं इकट्ठा होता, नीची जमीन में होता है। इसी प्रकार जहाँ अहंकार है, वहाँ पर उनका दया-रूपी जल नहीं जमता। उनके पास दीनभाव ही अच्छा है।

"बहुत सावधान रहना चाहिए, यहाँ तक कि वस्त्र से भी अहंकार होता है। तिल्ली के रोगी को देखा, काली किनारवाली धोती पहनी है और साथ ही निधु बाबू की गज़ल गा रहा है !

"किसी ने बूट पहना नहीं कि मुँह से अंग्रेजी बोली निकलने लगी ! यदि कोई छोटा आधार हो तो गेरुआ वस्त्र पहनने से

अहंकार होता है। उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन करने में जरा सी त्रुटि होने पर उसे क्रोध, अभिमान होता है।

"व्याकुल हुए बिना उनका दर्शन नहीं किया जा सकता। यह व्याकुलता भोग का अन्त हुए बिना नहीं होती। जो लोग कामिनी-कांचन के बीच में हैं, जिनके भोग का अन्त नहीं हुआ, उनमें व्याकुलता नहीं आती।

"उस देश (कामारपुकुर) में जब मैं था, हृदय का चार-पाँच वर्ष का लड़का सारा दिन मेरे पास रहता था, मेरे सामने इधर-उधर खेला करता था, एक तरह से भूला रहता था। पर ज्योंही सन्ध्या होती वह कहने लगता—'माँ के पास जाऊँगा।' मैं कितना कहता—'कबूतर दूँगा' आदि आदि, अनेक तरह से समझाता, पर वह भूलता न था, रो-रोकर कहता था—'माँ के पास जाऊँगा।' खेल, खिलौना कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता था। मैं उसकी दशा देखकर रोता था।

"यही है बालक की तरह ईश्वर के लिए रोना! यही है व्याकुलता! फिर खेल, खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यह व्याकुलता तथा उनके लिए रोना, भोग के क्षय होने पर होता है।"

सब लोग विस्मित होकर इन बातों को सुन रहे हैं।

सायंकाल हो गया है, बत्तीवाला बत्ती जलाकर चला गया। केशव आदि ब्राह्म भक्तगण जलपान करके जाएँगे। जलपान का आयोजन हो रहा है।

केशव–(हँसते हुए)– आज भी क्या लाई-मुरमुरा है?

श्रीरामकृष्ण–(हँसते हुए)– हृदय जानता है।

पत्तल बिछाए गए। पहले लाई-मुरमुरा, उसके बाद पूड़ी और

उसके बाद तरकारी । (सभी हँसते हैं) सब समाप्त होते होते रात के दस बज गए ।

श्रीरामकृष्ण पंचवटी के नीचे ब्राह्म भक्तों के साथ फिर बातचीत कर रहे हैं ।

श्रीरामकृष्ण– (हँसते हुए, केशव के प्रति)– ईश्वर को प्राप्त करने के बाद गृहस्थी में भलीभाँति रहा जा सकता है । बूढ़ी * (ढाई) को पहले छू लो, और फिर खेल करो ।

" ईश्वर-प्राप्ति के बाद भक्त निर्लिप्त हो जाता है, जैसे कीचड़ की मछली–– कीचड़ के बीच में रहकर भी उसके बदन पर कीच नहीं लगता । "

लगभग ११ बजे रात का समय हुआ, सभी जाने की तैयारी में हैं। प्रताप ने कहा, ' आज रात को यहीं पर रह जाना ठीक होगा । '

श्रीरामकृष्ण केशव से कह रहे हैं, 'आज यहीं रहो न । '

केशव––(हँसते हुए)– काम-काज है, जाना होगा ।

श्रीरामकृष्ण– क्यों जी, तुम्हें क्या मछली की टोकरी की गन्ध न होने से नींद न आएगी ? एक मछलीवाली रात को एक बागवान के घर अतिथि बनी थी । उसे फूलवाले कमरे में सुलाया गया, पर उसे नींद न आयी । वह करवटें बदल रही थी, उसे देख बागवान की स्त्री ने आकर कहा, ' क्यों री, सो क्यों नहीं रही हो ? ' मछलीवाली बोली, ' क्या जानूँ बहन, शायद फूलों

---

* बच्चों के एक खेल में एक बालक ' चोर ' बनता है, जो एक खूँटी के पास रहता है और अन्य बालक इधर-उधर रहते हैं । वह ' चोर ' बालक जिस बालक को छुएगा, वही ' चोर ' बनेगा । लेकिन जिसने उस खूँटी को छू लिया वह फिर ' चोर ' नहीं बन सकता । उस खूँटी को बूढ़ी कहते हैं ।

की गन्ध से नींद नहीं आ रही है। क्या तुम ज़रा मछली की टोकरी मँगा सकती हो?'

"तब मछलीवाली मछली की टोकरी पर जल छिड़ककर उसकी गन्ध सूँघती सो गई!" (सभी हँसे)

बिदा के समय केशव ने श्रीरामकृष्ण के चरणों में अपने द्वारा चढ़ाए हुए पुष्पों में से एक गुच्छा लिया और भूमि पर माथा लगाकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके भक्तों के साथ कहने लगे, 'विधान की जय हो।'

केशव ब्राह्मभक्त जयगोपाल सेन की गाड़ी में बैठे। वे कलकत्ता जाएँगे।

परिच्छेद २

सुरेन्द्र के मकान पर श्रीरामकृष्ण

(१)

राम, मनोमोहन, त्रैलोक्य तथा महेन्द्र गोस्वामी आदि के साथ

आज श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ सुरेन्द्र के घर पधारे हैं। १८८१ ईस्वी, आषाढ़ महीना है। संध्या होनेवाली है।

श्रीरामकृष्ण ने इसके कुछ देर पहले श्री मनोमोहन के मकान पर थोड़ी देर विश्राम किया था।

सुरेन्द्र के दूसरे मंज़ले के बैठकघर में अनेक भक्तगण बैठे हुए हैं। महेन्द्र गोस्वामी, भोलानाथ पाल आदि पड़ोसी भक्तगण उपस्थित हैं। श्री केशव सेन आनेवाले थे, परन्तु आ न सके। ब्राह्म समाज के श्री त्रैलोक्य सान्याल तथा अन्य कुछ ब्राह्म भक्त आए हैं।

बैठकघर में दरी और चद्दर बिछाई गई है— उस पर एक सुन्दर गलीचा तथा तकिया भी है। श्रीरामकृष्ण को ले जाकर सुरेन्द्र ने उसी गलीचे पर बैठने के लिए अनुरोध किया।

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "यह तुम्हारी कैसी बात है?" ऐसा कहकर महेन्द्र गोस्वामी के पास बैठ गए।

महेन्द्र गोस्वामी– (भक्तों के प्रति)– मैं इनके (श्रीरामकृष्ण के) पास कई महीनों तक प्रायः सदा ही रहता था। ऐसा महान् व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा। इनके भाव साधारण नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण– (गोस्वामी के प्रति)– यह सब तुम्हारी कैसी बात है। मैं छोटे से छोटा, दीन से भी दीन हूँ। मैं प्रभु के दासों का दास हूँ। कृष्ण ही महान् हैं।

"जो अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं। दूर से देखने

पर समुद्र नीला दिखता है, पर पास जाओ तो कोई रंग नहीं। जो सगुण हैं, वे ही निर्गुण हैं। जिनका नित्य है, उन्हीं की लीला है।

"श्रीकृष्ण त्रिभंग क्यों हैं ?—— राधा के प्रेम से।

"जो ब्रम्ह् हैं, वे ही काली, आद्याशक्ति हैं, सृष्टि-स्थिति प्रलय कर रहे हैं। जो कृष्ण हैं, वे ही काली हैं।

"मूल एक है— यह सब उन्हीं का खेल है, उन्हीं की लीला है।

"उनका दर्शन किया जा सकता है। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि से उनका दर्शन किया जा सकता है। कामिनी-कांचन में आसक्ति रहने से मन मैला हो जाता है।

"मन पर ही सब कुछ निर्भर है। मन धोबी के यहाँ का धुला हुआ कपड़ा जैसा है; जिस रंग में रंगवाओगे उसी रंग का हो जाएगा। मन से ही ज्ञानी, और मन से ही अज्ञानी है। जब तुम कहते हो कि अमुक आदमी खराब हो गया है, तो अर्थ यही है कि उस आदमी के मन में खराब रंग आ गया है।"

सुरेन्द्र माला लेकर श्रीरामकृष्ण को पहनाने आए। पर उन्होंने माला हाथ में ले ली, और फेंककर एक ओर रख दी। इससे सुरेन्द्र के अभिमान में धक्का लगा और उनकी आँखें डबडबा गईं।

सुरेन्द्र पश्चिम के बरामदे में जाकर बैठे—साथ राम तथा मनोमोहन आदि हैं। सुरेन्द्र प्रेमकोप करके कह रहे हैं, "मुझे क्रोध हुआ है; राढ़ देश का ब्राह्मण है, इन चीजों की कद्र क्या जाने ? कई रुपये खर्च करके यह माला लाई। मैं गुस्से में आकर कह बैठा, 'और सब मालाएँ दूसरों के गले में डाल दो।'

"अब समझ रहा हूँ मेरा अपराध, भगवान पैसे से खरीदे नहीं जा सकते। वे अहंकारी के नहीं हैं। मैं अहंकारी हूँ, मेरी पूजा क्यों लेने लगे ? मेरी अब जीने की इच्छा नहीं है।"

कहते कहते आँसू की धाराएँ उनके गालों और छाती पर से बहती हुईं नीचे गिरने लगीं।

इधर कमरे के अन्दर त्रैलोक्य गाना गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं। जिस माला को उन्होंने फेंक दिया था, उसी को उठाकर गले में पहन लिया। वे एक हाथ से माला पकड़कर तथा दूसरे हाथ से उसे हिलाते हुए गाना गा रहे हैं और नृत्य कर रहे हैं।

सुरेन्द्र यह देखकर कि श्रीरामकृष्ण गले में उसी माला को पहनकर नाच रहे हैं, आनन्द में विभोर हो गए। मन ही मन कह रहे हैं, 'भगवान गर्व का हरण करनेवाले हैं ज़रूर, परन्तु (दीनों के, निर्धनों के धन भी हैं) !'

श्रीरामकृष्ण अब स्वयं गाने लगे,—

गाना– (भावार्थ)–

"हरिनाम लेते हुए जिनकी आँखों से आँसू बहते हैं, वे दोनों भाई आए हैं! — वे, जो मार खाकर प्रेम देते हैं, जो स्वयं मतवाले बनकर जगत् को मतवाला बनाते हैं, जो चाण्डाल तक को गोदी में ले लेते हैं, जो दोनों ब्रज के कन्हैया-बलराम हैं।"

अनेक भक्त श्रीरामकृष्ण के साथ-साथ नृत्य कर रहे हैं।

कीर्तन समाप्त होने पर सभी बैठ गए और ईश्वर की बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र से कह रहे हैं, "मुझे कुछ खिलाओगे नहीं?"

कह कहकर वे उठकर घर के भीतर चले गए। स्त्रियों ने आकर भूमिष्ठ हो भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम किया।

भोजन करने के बाद थोड़ी देर विश्राम करके वे दक्षिणेश्वर लौट आए।

परिच्छेद ३

श्रीरामकृष्ण मनोमोहन के घर पर

(१)

केशव सेन, राम, सुरेन्द्र आदि के संग में

श्रीमनोमोहन का घर, २३ नं. सिमुलिया स्ट्रीट, सुरेन्द्र के मकान के पास है। आज है शनिवार, ३ दिसम्बर १८८१ ई०।

श्रीरामकृष्ण दिन के लगभग चार बजे मनोमोहन के घर पधारे हैं। मकान छोटा सा है, दुमंज़ला; छोटासा आँगन भी है। श्रीरामकृष्ण नीचे मंज़ले के बैठकघर में बैठे हैं। यह कमरा गली से लगा हुआ ही है।

भवानीपुर के ईशान मुखर्जी के साथ श्रीरामकृष्ण बातचीत कर रहे हैं।

ईशान– आपने संसार क्यों छोड़ा ? शास्त्रों में तो संसार-आश्रम को श्रेष्ठ कहा गया है।

श्रीरामकृष्ण– क्या भला है और क्या बुरा, यह मैं नहीं जानता। वे जो कुछ कराते हैं, वही करता हूँ; जो कहलाते हैं, वही कहता हूँ।

ईशान– सभी लोग यदि गृहस्थी को छोड़ दें, तो ईश्वर के विरुद्ध काम करना होता है।

श्रीरामकृष्ण– सभी लोग क्यों छोड़ेंगे ? और क्या उनकी यही इच्छा है कि सभी लोग पशुओं की तरह कामिनी-कांचन में मुँह डुबोकर रहें ? क्या और कुछ भी उनकी इच्छा नहीं है ? क्या तुम सब कुछ जानते हो कि क्या उनकी इच्छा है और क्या नहीं ?

" तुम कहते तो हो कि उनकी इच्छा है गृहस्थी करना। जब

स्त्री-पुत्र मरते हैं, उस समय भगवान की इच्छा क्यों नहीं देख पाते ? जब खाने को नहीं पाते, उस समय— दारिद्रय में— भगवान की इच्छा क्यों नहीं देख पाते ?

"माया जानने नहीं देती कि उनकी क्या इच्छा है। उनकी माया में अनित्य नित्य-जैसा लगता है, और फिर नित्य अनित्य-सा जान पड़ता है। संसार अनित्य है— अभी है, अभी नहीं, परन्तु उनकी माया से ऐसा लगता है कि यही ठीक है। उनकी माया से 'मैं करता हूँ' ऐसा बोध होता है, और ये सब स्त्री-पुत्र, भाई-बहन, माँ-बाप, घर-बार मेरे ही हैं ऐसा ज्ञात होता है।

"माया में विद्या और अविद्या दोनों हैं। अविद्या-माया भुला देती है, और विद्या-माया— ज्ञान, भक्ति, साधुसंग— ईश्वर की ओर ले जाती है।

"उनकी कृपा से जो माया से परे चले गए हैं, उनके लिए सभी एक-से हैं,— विद्या, अविद्या सभी एक-जैसी हैं।

"गृहस्थ-आश्रम भोग का आश्रम है। और फिर कामिनी-कांचन के भोग में रखा ही क्या है ? मिठाई गले के नीचे उतर जाते ही याद नहीं रहती कि खट्टी थी या मीठी।

"परन्तु सब लोग क्यों त्याग करेंगे ? समय हुए बिना क्या त्याग होता है ? भोग का अन्त हो जाने पर तब त्याग का समय होता है। जबरदस्ती क्या कोई त्याग कर सकता है ?

"एक प्रकार का वैराग्य है, जिसे कहते हैं मर्कट-वैराग्य। हीन-बुद्धिवालों को वह वैराग्य होता है। जैसे विधवा का लड़का,— माँ सूत कातकर गुजर करती है— लड़के की मामूली नौकरी थी, वह भी अब नहीं रही। तब वैराग्य हुआ— गेरुआ वस्त्र पहना, काशी चला गया। फिर कुछ दिनों के बाद पत्र लिख

रहा है-- 'मुझे एक नौकरी मिली है। दस रुपये माहवारी वेतन है।' उसी में से सोने की अँगूठी और धोती-कमीज खरीदने की चेष्टा कर रहा है! भोग की इच्छा जाएगी कहाँ?"

(२)

उपाय -- अभ्यासयोग

ब्राह्म भक्तों के साथ केशव आए हैं। श्रीरामकृष्ण आँगन में बैठे हैं।

केशव ने आकर अति भक्ति-भाव से प्रमाण किया। वे श्रीरामकृष्ण की बाईं ओर बैठे। दाहिनी ओर राम बैठे हैं।

थोड़ी देर में भागवत-पाठ होने लगा। पाठ के बाद श्रीराम-कृष्ण बातचीत कर रहे हैं। आँगन के चारों ओर गृहस्थ भक्तगण बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण- (भक्तों के प्रति)- संसार का काम बड़ा कठिन है। खाली गोल-गोल घूमने से सिर में चक्कर आकर मनुष्य बेहोश हो जाता है, परंतु खम्भा पकड़कर गोल-गोल चक्कर काटने से फिर गिरने का भय नहीं रहता। काम करो, परंतु ईश्वर को न भूलो।

"यदि कहो, 'यह तो बड़ा कठिन है, फिर उपाय क्या है?'-- तो उपाय है अभ्यासयोग। उस देश (कामारपुकुर) में भड़-भूजों की औरतों को देखा;-- वे एक ओर तो चिउड़ा कूट रही हैं, हाथ पर मूसल गिरने का भय है, फिर दूसरी ओर बच्चे को दूध पिला रही हैं, और फिर खरीददार के साथ बात भी कर रही हैं; कह रही हैं, 'देखो, तुम्हारे ऊपर इतने पैसे बाकी हैं, सो दे जाना।'

"व्यभिचारिणी औरत गृहस्थी के सभी कामों को करती हैं,

परन्तु मन सदा उप-पति की ओर रहता है।

"परन्तु मन की ऐसी अवस्था होने के लिए थोड़ी साधना चाहिए, बीच-बीच में निर्जन में जाकर भगवान को पुकारना चाहिए। भक्ति प्राप्त करके फिर कर्म किया जा सकता है। ऐसे ही यदि कटहल काटने जाओ तो हाथ में चिपक जाएगा, पर हाथ में तेल लगाकर कटहल काटने से फिर नहीं चिपकेगा।"

अब आँगन में कीर्तन हो रहा है। श्री त्रैलोक्य गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण आनन्द से नृत्य कर रहे हैं। साथ-साथ केशव आदि भक्तगण भी नाच रहे हैं। जाड़े का समय होने पर भी श्रीरामकृष्ण के शरीर में पसीना झलक रहा है।

कीर्तन के बाद जब सब लोग बैठ गए तो श्रीरामकृष्ण ने कुछ खाने की इच्छा प्रकट की। भीतर से एक थाली में मिठाई आई। केशव उस थाली को पकड़े रहे और श्रीरामकृष्ण खाने लगे। खाना होने पर केशव जलपात्र से श्रीरामकृष्ण के हाथों में पानी डालने लगे और फिर अँगौछे से उनका मुँह पोंछ दिया। उसके बाद पंखा झलने लगे।

श्रीरामकृष्ण– (केशव आदि के प्रति)– जो लोग गृहस्थी में रहकर उन्हें पुकार सकते हैं, वे वीर भक्त हैं। सिर पर बीस मन का बोझा है, फिर भी ईश्वर को पाने के लिए चेष्टा कर रहा है,–– इसी का नाम है वीर भक्त।

"तुम कहोगे, यह बड़ा कठिन है। पर क्या ऐसी कोई कठिन बात है, जो भगवान की कृपा से नहीं होती ? उनकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। हजार वर्ष से अंधेरे कमरे में यदि प्रकाश लाया जाय तो क्या उजाला धीरे-धीरे होगा ? कमरा एकदम आलोकित हो जाएगा।"

ये सब आशाजनक बातें सुनकर केशव आदि गृहस्थ भक्तगण आनंदित हो रहे हैं।

केशव-- (राजेंद्र मित्र के प्रति, हँसते हुए)--यदि आपके घर पर एक दिन ऐसा उत्सव हो तो बहुत अच्छा है।

राजेन्द्र-- बहुत अच्छा, यह तो उत्तम बात है। राम, तुम पर सब भार रहा।

अब श्रीरामकृष्ण को ऊपर के कमरे में ले जाया जा रहा है। वहाँ पर वे भोजन करेंगे। मनोमोहन की माँ श्रीमती श्यामसुंदरी ने सारी तैयारी की है। श्रीरामकृष्ण आसन पर बैठे, नाना प्रकार की मिठाई तथा उत्तमोत्तम पदार्थों को देखकर वे हँसने लगे और खाते खाते कहने लगे--- "मेरे लिए इतना तैयार किया है!" एक ग्लास में बरफ डाला हुआ जल भी पास ही था।

केशव आदि भक्तगण भी आँगन में बैठकर खा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण नीचे आकर उन्हें खिलाने लगे। उनके आनन्द के लिए पूड़ी-मिठाई का गाना गा रहे हैं और नाच रहे हैं।

अब श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर को रवाना होंगे। केशव आदि भक्तों ने उन्हें गाड़ी पर बिठा दिया और पदधूलि ग्रहण की।

परिच्छेद ४

राजेन्द्र के घर पर श्रीरामकृष्ण

(१)

राम, मनोमोहन आदि के संग में

राजेन्द्र मित्र का घर ठनठनिया में बेचु चटर्जी की गली में है। मनोमोहन के घर पर उत्सव के दिन श्री केशव ने राजेन्द्र बाबू से कहा था, 'आपके घर पर इसी प्रकार एक दिन हो तो अच्छा है।' राजेन्द्र आनन्दित होकर उसी की तैयारी कर रहे हैं।

आज शनिवार है, १० दिसम्बर १८८१ ई०। आज उत्सव होना निश्चित हुआ है। अनेक भक्त पधारेंगे—केशव आदि ब्राह्म भक्तगण भी आएँगे।

इसी समय उमानाथ ने राजेन्द्र को ब्राह्मभक्त भाई अघोरनाथ की मृत्यु का समाचार सुनाया। अघोरनाथ ने लखनऊ शहर में रात्रि के दो बजे शरीर-त्याग किया है, उसी रात को तार द्वारा यह समाचार आया है। (८ दिसम्बर १८८१ ई०)। उमानाथ दूसरे ही दिन यह समाचार ले आए हैं। केशव आदि ब्राह्मभक्तों ने अशौच ग्रहण किया है। यह सोचकर कि शनिवार को वे कैसे आएँगे, राजेन्द्र चिन्तित हो रहे हैं।

राम राजेन्द्र से कह रहे हैं, "आप क्यों सोच रहे हैं? केशव बाबू नहीं आएँगे तो न आएँ। श्रीरामकृष्ण तो आएँगे। आप तो जानते ही हैं कि वे सदा समाधिमग्न रहा करते हैं। उनकी कृपा से दूसरे को भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है। उनकी उपस्थिति से यह उत्सव सफल हो जाएगा।"

राम, राजेन्द्र, राजमोहन व मनोमोहन केशव से मिलने गए।

केशव ने कहा " कहाँ, मैंने ऐसा तो नहीं कहा कि मैं नहीं आऊँगा। श्रीरामकृष्णदेव आएंगे और मैं न आऊँगा ?— अवश्य आऊँगा; अशौच हुआ है तो अलग स्थान पर बैठकर खा लूँगा।"

केशव राजेन्द्र आदि भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे हैं। कमरे में श्रीरामकृष्ण का समाधि-चित्र टँगा हुआ है।

राजेन्द्र– (केशव के प्रति)– श्रीरामकृष्णदेव को अनेक लोग चैतन्य का अवतार कहते हैं।

केशव– (समाधि-चित्र को देखकर)– इस प्रकार की समाधि प्रायः नहीं देखी जाती। ईसा मसीह, मुहम्मद, चैतन्य इनको हुआ करती थी।

दिन के तीन बजे के समय मनोमोहन के घर पर श्रीरामकृष्ण पधारे। वहाँ पर विश्राम करके थोड़ा जलपान किया। फिर सुरेन्द्र उन्हें गाड़ी पर चढ़ाकर 'बेंगाल फोटोग्राफर' के स्टुडिओ में ले गए। फोटोग्राफर ने कैसे फोटो लिया जाता है दिखा दिया। काँच के पीछे सिलवर नाइट्रेट (Silver Nitrate) लगाई जाती है, उस पर फोटो उतरता है— यह सब बतला दिया।

श्रीरामकृष्ण का फोटो लिया जा रहा है, उसी समय वे समाधि-मग्न हो गए।

अब श्रीरामकृष्ण राजेन्द्र मित्र के मकान पर आए हैं। राजेन्द्र रिटायर्ड डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं।

श्री महेन्द्र गोस्वामी आँगन में भागवत का प्रवचन कर रहे हैं। अनेक भक्तगण उपस्थित हैं— केशव अभी तक नहीं आए। श्रीरामकृष्ण बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण– (भक्तों के प्रति)– गृहस्थी में धर्म होगा क्यों नहीं ? परन्तु है बड़ा कठिन। आज बागबाजार के पुल पर से

होकर आया। कितने संकलों से उसे बाँधा है! एक संकल के टूटने से भी पुल का कुछ न होगा, क्योंकि वह और भी अनेक संकलों से बँधा हुआ है। वे सब उसे खींचे रहेंगे। उसी प्रकार गृहस्थों के अनेक बन्धन हैं, ईश्वर की कृपा के बिना उन बन्धनों के कटने का उपाय नहीं है।

"उनका दर्शन होने पर फिर कोई भय नहीं है। उनकी माया में विद्या और अविद्या दोनों ही हैं; पर दर्शन के बाद मनुष्य निर्लिप्त हो जाता है। परमहंस-स्थिति प्राप्त होने पर यह बात ठीक तरह से समझ में आती है। दूध में जल है, हंस दूध लेकर जल को छोड़ देता है, पर केवल हंस ही ऐसा कर सकता है, बत्तख नहीं।"

एक भक्त– फिर गृहस्थ के लिए क्या उपाय है?

श्रीरामकृष्ण– गुरु-वाक्य में विश्वास। उनकी वाणी का सहारा लेकर, उनका वाक्यरूपी खम्भा पकड़कर घूमो, गृहस्थी का काम करो।

"गुरु को मनुष्य नहीं मानना चाहिए। सच्चिदानन्द ही गुरु के रूप में आते हैं। गुरु की कृपा से इष्ट का दर्शन होता है। उस समय गुरु इष्ट में लीन हो जाते हैं।

"सरल विश्वास से क्या नहीं हो सकता? एक समय किसी गुरु के यहाँ अन्नप्राशन हो रहा था। उस अवसर पर शिष्यगण, जिससे जैसा बना, उत्सव का आयोजन कर रहे थे। उनमें एक दीन विधवा भी शिष्या थी। उसके एक गाय थी। वह एक लोटा दूध लेकर आई। गुरुजी ने सोचा था कि दूध-दही का भार वही लेगी, किन्तु एक लोटा दूध देखकर क्रोधित हो उन्होंने उस लोटे को फेंक दिया और कहा, 'तू जल में डूबकर मर क्यों

नहीं गई ?' स्त्री ने गुरु का यही आदेश समझा और नदी में डूबने के लिए गई। उस समय नारायण ने दर्शन दिया और प्रसन्न होकर कहा, 'इस बर्तन में दही है, जितना निकालोगी उतना ही निकलता जाएगा। इससे गुरु सन्तुष्ट होंगे।' वह बर्तन जब गुरु को दिया गया तो वे दंग रह गए और सारी कहानी सुनकर नदी के किनारे पर आकर उस स्त्री से बोले—'यदि मुझे नारायण का दर्शन न कराओगी तो मैं इसी जल में कूदकर प्राण छोड़ दूँगा।' नारायण प्रकट हुए, परन्तु गुरु उन्हें न देख सके। तब स्त्री ने कहा, 'प्रभो, गुरुदेव को यदि दर्शन न दोगे और यदि उनकी मृत्यु हो जाएगी तो मैं भी शरीर छोड़ दूँगी।' फिर नारायण ने एक बार गुरु को भी दर्शन दिया।

"देखो, गुरु-भक्ति रहने से अपने को भी दर्शन हुआ, फिर गुरुदेव को भी हुआ।

"इसलिए कहता हूँ—'यदि मेरे गुरु शराबखाने में भी जाते हों तो भी मेरे गुरु नित्यानन्द राय हैं।'

"सभी गुरु बनना चाहते हैं। चेला बनना कदाचित् ही कोई चाहता है। परन्तु देखो, ऊँची जमीन में वर्षा का जल नहीं जमता, वह तो नीची जमीन में—गढ़े में ही जमता है।

"गुरु जो नाम दें, विश्वास करके उस नाम को लेकर साधन-भजन करना चाहिए।

"जिस सीप में मुक्ता तैयार होता है, वह सीप स्वाति नक्षत्र का जल लेने के लिए तैयार रहती है। उसमें वह जल गिर जाने पर फिर एकदम अथाह जल में डूब जाती है, और वहीं चुपचाप पड़ी रहती है। तभी मोती बनता है।"

(२)

संसार में किस प्रकार रहना चाहिए

अनेक ब्राह्म भक्त आए हैं। यह देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—"ब्राह्म सभा है या शोभा ? ब्राह्म सभा में नियमित उपासना होती है, यह बहुत अच्छा है, परन्तु डुबकी लगानी पड़ती है। केवल उपासना या व्याख्यान से कुछ नहीं होने का। ईश्वर से प्रार्थना करनी पड़ती है, जिससे भोग-आसक्ति दूर होकर उनके चरण-कमलों में शुद्धा भक्ति हो।

"हाथी के दिखाने के दाँत और होते हैं तथा खाने के दाँत और। बाहर के दाँत शोभा के लिए हैं, परन्तु भीतर के दाँतों से वह खाता है। इसी प्रकार भीतर कामिनी-कांचन का भोग करने पर भक्ति की हानि होती है।

"बाहर भाषण आदि देने से क्या होगा ? गीध बहुत उँचे पर उड़ता है, परन्तु उसकी दृष्टि रहती है सड़े हुए मुर्दों की ओर। आतशबाजी 'फुंस' करके पहले आकाश में उठ जाती है, परन्तु दूसरे ही क्षण जमीन पर गिर पड़ती है।

"भोगासक्ति का त्याग हो जाने पर देह-त्याग होते समय ईश्वर की ही स्मृति आएगी। और नहीं तो इस संसार की ही चीजों की याद आएगी—स्त्री, पुत्र, गृह, धन, मान, इज्जत आदि। पक्षी अभ्यास करके राधा-कृष्ण रटता तो है, परन्तु जब बिल्ली पकड़ती है तो 'टें-टें' ही करता है।

"इसीलिए सदा अभ्यास करना चाहिए—उनके नाम-गुणों का कीर्तन, उनका ध्यान, चिन्तन और प्रार्थना—जिससे भोगासक्ति छूट जाय और उनके चरणकमलों में मन लगा रहे।

"इस प्रकार के भक्त-गृहस्थ संसार में नौकरानी की तरह

रहते हैं। वे सब कामकाज तो करते हैं, परन्तु मन देश में पड़ा रहता है। अर्थात् मन को ईश्वर पर रखकर वे सब काम करते हैं। गृहस्थी करने से ही देह में कीचड़ लगती है। यथार्थ भक्त-गृहस्थ 'पाँकाल' मछली की तरह होते हैं, पंक में रहकर भी देह में कीच नहीं लगता।

"ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं। उन्हें माँ कहकर पुकारने से शीघ्र ही भक्ति होती है, प्रेम होता है।"

यह कहकर श्रीरामकृष्ण गाने लगे--

गाना- (भावार्थ)-

"श्यामा के चरणरूपी आकाश में मेरा मनरूपी पतंग उड़ रहा था। पाप की जोरदार हवा से धक्का खाकर उल्टा होकर गिर गया। . . . "

गाना- (भावार्थ)-

"ओ माँ ! तुम्हें यशोदा नीलमणि कहकर नचाती थी। ऐ करालवदनि, उस भेष को तूने कहाँ छिपा दिया है ? . . . "

श्रीरामकृष्ण उठकर नृत्य कर रहे हैं और गाना गा रहे हैं। भक्तगण भी उठे।

श्रीरामकृष्ण बार बार समाधिमग्न हो रहे हैं। सभी उन्हें एकदृष्टि से देख रहे हैं और चित्रवत् खड़े हैं।

डाक्टर दोकड़ि समाधि कैसी होती है इसकी परीक्षा करने के लिए उनकी आँखों में उँगली डाल रहे हैं। यह देखकर भक्तों को विशेष क्षोभ हुआ।

इस अद्भुत संकीर्तन और नृत्य के बाद सभी ने आसन ग्रहण किया। इसी समय केशव कुछ ब्राह्म भक्तों के साथ आ उपस्थित हुए। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर उन्होंने आसन ग्रहण किया।

राजेन्द्र– (केशव के प्रति)– बड़ा सुन्दर नृत्य-गीत हुआ।

ऐसा कहकर उन्होंने श्री त्रैलोक्य से फिर गाना गाने के लिए अनुरोध किया।

केशव– (राजेन्द्र के प्रति)– जब श्रीरामकृष्णदेव बैठ गए हैं, तो कीर्तन किसी भी तरह नहीं जमेगा।

गाना होने लगा। त्रैलोक्य तथा ब्राम्ह भक्तगण गाना गाने लगे।

गाना– (भावार्थ)–

"मन, एक बार हरि बोलो, हरि बोलो, हरि बोलो। हरि-हरि कहकर भवसागर के पार उतर चलो। जल में, थल में, चन्द्र में, सूर्य में, आग में, वायु में, सभी में हरि का वास है। यह भूमण्डल ही हरिमय है।"

श्रीरामकृष्ण तथा भक्तों के भोजन के लिए व्यवस्था हो रही है। वे अभी भी आँगन में बैठकर केशव के साथ बातचीत कर रहे हैं। राधाबाजार में फोटोग्राफरों के यहाँ गए थे—– यही सब बातें।

श्रीरामकृष्ण– (केशव के प्रति हँसते हुए)– आज मशीन से फोटो खींचना देख आया। वहाँ पर देखा कि सादे काँच पर फोटो नहीं उतरता, काँच के पीछे काली लगा देते हैं, तब फोटो उतरता है। उसी प्रकार कोई ईश्वर की बातें तो सुनता जा रहा है, पर इससे उसका कुछ नहीं होता, फिर उसी समय भूल जाता है। यदि भीतर प्रेम-भक्तिरूपी काली लगी हुई हो तो उन बातों की धारणा होती है। नहीं तो सुनता है और भूल जाता है।

अब श्रीरामकृष्ण दुमंज़ले पर आए। सुन्दर कालीन के आसन पर उन्हें बैठाया गया।

मनोमोहन की माँ श्यामासुन्दरीदेवी परोस रही हैं। राम आदि खाते समय वहाँ पर हैं। जिस कमरे में श्रीरामकृष्ण भोजन

कर रहे हैं, उस कमरे के सामनेवाले बरामदे में केशव आदि भक्तगण खाने बैठे हैं। बेचु चटर्जी स्ट्रीट के 'श्यामसुन्दर' देवमूर्ति के सेवक श्रीशैलजाचरण मुखोपाध्याय भी वहाँ पर उपस्थित हैं।

परिच्छेद ५

सिमुलिया ब्राह्म समाज में श्रीरामकृष्ण

(१)

राम, केशव, नरेन्द्र आदि के संग में

आज श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ सिमुलिया ब्राह्म समाज के वार्षिक महोत्सव में पधारे हैं। ज्ञान चौधरी के मकान में महोत्सव हो रहा है। १ जनवरी १८८२ ई., रविवार, शाम के पाँच बजे का समय।

राम, मनोमोहन, बलराम, राजमोहन, ज्ञान चौधरी, केदार, कालीदास सरकार, कालीदास मुखोपाध्याय, नरेन्द्र, राखाल आदि अनेक भक्त उपस्थित हैं।

नरेन्द्र ने, केवल थोड़े ही दिन हुए, राम आदि के साथ जाकर दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का दर्शन किया है। आज भी इस उत्सव में वे सम्मिलित हुए हैं। वे बीच-बीच में सिमुलिया ब्राह्म समाज में आते थे और वहाँ पर भजन-गाना और उपासना करते थे।

ब्राह्म समाज की पद्धति के अनुसार उपासना होगी।

पहले कुछ पाठ हुआ। नरेन्द्र गा सकते हैं। उनसे गाने के लिए अनुरोध करने पर उन्होंने भी गाना गाया।

संध्या हुई। इंदेश के गौरी पण्डित गेरुआ वस्त्र पहने ब्रह्मचारी के भेष में आकर उपस्थित हुए।

गौरी– कहाँ हैं श्रीरामकृष्णदेव ?

थोड़ी देर बाद श्री केशव सेन ब्राह्म भक्तों के साथ आ पहुँचे और उन्होंने भूमिष्ठ होकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। सभी लोग बरामदे में बैठे हैं; आपस में आनन्द कर रहे हैं। चारों

ओर गृहस्थ भक्तों को बैठे देखकर श्रीरामकृष्ण हँसते हुए कह रहे हैं—"गृहस्थी में धर्म होगा क्यों नहीं ? पर बात क्या है जानते हो ? मन अपने पास नहीं है। अपने पास मन हो तब तो ईश्वर को देगा ! मन को धरोहर रखा है,—कामिनी-कांचन के पास धरोहर। इसीलिए तो सदा साधु-संग आवश्यक है।

"मन अपने पास आने पर तब साधन-भजन होगा। सदा ही गुरु का संग, गुरु की सेवा, साधु-संग आवश्यक है। या तो एकान्त में दिन-रात उनका चिन्तन किया जाय और नहीं तो साधु-संग। मन अकेला रहने से धीरे धीरे सूख जाता है। जैसे एक बर्तन में यदि अलग जल रखो तो धीरे धीरे सूख जाएगा, परन्तु गंगा के भीतर यदि उस बर्तन को डुबोकर रखो तो नहीं सूखेगा।

"लोहार की दूकान में लोहा आग में रखने से अच्छा लाल हो जाता है। अलग रख दो तो फिर काले का काला। इसलिए लोहे को बीच-बीच में आग में डालना चाहिए।

"'मैं करनेवाला हूँ, मैं कर रहा हूँ तभी गृहस्थी चल रही है, मेरा घर, मेरा कुटुम्ब'—यह सब अज्ञान है। पर 'मैं प्रभु का दास, उनका भक्त, उनकी सन्तान हूँ'—यह बहुत अच्छा है।

"'मैं'-पन एकदम नहीं जाता। अभी विचार करके उसे भले ही उड़ा दो, पर दूसरे क्षण वह कहीं से फिर आ जाता है। जैसे कटा हुआ बकरा—सिर कटने पर भी म्याँ-म्याँ करके हाथ-पैर हिलाता रहता है।

"उनके दर्शन के बाद वे जिस 'मैं' को रख देते हैं, उसे कहते हैं 'पक्का मैं'।—जिस प्रकार तलवार पारसमणि को छूकर सोना बन गई है। उसके द्वारा अब और हिंसा का काम नहीं होता।"

श्रीरामकृष्ण उपासना-मन्दिर में बैठकर यही सब बातें कह रहे हैं, केशव आदि भक्तगण चुपचाप सुन रहे हैं। रात के ८ बजे का समय है। तीन बार घण्टी बजी, जिससे उपासना प्रारम्भ हो।

श्रीरामकृष्ण– (केशव आदि के प्रति)– यह क्या? तुम लोगों की उपासना नहीं हो रही है।

केशव– और उपासना की क्या आवश्यकता? यही तो सब हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण– नहीं जी, जैसी पद्धति है, उसी प्रकार हो।

केशव– क्यों, यही तो अच्छा हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण के अनेक बार कहने पर केशव ने उठकर उपासना प्रारम्भ की।

उपासना के बीच में श्रीरामकृष्ण एकाएक खड़े होकर समाधिमग्न हो गए। ब्राह्म भक्तगण गाना गा रहे हैं।— 'मन एक बार हरि बोलो, हरि बोलो'— आदि।

श्रीरामकृष्ण अभी भी भावमग्न होकर खड़े हैं। केशव ने बड़ी सावधानी से उनका हाथ पकड़कर उन्हें मन्दिर में से आँगन पर उतारा।

गाना चल रहा है। अब श्रीरामकृष्ण गाने के साथ नृत्य कर रहे हैं। चारों ओर भक्तगण भी नाच रहे हैं।

ज्ञान बाबू के दुमंज़ले के कमरे में श्रीरामकृष्ण तथा केशव आदि के जलपान की व्यवस्था हो रही है। वे जलपान करके फिर नीचे उतरकर बैठे। श्रीरामकृष्ण बातें करते करते फिर गाना गा रहे हैं। साथ में केशव भी गा रहे हैं।

गाना– (भावार्थ)–

"मेरा मनरूपी भ्रमर श्यामा के चरणरूपी नील-कमलों में

मग्न हो गया। कामादि कुसुमों का विषयरूपी मधु उसके सामने फीका पड़ गया। . . ."

"श्यामा के चरणरूपी आकाश में मेरा मनरूपी पतंग उड़ रहा था। पाप की ज़ोरदार हवा से धक्का खाकर उल्टा होकर गिर गया। . . ."

श्रीरामकृष्ण और केशव दोनों ही मतवाले बन गए। फिर सब लोग मिलकर गाना और नृत्य करने लगे। आधी रात तक यह क़ार्यक्रम चलता रहा।

थोड़ी देर विश्राम करके श्रीरामकृष्णदेव केशव से कह रहे हैं, "अपने लड़के के विवाह की सौगात क्यों भेजी थी? वापस मँगवा लेना। उन चीज़ों को लेकर मैं क्या करूँगा?"

केशव मुस्करा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण फिर कह रहे हैं—"मेरा नाम समाचार-पत्रों में क्यों निकालते हो? पुस्तकों या संवाद-पत्रों में लिखकर किसी को बड़ा नहीं बनाया जा सकता। भगवान जिसे बड़ा बनाते हैं, जंगल में रहने पर भी उसे सभी लोग जान सकते हैं। घने जंगल में फूल खिला है, भौंरा इसका पता लगा ही लेता है, पर दूसरी मक्खियाँ पता नहीं पातीं। मनुष्य क्या कर सकता है? उसके मुँह की ओर न ताको। मनुष्य तो एक कीड़ा है। जिस मुँह से आज अच्छा कह रहा है, उसी मुँह से कल बुरा कहेगा। मैं प्रसिद्धि नहीं चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि दीन से दीन, हीन से हीन बन कर रहूँ।"

(ख)

परिच्छेद १

श्रीरामकृष्ण तथा नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द)

(अमरीका और यूरोप में विवेकानन्द)

(१)

नरेन्द्र की श्रेष्ठता

आज रथयात्रा का दूसरा दिन है, १८८५ ई०, आषाढ़ संक्रान्ति। भगवान श्रीरामकृष्ण प्रात:काल बलराम के घर में भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। नरेन्द्र की महानता बतला रहे हैं--

"नरेन्द्र आध्यात्मिकता में बहुत ऊँचा है, निराकार का घर है, उसमें पुरुष की सत्ता है। इतने भक्त आ रहे हैं, पर उनमें उसकी तरह एक भी नहीं।

"कभी कभी मैं बैठा-बैठा हिसाब करता हूँ तो देखता हूँ कि पद्मों में कोई दशदल है तो कोई षोड़शदल और कोई शतदल, परन्तु नरेन्द्र सहस्रदल है।

"अन्य लोग घड़ा, लोटा ये सब हो सकते हैं, परन्तु नरेन्द्र एक बड़ा मटका है।

"तालाबों की तुलना में नरेन्द्र सरोवर है।

"मछलियों में नरेन्द्र लाल आँखवाला रोहित मछली है, बाकी सब छोटी-मोटी मछलियाँ हैं।

"वह बड़ा पात्र है-- उसमें अनेक चीज़ें समा जाती हैं। वह बड़ा सूराखवाला बाँस है।

"नरेन्द्र किसी के वशीभूत नहीं है। वह आसक्ति, इन्द्रियसुख के वश में नहीं है। वह नर कबूतर है। नर कबूतर की चोंच

पकड़ने पर वह चोंच को खींचकर छुड़ा लेता है। पर स्त्री कबूतर चुप होकर बैठी रहती है। "

* * *

तीन वर्ष पहले (१८८२ ई० में) नरेन्द्र अपने एक ब्राह्म मित्र के साथ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने आए थे। रात को वे वहीं रहे थे। सबेरा होने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा था, " जाओ, पंचवटी में ध्यान करो। " थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण ने जाकर देखा था, वे मित्रों के साथ पंचवटी के नीचे ध्यान कर रहे हैं। ध्यान के बाद श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था, " देखो, ईश्वर का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है। व्याकुल होकर एकान्त में गुप्त रूप से उनका ध्यान-चिन्तन करना चाहिए और रो-रोकर प्रार्थना करनी चाहिए, ' प्रभो, मुझे दर्शन दो। ' " ब्राह्म-समाज तथा दूसरे धर्मवालों के लोकहितकर कर्म तथा स्त्री-शिक्षा, स्कूलों की स्थापना एवं भाषण आदि के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, " पहले ईश्वर का दर्शन करो। निराकार साकार दोनों का ही दर्शन। जो वाणी-मन से परे हैं, वे ही भक्त के लिए देहधारण करके दर्शन देते हैं और बात करते हैं। दर्शन के बाद, उनका निर्देश लेकर लोकहितकर कार्य करने चाहिए। एक गाने में है—' मन्दिर में देवता की स्थापना तो हुई नहीं, और पोदो (बुद्धू) केवल शंख बजा रहा है, मानो आरती हो रही हो। इसलिए कोई कोई उसे धिक्कारते हुए कह रहे हैं—अरे पोदो, तेरे मन्दिर में माधव तो है नहीं और तूने खाली शंख बजा-बजाकर इतना ढोंग रच रखा है। उसमें तो ग्यारह चमगीदड़ रात-दिन निवास करते हैं। '

" यदि हृदयरूपी मन्दिर में माधव की स्थापना करना चाहते

हो, यदि भगवान को प्राप्त करना चाहते हो तो केवल भों-भों करके शंख बजाने से क्या होगा ? पहले चित्त को शुद्ध करो। मन शुद्ध होने पर भगवान पवित्र आसन पर आकर बैठेंगे। चमगीदड़ की विष्ठा रहने पर माधव को लाया नहीं जा सकता। ग्यारह चमगीदड़ अर्थात् ग्यारह इन्द्रियाँ।

"पहले डुबकी लगाओ। डूबकर रत्न उठाओ, उसके बाद दूसरा काम। पहले माधव की स्थापना करो, उसके बाद चाहो तो व्याख्यान देना।

"कोई डुबकी लगाना नहीं चाहता। साधन नहीं, भजन नहीं, विवेक-वैराग्य नहीं, दो-चार बातें सीख लीं, बस लगे 'लेक्चर' देने!

"लोगों को सिखाना कठिन काम है। भगवान के दर्शन के बाद यदि किसी को उनका आदेश प्राप्त हो, तो वह लोक-शिक्षा दे सकता है।"

* * *

१८८४ ई० की रथयात्रा के दिन कलकत्ते में श्रीरामकृष्णदेव के साथ पण्डित शशधर का साक्षात्कार हुआ। नरेन्द्र वहाँ पर उपस्थित थे। श्रीरामकृष्ण ने पण्डितजी से कहा, "तुम जनता के कल्याण के लिए भाषण दे रहे हो, सो भली बात है। परन्तु भाई, भगवान के निर्देश के बिना लोकशिक्षा नहीं होती। होगा यह कि लोग दो दिन तुम्हारा भाषण सुनेंगे, उसके बाद भूल जाएँगे। हलदारपुकुर के किनारे पर लोग शौच को जाते थे। लोग गाली-गलौज करते थे, परन्तु कुछ परिणाम न हुआ। अन्त में सरकार ने जब एक नोटिस लगा दिया, तब कहीं लोगों का वहाँ पर शौच जाना बन्द हुआ। इसी प्रकार ईश्वर का आदेश पाए बिना लोक-शिक्षा नहीं होती।"

इसलिए नरेन्द्र ने गुरुदेव की बात को मानकर संसार छोड़ दिया था और एकान्त में गुप्त रूप से बहुत तपस्या की थी। उसके बाद उन्हीं की शक्ति से शक्तिशाली बनकर, इस लोक-शिक्षा के व्रत को ग्रहण कर उन्होंने कठिन प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया था।

काशीपुर में जिस समय (१८८६ ई०) श्रीरामकृष्ण रुग्ण थे, उस समय उन्होंने एक कागज़ पर लिखा था, "नरेन्द्र शिक्षा देगा।"

स्वामी विवेकानन्द ने अमरीका से मद्रास-निवासियों को जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने लिखा था कि वे श्रीरामकृष्ण के दास हैं, उन्हीं के दूत बनकर वे उनकी मंगल-वार्ता समग्र जगत् को सुना रहे हैं:—

"...जिनका संदेश, भारत तथा समस्त संसार को पहुँचाने का सम्मान मुझ जैसे उनके अत्यन्त तुच्छ और अयोग्य सेवक को मिला है, उनके प्रति आपका आदरभाव सचमुच अपूर्व है। यह आपकी जन्मजात धार्मिक प्रवृत्ति है, जिसके कारण आप उनमें और उनके संदेश में आध्यात्मिकता के उस प्रबल तरंग की प्रथम हलचल का अनुभव कर रहे हैं, जो निकट भविष्य में सारे भारतवर्ष पर अपनी सम्पूर्ण अबाध्य शक्ति के साथ अवश्यमेव आघात करेगा।..."

—'हिन्दू धर्म के पक्ष में' से उद्धृत

मद्रास में दिए गए तीसरे व्याख्यान में उन्होंने कहा था,—

"...इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है तो वह उन्हीं का (श्रीरामकृष्ण का) वाक्य है; पर यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हैं जो

असत्य, भ्रमपूर्ण अथवा मानवजाति के लिए हितकारी न हों, तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं, उनके लिए पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।"

—'**भारत में विवेकानन्द**' से उद्धृत

कलकत्ते में स्वर्गीय राधाकान्त देव के मकान पर जब उनकी अभ्यर्थना हुई, उस समय भी उन्होंने कहा था कि 'श्रीरामकृष्णदेव की शक्ति आज पृथ्वी भर में व्याप्त है। हे भारतवासियो, तुम लोग उनका चिन्तन करो, तभी सब विषयों में उन्नति करोगे।' उन्होंने कहा—

"...यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा, इस नाम से सभी को प्रेमोन्मत्त हो जाना चाहिए। श्रीरामकृष्णदेव का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इससे कुछ होना जाना नहीं; तुम्हारे सामने मैं इस महान् आदर्श-पुरुष को रखता हूँ, लो, अब विचार का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श-पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हें अपनी जाति के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए।..."

* * *

"...उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण संसार घेर लिया है...। मुझे देखकर उनका विचार न करना। मैं एक बहुत ही क्षुद्र यन्त्र मात्र हूँ। उनके चरित का विचार मुझे देखकर न करना। वे इतने बड़े थे कि मैं, या उनके शिष्यों में से कोई दूसरा, सैकड़ों जीवनों तक चेष्टा करते रहने पर भी उनके यथार्थ स्वरूप के एक करोड़वें अंश के बराबर भी न हो सकेगा।..."

—'**भारत में विवेकानन्द**' से उद्धृत

गुरुदेव की बात कहते कहते स्वामी विवेकानन्द एकदम पागल-से

हो जाया करते थे। धन्य है वह गुरुभक्ति !

(२)

नरेन्द्र द्वारा श्रीरामकृष्ण का प्रचारकार्य

श्रीरामकृष्णदेव के उस सार्वभौमिक सनातन हिन्दू धर्म का स्वामीजी ने किस प्रकार प्रचार करने की चेष्टा की थी, उसकी यहाँ पर हम थोड़ी सी चर्चा करेंगे।

ईश्वर-दर्शन

श्रीरामकृष्ण की पहिली बात यह है कि ईश्वर का दर्शन करना होगा। कुछ मन्त्र या श्लोकों को कण्ठस्थ कर लेने का ही नाम धर्म नहीं है। भक्त यदि व्याकुल होकर उन्हें पुकारे, तभी ईश्वर-दर्शन होता है -- चाहे इस जन्म में हो या अगले जन्म में। उनके एक दिन के वार्तालाप की हमें याद आ रही है। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में वार्तालाप हो रहा था। रविवार, २६ अक्टूबर १८८४ ई.।

श्रीरामकृष्णदेव काशीपुर के महिमाचरण चक्रवर्ती तथा अन्य भक्तों से कह रहे थे -- "शास्त्र कितने पढ़ोगे ? केवल विचार करने से क्या होगा ? पहले उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करो। पुस्तकें पढ़कर क्या जानोगे ? जब तक बाजार में नहीं पहुँचते तब तक दूर से केवल हो-हो शब्द सुनाई देता है। बाजार के पास पहुँचने पर कुछ दूसरा शब्द सुनाई पड़ेगा, और अन्त में बाजार के भीतर पहुँचकर साफ साफ देख सकोगे, सुन सकोगे 'आलू लो, पैसा दो'।

"खाली पुस्तकें पढ़कर ठीक अनुभव नहीं होता। पढ़ने तथा अनुभव करने में बहुत अन्तर है। ईश्वर-दर्शन के बाद शास्त्र, विज्ञान आदि सब कूड़ा-कर्कट-जैसे लगते हैं।

"बड़े बाबू के साथ परिचय आवश्यक है। उनके कितने मकान, कितने बगीचे, कितने कम्पनी के कागज़ हैं —— यह सब पहले से ही जानने के लिए इतने व्यग्र क्यों हो ? चाहे धक्का खाकर या दीवाल फाँदकर ही सही, किसी न किसी तरह बड़े मालिक के साथ एक बार परिचय तो कर लो, तब यदि इच्छा होगी, तो वे ही कह देंगे कि उनके कितने मकान हैं, कितने बगीचे हैं, कम्पनी के कितने कागज़ हैं। मालिक के साथ परिचय होने पर फिर नौकर-चाकर, द्वारपाल सभी लोग सलाम करेंगे।" (सभी हँसे)

एक भक्त— बड़े मालिक के साथ परिचय कैसे होता है ?

श्रीरामकृष्ण— उसके लिए कर्म चाहिए—— साधना चाहिए। 'ईश्वर हैं' इतना कहकर बैठे रहने से काम न चलेगा। उनके पास जाना होगा। निर्जन में उन्हें पुकारो, यह कहकर प्रार्थना करो, 'हे प्रभो ! दर्शन दो।' व्याकुल होकर रोओ। कामिनी-कांचन के लिए जब पागल होकर घूम सकते हो तो उनके लिए भी ज़रा पागल बनो। लोगों को कहने दो कि अमुक ईश्वर के लिए पागल हो गया है। कुछ दिन सब कुछ छोड़कर उन्हें अकेले में पुकारो। केवल 'वे हैं' यह कहकर बैठे रहने से क्या होगा ? हालदारपुकुर में बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं। तालाब के किनारे पर केवल बैठे रहने से ही क्या मछलियाँ मिल सकती हैं ? खुराक डालो। धीरे धीरे गहरे जल से मछलियाँ आएँगी और जल हिलेगा। उस समय आनन्द आएगा। सम्भव है, मछली का कुछ अंश एक बार दिखाई भी दे और मछली को छलाँग मारते हुए भी देखो। जब उसको प्रत्यक्ष देखा तो और भी आनन्द !

ठीक यही बात स्वामीजी ने शिकागो-धर्मसभा के सम्मुख कही है (अर्थात् धर्म का उद्देश्य है ईश्वर को प्राप्त करना, उनका

दर्शन करना)—

"हिन्दू शब्दों और सिद्धान्तों के जाल में समय बिताना नहीं चाहता।...वह ईश्वर का साक्षात्कार कर लेना चाहता है; कारण, ईश्वर के केवल प्रत्यक्ष दर्शन से ही समस्त शंकाएँ दूर हो सकती हैं। अतः हिन्दू ऋषि आत्मा के विषय में, ईश्वर के विषय में यही सर्वोत्तम प्रमाण देते हैं कि 'मैंने आत्मा का दर्शन किया है, मैंने ईश्वर का दर्शन किया है।'... हिन्दुओं की सारी साधना-प्रणाली का लक्ष्य केवल एक ही है और वह है सतत अध्यवसाय द्वारा पूर्ण बन जाना, देवता बन जाना, ईश्वर के निकट पहुँचकर उनका दर्शन करना। और इस प्रकार ईश्वर-सान्निध्य को प्राप्त कर उनका दर्शन कर लेना, उन्हीं 'स्वर्गस्थ पिता' के समान पूर्ण हो जाना— यही असल में हिन्दू धर्म है।..."

—'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

अमरीका के अनेक स्थानों में स्वामीजी ने भाषण दिया और सभी स्थानों में उन्होंने यही एक बात कही। हार्टफोर्ड (Hartford) नामक स्थान में उन्होंने कहा था—

"...जो दूसरी बात मैं तुम्हें बतलाना चाहता हूँ, वह यह है कि धर्म केवल सिद्धान्तों या मतवादों में नहीं है।...सभी धर्मों का चरम लक्ष्य है— आत्मा में परमात्मा की अनुभूति। यही एक सार्वभौमिक धर्म है। समस्त धर्मों में यदि कोई सार्वभौमिक सत्य है तो वह है ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना। परमात्मा और उनकी प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों की धारणाएँ भिन्न भिन्न भले ही हों, पर उन सब में वही एक केन्द्रीय भाव है। सहस्र विभिन्न त्रिज्याएँ भले ही हों, पर वे सब एक ही केन्द्र में मिलती हैं, और यह केन्द्र है ईश्वर का

साक्षात्कार——इस इन्द्रियग्राह्य जगत् के पीछे, इस निरन्तर खाने-पीने और थोथी बकवास के पीछे, इन उड़ते छायास्वप्नों और स्वार्थ से भरे इस संसार के पीछे वर्तमान किसी सत्ता की अनुभूति। समस्त ग्रन्थों और धर्ममतों के अतीत, इस जगत् की असारता से परे वह विद्यमान है, जिसकी अपने भीतर ईश्वर के रूप में प्रत्यक्ष-अनुभूति होती है। कोई व्यक्ति संसार के समस्त गिर्जाघरों में आस्था भले ही रखता हो, अपने सिर में समस्त धर्मग्रन्थों का बोझा लिए भले ही घूमता हो, इस पृथ्वी की समस्त नदियों में उसने भले ही बप्तिस्मा लिया हो, फिर भी यदि उसे ईश्वर-दर्शन न हुआ हो तो मैं उसे घोर नास्तिक ही मानूँगा।..."

स्वामीजी ने अपने राजयोग नामक ग्रन्थ में लिखा है——

"...सभी धर्माचार्यों ने ईश्वर को देखा था। उन सभी ने आत्मदर्शन किया था; अपने अनन्त स्वरूप का सभी को ज्ञान हुआ था, अपनी भविष्य अवस्था देखी थी, और जो कुछ उन्होंने देखा था, उसी का वे प्रचार कर गए हैं। भेद इतना ही है कि प्रायः सभी धर्मों में, विशेषतः आजकल के, एक अद्भुत दावा हमारे सामने उपस्थित होता है; वह यह है कि इस समय ये अनुभूतियाँ असम्भव हैं; जो धर्म के प्रथम संस्थापक हैं, बाद को जिनके नाम से उस धर्म का प्रवर्तन और प्रचलन हुआ है, केवल उन थोड़े आदमियों को ही ऐसा प्रत्यक्षानुभव सम्भव हुआ था; अब ऐसे अनुभव के लिए रास्ता नहीं रहा, फलतः अब धर्मों पर केवल विश्वास भर कर लेना होगा। मैं इसको पूरी शक्ति से अस्वीकृत करता हूँ। यदि संसार में किसी प्रकार के विज्ञान के किसी विषय की किसी ने कभी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है, तो इससे इस सार्वभौमिक सिद्धान्त पर पहुँचा जा सकता

है कि पहले भी कोटि-कोटि बार उसकी उपलब्धि की सम्भावना थी, बाद को भी अनन्त काल तक उसकी उपलब्धि की सम्भावना रहेगी। समवर्तन ही प्रकृति का बली नियम है। एक बार जो घटित हुआ है, वह फिर घटित हो सकता है।..."

—'राजयोग' से उद्धृत

स्वामीजी ने न्यूयार्क में ९ जनवरी १८९६ ई० को 'सार्वभौमिक धर्म का आदर्श' (Ideal of a Universal Religion) नामक विषय पर एक भाषण दिया था—अर्थात् जिस धर्म में ज्ञानी, भक्त, योगी या कर्मी सभी सम्मिलित हो सकते हैं। भाषण समाप्त करते समय उन्होंने कहा कि ईश्वर का दर्शन ही सब धर्मों का उद्देश्य है,—ज्ञान, कर्म, भक्ति ये सब विभिन्न पथ तथा उपाय हैं, परन्तु गन्तव्य स्थान एक ही है और वह है ईश्वर का साक्षात्कार। स्वामीजी ने कहा—

"...इन सब विभिन्न योगों को हमें कार्य में परिणत करना ही होगा; केवल उनके सम्बन्ध में जल्पना-कल्पना करने से कुछ न होगा। 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।' पहले उनके सम्बन्ध में सुनना पड़ेगा—फिर श्रुत विषयों पर चिन्ता करनी होगी...। इसके बाद उनका ध्यान और उपलब्धि करनी पड़ेगी—जब तक कि हमारा समस्त जीवन तद्भावभावित न हो उठे। तब धर्म हमारे लिए केवल कतिपय धारणा, मतवाद-समष्टि अथवा कल्पना रूप ही नहीं रहेगा। भ्रमात्मक ख्याल से आज हम अनेक मूर्खताओं को सत्य समझकर ग्रहण करके कल ही शायद सम्पूर्ण मत परिवर्तन कर सकते हैं, पर यथार्थ धर्म कभी परिवर्तित नहीं होता। धर्म अनुभूति की वस्तु है—वह मुख की बात, मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना मात्र नहीं

है— चाहे वह जितना ही सुन्दर हो; वह केवल सुनने या मान लेने की चीज़ नहीं है। आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, तद्रूप हो जाना, उसका साक्षात्कार करना— यही धर्म है।. . ."

— 'धर्मरहस्य' से उद्धृत

मद्रासियों के पास उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसमें भी वही बात थी,— हिन्दू धर्म की विशेषता है ईश्वर-दर्शन,— वेद का मुख्य उद्देश्य है ईश्वर-दर्शन—

". . .हिन्दू धर्म में एक भाव संसार के अन्य धर्मों की अपेक्षा विशेष है। उसके प्रकट करने में ऋषियों ने संस्कृत भाषा के प्रायः समग्र शब्द-समूह को निःशेष कर डाला है। वह भाव यह है कि मनुष्य को इसी जीवन में ईश्वर की प्राप्ति करनी होगी. .। इस प्रकार, द्वैतवादियों के मतानुसार ब्रह्म की उपलब्धि करना, ईश्वर का साक्षात्कार करना, या अद्वैतवादियों के कहने के अनुसार ब्रह्म हो जाना— यही वेदों के समस्त उपदेशों का एकमात्र लक्ष्य है. . ."

— 'हिन्दू धर्म के पक्ष में' से उद्धृत

स्वामीजी ने २९ अक्टूबर, सन् १८९६ में लन्दन में भाषण दिया था, विषय था— ईश्वर-दर्शन (Realisation)। इस भाषण में उन्होंने कठोपनिषद् का उल्लेख कर नचिकेता की कथा सुनाई थी। नचिकेता ईश्वर का दर्शन करना चाहते थे। धर्मराज यम ने कहा, "भाई, यदि ईश्वर को जानना चाहते हो, देखना चाहते हो, तो भोगासक्ति को त्यागना होगा। भोग रहते योग नहीं होता, अवस्तु से प्रेम करने पर वस्तु की प्राप्ति नहीं होती।" स्वामीजी ने कहा था—

". . .हम सभी नास्तिक हैं, परन्तु जो व्यक्ति उसे स्पष्ट

स्वीकार करता है, उससे हम विवाद करने को प्रस्तुत होते हैं। हम लोग सभी अन्धकार में पड़े हुए हैं। धर्म हम लोगों के समीप मानो कुछ नहीं है, केवल विचारलब्ध कुछ मतों का अनुमोदन मात्र है, केवल मुँह की बात है— अमुक व्यक्ति खूब अच्छी तरह से बोल सकता है, अमुक व्यक्ति नहीं बोल सकता . . . । आत्मा की जब यह प्रत्यक्षानुभूति आरम्भ होगी, तभी धर्म आरम्भ होगा। उसी समय तुम धार्मिक होगे . . . । उसी समय प्रकृत विश्वास का— आस्तिकता का— उदय होगा। . . . "

—'ज्ञानयोग' से उद्‌धृत

(३)

श्रीरामकृष्ण, नरेन्द्र और सर्वधर्मसमन्वय

नरेन्द्र तथा अन्य बुद्धिमान युवकगण श्रीरामकृष्णदेव की सभी धर्मों पर श्रद्धा और प्रेम को देख बड़े प्रसन्न तथा आश्चर्यचकित हुए थे। 'सभी धर्मों में सत्य है'— यह बात श्रीरामकृष्णदेव मुक्त कण्ठ से कहते थे, और वे यह भी कहा करते थे कि सभी धर्म सत्य हैं— अर्थात् प्रत्येक धर्म के द्वारा ईश्वर के निकट पहुँचा जा सकता है। एक दिन २७ अक्टूबर १८८२ ई० को कार्तिकी पूर्णिमा की कोजागिरी लक्ष्मीपूजा के दिन केशवचन्द्र सेन स्टीमर लेकर दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण को देखने गए थे और उन्हें स्टीमर में लेकर कलकत्ता लौटे थे। रास्ते में स्टीमर पर अनेक विषयों पर चर्चा हुई थी। ठीक यही बातें १३ अगस्त को (अर्थात् कुछ मास पूर्व) भी हुई थीं। सर्वधर्मसमन्वय की ये बातें हम अपनी डायरी से उद्‌धृत करते हैं।—

१३ अगस्त १८८६। आज श्री केदारनाथ चटर्जी ने दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में महोत्सव किया है। उत्सव के बाद, दिन के

३-४ बजे के समय दक्षिणवाले दालान में वे श्रीरामकृष्ण के साथ वार्तालाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— (भक्तों के प्रति)— जितने मत उतने पथ। सभी धर्म सत्य हैं— जिस प्रकार कालीघाट में अनेक पथों से जाया जाता है। धर्म ही ईश्वर नहीं है। भिन्न भिन्न धर्मों का सहारा लेकर ईश्वर के पास जाया जाता है।

"नदियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओं से आती हैं, परन्तु सभी समुद्र में जा गिरती हैं। वहाँ पर सभी एक हैं।

"छत पर अनेक उपायों से जाया जा सकता है। पक्की सीढ़ी, लकड़ी की सीढ़ी, टेढ़ी सीढ़ी और केवल एक रस्सी के सहारे भी जाया जा सकता है। परन्तु जाते समय एक ही उपाय का सहारा लेकर जाना पड़ता है— दो-तीन अलग अलग सीढ़ियों पर पैर रखने से ऊपर नहीं जा सकते। लेकिन छत पर पहुँच जाने के बाद सभी प्रकार की सीढ़ियों के सहारे उतर-चढ़ सकते हैं।

"इसीलिए पहले एक धर्म का सहारा लेना पड़ता है। ईश्वर की प्राप्ति होने पर वही व्यक्ति सभी धर्म-पथों से आना-जाना कर सकता है। जब हिन्दुओं के बीच में रहता है तब लोग उसे हिन्दू मानते हैं; जब मुसलमानों के साथ रहता है तो लोग मुसलमान मानते हैं और फिर जब ईसाइयों के साथ रहता है, तो सभी लोग समझते हैं कि शायद वे ईसाई हैं।

"सभी धर्मों के लोग एक ही को पुकार रहे हैं। कोई कहता है ईश्वर, कोई राम, कोई हरि, कोई अल्लाह, कोई ब्रह्म— नाम अलग अलग हैं, परन्तु वस्तु एक ही है।

"एक तालाब में चार घाट हैं। एक घाट में हिन्दू जल पी रहे हैं, वे कह रहे हैं 'जल'; दूसरे घाट में मुसलमान, कह रहे

हैं 'पानी'; तीसरे घाट में ईसाई, कह रहे हैं 'वाटर' (Water); चौथे घाट में कुछ आदमी कह रहे हैं 'अकुआ' (Aqua)। (सभी हँसे) वस्तु एक ही है— जल; पर नाम अलग अलग हैं। अतएव झगड़ा करने का क्या काम? सभी एक ईश्वर को पुकार रहे हैं और सभी उन्हीं के पास जाएँगे।"

एक भक्त– (श्रीरामकृष्ण के प्रति)– यदि दूसरे धर्म में ग़लत बातें हों तो?

श्रीरामकृष्ण– ग़लत बातें भला किस धर्म में नहीं हैं? सभी कहते हैं, 'मेरी घड़ी सही चल रही है,' परन्तु कोई भी घड़ी बिलकुल सही नहीं चलती। सभी घड़ियों को बीच बीच में सूर्य के साथ मिलाना पड़ता है।

"ग़लत बातें किस धर्म में नहीं हैं? और यदि गलत बातें रहीं भी, परन्तु यदि आन्तरिकता हो, यदि व्याकुल होकर उन्हें पुकारो तो वे अवश्य ही सुनेंगे।

"मान लो, एक बाप के कई लड़के हैं— कोई छोटे, कोई बड़े। सब उन्हें 'पिताजी' कहकर पुकार नहीं सकते। कोई कहता है, 'पिताजी', कोई छोटा बच्चा सिर्फ 'पि' और कोई केवल 'ता' ही कहता है। जो बच्चे 'पिताजी' नहीं कह सकते क्या पिता उन पर नाराज होगा? (सभी हँसे) नहीं, पिता सभी को एक-जैसा प्यार करेगा।*

"लोग समझते हैं, 'मेरा ही धर्म ठीक है; ईश्वर क्या चीज़ है, मैंने ही समझा है, दूसरे लोग नहीं समझ सके। मैं ही उन्हें

* ठीक यही बात एक अंग्रेजी ग्रन्थ में है — Maxmuller's Hibbert Lectures. मैक्समूलर ने भी यही उपमा देकर समझाया है कि जो लोग देव-देवियों की पूजा करते हैं, उनसे घृणा करना ठीक नहीं।

ठीक पुकार रहा हूँ, दूसरे लोग ठीक पुकार नहीं सकते । अतः ईश्वर मुझ पर ही कृपा करते हैं, उन पर नहीं करते ।' ये सब लोग नहीं जानते कि ईश्वर सभी के पिता-माता हैं, आन्तरिक प्रेम होने पर वे सभी पर कृपा करते हैं ।"

प्रेम का धर्म कितना अद्भुत है ! यह बात तो उन्होंने वार वार कही, परन्तु कितने लोग समझ सके ? श्री केशव सेन थोड़ा सा समझ सके थे । और स्वामी विवेकानन्द ने तो दुनिया के सामने इसी प्रेम-धर्म का प्रचार अग्निमंत्र से दीक्षित होकर किया है । श्रीरामकृष्णदेव ने तआस्सुबी बुद्धि रखने का वार बार निषेध किया था । 'मेरा धर्म सत्य है और तुम्हारा धर्म झूठा' इसी का नाम है तआस्सुबी बुद्धि—यह बड़े अनर्थ की जड़ है । स्वामीजी ने इसी अनर्थ की बात शिकागो-धर्मसभा के सामने कही थी । उन्होंने कहा— ईसाई, मुसलमान आदि अनेकों ने धर्म के नाम पर मार-काट मचाई है ।

"...साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और इनसे उत्पन्न भयंकर धर्म-विषयक उन्मत्तता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुके हैं । इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गई है; इन्होंने अनेक बार मानव-रक्त से धरणी को सींचा, सभ्यता नष्ट कर डाली तथा समस्त जातियों को हताश कर डाला ।..."

—'शिकागो वक्तृता' से उद्धृत

स्वामीजी ने एक दूसरे भाषण में विज्ञान-शास्त्र से प्रमाण देकर समझाने की चेष्टा की कि सभी धर्म सत्य हैं—

"...यदि कोई महाशय यह आशा करें कि यह एकता इन धर्मों में से किसी एक की विजय और बाकी अन्य सब के नाश से स्थापित होगी, तो उनसे मैं कहता हूँ कि 'भाई, तुम्हारी यह

आशा असम्भव है।' क्या मैं चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायँ?—कदापि नहीं; ईश्वर ऐसा न करे! क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायँ? ईश्वर इस इच्छा से बचावे! बीज भूमि में बो दिया गया है और मिट्टी, वायु तथा जल उसके चारों ओर रख दिए गए हैं। तो क्या वह बीज मिट्टी हो जाता है अथवा वायु या जल बन जाता है? नहीं, वह तो वृक्ष ही होता है। वह अपने नियम से ही बढ़ता है और वायु, जल तथा मिट्टी को आत्मसात् कर, इन उपादानों से शाखा-प्रशाखाओं की वृद्धि कर एक बड़ा वृक्ष हो जाता है।

"यही अवस्था धर्म के सम्बन्ध में भी है। न तो ईसाई को हिन्दू या बौद्ध होना पड़ेगा, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक मत के लिए यह आवश्यक है कि वह अन्य मतों को आत्मसात् करके पुष्टि लाभ करे, और साथ ही अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करता हुआ अपनी प्रकृति के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।..."

—'शिकागो वक्तृता' से उद्धृत

अमरीका में स्वामीजी ने ब्रूक्लीन एथिकल सोसाइटी (Brooklyn Ethical Society) के सामने हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में एक भाषण दिया था। प्रोफेसर डॉ. लीवि जेन्स (Dr. Lewis Janes) ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। वहाँ पर भी वही बात थी,—सर्वधर्मसमन्वय की। स्वामीजी ने कहा,

"...सत्य सदा सार्वभौमिक रहा है। यदि केवल मेरे ही हाथ में छः ऊँगलियाँ हों और तुम सबके हाथ में पाँच, तो तुम यह न सोचोगे कि मेरा हाथ प्रकृति का सच्चा अभिप्राय है, प्रत्युत यह समझोगे कि वह अस्वाभाविक और एक रोगविशेष है। उसी

प्रकार धर्म के सम्बन्ध में भी है। यदि केवल एक ही धर्म सत्य होवे और बाकी सब असत्य, तो तुम्हें यह कहने का अधिकार है कि वह एक धर्म कोई रोगविशेष है; यदि एक धर्म सत्य है तो अन्य सभी धर्म सत्य होंगे ही। अतएव हिन्दू धर्म तुम्हारा उतना ही है जितना कि मेरा।...."

स्वामीजी ने शिकागो-धर्ममहासभा के सम्मुख जिस दिन पहले-पहल भाषण दिया, उस भाषण को सुनकर लगभग छः हज़ार व्यक्तियों ने मुग्ध होकर अपना-अपना आसन छोड़कर मुक्त कण्ठ से उनकी अभ्यर्थना की थी। * उस भाषण में भी इसी समन्वय का सन्देश था। स्वामीजी ने कहा था--

"...मुझको ऐसे धर्म का अवलम्बी होने का गौरव है, जिसने संसार को न केवल 'सहिष्णुता' की शिक्षा दी, बल्कि 'सब धर्मों को मानने' का पाठ भी सिखाया। हम केवल 'सब के प्रति सहिष्णुता' में ही विश्वास नहीं करते, वरन् यह भी दृढ़ विश्वास करते हैं कि सब धर्म सत्य हैं। मैं अभिमानपूर्वक आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ, जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में अंग्रेजी शब्द Exclusion का कोई पर्यायवाची

---

* "When Vivekanand addressed the audience as 'Sisters and Brothers of America,' there arose a peal of applause that lasted for several minutes" — Dr. Barrow's Report. "But eloquent as were many of the brief speeches, no one expressed so well the spirit of the Parliament of Religions and its limitations as the Hindu monk......He is an orator by divine right."

— New York Critique, 1893.

शब्द है ही नहीं।..."

—'शिकागो वक्तृता' से उद्धृत

(४)

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र, कर्मयोग और स्वदेश-प्रेम

श्रीरामकृष्णदेव सदैव कहा करते थे, 'मैं और मेरा' यही अज्ञान है, 'तुम और तुम्हारा' यही ज्ञान है। एक दिन सुरेश मित्र के बगीचे में महोत्सव हो रहा था। रविवार, १५ जून, १८८४ ई०। श्रीरामकृष्णदेव तथा अनेक भक्त उपस्थित थे। ब्राह्म समाज के कुछ भक्त भी आए थे। श्रीरामकृष्णदेव ने प्रताप मजुमदार तथा अन्य भक्तों से कहा, "देखो, 'मैं और मेरा'— इसी का नाम अज्ञान है। 'काली-मन्दिर का निर्माण रासमणि ने किया है'— यही बात सब लोग कहते हैं। कोई नहीं कहता कि ईश्वर ने किया है। 'अमुक व्यक्ति ब्राह्म समाज बना गए हैं'— यही लोग कहते हैं। यह कोई नहीं कहता कि ईश्वर की इच्छा से यह हुआ है। 'मैंने किया है' इसी का नाम अज्ञान है। 'हे ईश्वर, मेरा कुछ भी नहीं है, यह मन्दिर मेरा नहीं है, यह कालीमन्दिर मेरा नहीं, समाज मेरा नहीं, सभी चीज़ें तुम्हारी हैं, स्त्री, पुत्र, परिवार — कुछ भी मेरा नहीं है, सब तुम्हारी चीज़ें हैं,' — ये सब ज्ञानी की बातें हैं।

" 'मेरी चीज़, मेरी चीज़' कहकर उन सब चीज़ों से प्यार करने का नाम है 'माया'। सभी को प्यार करने का नाम है 'दया'। मैं केवल ब्राह्म समाज के लोगों को प्यार करता हूँ, इसका नाम है माया। केवल अपने देश के लोगों को प्यार करता हूँ, इसका नाम है माया। सभी देश के लोगों को प्यार करना, सभी धर्म के लोगों को प्यार करना — यह दया

से होता है, भक्ति से होता है। माया से मनुष्य बद्ध हो जाता है, भगवान से विमुख हो जाता है। दया से ईश्वर-प्राप्ति होती है। शुकदेव, नारद — इन सब ने दया रखी थी।"

श्रीरामकृष्णदेव का कथन है — 'केवल स्वदेश के लोगों को प्यार करना — इसका नाम माया है। सभी देशों के लोगों से, सभी धर्म के लोगों से प्रेम रखना, यह हृदय में दया होने से होता है, भक्ति से होता है।' तो फिर स्वामी विवेकानन्द स्वदेश के लिए उतने व्यस्त क्यों हुए थे ?

स्वामीजी ने शिकागो-धर्ममहासभा में एक दिन कहा था, "...भारत में धर्म का अभाव नहीं है — वहाँ तो वैसे ही आवश्यकता से अधिक धर्म है, पर हाँ, हिन्दुस्थान के लाखों अकालपीड़ित लोग सूखे गले से 'अन्न-अन्न, रोटी-रोटी' चिल्ला रहे हैं।... मैं अपने निर्धन स्वदेशनिवासियों के लिए यहाँ पर धन की भिक्षा माँगने आया था, परन्तु आकर देखा बड़ा ही कठिन काम है, — ईसाइयों से उन लोगों के लिए, जो ईसाई नहीं हैं, धन एकत्रित करना टेढ़ी खीर है।"

—'शिकागो वक्तृता' से उद्धृत

स्वामीजी की प्रधान शिष्या भगिनी निवेदिता (Miss Margaret Noble) कहती हैं कि स्वामीजी जिस समय शिकागो नगर में निवास करते थे, उस समय किसी भारतीय के साथ साक्षात्कार होने पर, वह चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो — हिन्दू, मुसलमान या पारसी, — उसका बहुत आदर-सत्कार करते थे। वे स्वयं किसी सज्जन के घर पर अतिथि के रूप में निवास करते थे। वहीं पर अपने देश के लोगों को ले जाते थे। गृहस्वामी भी उन लोगों का काफी आदर-सत्कार करते थे और वे भली-

भाँति जानते थे कि उन लोगों का आदर-सम्मान न करने पर स्वामीजी अवश्य ही उनका घर छोड़कर किसी दूसरी जगह चले जाएँगे।

अपने देश के लोगों की निर्धनता और उनका दु:ख-निवारण, उनकी सत्शिक्षा तथा उनके धर्मपरायण होने के सम्बन्ध में स्वामीजी सदैव विचारशील रहते थे। परन्तु वे अपने देशवासियों के लिए जिस प्रकार दु:ख का अनुभव करते थे, आफ्रिकानिवासी निग्रो के लिए भी उसी प्रकार दु:खी रहते थे। भगिनी निवेदिता ने कहा है कि स्वामीजी जिस समय दक्षिणी संयुक्त राष्ट्रों में भ्रमण कर रहे थे, उस समय किसी किसी ने उन्हें आफ्रिका-निवासी (Coloured man) समझकर घर से लौटा दिया था; परन्तु जब उन्होंने सुना कि वे आफ्रिकानिवासी नहीं हैं, वे हिन्दू संन्यासी प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द हैं, तब उन्होंने परम आदर के साथ उन्हें ले जाकर उनकी सेवा की। उन्होंने कहा, "स्वामी, जब हमने आप से पूछा, 'क्या आप आफ्रिकानिवासी हैं?' उस समय आप कुछ भी न कहकर चले क्यों गए थे?"

स्वामीजी बोले, "क्यों, आफ्रिकानिवासी निग्रो क्या मेरे भाई नहीं हैं?" निग्रो तथा स्वदेशवासियों की सेवा एक-जैसी होनी चाहिए और चूँकि स्वदेशवासियों के बीच हमें रहना है इसलिए उनकी सेवा पहले। इसी का नाम अनासक्त सेवा है। इसी का नाम कर्मयोग है। सभी लोग कर्म करते हैं, परन्तु कर्मयोग है बड़ा कठिन। सब छोड़कर बहुत दिनों तक एकान्त में ईश्वर का ध्यान-चिन्तन किए बिना स्वदेश का ऐसा उपकार नहीं किया जा सकता। 'मेरा देश' कहकर नहीं, क्योंकि तब तो माया में फँसना हुआ; पर 'ये लोग तुम्हारे (ईश्वर के)

हैं' इसलिए इनकी सेवा करूँगा। तुम्हारा निर्देश है, इसीलिए देश की सेवा करूँगा; तुम्हारा ही यह काम है —— मैं तुम्हारा दास हूँ इसीलिए इस व्रत का पालन कर रहा हूँ, सफलता मिले या असफलता हो, यह तुम जानो; यह सब मेरे नाम के लिए नहीं, इससे तुम्हारी ही महिमा प्रकट होगी —— इसलिए।

वास्तविक स्वदेश-प्रेम (Ideal patriotism) इसे ही कहते हैं, —— इसीलिए लोक-शिक्षा के उद्देश्य से स्वामीजी ने इतने कठिन व्रत का अवलम्बन किया था। जिनके घर-बार और परिवार हैं, कभी ईश्वर के लिए जो व्याकुल नहीं हुए, जो 'त्याग' शब्द को सुनकर मुस्कराते हैं, जिनका मन सदा कामिनी-कांचन और ऐहिक मान-सम्मान की ओर लगा रहता है, जो लोग 'ईश्वर-दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है' इस बात को सुनकर विस्मित हो उठते हैं, वे स्वदेश-प्रेम के इस महान् आदर्श को क्या जानें? स्वामीजी स्वदेश के लिए आँसू बहाते थे अवश्य, परन्तु साथ ही यह भी भूलते न थे कि इस अनित्य संसार में ईश्वर ही वस्तु है, शेष सभी अवस्तु। स्वामीजी विलायत से लौटने के बाद हिमालय के दर्शन के लिए अलमोड़ा पधारे थे। अलमोड़ानिवासी उन्हें साक्षात् नारायण मानकर उनकी पूजा करने लगे। स्वामीजी नगाधिराज देवात्मा हिमालय पर्वत के अत्युच्च श्रृंगों को देखकर भावमग्न हो गए। उन्होंने कहा, ——

"... मेरी अब यही इच्छा है कि मैं अपने जीवन के शेष दिन इसी गिरिराज में कहीं पर व्यतीत कर दूँ, जहाँ अनेकों ऋषि रह चुके हैं, जहाँ दर्शनशास्त्र का जन्म हुआ था...। यहाँ आते समय जैसे जैसे गिरिराज की एक चोटी के बाद दूसरी चोटी मेरी दृष्टि के सामने आती गई वैसे वैसे मेरी कार्य करने की समस्त इच्छाएँ

तथा भाव, जो मेरे मस्तिष्क में वर्षों से भरे हुए थे, धीरे धीरे शान्त-से होने लगे...और मेरा मन एकदम उसी अनन्त भाव की ओर खिंच गया जिसकी शिक्षा हमें गिरिराज हिमालय सदैव से देते रहे हैं, जो इस स्थान की वायु तक में भरा हुआ है तथा जिसका निनाद मैं आज भी यहाँ के कलकल बहनेवाले झरनों में सुनता हूँ, और वह भाव है — त्याग।

" 'सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।'

"अर्थात इस संसार में प्रत्येक वस्तु में भय भरा है, यह भय केवल वैराग्य से ही दूर हो सकता है, इसी से मनुष्य निर्भय हो सकता है।...

"भविष्य में शक्तिशाली आत्माएँ इस गिरिराज की ओर आकर्षित होकर चली आएँगी। यह उस समय होगा जब कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के आपस के झगड़े नष्ट हो जाएँगे, जब रूढ़ियों के सम्बन्ध का वैमनस्य नष्ट हो जाएगा, जब हमारे और तुम्हारे धर्म सम्बन्धी झगड़े बिलकुल दूर हो जाएँगे तथा जब मनुष्यमात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वयं में परमेश्वर की अनुभूति, और शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है। यह जानकर कि यह संसार एक धोखे की टट्टी है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है ईश्वर की उपासना — केवल ईश्वर की उपासना — तीव्र विरागी यहाँ आएँगे।..."

—'भारत में विवेकानन्द' से उद्धृत

श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, 'अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर जो इच्छा हो, करो।' स्वामी विवेकानन्द अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर कर्म-क्षेत्र में उतर पड़े थे। संन्यासी को फिर घर, धन, परिवार

आत्मीय, स्वजन, स्वदेश, विदेश से क्या प्रयोजन? याज्ञवल्क्यने मैत्रेयी से कहा था, 'ईश्वर को न जानने पर इन सब धन-विद्याओं से क्या होगा? हे मैत्रेयी, पहले उन्हें जानो, बाद में दूसरी बात।' स्वामीजी ने दुनिया को यही सिखाया। उन्होंने कहा, हे पृथ्वी भर के निवासियो! पहले विषय का त्याग कर निर्जन में भगवान की आराधना करो, उसके बाद जो चाहो, करो, किसी में दोष नहीं। चाहे स्वदेश की सेवा करो या परिवार का पालन करो, किसी से दोष न होगा; क्योंकि तुम उस समय समझोगे कि सर्वभूतों में वे ही विद्यमान हैं, उनको छोड़ और कुछ भी नहीं है— परिवार, स्वदेश उनसे अलग नहीं हैं। भगवान के साक्षात्कार करने के बाद देखोगे, वे ही सर्वत्र विद्यमान हैं। वशिष्ठ ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा था, 'राम, तुम संसार को छोड़ना चाहते हो, आओ, मेरे साथ विचार करो; यदि ईश्वर इस संसार से अलग हों तो इसे त्याग देना।'* श्रीरामचन्द्र ने आत्मा का साक्षात्कार किया था; इसीलिए चुप रह गए। श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, 'छुरे को चलाना सीखकर हाथ में छुरा लो।' स्वामी विवेकानन्द ने दिखा दिया कि वास्तविक कर्मयोगी किसे कहते हैं। स्वामीजी जानते थे कि देश के दुःखियों की धन द्वारा सहायता करने से बढ़कर अनेक अन्य महान् कार्य हैं। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करा देना मुख्य कार्य है। उसके बाद विद्यादान, उसके बाद जीवनदान, उसके बाद अन्नवस्त्र-दान। संसार दुःखपूर्ण है। इस दुःख को तुम कितने दिनों के लिए मिटाओगे? श्रीरामकृष्णदेव ने कृष्णदास पाल † से पूछा था, "अच्छा, जीवन का उद्देश्य

* योगवाशिष्ठ

† श्रीकृष्णदास पाल ने दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन किया था।

क्या है ? "

कृष्णदास ने कहा था, " मेरी राय में दुनिया का उपकार करना, जगत् के दुःख को दूर करना । " श्रीरामकृष्ण खेद के साथ बोले थे, " तुम्हारी ऐसी विधवा-पुत्र † जैसी बुद्धि क्यों ?— जगत् के दुःखों का नाश तुम करोगे ? क्या जगत् इतना सा ही है ? बरसात में गंगाजी में केंकड़े होते हैं, जानते हो ? इसी प्रकार असख्य जगत् हैं। इस विश्वजगत् के जो अधिपति हैं, वे सभी की खबर ले रहे हैं। उन्हें पहले जानना— यही जीवन का उद्देश्य है। उसके बाद चाहे जो करना । " स्वामीजी ने भी एक स्थान में कहा है,—

" . . . केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही ऐसा है जो हमारे दुःखों को सदा के लिए नष्ट कर सकता है; अन्य किसी प्रकार के ज्ञान से तो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अल्प समय के लिए ही होती है । . . . जो मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान देता है, वही मानव समाज का सबसे बड़ा हितैषी है । . . . . . . आध्यात्मिक सहायता के बाद मानसिक सहायता का स्थान आता है । ज्ञान का दान देना, भोजन तथा वस्त्र के दान से कहीं श्रेष्ठ है । इसके बाद है जीवन-दान और चौथा है अन्न-दान । . . . . . . "

— 'कर्मयोग' से उद्धृत

ईश्वर का दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है, और इस देश की यही एक विशेषता है । पहले यह और उसके बाद दूसरी बातें । पहले से ही राजनीति की बातें करने से न चलेगा, पहले एकचित्त होकर भगवान का ध्यान-चिन्तन करो, हृदय के बीच में उनके

† विधवा-पुत्र जैसी बुद्धि अर्थात् हीन बुद्धि; क्योंकि ऐसे लड़के अनेक प्रकार के नीच उपाय से मनुष्य बनते हैं; दूसरों की खुशामद आदि करके ।

अनुपम रूप का दर्शन करो । उन्हें प्राप्त करने के बाद तब स्वदेश का कल्याण कर सकोगे; क्योंकि उस समय तुम्हारा मन अनासक्त होगा । 'मेरा देश' कहकर सेवा नहीं—— 'सर्वभूतों में ईश्वर हैं' यह कहकर उनकी सेवा कर सकोगे । उस समय स्वदेश-विदेश की भेद-बुद्धि नहीं रहेगी । उस समय ठीक समझा जा सकेगा कि जीव का कल्याण किससे होता है । श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, "जो लोग दाँव खेलते हैं, वे खेल की चाल ठीक ठीक समझ नहीं सकते । जो लोग खेल से अलग रहकर पास बैठे-बैठे खेल देखते रहते हैं, वे दूर से अच्छी चाल दे सकते हैं ।" कारण देखनेवाला खेल में आसक्त नहीं है । एकान्त में बहुत दिनों तक साधना करके राग-द्वेष से मुक्त उदासीन अनासक्त जीवन्मुक्त महापुरुष ने जो कुछ उपलब्धि की है उसके सामने उन्हें और कुछ भी अच्छा नहीं लगता——

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।— गीता ।

हिन्दुओं की राजनीति, समाजनीति, ये सभी धर्मशास्त्र हैं । मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर आदि महापुरुष इन सब धर्मशास्त्रों के प्रणेता हैं । उन्हें किसी भी चीज़ की आवश्यकता नहीं थी । फिर भी, भगवान का निर्देश पाकर, गृहस्थों के लिए, उन्होंने शास्त्रों की रचना की है । वे उदासीन रहकर दाँव-खेल की चाल बता दे रहे हैं, इसीलिए देश-काल-पात्र की दृष्टि से उनकी बातों में एक भी भूल होने की सम्भावना नहीं है ।

स्वामी विवेकानन्द भी कर्मयोगी हैं । उन्होंने अनासक्त होकर परोपकार-व्रतरूपी, जीव-सेवारूपी कर्म किया है; इसीलिए कर्मियों के सम्बन्ध में उनका इतना मूल्य है । उन्होंने अनासक्त होकर

इस देश का कल्याण किया है, जिस प्रकार प्राचीन काल के महापुरुषगण जीव के मंगल के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। इस निष्काम धर्म के पालन के लिए हम भी उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण कर सकें तो कितना अच्छा हो! परन्तु यह बात है बहुत कठिन। पहले भगवान को प्राप्त करना होगा। इसके लिए स्वामी विवेकानन्दजी की तरह त्याग और तपस्या करनी होगी। तब यह अधिकार प्राप्त हो सकता है।

धन्य हो तुम त्यागी वीर महापुरुष! तुमने वास्तव में गुरुदेव के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया है। गुरुदेव का महामंत्र—पहले ईश्वर-प्राप्ति, उसके बाद दूसरी बात—तुम्हीं ने साधित किया है। तुम्हीं ने समझा था, ईश्वर छोड़ने पर यह संसार यथार्थ में स्वप्न की तरह है, गोरख-धन्धा है। इसीलिए सब कुछ छोड़कर तुमने पहले ईश्वर-प्राप्ति की साधना की थी। जब तुमने देखा, सर्व वस्तुओं के प्राण वे ही हैं, जब तुमने देखा उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, तब फिर इस संसार में तुमने मन लगाया। तब हे महायोगिन्! सर्वभूतों में स्थित उसी हरि की सेवा के लिए तुम फिर कर्मक्षेत्र में उतर आए। उस समय सभी तुम्हारे गम्भीर असीम प्रेम के अधिकारी बने—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, विदेशी, स्वदेशवासी, धनी, निर्धन, नर, नारी सभी को तुमने प्रेमालिंगन-दान किया है। तुमने नारद, जनक आदि की तरह लोक-शिक्षा के लिए कर्म किया है।

(५)

ईश्वर साकार हैं या निराकार

एक दिन स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन शिष्यों को साथ लेकर दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने

गए । केशव के साथ निराकार के सम्बन्ध में अनेक बातें होती थीं । श्रीरामकृष्णदेव उनसे कहा करते थे, "मैं प्रतिमा में मिट्टी या पत्थर की काली नहीं देखता, मैं तो उसमें चिन्मयी काली देखता हूँ । जो ब्रह्म हैं, वे ही काली हैं । वे जिस समय क्रियरहित हैं, उस समय ब्रह्म; जब सृष्टि-स्थिति-प्रलय करती हैं, उस समय काली, अर्थात् जो काल के साथ रमण करती हैं । काल अर्थात् ब्रह्म ।" उन दोनों में एक दिन निम्नलिखित वार्तालाप हो रहा था:——

श्रीरामकृष्ण– (केशव के प्रति)– किस प्रकार, जानते हो ? मानो सच्चिदानन्दरूपी समुद्र है, कहीं किनारा नहीं है । भक्तिरूपी हिम के कारण इस समुद्र में स्थान-स्थान पर जल बरफ के आकार में जम जाता है । अर्थात् भक्त के पास वे प्रत्यक्ष होकर कभी कभी साकार रूप में दर्शन देते हैं । फिर ब्रम्हज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर वह बरफ गल जाती है—— अर्थात् 'ब्रम्ह सत्य जगत् मिथ्या' इस विचार के बाद समाधि होने पर रूप आदि सब अदृश्य हो जाते हैं । उस समय वे क्या हैं, मुख से कहा नहीं जा सकता——मन, बुद्धि, अहं के द्वारा उन्हें पकड़ा नहीं जा सकता ।

"जो व्यक्ति एक सत्य को जानता है, वह दूसरे को भी जान सकता है । जो निराकार को जान सकता है, वह साकार को भी जान सकता है । जब तुम उस मुहल्ले मे गए ही नहीं तो कहाँ श्यामपुकुर है, और कहाँ तेलीपाड़ा, कैसे जानोगे ?"

श्रीरामकृष्णदेव यह भी समझा रहे हैं कि सभी निराकार के अधिकारी नहीं हैं, इसीलिए साकार पूजा की विशष आवश्यकता है । उन्होंने कहा,——

"एक माँ के पाँच लड़के हैं। माँ ने कई प्रकार की तरकारियाँ बनाई हैं, जिसके पेट में जो सहन होता हो।"

इस देश में साकार पूजा होती है। ईसाई मिशनरीगण अमरीका व यूरोप में इस देश के निवासियों को असभ्य जाति कहकर वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि भारतीयगण मूर्ति की पूजा करते हैं, और उनकी बड़ी दयनीय स्थिति है।

स्वामी विवेकानन्द ने इस साकार पूजा का अर्थ अमरीका में पहले पहल समझाया। उन्होंने कहा कि भारतवर्ष में 'मूर्ति' की पूजा नहीं होती।—

"... मैं पहले ही तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष में अनेकेश्वरवाद नहीं है। प्रत्येक मन्दिर में यदि कोई खड़ा होकर सुने, तो वह यही पाएगा कि भक्तगण सर्वव्यापित्व से लेकर ईश्वर के सभी गुणों का आरोप उन मूर्तियों में करते हैं। ..."

—'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

स्वामीजी मनोविज्ञान (Psychology) की सहायता से समझाने लगे कि ईश्वर का चिन्तन करने में साकार चिन्तन को छोड़ अन्य कुछ भी नहीं आ सकता। उन्होंने कहा—

"... ईश्वर यदि सर्वव्यापी है तो फिर ईसाई लोग गिरजाघर में क्यों उसकी आराधना के लिए जाते हैं? क्यों वे क्रास को इतना पवित्र मानते हैं? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुँह क्यों करते हैं? कैथलिक ईसाइयों के गिरजाघरों में इतनी बहुत सी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? और प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों के हृदय में प्रार्थना के समय इतनी बहुत सी भावमयी मूर्तियाँ क्यों रहा करती हैं? मेरे भाइयो! मन में किसी मूर्ति के बिना

आए कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना कि श्वास लिए बिना जीवित रहना। ... सच पूछिऐ तो दुनिया के प्रायः सभी मनुष्य सर्वव्यापित्व का क्या अर्थ समझते हैं ?—कुछ नहीं ! ... क्या परमेश्वर का भी कोई क्षेत्रफल है ? अगर नहीं, तो जिस समय हम सर्वव्यापी शब्द का उच्चारण करते हैं, उस समय विस्तृत आकाश या विशाल भूमिखण्ड की कल्पना हम अपने मन में लाते हैं। इससे अधिक और कुछ नहीं। ..."

—'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

स्वामीजी ने और भी कहा, "अधिकारियों की भिन्नता के अनुसार साकार पूजा और निराकार पूजा होती है। साकार पूजा कुसंस्कार नहीं है— मिथ्या नहीं है, वह एक निम्न श्रेणी का सत्य है।"—

"...अगर कोई मनुष्य अपने ब्रह्मभाव को मूर्ति के सहारे अधिक सरलता से अनुभव कर सकता है, तो क्या उसे पाप कहना ठीक होगा ? और जब वह उस अवस्था से परे पहुँच गया है, तब भी उसके लिए मूर्तिपूजा को भ्रमात्मक कहना उचित नहीं है। हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य असत्य से सत्य की ओर नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर हो रहा है। ..."

—'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

स्वामीजी ने कहा, सभी के लिए एक नियम नहीं हो सकता। ईश्वर एक हैं, परन्तु वे भक्तों के पास अनेक रूपों में प्रकट हो रहे हैं। हिन्दू इस बात को समझते हैं।—

"...विभिन्नता में एकता यही प्रकृति की रचना है और हिन्दुओं ने इसे भलीभाँति पहचाना है। अन्य धर्मों में कुछ निर्दिष्ट मत-

वाद विधिबद्ध कर दिए गए हैं और सारे समाज को उन्हें मानना अनिवार्य कर दिया जाता है। वे तो समाज के सामने केवल एक ही नाम की कमीज़ रख देते हैं, जो राम, श्याम, हरि सब के शरीर में जबरदस्ती ठीक होनी चाहिए। और यदि वह कमीज़ राम या श्याम के शरीर में ठीक नहीं बैठती, तो उसे नंगे बदन--बिना कमीज़ के ही रहना होगा। हिन्दुओं ने यह जान लिया है कि निरपेक्ष ब्रह्म-तत्त्व की उपलब्धि, धारणा या प्रकाश केवल सापेक्ष के सहारे से ही हो सकता है।..."

--'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

(६)

श्रीरामकृष्ण और पापवाद

स्वामीजी के गुरुदेव भगवान श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "ईश्वर का नाम लेने से तथा आन्तरिकता के साथ उनका चिन्तन करने से पाप भाग जाता है-- जिस प्रकार रूई का पहाड़ आग लगते ही क्षण भर में जल जाता है, अथवा वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी ताली बजाते ही उड़ जाते हैं।" एक दिन केशव बाबू के साथ वार्तालाप हो रहा था --

श्रीरामकृष्ण-(केशव के प्रति)- मन से ही बद्ध और मन से ही मुक्त है। मैं मुक्त पुरुष हूँ,--संसार में रहूँ या जंगल में-- मुझे कैसा बन्धन ? मैं ईश्वर की सन्तान हूँ, राजाधिराज का पुत्र हूँ, मुझे भला कौन बाँधकर रखेगा ? यदि साँप काटे, तो 'विष नहीं है, विष नहीं है' ऐसा जोर देकर कहने से विष उतर जाता है। उसी प्रकार 'मैं बद्ध नहीं हूँ,' 'मैं बद्ध नहीं हूँ,' 'मैं मुक्त हूँ' इस बात को ज़ोर देकर कहते कहते वैसा ही बन जाता है-- मुक्त ही हो जाता है।

"किसी ने ईसाइयों की एक पुस्तक (Bible) दी थी। मैंने उसे पढ़कर सुनाने के लिए कहा, उसमें केवल 'पाप' और 'पाप' था !

"तुम्हारे ब्राह्म समाज में भी केवल 'पाप' और 'पाप' है! जो बार बार कहता है 'मैं बद्ध हूँ' 'मैं बद्ध हूँ' वह अन्त में बद्ध ही हो जाता है। जो दिन-रात 'मैं पापी हूँ' 'मैं पापी हूँ' ऐसा कहता रहता है वह वैसा ही बन जाता है !

"ईश्वर के नाम पर ऐसा विश्वास होना चाहिए— 'क्या ! मैंने ईश्वर का नाम लिया, अब भी मेरा पाप रहेगा ? मेरा अब बन्धन क्या है, पाप क्या है ?' कृष्णकिशोर परम हिन्दू सदाचारी ब्राह्मण है। वह वृन्दावन गया था। एक दिन घूमते-घूमते उसे प्यास लगी। एक कुएँ के पास जाकर देखा— एक आदमी खड़ा है। उससे कहा, 'अरे, तू मुझे एक लोटा जल दे सकेगा ? तेरी क्या जात है ?' उसने कहा, 'पण्डितजी, मैं नीच जाति का हूँ—मोची हूँ।' कृष्णकिशोर ने कहा, 'तू 'शिव' कह और जल खींच दे।'

"भगवान का नाम लेने से देह-मन शुद्ध हो जाते हैं। केवल 'पाप' और 'नरक' की ये सब बातें क्यों ? एक बार कहो कि मैंने जो कुछ अनुचित काम किया है वह अब और नहीं करूँगा। साथ ही ईश्वर के नाम पर विश्वास करो।"

स्वामीजी ने भी ईसाइयों के इस पापवाद के सम्बन्ध में कहा है, "पापी क्यों ? तुम लोग अमृत के अधिकारी हो (Sons of Immortal Bliss) ! तुम्हारे धर्माचार्य जो दिनरात नरकाग्नि की बातें बताया करते हैं, उसे मत सुनो ?"—

"...तुम तो ईश्वर की सन्तान हो, अमर आनन्द के अधिकारी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। तुम इस मर्त्यभूमि पर देवता हो, तुम पापी ? मनुष्य को पापी कहना ही महा पाप है। विशुद्ध मानव आत्मा को तो यह मिथ्या कलंक लगाना हैं। उठो! आओ! ऐ सिंहो! तुम भेड़ हो इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दो। तुम तो जरा-मरण-रहित एवं नित्यानन्दस्वरूप आत्मा हो। तुम जड़ पदार्थ नहीं हो। तुम शरीर नहीं हो। जड़ पदार्थ तो तुम्हारा गुलाम है, तुम उसके गुलाम नहीं।..."

——'हिन्दू धर्म' से उद्धृत

अमरीका में हार्टफोर्ड नामक स्थान पर स्वामीजी भाषण देने के लिए आमंत्रित हुए थे। यहाँ के अमरीकन कॉनसल (Consul) पैटर्सन उस समय वहाँ पर उपस्थित थे तथा सभापति थे। स्वामीजी ने ईसाइयों के पापवाद के सम्बन्ध में कहा था——

"...हम क्या लोगों को घुटने टेककर यह चिल्लाने की सलाह दें कि 'ओह, हम कितने पापी हैं!' नहीं, प्रत्युत आओ, हम उन्हें उनके दैवी स्वरूप का ख्याल करा दें। ...यदि कमरा अंधेरा हो तो क्या तुम अपनी छाती पीटते हुए यह चिल्लाते जाते हो कि 'कमरा अंधेरा है!' 'कमरा अंधेरा है!' नहीं, उजाला करने का एकमात्र उपाय है रोशनी जलाना, और तब अंधेरा भाग जाता है। उसी प्रकार आत्मज्योति के दर्शन का एकमात्र उपाय है अन्दर में आध्यात्मिक ज्योति जलाना, और तब पाप और अपवित्रता रूपी अंधकार दूर भाग जाएगा। अपने उच्चतर स्वरूप का चिन्तन करो, क्षुद्र स्वरूप का नहीं।"

फिर स्वामीजी ने एक कहानी * सुनाई, जो उन्होंने श्रीराम-

* यह कहानी सांख्यदर्शन में है——आख्यायिका-प्रकरण।

कृष्णदेव से सुनी थी— "एक बाघिनी ने बकरों के एक झुण्ड पर आक्रमण किया। वह पूर्ण गर्भवती थी, इसलिए कूदते समय उसे बच्चा पैदा हो गया। बाघिनी वहीं मर गई। बच्चा बकरों के साथ पलने लगा और उनके साथ घास खाने लगा तथा 'में' 'में' भी कहने लगा। कुछ दिनों बाद वह बच्चा बड़ा हुआ। एक दिन उस बकरों के झुण्ड पर एक बाघ ने आक्रमण किया। वह बाघ यह देखकर हैरान रह गया कि एक बाघ घास खा रहा है तथा 'में' 'में' कर रहा है और उसे देखकर बकरों की तरह भाग रहा है। तब वह उसे पकड़कर जल के पास ले गया और कहा, 'देख, तू भी बाघ है, तू घास क्यों खा रहा है और 'में' 'में' क्यों कर रहा है?— देख, मैं कैसा माँस खाता हूँ। ले तू भी खा। और जल में देख, तेरा चेहरा भी कैसा बिलकुल मेरे ही जैसा है!' उस छोटे बाघ ने वह सब देखा, माँस का आस्वादन किया और अपना असली रूप पहचान गया।"

(७)

कामिनीकांचन-त्याग—संन्यास

एक दिन श्रीरामकृष्ण और विजयकृष्ण गोस्वामी दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में वार्तालाप कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण– (विजय के प्रति)– कामिनी-कांचन का त्याग किए बिना लोक-शिक्षा नहीं दी जा सकती। देखो न, यही न कर सकने के कारण केशव सेन का अन्त में क्या हुआ! तुम स्वयं ऐश्वर्य में, कामिनी-कांचन के भीतर रहकर यदि कहो 'संसार अनित्य है, ईश्वर ही नित्य है,' तो कौन तुम्हारी बात सुनेगा? तुम अपने पास तो गुड़ का घड़ा रखे हुए हो, और दूसरों से कह रहे हो— 'गुड़ न खाना!' इसीलिए सोच-

समझकर चैतन्यदेव ने संसार छोड़ा था। नहीं तो जीव का उद्धार नहीं होता।

विजय– जी हाँ, चैतन्यदेव ने कहा था, 'कफ हटाने के लिए पिप्पल-खण्ड * तैयार किया, परन्तु परिणाम उल्टा हुआ, कफ बढ़ गया।' नवद्वीप के अनेक लोग हँसी उड़ाने लगे और कहने लगे, 'निमाई पण्डित मजे में है जी, सुन्दर स्त्री, मान-सम्मान, धन की भी कमी नहीं है, बड़े मजे में है।'

श्रीरामकृष्ण– केशव यदि त्यागी होता, तो अनेक काम होते। बकरे के बदन पर घाव रहने से वह देव-सेवा के काम में नहीं आता, उसकी बलि नहीं दी जाती। त्यागी हुए बिना व्यक्ति लोक-शिक्षा का अधिकारी नहीं बनता। गृहस्थ होने पर कितने लोग उसकी बात सुनेंगे ?

स्वामी विवेकानन्द कामिनी-कांचनत्यागी हैं, इसीलिए उनका ईश्वर के विषय में लोक-शिक्षा देने का अधिकार है। विवेकानन्दजी वेदान्त तथा अंग्रेजी भाषा व दर्शन आदि के अग्रगण्य पण्डित हैं; वे असाधारण भाषणपटु हैं; क्या उनका माहात्म्य इतना ही है ? इसका उत्तर श्रीरामकृष्ण ने दिया था। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में भक्तों को सम्बोधित कर श्रीरामकृष्णदेव ने १८८२ ई० में स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में कहा था—

"इस लड़के को देख रहे हो, यहाँ पर एक तरह का है। उत्पाती लड़के जब बाप के पास बैठते हैं तो मानो भीगी बिल्ली बन जाते हैं। फिर चाँदनी में जब खेलते हैं, उस समय उनका रूप दूसरा ही होता है। ये लोग नित्य सिद्ध के स्तर के हैं। ये लोग कभी संसार में आबद्ध नहीं होते। थोड़ी उम्र में ही इन्हें

* पिप्पल-खण्ड का मतलब है नवद्वीप में हरिनाम का प्रचार।

चैतन्य होता है और भगवान की ओर चले जाते हैं। ये लोग लोक-शिक्षा के लिए संसार में आते हैं, इन्हें संसार की कोई भी चीज़ अच्छी नहीं लगती—ये कभी भी कामिनी-कांचन में आसक्त नहीं होते।

"वेद में 'होमा' पक्षी का उल्लेख है। आकाश में खूब ऊँचाई पर वह चिड़िया रहती है। वहीं आकाश में ही वह अण्डा देती है। अण्डा देते ही अण्डा नीचे गिरने लगता है। अण्डा गिरते गिरते फूट जाता है। तब बच्चा गिरने लगता है। गिरते गिरते उसकी आँखें खुल जाती हैं और पंख निकल आते हैं। आँखें खुलते ही वह देखता है कि वह गिर रहा है और जमीन पर गिरते ही उसकी देह चकनाचूर हो जाएगी। तब वह पक्षी अपनी माँ की ओर देखता है, और ऊपर की ओर उड़ान लेता है और ऊपर उठ जाता है।"

विवेकानन्द वही 'होमा पक्षी' हैं—उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है उड़कर माँ के पास ऊपर उठ जाना—देह के जमीन से टकराने के पहले ही अर्थात् संसार से सम्बन्ध होने से पहले ही, ईश्वरलाभ के पथ पर अग्रसर हो जाना।

श्रीरामकृष्ण ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से कहा था,—"पाण्डित्य! केवल पाण्डित्य से ही क्या होगा? गिद्ध भी काफी ऊँचा उड़ता है, परन्तु उसकी दृष्टि रहती है जमीन पर मुर्दों की ओर—कहाँ सड़ा मुर्दा पड़ा है। पण्डित अनेक श्लोक झाड़ सकते हैं, परन्तु मन कहाँ है? यदि ईश्वर के चरणकमलों में हो, तो मैं उसे सम्मान देता हूँ, यदि कामिनी-कांचन की ओर हो, तो वह मुझे कूड़ा-कर्कट-जैसा लगता है।"

स्वामी विवेकानन्द केवल पण्डित ही नहीं, वे साधु महापुरुष

थे। केवल पाण्डित्य के लिए ही अंग्रेजों तथा अमरीकानिवासियों ने भृत्यों की तरह उनकी सेवा नहीं की थी। उन्होंने जान लिया था कि ये एक दूसरे ही प्रकार के व्यक्ति हैं। अन्य सब लोग सम्मान, धन, इन्द्रियसुख, पण्डिताई आदि लेकर रहते हैं, पर इनका लक्ष्य है ईश्वरप्राप्ति।

'संन्यासी के गीत' में स्वामीजी ने कहा है कि संन्यासी कामिनी-कांचन का त्याग करेगा—

"...करते निवास जिस उर में मद काम लोभ औ' मत्सर,
उसमें न कभी हो सकता आलोकित सत्य-प्रभाकर;
भार्यत्व कामिनी में जो देखा करता कामुक बन,
वह पूर्ण नहीं हो सकता, उसका न छूटता बन्धन;
लोलुपता है जिस नर की स्वल्पातिस्वल्प भी धन में,
वह मुक्त नहीं हो सकता, रहता अपार बन्धन में;
जंजीर क्रोध की जिसको रखती है सदा जकड़कर,
वह पार नहीं कर सकता दुस्तर माया का सागर।
इन सभी वासनाओं का अतएव त्याग तुम कर दो,
सानन्द वायुमण्डल को बस एक गूँज से भर दो—
'ॐ तत् सत् ॐ!' ..."

—'कवितावली' से उद्धृत

अमरीका में उन्हें प्रलोभन कम नहीं मिला था। इधर विश्व-व्यापी यश, उस पर सदा ही परम सुन्दरी उच्च वंशीय सुशिक्षित महिलाएँ उनसे वार्तालाप तथा उनकी सेवा-टहल किया करती थीं। स्वामीजी में इतनी मोहिनी शक्ति थी कि उनमें से कई उनसे विवाह करना चाहती थीं। एक अत्यन्त धनी व्यक्ति की लड़की ने तो एक दिन आकर उनसे यहाँ तक कह दिया,

"स्वामी ! मेरा सब कुछ एव स्वयं को भी मैं आपको सौंपती हूँ।" स्वामीजी ने उसके उत्तर में कहा, "भद्रे, मैं संन्यासी हूँ, मुझे विवाह नहीं करना है। सभी स्त्रियाँ मेरी माँ-जैसी हैं।"

धन्य हो वीर ! तुम गुरुदेव के योग्य ही शिष्य हो ! तुम्हारी देह में वास्तव में पृथ्वी की मिट्टी नहीं लगी है, तुम्हारी देह में कामिनी-कांचन का दाग तक नहीं लगा है। तुम प्रलोभन के देश से दूर न भागकर, उसी में रहकर, श्री की नगरी में रहकर ईश्वर के पथ में अग्रसर हुए हो ! तुमने साधारण जीव की तरह दिन बिताना नहीं चाहा। तुम देवभाव का जीता-जागता उदाहरण छोड़कर इस मर्त्यलोक को छोड़ गए हो !

(८)

कर्मयोग और दरिद्रनारायण-सेवा

श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे, कर्म सभी को करना पड़ता है। ज्ञान, भक्ति और कर्म—ये तीन ईश्वर के पास पहुँचने के पथ हैं। गीता में है,— साधु-गृहस्थ पहले-पहल चित्तशुद्धि के लिए गुरु के उपदेशानुसार अनासक्त होकर कर्म करे। 'मैं करनेवाला हूँ' यह अज्ञान है, 'धन-जन, काम-काज मेरे हैं'— यह भी अज्ञान है। गीता में है, अपने को अकर्ता मानकर, ईश्वर को फल सौंपकर काम करना चाहिए। गीता में यह भी है कि सिद्धि प्राप्त करने के बाद भी प्रत्यादिष्ट होकर कोई कोई, जैसे जनक आदि, कर्म करते हैं। गीता में जो कर्मयोग है, वह यही है। श्रीरामकृष्णदेव भी यही कहते थे।

इसीलिए कर्मयोग बहुत कठिन है। बहुत दिन निर्जन में ईश्वर की साधना किए बिना, अनासक्त होकर कर्म नहीं किया जा सकता। साधना की अवस्था में श्रीगुरु के उपदेश की सदा ही

आवश्यकता है। उस समय कच्ची स्थिति रहती है इसलिए किस ओर से आसक्ति आ पड़ेगी, जाना नहीं जाता। मन में सोच रहा हूँ, 'मैं अनासक्त होकर, ईश्वर को फल समर्पण कर, जीवसेवा, दान आदि कर्म कर रहा हूँ।' परन्तु वास्तव में, सम्भव है, मैं यश के लिए ही यह सब कर रहा हूँ, और खुद नहीं समझ पा रहा हूँ। जो आदमी गृहस्थ है, जिसके घर, परिवार, आत्मीय, स्वजन और अपना कहने की चीज़ें हैं, उसे देखकर निष्काम कर्म, अनासक्ति और दूसरे के लिए स्वार्थ का त्याग, ये सब बातें सीखना बहुत कठिन है।

परन्तु सर्वत्यागी, कामिनी-कांचन-त्यागी सिद्ध महापुरुष यदि निष्काम कर्म करके दिखाएँ तो लोग आसानी से उसे समझ सकते हैं और उनके चरण-चिह्नों का अनुसरण कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानन्द कामिनी-कांचन त्यागी थे। उन्होंने एकान्त में श्रीगुरु के उपदेश से बहुत दिनों तक साधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। वे वास्तव में कर्मयोग के अधिकारी थे। वे संन्यासी थे; वे चाहते तो ऋषियों की तरह अथवा अपने गुरुदेव श्रीराम-कृष्णदेव की तरह केवल ज्ञान-भक्ति लेकर रह सकते थे। परन्तु उनका जीवन केवल त्याग का उदाहरण दिखाने के लिए नहीं हुआ था। सांसारिक लोग जिन सब वस्तुओं को ग्रहण करते हैं, उनसे अनासक्त होकर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यह भी नारद शुकदेव तथा जनक आदि की तरह स्वामीजी लोकसंग्रह के लिए दिखा गए हैं। वे धन-सम्पत्ति आदि को काक-विष्ठा की तरह समझते अवश्य थे और स्वयं उनका उपयोग नहीं करते थे, परन्तु फिर भी जीवसेवा के लिए उनका किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसके बारे में उपदेश देकर वे स्वयं भी करके दिखा

गए हैं। उन्होंने विलायत व अमरीका के मित्रों से जो धन एकत्रित किया था, वह सारा धन जीवों के कल्याण के लिए व्यय किया। उन्होंने स्थान स्थान पर —— जैसे कलकत्ते के पास बेलुड़ में, अलमोड़ा के पास मायावती में, काशीधाम में तथा मद्रास आदि स्थानों में —— मठों की स्थापना की। अनेक स्थानों में —— दिनाजपुर, वैद्यनाथ, किशनगढ़, दक्षिणेश्वर आदि स्थानों में —— दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा की। दुर्भिक्ष के समय अनाथाश्रम बनाकर मातृ-पितृहीन अनाथ बालक-बालिकाओं की रक्षा की। राजपूताना के अन्तर्गत किशनगढ़ नामक स्थान में अनाथाश्रम की स्थापना की। मुरशिदाबाद के निकट (भीवदा) सारगाछी गाँव में तो अभी तक उसी समय का अनाथाश्रम चल रहा है। हरिद्वार के निकट कनखल में रोगपीड़ित साधुओं के लिए स्वामीजी ने सेवाश्रम की स्थापना की। प्लेग के समय रोगियों की विपुल धन व्यय करके सेवा कराई। वे दीन, दुःखी तथा असहायों के लिए अकेले बैठकर रोते थे और मित्रों से कहते थे, "हाय! इन लोगों को इतना कष्ट है कि इन्हें ईश्वर-चिन्तन का अवसर तक नहीं है!"

गुरु से उपदिष्ट कर्मों और नित्य-कर्मों को छोड़, दूसरे कर्म तो बन्धन के कारण हैं। वे संन्यासी थे, उन्हें कर्म की क्या आवश्यकता?

"... 'अपने अपने कर्मों का फल-भोग जगत् में निश्चित'
कहते हैं सब, 'कारण पर हैं सभी कार्य अवलम्बित;
फल अशुभ, अशुभ कर्मों के; शुभ कर्मों के हैं शुभ फल,
किसकी सामर्थ्य बदल दे, यह नियम अटल औ' अविचल?
इस मृत्युलोक में जो भी करता है तनु को धारण,

बन्धन उसके अंगों का होता नैसर्गिक भूषण।'
यह सच है, किन्तु परे जो गुण नाम-रूप से रहता,
वह नित्य मुक्त आत्मा है, स्वच्छन्द सदैव विचरता।
'तत् त्वमसि'—वही तो तुम हो, यह ज्ञान करो हृदयांकित
फिर क्या चिन्ता संन्यासी, सानन्द करो उद्घोषित—
'ॐ तत् सत् ॐ!'..."

—'**कवितावली**' से उद्धृत

केवल लोक-शिक्षा के लिए ईश्वर ने उनसे ये सब कर्म करा लिए। अब साधु या संसारी सभी सीखेंगे कि यदि वे भी कुछ दिन एकान्त में गुरु के उपदेशानुसार साधना करके ईश्वर की भक्ति प्राप्त करें, तो वे भी स्वामीजी की तरह निष्काम कर्म कर सकेंगे; सचमुच में अनासक्त होकर दानादि सत्कर्म कर सकेंगे। स्वामीजी के गुरुदेव श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "हाथ में तेल मलकर कटहल काटने से हाथ न चिपकेगा।" अर्थात एकान्त में साधना के बाद भक्ति प्राप्त करके, ईश्वर का निर्देश पाकर लोक-शिक्षा के लिए यदि संसार के काम में हाथ डाला जाय, तो ईश्वर की कृपा से यथार्थ में निर्लिप्त भाव से काम किया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन को ध्यानपूर्वक देखने से 'एकान्त में साधना' तथा 'लोक-शिक्षा के लिए कर्म' किसे कहते हैं इसका पता लग सकता है।

स्वामी विवेकानन्द के ये सब कर्म लोक-शिक्षा के लिए थे।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि॥

यह गीतोक्त कर्मयोग बहुत ही कठिन है। जनक आदि ने कर्म के द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। श्रीरामकृष्णदेव कहा

करते थे कि जनक ने अपने सांसारिक जीवन के पूर्व, जंगल में एकान्त में बैठकर बहुत कठोर तपस्या की थी। इसीलिए साधुगण ज्ञान और भक्ति का पथ अवलम्बन करके, संसार का कोलाहल छोड़कर एकान्त में ईश्वर-साधन करते हैं। स्वामी विवेकानन्द की तरह उत्तम अधिकारी वीर पुरुष इस कर्मयोग के अधिकारी हैं। वे भगवान को अनुभव करते हैं, और साथ ही लोक-शिक्षा के लिए, ईश्वर का आदेश पाकर संसार में कर्म करते हैं। इस प्रकार के महापुरुष संसार में कितने हैं ? ईश्वर के प्रेम में मतवाले, कामिनी-कांचन का दाग एक भी न लगा हो, परन्तु जीवसेवा के लिए व्यस्त होकर घूम रहे हैं, ऐसे आचार्य कितने देखने में आते हैं ? स्वामीजी ने लन्दन में १० नवम्बर १८९६ को वेदान्त के कर्मयोग की व्याख्या करते हुए गीता का विवरण देते हुए कहा था——

"...और यह आश्चर्य की बात है कि इस उपदेश का केन्द्र है संग्राम-स्थल। यहीं श्रीकृष्ण अर्जुन को इस दर्शन का उपदेश दे रहे हैं और गीता के प्रत्येक पृष्ठ पर यही मत उज्ज्वल रूप से प्रकाशित है—— तीव्र कर्मण्यता, किन्तु उसी के बीच अनन्त शान्तभाव। इसी तत्त्व को कर्मरहस्य कहा गया है और इस अवस्था को पाना ही वेदान्त का लक्ष्य है।..."

——'**व्यावहारिक जीवन में वेदान्त**' से उद्धृत

भाषण में स्वामीजी ने कर्म के बीच शान्त भाव की बात कही है। स्वामीजी रागद्वेष से मुक्त होकर कर्म कर सकते थे, यह केवल उनकी तपस्या के गुण तथा उनकी ईश्वरानुभूति के बल पर ही सम्भव था। सिद्धपुरुष अथवा श्रीकृष्ण की तरह अवतारीपुरुष हुए बिना यह स्थिरता तथा शान्ति प्राप्त नहीं होती।

(९)

स्त्रियों को लेकर साधना (वामाचार) के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी के उपदेश

स्वामी विवेकानन्द एक दिन दक्षिणेश्वर मन्दिर में श्रीरामकृष्ण-देव का दर्शन करने गए थे। भवनाथ व बाबूराम आदि उपस्थित थे। २९ सितम्बर १८८४। घोषपाड़ा तथा पंचनामी के सम्बन्ध में नरेन्द्र ने बात चलाई और पूछा, "स्त्रियों को लेकर वे लोग कैसी साधना करते हैं ?"

श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "ये सब बातें तुझे सुननी न चाहिए। घोषपाड़ा, पंचनामी और भैरव-भैरवी ये लोग ठीक-ठीक साधना नहीं कर सकते, पतन होता है। ये सब पथ मैले हैं, अच्छे पथ नहीं हैं। शुद्ध पथ पर चलना ही ठीक है। वाराणसी में एक व्यक्ति मुझे भैरवी-चक्र में ले गया था। एक-एक भैरव, और एक-एक भैरवी। वे मुझे शराब पीने के लिए कहने लगे। मैंने कहा, 'माँ, मैं शराब छू नहीं सकता।' वे सब शराब पीने लगे। मैंने सोचा, अब शायद जप-ध्यान करेंगे। लेकिन नहीं, मदिरा पीकर नाचना शुरू कर दिया।"

नरेन्द्र से उन्होंने फिर कहा, "बात यह है, मेरा भाव है मातृभाव—सन्तानभाव। मातृभाव अत्यन्त विशुद्ध भाव है, इसमें कोई डर नहीं है। स्त्री-भाव, वीरभाव बहुत कठिन है, ठीक-ठीक रखा नहीं जा सकता, पतन होता है। तुम लोग अपने लोग हो, तुम लोगों से कहता हूँ,—मैंने अन्त में यही समझा है—वे पूर्ण हैं, मैं उनका अंश हूँ। वे प्रभु हैं, मैं उनका दास हूँ। फिर कभी कभी सोचता हूँ, वह ही मैं, मैं ही वह। और भक्ति ही सार है।"

एक दूसरे दिन (९ सितम्बर १८८३ ई०) दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण भक्तों से कह रहे हैं, "मेरा है सन्तान-भाव। अचलानन्द बीच-बीच में यहाँ पर आकर ठहरता था, खूब मदिरा पीता था। स्त्री लेकर साधन को मैं अच्छा नहीं कहता था, इसलिए उसने मुझसे कहा था, 'भला तुम वीर-भाव का साधन क्यों नहीं मानोगे ? तन्त्र में जो है।— शिवजी का लिखा नहीं मानोगे ? उन्होंने (शिवजी ने) सन्तान-भाव भी कहा है, फिर वीर-भाव भी बताया है।'

"मैंने कहा, 'कौन जाने भाई, मुझे वह सब अच्छा नहीं लगता— मेरा सन्तान-भाव ही रहने दो।'

"उस देश में भंगी तेली को इस दल में देखा था— वही औरत लेकर साधन। फिर एक पुरुष के हुए बिना औरत का साधन-भजन न होगा। उस पुरुष को कहते हैं 'रागकृष्ण'। तीन बार पूछता है, 'कृष्ण तूने पा लिया ?' वह औरत भी तीन बार कहती है, 'मैंने कृष्ण पा लिया।'"

एक दूसरे दिन २३ मार्च १८८४ ई० को श्रीरामकृष्ण राखाल, राम आदि भक्तों से कह रहे हैं— "वैष्णवचरण का वामाचारी मत था। मैं जब उधर श्यामबाजार में गया था तो उनसे कहा, 'मेरा मत ऐसा नहीं है।' मेरा मातृभाव है। देखा कि लम्बी लम्बी बातें बनाता है और फिर साथ ही व्यभिचार भी करता है। वे लोग देवपूजा, मूर्तिपूजा, पसन्द नहीं करते। जीवित मनुष्य चाहते हैं। उनमें से कई राधातन्त्र का मत मानते हैं; पृथ्वीतत्त्व, अग्नितत्त्व, जलतत्त्व, वायुतत्त्व, आकाशतत्त्व— विष्ठा, मूत्र, रज, वीर्य, ये ही सब तत्त्व, यह साधन बहुत मैला साधन है; जैसे पैखाने के रास्ते से मकान में प्रवेश करना।"

श्रीरामकृष्ण के उपदेशानुसार स्वामी विवेकानन्द ने भी वामाचार की खूब निन्दा की है। उन्होंने कहा है, "भारतवर्ष के प्रायः सभी स्थानों में विशेष रूप से बंगाल प्रान्त में, गुप्त रूप से अनेक व्यक्ति ऐसी साधना करते हैं। वे वामाचार तन्त्र का प्रमाण दिखाते हैं। उन सब तन्त्रों का त्याग कर लड़कों को उपनिषद, गीता आदि शास्त्र पढ़ने को देना चाहिए।"

स्वामी विवेकानन्द ने विलायत से लौटने के बाद शोभा बाजार के स्व. राधाकान्त देव के देव-मन्दिर में वेदान्त के सम्बन्ध में एक सारगर्भित भाषण दिया था, उसमें औरतों को लेकर साधना करने की निन्दा करके निम्नलिखित बातें कही थीं ——

"...यह घृण्य वामाचार छोड़ो, जो देश का नाश कर रहा है। तुमने भारत के अन्यान्य भाग नहीं देखे। जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज में कितना वामाचार फैला हुआ है, तब उन्नति का इसे बड़ा गर्व रहने पर भी मेरी नज़रों में यह अत्यन्त गिरा हुआ मालूम होता है। इन वामाचार साम्प्रदायों ने मधु-मक्खियों की तरह हमारे बंगाल के समाज को छा लिया है। वे ही, जो दिन को गरजते हुए आचार के सम्बन्ध में प्रचार करते हैं, रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से बाज नहीं आते, और अति भयानक ग्रन्थ समूह उनके कर्म के समर्थक हैं। इन्हीं शास्त्रों की आज्ञा मानकर वे उन घोर दुष्कर्मों में हाथ देते हैं। तुम बंगालियों को यह विदित है। बंगलियों के शास्त्र वामाचार-तन्त्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरों प्रकाशित होते हैं, जिन्हें लेकर तुम अपनी सन्तानों के मन को विषाक्त करते हो, किन्तु उन्हें श्रुतियों की शिक्षा नहीं देते। ऐ कलकत्तावासियो, क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि अनुवादसहित वामाचार-तन्त्रों का यह बीभत्स संग्रह तुम्हारे बालकों

और बालिकाओं के हाथ रखा जाय, उनका चित्त विषविह्वल हो और वे जन्म से यही धारणा लेकर पलें कि हिन्दुओं के शास्त्र ये वामाचार ग्रन्थ हैं ? यदि तुम लज्जित हो तो अपने बच्चों से उन्हें अलग करो, और उन्हें यथार्थ शास्त्र—वेद, गीता, उपनिषद—पढ़ने दो।..."

—'भारत में विवेकानन्द' से उद्धृत

काशीपुर बगीचे में श्रीरामकृष्ण जब (१८८६ ई०) बीमार थे, तो एक दिन नरेन्द्र को बुलाकर बोले, 'भैया, यहाँ पर कोई शराब न पीये। धर्म के नाम पर मदिरा पीना ठीक नहीं; मैंने देखा है, जहाँ ऐसा किया गया है, वहाँ भला नहीं हुआ।'

(१०)

श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द व अवतारवाद

दक्षिणेश्वर मन्दिर में भगवान श्रीरामकृष्ण बलराम आदि भक्तों के साथ बैठे हैं। १८८५ ई०, ७ मार्च, दिन के ३-४ बजे का समय होगा।

भक्तगण श्रीरामकृष्ण की चरणसेवा कर रहे हैं,—श्रीरामकृष्ण थोड़ा हँसकर भक्तों से कह रहे हैं—"इसका (अर्थात चरण-सेवा का) विशेष तात्पर्य है।" फिर अपने हृदय पर हाथ रख कर कह रहे हैं, "इसके भीतर यदि कुछ है, (चरणसेवा करने पर) अज्ञान-अविद्या एकदम दूर हो जाएगी।"

एकाएक श्रीरामकृष्ण गम्भीर हुए, मानो कुछ गुप्त बात कहेंगे। भक्तों से कह रहे है, "यहाँ पर बाहर का कोई नहीं है। तुम लोगों से एक गुप्त बात कहता हूँ। उस दिन देखा, मेरे भीतर से सच्चिदानन्द बाहर आकर प्रकट होकर बोले, 'मैं ही युग-युग में अवतार लेता हूँ।' देखा, पूर्ण आविर्भाव; सत्वगुण का

ऐश्वर्य है।"

भक्तगण ये सब बातें विस्मित होकर सुन रहे हैं; कोई कोई गीता में कहे हुए भगवान श्रीकृष्ण के महावाक्य की याद करा रहे हैं--

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

दूसरे एक दिन, १ सितम्बर १८८५, जन्माष्टमी के दिन नरेन्द्र आदि भक्त आए हैं। श्री गिरीश घोष दो-एक मित्रों को साथ लेकर गाड़ी करके दक्षिणेश्वर में उपस्थित हुए। वे रोते रोते आ रहे हैं। श्रीरामकृष्ण स्नेह के साथ उनकी देह थपथपाने लगे।

गिरीश सिर उठाकर हाथ जोड़कर कह रहे हैं, "आप ही पूर्ण ब्रह्म हैं। यदि ऐसा न हो तो सभी झूठा है। बड़ा खेद रहा कि आपकी सेवा न कर सका। वरदान दीजिए न भगवन्, कि एक वर्ष आपकी सेवाटहल करूँ।" बार बार उन्हें ईश्वर कहकर स्तुति करने से श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, "ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। भक्तवत्, न च कृष्णवत्, तुम जो कुछ सोचते हो, सोच सकते हो। अपने गुरु भगवान तो हैं, तो भी ऐसी बात कहने से अपराध होता है।"

गिरीश फिर श्रीरामकृष्ण की स्तुति कर रहे हैं, "भगवन्, मुझे पवित्रता दो, जिससे कभी रत्ती भर भी पाप-चिन्तन न हो।"

श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं -- "तुम तो पवित्र हो, -- तुम्हारी

विश्वास-भक्ति जो है।"

१ मार्च १८८५ ई० होली के दिन नरेन्द्र आदि भक्तगण आए हैं। उस दिन श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को संन्यास का उपदेश दे रहे हैं और कह रहे हैं, "भैया, कामिनी-कांचन न छोड़ने से नहीं होगा। ईश्वर ही एकमात्र सत्य है और सब अनित्य।" कहते कहते वे भावपूर्ण हो उठे। वही दयापूर्ण सस्नेह दृष्टि। भाव में उन्मत्त होकर गाना गाने लगे —

संगीत– (भावार्थ)–"बात करने में डरता हूँ," आदि।

मानो श्रीरामकृष्ण को भय है कि कहीं नरेन्द्र किसी दूसरे का न हो जाय, कहीं ऐसा न हो कि मेरा न रहे — भय है, कहीं नरेन्द्र घर-गृहस्थी का न बन जाय। 'हम जो मन्त्र जानते हैं, वही तुम्हें दिया,' अर्थात् जीवन का सर्वश्रेष्ठ आदर्श — सब कुछ त्याग कर ईश्वर के शरणागत बन जाना — यह मन्त्र तुझे दिया। नरेन्द्र आँसू भरी आँखों से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से कह रहे हैं, "क्या गिरीश घोष ने जो कुछ कहा, वह तेरे साथ मिलता है?"

नरेन्द्र– मैंने कुछ नहीं कहा, उन्होंने ही कहा कि उनका विश्वास है कि आप अवतार हैं। मैंने और कुछ भी नहीं कहा।

श्रीरामकृष्ण– परन्तु उसमें कैसा गम्भीर विश्वास है! देखा?

कुछ दिनों के बाद अवतार के विषय में नरेन्द्र के साथ श्रीरामकृष्ण का वार्तालाप हुआ। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, — "अच्छा, कोई-कोई जो मुझे ईश्वर का अवतार कहते हैं — तू क्या समझता है?"

नरेन्द्र ने कहा, "दूसरों की राय सुनकर मैं कुछ भी

नहीं कहूँगा; मैं स्वयं जब समझूंगा तब मेरा विश्वास होगा, तभी कहूँगा।"

काशीपुर बगीचे में श्रीरामकृष्ण जिस समय कैनसर रोग की यन्त्रणा से बेचैन हो रहे है, भात का तरल माँड़ तक गले के नीचे नहीं उतर रहा हैं, उस समय एक दिन नरेन्द्र श्रीरामकृष्णं के पास बैठकर सोच रहे हैं, 'इस यन्त्रणा में यदि कहें कि मै ईश्वर का अवतार हूँ तो विश्वास होगा।' उसी समय श्रीरामकृष्ण कहने लगे, "जो राम, जो कृष्ण, इस समय वे ही रामकृष्ण के रूप में भक्तों के लिए अवतीर्ण हुए हैं।" नरेन्द्र यह बात सुनकर दंग रह गए। श्रीरामकृष्ण के स्वधाम में सिधार जाने के बाद नरेन्द्र ने संन्यासी होकर बहुत साधन-भजन तथा तपस्या की। उस समय उनके हृदय में अवतार के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के सभी महावाक्य मानो और भी स्पष्ट हो उठे। वे स्वदेश और विदेशों में इस तत्त्व को और भी स्पष्ट रूप से समझाने लगे।

स्वामीजी जब अमरीका में थे, उस समय नारदीय भक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों के अवलम्बन से उन्होंने भक्तियोग नामक ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखा। उसमें भी वे कह रहे हैं कि अवतारगण छूकर लोगों में चैतन्य उत्पन्न करते हैं। जो लोग दुराचारी हैं, वे भी उनके स्पर्श से सदाचारी बन जाते हैं। 'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्, साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः।' ईश्वर ही अवतार के रूप में हमारे पास आते हैं। यदि हम ईश्वर-दर्शन करना चाहें तो अवतारी पुरुषों में ही उनका दर्शन करना होगा। उनका पूजन किए बिना हम रह नहीं सकते।

"... साधारण गुरुओं से श्रेष्ठ एक और श्रेणी के गुरु होते हैं, जो इस संसार में ईश्वर के अवतार होते हैं। केवल स्पर्श से ही वे

आध्यात्मिकता प्रदान कर सकते हैं, यहाँ तक कि इच्छा मात्र से ही। उनकी इच्छा से महान् दुराचारी तथा पतित व्यक्ति भी क्षण भर में ही साधु हो जाता है। वे गुरुओं के भी गुरु हैं तथा मनुष्य रूप में भगवान के अवतार हैं। उनके माध्यम बिना हम ईश्वर-दर्शन नहीं कर सकते। उनकी उपासना किए बिना हम रह ही नहीं सकते और वास्तव में केवल वे ही ऐसे हैं जिनकी हमें उपासना करनी चाहिए।...जब तक हमारा यह मनुष्यशरीर है तब तक हमें ईश्वर की उपासना मनुष्य के रूप में और मनुष्य के सदृश ही करनी पड़ती है। तुम चाहे जितनी बातें करो, चाहे जितना यत्न करो, परन्तु भगवान को मनुष्य-रूप के अतिरिक्त तुम किसी अन्य रूप में सोच ही नहीं सकते। ईश्वर तथा संसार की सारी वस्तुओं पर चाहे तुम सुन्दर तर्कयुक्त भाषण दे सकते हो, चाहे बड़े युक्तिवादी बन सकते हो और मन को समझा सकते हो कि इन सारे ईश्वरावतारों की कथा भ्रमात्मक है। पर थोड़ी देर के लिए सहज बुद्धि से सोचो। हमें इस विचित्र विचार-बुद्धि से क्या प्राप्त होता है?——शून्य, कुछ नहीं, केवल शब्दावडम्बर। भविष्य में जब कभी तुम किसी मनुष्य को अवतार-पूजा के विरुद्ध एक बड़ा तर्कपूर्ण भाषण देते हुए सुनो तो उससे यह प्रश्न करो कि उसकी ईश्वरसम्बन्धी धारणा क्या है। सर्वशक्तिशाली, सर्वव्यापी तथा इस प्रकार के अन्य शब्दों का अर्थ वह केवल अक्षरों के जानने की अपेक्षा और क्या समझता है? वास्तव में वह कुछ नहीं समझता। वह उनका कोई ऐसा अर्थ नहीं लगा सकता जो उसकी स्वयं की मानवी प्रकृति से प्रभावित न हो। इस सम्बन्ध में वह बिलकुल उसी सामान्य

मनुष्य के सदृश है, जिसने एक पुस्तक भी नहीं पढ़ी।"...

—'भक्तियोग' से उद्धृत

स्वामीजी १८९९ ईस्वी में दूसरी बार अमरीका गए थे। उस समय १९०० ईस्वी में उन्होंने कैलिफोर्निया (California) प्रान्त में लास एंजिलस (Los Angeles) नामक नगर में 'ईशदूत ईसा' (Christ the Messenger) विषय पर एक भाषण दिया था। इस भाषण में उन्होंने फिर से अवतार-तत्त्व को भलीभाँति समझाने की चेष्टा की थी। स्वामीजी ने कहा—

"...इसी महापुरुष (ईसा मसीह) ने कहा है, 'किसी भी व्यक्ति ने ईश्वर-पुत्र के माध्यम बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है।' और यह कथन अक्षरशः सत्य है। ईश्वर-तनय के अतिरिक्त हम ईश्वर को और कहाँ देखेंगे? यह सच है कि मुझमें और तुममें, हममें से निर्धन से भी निर्धन और हीन से भी हीन व्यक्ति में भी परमेश्वर विद्यमान है, उसका प्रतिबिम्ब मौजूद है। प्रकाश की गति सर्वत्र है, उसका स्पन्दन सर्वव्यापी है, किन्तु हमें उसे देखने के लिए दीप जलाने की आवश्यकता होती है। जगत का सर्वव्यापी ईश भी तब तक दृष्टिगोचर नहीं होता, जब तक ये महान् शक्तिशाली दीपक, ये ईशदूत, ये उसके सन्देशवाहक और अवतार, ये नर-नारायण उसे अपने में प्रतिबिम्बित नहीं करते।...ईश्वर के इन सब महान् ज्ञानज्योति-सम्पन्न अग्रदूतों में से आप किसी एक की ही जीवन-कथा लीजिए और ईश्वर की जो उच्चतम भावना आपने हृदय में धारण की है, उससे उसके चरित्र की तुलना कीजिए। आपको प्रतीत होगा कि इन जीवित और जाज्वल्यमान आदर्श महापुरुषों के चरित्र की अपेक्षा आपकी भावनाओं का ईश्वर अनेकांश में हीन है;

ईश्वर के अवतार का चरित्र आपके कल्पित ईश्वर की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है। आदर्श के विग्रह-स्वरूप इन महापुरुषों ने ईश्वर की साक्षात् उपलब्धि कर, अपने महान् जीवन का जो आदर्श, जो दृष्टान्त हमारे सम्मुख रखा है, ईश्वरत्व की उससे उच्च भावना धारण करना असम्भव है। इसलिए यदि कोई इनकी ईश्वर के समान अर्चना करने लगे, तो इसमें क्या अनौचित्य है ? इन नरनारायणों के चरणाम्बुजों में लुण्ठित हो यदि कोई उनकी भूमि पर अवतीर्ण ईश्वर के समान पूजा करने लगे तो क्या पाप है ? यदि उनका जीवन हमारे ईश्वरत्व के उच्चतम आदर्श से भी उच्च है तो उनकी पूजा करने में क्या दोष ? दोष की बात तो दूर रही, ईश्वरोपासना की केवल यही एक विधि सम्भव है। ..."

—'महापुरुषों की जीवनगाथाएँ' से उद्धृत

अवतार के लक्षण। ईसा मसीह

अवतार पुरुष क्या कहने के लिए आते हैं ? श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से कहा था, "भैया, कामिनी-कांचन का त्याग किए बिना न होगा। ईश्वर ही वस्तु है, बाकी सभी अवस्तु हैं।" स्वामीजी ने भी अमरीकनों से कहा —

"...हम अपने आलोच्य महापुरुष, जीवन के इस दिव्य-संदेशवाहक (ईसा) के जीवन का मूलमन्त्र यही पाते हैं कि 'यह जीवन कुछ नहीं है; इससे भी उच्च कुछ और है'...। उन्हें इस नश्वर जगत् व उसके क्षणभंगुर ऐश्वर्य में विश्वास नहीं था।... ईसा स्वयं त्यागी व वैराग्यवान् थे, इसलिए उनकी शिक्षा भी यही है कि वैराग्य या त्याग ही मुक्ति का एकमेव मार्ग है, इसके अतिरिक्त मुक्ति का और कोई पथ नहीं है। यदि

हममें इस मार्ग पर अग्रसर होने की क्षमता नहीं है, तो हमें मुख में तृण धारण कर विनीत भाव से अपनी यह दुर्बलता स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हममें अब भी 'मैं' और 'मेरे' के प्रति ममत्व है, हममें धन और ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति है। हमें धिक्कार है कि हम यह सब स्वीकार न कर, मानवता के उन महान् आचार्य का अन्य रूप से वर्णन कर उन्हें निम्न स्तर पर खींच लाने की चेष्टा करते हैं। उन्हें पारिवारिक बंधन नहीं जकड़ सके। क्या आप सोचते हैं कि ईसा के मन में कोई सांसारिक भाव था? क्या आप सोचते हैं कि यह ज्ञानज्योतिस्वरूप अमानवी मानव, यह प्रत्यक्ष ईश्वर पृथ्वी पर पशुओं का समधर्मी बनने के लिए अवतीर्ण हुआ? किन्तु फिर भी लोग उनके उपदेशों का अपनी इच्छानुसार अर्थ लगाकर प्रचार करते हैं। उन्हें देह-ज्ञान नहीं था, उनमें स्त्री-पुरुष भेदबुद्धि नहीं थी—वे अपने को लिंगोपाधिरहित आत्मास्वरूप जानते थे। वे जानते थे कि वे शुद्ध आत्मास्वरूप हैं—देह में अवस्थित हो मानवजाति के कल्याण के लिए देह का परिचालन मात्र कर रहे हैं। देह के साथ उनका केवल इतना ही सम्पर्क था। आत्मा लिंग-विहीन है। विदेह आत्मा का देह व पाशवभाव से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अवश्यमेव त्याग व वैराग्य का यह आदर्श साधारण जनों की पहुँच के बाहर है। कोई हर्ज नहीं, हमें अपना आदर्श विस्मृत नहीं कर देना चाहिए—उसकी प्राप्ति के लिए सतत यत्नशील रहना चाहिए। हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि त्याग हमारे जीवन का आदर्श है, किन्तु अभी तक हम उस तक पहुँचने में असमर्थ हैं।..."

—'महापुरुषों की जीवनगाथाएँ' से उद्धृत

फिर अमरीकनों से कह रहे हैं—"...अपनी महान् वाणी

से ईसा ने जगत् में घोषणा की, 'दुनिया के लोगो, इस बात को भलीभाँति जान लो कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अभ्यन्तर में अवस्थित है।' — 'मैं और मेरे पिता अभिन्न हैं।' साहस कर खड़े हो जाओ और घोषणा करो कि मैं केवल ईश्वर-तनय ही नहीं हूँ, पर अपने हृदय में मुझे यह भी प्रतीति हो रही है कि मैं और मेरे पिता एक और अभिन्न हैं। नाज़रथवासी ईसा मसीह ने यही कहा।...

"... इसलिए हमें केवल नाज़रथवासी ईसा में ही ईश्वर का दर्शन न कर विश्व के उन सभी महान् आचार्यों व पैगम्बरों में भी उसका दर्शन करना चाहिए, जो ईसा के पहले जन्म ले चुके थे, जो ईसा के पश्चात आविर्भूत हुए हैं और जो भविष्य में अवतार ग्रहण करेंगे। हमारा सम्मान और हमारी पूजा सीमाबद्ध न हों। ये सब महापुरुष उसी एक अनन्त ईश्वर की विभिन्न अभिव्यक्ति हैं। वे सब शुद्ध और स्वार्थगन्ध शून्य हैं, सभी ने इस दुर्बल मानवजाति के उद्धार के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया है, इसी के लिए अपना जीवन निछावर कर दिया है। वे हमारे और हमारी आनेवाली सन्तान के सब पापों को ग्रहण कर उनका प्रायश्चित्त कर गए हैं।..."

— 'महापुरुषों की जीवनगाथाएँ' से उद्धृत

स्वामीजी वेदान्त की चर्चा करने के लिए कहा करते थे, परन्तु साथ ही उस चर्चा में जो विपत्ति है, वह भी बता देते थे। श्रीरामकृष्ण जिस दिन ठनठनिया में श्रीशशधर पण्डित के साथ वार्तालाप कर रहे थे, उस दिन नरेन्द्र आदि अनेक भक्त वहाँ पर उपस्थित थे, १८८४ ईस्वी।

ज्ञानयोग व स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण ने कहा है, "ज्ञानयोग इस युग में बहुत कठिन है। जीव का एक तो अन्न में प्राण है, उस पर आयु कम है। फिर देह-बुद्धि किसी भी तरह नहीं जाती। इधर देह-बुद्धि न जाने से ब्रह्मज्ञान नहीं होता। ज्ञानी कहते हैं, 'मैं वही ब्रह्म हूँ।' मैं शरीर नहीं हूँ, मैं भूख-प्यास, रोग-शोक, जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख इन सभी से परे हूँ। यदि रोग-शोक सुख-दुःख इन सब का बोध रहे तो तुम ज्ञानी क्योंकर होगे? इधर काँटे से हाथ चुभ रहा है, खून की धारा बह रही है, बहुत दर्द हो रहा है, परन्तु कहता है, 'कहाँ, हाथ तो नहीं कटा। मेरा क्या हुआ?'

"इसीलिए इस युग के लिए भक्तियोग है। इसके द्वारा दूसरे पथों की तुलना में आसानी से ईश्वर के पास जाया जाता है। ज्ञान-योग या कर्मयोग तथा दूसरे पथों से भी ईश्वर के पास जाया जा सकता है, परन्तु ये सब कठिन पथ हैं।"

श्रीरामकृष्ण ने और भी कहा है, "कर्मियों का जितना कर्म बाकी है, उतना निष्काम भावना से करें। निष्काम कर्म द्वारा चित्तशुद्धि होने पर भक्ति आएगी। भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति होती है।"

स्वामीजी ने भी कहा, "देह-बुद्धि रहते 'सोऽहम्' नहीं होता—अर्थात् सभी वासनाएँ मिट जाने पर, सर्वत्याग होने पर तब कहीं समाधि होती है। समाधि होने पर तब ब्रह्मज्ञान होता है। भक्तियोग सरल व मधुर (natural and sweet) है।"

"...ज्ञानयोग अवश्य ही अति श्रेष्ठ मार्ग है। उच्च तत्त्वज्ञान इसका प्राण है, और आश्चर्य की बात तो यह है कि

प्रत्येक मनुष्य यह सोचता है कि वह ज्ञानयोग के आदर्शानुसार चलने में समर्थ है। परन्तु वास्तव में ज्ञानयोग-साधना बड़ी कठिन है। ज्ञानयोग के पथ पर चलनें में हमारे गड्ढे में गिर जाने की बड़ी आशंका रहती है। कहा जा सकता है कि इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक तो आसुरी प्रकृतिवाले जिनकी दृष्टि में अपने शरीर का पालन-पोषण ही सर्वस्व है और दूसरे दैवी प्रकृतिवाले, जिनकी यह धारणा रहती है कि शरीर किसी एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए केवल एक साधन तथा आत्मोन्नति के लिए एक यंत्रविशेष है। शैतान भी अपनी कार्यसिद्धि के लिए झट से शास्त्रों को उद्धृत कर देता है, और इस प्रकार प्रतीत होता है कि बुरे मनुष्य के कृत्यों के लिए भी शास्त्र उसी प्रकार साक्षी हैं जैसे कि एक सत्पुरुष के शुभ कार्य के लिए। ज्ञानयोग में यही एक बड़े डर की वात है। परन्तु भक्तियोग स्वाभाविक तथा मधुर है। भक्त उतनी ऊँची उड़ान नहीं उड़ता जितनी कि एक ज्ञानयोगी, और इसीलिए उसके उतने बड़े खड्डों में गिरने की आशंका भी नहीं रहती।..."

— 'भक्तियोग' से उद्धृत

क्या श्रीरामकृष्ण अवतार हैं ? स्वामीजी का विश्वास

भारत के महापुरुषों (The Sages of India) के सम्बन्ध में स्वामीजी ने जो भाषण दिया था, उसमें अवतार-पुरुषों की अनेक बातें कही हैं। श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्धदेव, रामानुज, शंकराचार्य, चैतन्यदेव आदि सभी की बातें कहीं। भगवान श्रीकृष्ण के इस कथन का उद्धरण देकर समझाने लगे, 'जब धर्म की ग्लानि होकर अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तो साधुओं के परित्राण के लिए, पापाचार को विनष्ट करने के लिए मैं

युग युग में अवतीर्ण होता हूँ।'

उन्होंने फिर कहा, 'गीता में श्रीकृष्ण ने धर्मसमन्वय किया है,'—

"...हम गीता में भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की दूर से आती हुई आवाज़ सुन पाते हैं, और देखते हैं कि समन्वय के वे अद्भुत प्रचारक भगवान श्रीकृष्ण बीच में पड़कर विरोध को हटा रहे हैं।..."

—'भारत में विवेकानन्द' से उद्धृत

"श्रीकृष्ण ने फिर कहा है,— स्त्री, वैश्य, शूद्र सभी परम गति को प्राप्त करेंगे, ब्राह्मण क्षत्रियों की तो बात ही क्या है।

"बुद्धदेव दरिद्र के देव हैं। सर्वभूतस्थमात्मानम्। भगवान सर्वभूतों में हैं— यह उन्होंने प्रत्यक्ष दिखा दिया। बुद्धदेव के शिष्यगण आत्मा जीवात्मा आदि नहीं मानते हैं— इसीलिए शंकराचार्य ने फिर से वैदिक धर्म का उपदेश दिया। वे वेदान्त का अद्वैत मत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत मत समझाने लगे। उसके बाद चैतन्देव प्रेमभक्ति सिखाने के लिए अवतीर्ण हुए। शंकर और रामानुज ने जाति का विचार किया था, परन्तु चैतन्यदेव ने ऐसा न किया। चैतन्यदेव ने कहा, 'भक्त की फिर जाति क्या?'"

अब स्वामीजी श्रीरामकृष्णदेव की बात कह रहे हैं,—

"...एक (शंकराचार्य) का था अद्भुत मस्तिष्क, और दूसरे (चैतन्य) का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिनमें ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हों, जो शकर के अद्भुत मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय

के एक ही साथ अधिकारी हों, जो देखें कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिनका हृदय भारत में अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए पानी-पानी हो जाय, लेकिन साथ ही जिनकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों को पैदा करे, जिनसे भारत में अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा एक ऐसे सार्वभौमिक धर्म को प्रकट करे, जिससे हृदय और मस्तिष्क दोनों की बराबर उन्नति होती रहे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरण-तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी, और वे आविर्भूत हुए। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उनका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, भारत के सब शहरों की अपेक्षा जो विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। उनमें पोथियों की विद्या कुछ भी न थी, ऐसे महाप्रतिभासम्पन्न होते हुए भी वे अपना नाम तक नहीं लिख सकते थे, किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े उपाधिधारियों ने उन्हें देखकर एक महाप्रतिभाशाली व्यक्ति मान लिया था। वे एक अद्भुत महापुरुष थे। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को आपके निकट उनके विषय में कुछ भी कहने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय सब महापुरुषों के पूर्णप्रकाश-स्वरूप युगाचार्य भगवान श्रीरामकृष्ण का उल्लेख भर करके आज समाप्त करना होगा। उनके उपदेश आजकल

हमारे लिए विशेष कल्याणकारी हैं। उनके भीतर जो ऐश्वरिक शक्ति थी, उस पर विशेष ध्यान दीजिए। वे एक दरिद्र ब्राह्मण के लड़के थे। उनका जन्म बंगाल के सुदूर, अज्ञात, अपरिचित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप, अमरीका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं, भविष्य में और सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। ईश्वर की लीला कौन समझ सकता है! हे भाइयो, आप यदि इसमें विधाता का हाथ नहीं देखते तो आप अन्धे हैं, सचमुच जन्मान्ध हैं। यदि समय मिला, यदि आप लोगों से आलोचना करने का और कभी अवकाश मिला तो आपसे इनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक कहूँगा; इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है तो वह उन्हीं का वाक्य है; पर यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हैं जो असत्य, भ्रमपूर्ण अथवा मानवजाति के लिए हितकारी न हों, तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं, उनके लिए पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।"

—'भारत में विवेकानन्द' से उद्धृत

स्वामीजी ने और भी कहा है,--

"...फिर से कालचक्र घूमकर आ रहा है, एक बार फिर भारत से वही शक्तिप्रवाह निःसृत हो रहा है, जो शीघ्र ही समस्त जगत् को प्लावित कर देगा। एक वाणी मुखरित हुई है, जिसकी प्रतिध्वनि चारों ओर व्याप्त हो रही है एवं जो प्रतिदिन अधिकाधिक शक्ति संग्रह कर रही है, और यह वाणी इसके पहले की सभी वाणियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि यह अपने पूर्ववर्ती उन सभी वाणियों का समष्टिस्वरूप

है। जो वाणी एक समय कलकल-निनादिनी सरस्वती के तीर पर ऋषियों के अन्तस्तल में प्रस्फुटित हुई थी, जिस वाणी ने रजत-शुभ्रहिमाच्छादित गिरिराज हिमालय के शिखर-शिखर पर प्रतिध्वनित हो कृष्ण, बुद्ध और चैतन्यदेव में से होते हुए समतल प्रदेशों में अवरोहण कर समस्त देश को प्लावित कर दिया था, वही वाणी एक बार पुनः मुखरित हुई है। एक बार फिर से द्वार खुल गए हैं। आइए, हम सब आलोक-राज्य में प्रवेश करें — द्वार एक बार पुनः उन्मुक्त हो गए हैं।..."

—'हमारा भारत' से उद्धृत

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने भारतवर्ष के अनेक स्थानों में अवतार-पुरुष श्रीरामकृष्ण के आगमन की वार्ता घोषित की। जहाँ जहाँ मठ स्थापित हुए हैं, वहाँ उनकी प्रतिदिन सेवा-पूजा आदि हो रही है। आरती के समय सभी स्थानों में स्वामीजी द्वारा रचित स्तव वाद्य तथा स्वर-संयोग के साथ गाया जाता है। इस स्तव में स्वामीजी ने भगवान श्रीरामकृष्ण को सगुण निर्गुण निरंजन जगदीश्वर कहकर सम्बोधित किया है— और कहा है, "हे भवसागर के पार उतारनेवाले! तुम नररूप धारण करके हमारे भवबन्धन को छिन्न करने के लिए योग के सहायक बनकर आए हो। तुम्हारी कृपा से मेरी समाधि हो रही है। तुमने कामिनी-कांचन छुड़वाया है। हे भक्तों को शरण-देनेवाले, अपने चरण-कमलों में मुझे प्रेम दो। तुम्हारे चरण-कमल मेरी परम सम्पद हैं। उसे प्राप्त करने पर भवसागर गोष्पद-जैसा लगता है।"

स्वामीजी रचित श्रीरामकृष्ण-आरती।

(मिश्र-चौताल)

खण्डन भव-बंधन, जग-वंदन, वंदि तोमाय।
निरंजन, नररूपधर, निर्गुण, गुणमय ॥
मोचन-अघदूषण, जगभूषण, चिद्घनकाय।
ज्ञानांजन-विमल-नयन, वीक्षणे मोह जाय ॥
भास्वर भाव-सागर, चिर-उन्मद प्रेम-पाथार।
भक्तार्जन-युगलचरण, तारण भव-पार ॥
जृम्भित-युग-ईश्वर, जगदीश्वर, योगसहाय।
निरोधन, समाहित मन, निरखि तव कृपाय ॥
भंजन-दुखगंजन, करुणाघन, कर्म-कठोर।
प्राणार्पण-जगत-तारण, कृन्तन-कलिडोर ॥
वंचन-कामकांचन अतिनिंदित-इन्द्रिय-राग।
त्यागीश्वर, हे नरवर, देह पदे अनुराग ॥
निर्भय, गतसंशय, दृढ़निश्चयमानसवान्।
निष्कारण-भकत-शरण त्यजि जातिकुलमान ॥
संपद तव श्रीपद, भव गोष्पद-वारि यथाय।
प्रेमार्पण, समदर्शन, जगजन-दुख जाय ॥

जो राम, जो कृष्ण, इस समय वही रामकृष्ण

काशीपुर बगीचे में स्वामीजी ने यह महावाक्य भगवान श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से सुना था। इस महावाक्य का स्मरण कर स्वामाजी ने विलायत से कलकत्ते में लौटने के बाद बेलुड़

मठ में एक स्तोत्र की रचना की थी। स्तोत्र में उन्होंने कहा है—जो आचण्डाल दीन दरिद्रों के मित्र, जानकीवल्लभ, ज्ञान-भक्ति के अवतार श्रीरामचन्द्र हुए, जिन्होंने फिर श्रीकृष्ण के रूप में कुरुक्षेत्र में गीतारूपी गम्भीर मधुर सिंहनाद किया था, वे ही इस समय विख्यात पुरुष श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं।

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

(१)

आचण्डालाप्रतिहतरयो यस्य प्रेमप्रवाहः
लोकातीतोऽप्यहह न जहौ लोककल्याणमार्गम् ।
त्रैलोक्येऽप्यप्रतिममहिमा जानकीप्राणबन्धः
भक्त्या ज्ञान वृतवरवपुः सीतया यो हि रामः ।

(२)

स्तब्धीकृत्य प्रलयकलितम्वाहवोत्थं महान्तम्
हित्वा रात्रिं प्रकृतिसहजामन्धतामिस्रमिश्राम् ।
गीतं शान्तं मधुरमपि यः सिंहनादं जगर्ज ॥
सोऽयं जातः प्रथितपुरुषो रामकृष्णस्त्विदानीम् ॥

और एक स्तोत्र बेलुड़ मठ में तथा वाराणसी, मद्रास, ढाका आदि सभी मठों में आरती के समय गाया जाता है।

इस स्तोत्र में स्वामीजी कह रहे हैं—"हे दीनबन्धो, तुम सगुण हो, फिर त्रिगुणों के परे हो, रातदिन तुम्हारे चरणकमलों की आराधना नहीं कर रहा हूँ इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं मुख से आराधना कर रहा हूँ, ज्ञान का अनुशीलन कर रहा हूँ, परन्तु कुछ भी धारणा करने में असमर्थ हूँ इसीलिए तुम्हारी शरण में आया हूँ। तुम्हारे चरणकमलों का चिन्तन करने से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है, इसीलिए मैं तुम्हारी शरण में

आया हूँ। हे दीनबन्धो, तुम ही जगत् की एकमात्र प्राप्त करने योग्य वस्तु हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। 'त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो !'"

ॐ ह्रीं ऋतं त्वमचलो गुणजित् गुणेड्यः।
नक्तंदिव सकरुणं तव पादपद्मम्।
मोहकषं बहुकृतं न भजे यतोऽहम्।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥१॥
भक्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि।
गच्छन्त्यलं सुविपुलं गमनाय तत्त्वम्।
वक्त्रोद्धृवन्तु हृदि मे न च भाति किंचित्।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥२॥
तेजस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णाः।
रागे कृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे।
मर्त्यामृतं तव पदं मरणोर्मिनाशम्।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥३॥
कृत्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारि।
ष्णान्तं शिवं सुविमलं तव नाम नाथ।
यस्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य।
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ॥४॥

स्वामीजी ने आरती के बाद श्रीरामकृष्ण-प्रणाम सिखाया है। उसमें श्रीरामकृष्णदेव को अवतारों में श्रेष्ठ कहा गया है।

"स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः॥"

(ग)

परिच्छेद १

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात्

(१)

पहला श्रीरामकृष्ण मठ

रविवार, १५ अगस्त १८८६ ई० को श्रीरामकृष्ण, भक्तों को दुःख के असीम समुद्र में बहाकर स्वधाम को चले गए। अविवाहित और विवाहित भक्तगण श्रीरामकृष्ण की सेवा करते समय आपस में जिस स्नेह-सूत्र में बँध गए थे, वह कभी छिन्न होने का न था। एकाएक कर्णधार को न देखकर आरोहियों को भय हो गया है। वे एक दूसरे का मुँह ताक रहे हैं। इस समय उनकी ऐसी अवस्था है कि बिना एक दूसरे को देखे उन्हें चैन नहीं—मानो उनके प्राण निकल रहे हों। दूसरों से वार्तालाप करने को जी नहीं चाहता। सब के सब सोचते हैं—'क्या अब उनके दर्शन न होंगे? वे तो कह गए हैं कि व्याकुल होकर पुकारने पर, हृदय की पुकार सुनकर ईश्वर अवश्य दर्शन देंगे। वे कह गए हैं—आन्तरिकता होने पर ईश्वर अवश्य सुनेंगे।' जब वे लोग एकान्त में रहते हैं, तब उसी आनन्दमयी मूर्ति की याद आती है। रास्ता चलते हुए भी उन्हीं की स्मृति बनी रहती है; अकेले रोते फिरते हैं। श्रीरामकृष्ण ने शायद इसीलिए मास्टर से कहा था, 'तुम लोग रास्ते में रोते फिरोगे। इसीलिए मुझे शरीर-त्याग करते हुए कष्ट हो रहा है।' कोई सोचते हैं, 'वे तो चले गए और मैं अभी भी बचा हुआ हूँ! इस अनित्य संसार में अब भी रहने की इच्छा! मैं अगर चाहूँ तो शरीर का त्याग कर

सकता हूँ, परन्तु करता कहाँ हूँ ! '

किशोर भक्तों ने काशीपुर के बगीचे में रहकर दिनरात उनकी सेवा की थी। उनकी महासमाधि के पश्चात्, इच्छा न होते हुए भी, लगभग सब के सब अपने अपने घर चले गए। उनमें से किसी ने भी अभी संन्यासी का बाहरी चिह्न (गेरुआ वस्त्र आदि) धारण नहीं किया है। वे लोग श्रीरामकृष्ण के तिरोभाव के बाद कुछ दिनों तक दत्त, घोष, चक्रवर्ती, गांगुली आदि उपाधियों द्वारा लोगों को अपना परिचय देते रहे; परन्तु उन्हें श्रीरामकृष्ण हृदय से त्यागी कर गए थे।

लाटू, तारक और बूढ़े गोपाल के लिए कोई स्थान न था जहाँ वे वापस जाते। उनसे सुरेन्द्र ने कहा, "भाइयो, तुम लोग अब कहाँ जाओगे ? आओ, एक मकान लिया जाय। वहाँ तुम लोग श्रीरामकृष्ण की गद्दी लेकर रहोगे तो हम लोग भी कभी-कभी हृदय की दाह मिटाने के लिए वहाँ आ जाया करेंगे, अन्यथा संसार में इस तरह दिन-रात कैसे रहा जाएगा ? तुम लोग वहीं जाकर रहो। मैं काशीपुर के बगीचे में श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए जो कुछ दिया करता था, वह अभी भी दूँगा। इस समय उतने से ही रहने और भोजन आदि का खर्च चलाया जायगा।" पहले-पहले दो-एक महीने तक सुरेन्द्र तीस रुपये महीना देते गए। क्रमशः मठ में दूसरे दूसरे भाई ज्यों ज्यों आकर रहने लगे, त्यों त्यों पचास-साठ रुपये का माहवार खर्च हो गया— सुरेन्द्र देते भी गए। अन्त में सौ रुपये तक का खर्च हो गया। वराहनगर में जो मकान लिया गया था, उसका किराया और टैक्स दोनों मिलाकर ग्यारह रुपये पड़ते थे। रसोइये को छः रुपये महीना और बाकी खर्च भोजन आदि का था। बूढ़े गोपाल, लाटू और

तारक के घर था ही नहीं। छोटे गोपाल काशीपुर के बगीचे से श्रीरामकृष्ण की गद्दी और कुल सामान लेकर उसी किराये के मकान में चले आए। काशीपुर में जो रसोइया था, उसे यहाँ भी लगाया गया। शरद रात को आकर रहते थे। तारक वृन्दावन गए हुए थे, कुछ दिनों में वे भी आ गए। नरेन्द्र, शरद, शशी, बाबूराम, निरंजन, काली ये लोग पहले-पहल घर से कभी कभी आया करते थे। राखाल, लाटू, योगीन और काली ठीक उसी समय वृन्दावन गए हुए थे। काली एक महीने के अन्दर, राखाल कई महीने के बाद और योगीन पूरे साल भर बाद लौटे।

कुछ दिनों के पश्चात् नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरद, शशी, बाबूराम, योगीन, काली और लाटू वहीं रह गए,—वे फिर घर नहीं लौटे। क्रमशः प्रसन्न और सुबोध भी आकर रह गए। गंगाधर सदा मठ में आया-जाया करते थे। नरेन्द्र को बिना देखे वे रह न सकते थे। बनारस के शिवमन्दिर में गाया जानेवाला 'जय शिव ओंकारः' स्तोत्र उन्होंने मठ के भाइयों को सिखलाया था। मठ के भाई 'वाह गुरु की फतह' कहकर बीच-बीच में जो जयध्वनि करते थे, यह भी उन्हीं की सिखलाई हुई थी। तिब्बत से लौटने के पश्चात् वे मठ में ही रह गए। श्रीरामकृष्ण के और दो भक्त हरि तथा तुलसी सदा नरेन्द्र तथा मठ के दूसरे भाइयों को देखने के लिए आया करते थे। कुछ दिन बाद ये भी मठ में रह गए।

सुरेन्द्र ! तुम धन्य हो ! यह पहला मठ तुम्हारे ही हाथों से तैयार हुआ ! तुम्हारी ही पवित्र इच्छा से इस आश्रम का संगठन हुआ ! तुम्हें यंत्रस्वरूप करके भगवान श्रीरामकृष्ण ने अपने मूलमंत्र कामिनी-कांचन त्याग को मूर्तिमान कर लिया। कौमार-

काल से ही वैराग्यव्रती शुद्धात्मा नरेन्द्रादि भक्तों द्वारा तुमने फिर से हिन्दू धर्म का प्रकाश मनुष्यों के सामने रखा ! भाई, तुम्हारा ऋण कौन भूल सकता है ? मठ के भाई मातृहीन बच्चों की तरह रहते थे—तुम्हारी प्रतीक्षा किया करते थे कि तुम कब आओगे । आज मकान का किराया चुकाने में सब रुपये खर्च हो गए हैं—आज भोजन के लिए कुछ भी नहीं बचा—कब तुम आओगे—कब तुम आओगे और आकर अपने भाइयों के भोजन का बन्दोबस्त कर दोगे ! तुम्हारे अकृत्रिम स्नेह की याद करके ऐसा कौन है जिसकी आँखों में आँसू न आ जायँ !

यह मठ श्रीरामकृष्ण के भक्तों में वराहनगर मठ के नाम से परिचित हुआ । वहीं श्रीठाकुर-मन्दिर में श्रीगुरुमहाराज भगवान श्रीरामकृष्ण की नित्यसेवा होने लगी । नरेन्द्र आदि सब भक्तों ने कहा, "अब हम लोग संसार-धर्म का पालन न करेंगे । श्रीगुरु-महाराज ने कामिनी और कांचन त्याग करने की आज्ञा दी थी, अतएव हम लोग अब किस तरह घर लौट सकते हैं ?"

नित्य पूजन का भार शशी ने लिया । नरेन्द्र गुरु-भाइयों की देख-भाल किया करते थे । सब भाई भी उन्हीं का मुँह जोहते थे । नरेन्द्र उनसे कहते थे, "साधना करनी होगी, नहीं तो ईश्वर नहीं मिल सकते ।" वे और दूसरे गुरुभाई अनेक प्रकार की साधनाएँ करने लगे । वेद, पुराण, तन्त्र इत्यादि मतों के अनुसार अनेक प्रकार की साधनाओं में वे प्राणपण से लग गए । कभी कभी एकान्त में वृक्ष के नीचे, कभी अकेले स्मशान में, कभी गंगा-तट पर साधना करते थे । मठ में कभी ध्यान करनेवाले कमरे के भीतर अकेले जप और ध्यान करते हुए दिन बिताने लगे । कभी कभी भाइयों के साथ एकत्र कीर्तन करते हुए नृत्य

करते रहते। ईश्वर-प्राप्ति के लिए सब लोग, विशेषकर नरेन्द्र, बहुत ही व्याकुल हो गए। वे कभी कभी कहते थे, "उनकी प्राप्ति के लिए क्या मैं प्रायोपवेशन कर डालूँ ?"

(२)

नरेन्द्रादि भक्तों का शिवरात्रि-व्रत

आज सोमवार है, २१ फरवरी १८८७। नरेन्द्र और राखाल आदि ने आज शिवरात्रि का उपवास किया है। आज से दो दिन बाद श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि-पूजा होगी।

नरेन्द्र और राखाल आदि भक्तों में इस समय तीव्र वैराग्य है। एक दिन राखाल के पिता राखाल को घर ले जाने के लिए आए थे। राखाल ने कहा, "आप लोग कष्ट करके क्यों आते हैं ? मैं यहाँ बहुत अच्छी तरह हूँ। अब आशीर्वाद दीजिए कि आप लोग मुझे भूल जायँ और मैं भी आप लोगों को भूल जाऊँ।" इस समय सब लोगों में तीव्र वैराग्य है। सारा समय साधन-भजन में ही जाता है। सबका एक ही उद्देश्य है कि किस तरह ईश्वर के दर्शन हों।

नरेन्द्र आदि भक्तगण कभी जप और ध्यान करते हैं, कभी शास्त्रपाठ। नरेन्द्र कहते हैं, "गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने जिस निष्काम कर्म का उल्लेख किया है, वह पूजा, जप, ध्यान— यही सब है, सांसारिक कर्म नहीं।"

आज सबेरे नरेन्द्र कलकत्ता गए हुए हैं। घर के मुकदमे की पैरवी करनी पड़ती है। अदालत में गवाह पेश करने पड़ते हैं।

* * *

मास्टर सबेरे नौ बजे के लगभग मठ में आए। कमरे में प्रवेश करने पर उन्हें देखकर श्रीयुत तारक मारे आनन्द के शिव के

सम्बन्ध में रचित एक गाना गाने लगे—“ता थैया ता थैया नाचे भोला।”

उनके साथ राखाल भी गाने लगे और गाते हुए दोनों नाचने लगे।

यह गाना नरेन्द्र को लिखे अभी कुछ ही समय हुआ है।

मठ के सब भाइयों ने व्रत किया है। कमरे में इस समय नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरद, शशी, काली, बाबूराम, तारक, हरीश, सींती के गोपाल, शारदा और मास्टर हैं। योगीन और लाटू वृन्दावन में हैं। उन लोगों ने अभी मठ नहीं देखा।

आगामी शनिवार को शरद, काली, निरंजन और शारदा पुरी जानेवाले हैं—श्री जगन्नाथजी के दर्शन करने के लिए।

श्रीयुत शशी दिनरात श्रीरामकृष्ण की सेवा में रहते हैं।

पूजा हो गई। शरद तानपूरा लेकर गा रहे हैं—“शंकर शिव बम् बम् भोला, कैलासपति महाराज राज।”

नरेन्द्र कलकत्ते से अभी ही लौटे हैं। अभी उन्होंने स्नान भी नहीं किया। काली नरेन्द्र से मुकदमे की बातें पूछने लगे।

नरेन्द्र—(विरक्तिपूर्वक)—इन सब बातों से तुम्हें क्या काम?

नरेन्द्र मास्टर आदि से बातें कर रहे हैं। नरेन्द्र कह रहे हैं—“कामिनी और कांचन का त्याग जब तक न होगा, तब तक कुछ न होगा। कामिनी नरकस्य द्वारम्। जितने आदमी हैं, सब स्त्रियों के वश में हैं। शिव और कृष्ण की बात और है। शक्ति को शिव ने दासी बनाकर रखा था। श्रीकृष्ण ने संसार-धर्म का पालन तो किया था, परन्तु वे कैसे निर्लिप्त थे! उन्होंने वृन्दावन कैसे एकदम छोड़ दिया!”

राखाल—और द्वारका का भी उन्होंने कैसा त्याग किया!

गंगा-स्नान करके नरेन्द्र मठ लौटे। हाथ में भीगी धोती है और अँगौछा। शारदा ने आकर नरेन्द्र को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भी शिवरात्रि के उपलक्ष्य में उपवास किया है। अब वे गंगा-स्नान के लिए जानेवाले हैं। नरेन्द्र ने पूजा-घर में जाकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया और फिर आसन लगाकर कुछ समय तक ध्यान करते रहे।

भवनाथ की बातें हो रही हैं। भवनाथ ने विवाह किया है। इसलिए उन्हें नौकरी करनी पड़ती है।

नरेन्द्र कह रहे हैं, 'वे तो सब संसारी कीट हैं।'

दिन ढलने लगा। शिवरात्रि की पूजा के लिए व्यवस्था हो रही है। बेल की लकड़ी और बिल्वदल इकट्ठे किए गए। पूजा के बाद होम होगा।

शाम हो गई। श्रीठाकुरघर में धूना देकर शशी दूसरे कमरों में भी धूना ले गए। हर एक देव-देवी के चित्र के पास प्रणाम करके बड़ी भक्ति के साथ उनका नाम ले रहे हैं। "श्री श्री गुरुदेवाय नमः। श्री श्री कालिकाये नमः। श्री श्री जगन्नाथ-सुभद्रा-बलरामेभ्यो नमः। श्री श्री षड्भुजाय नमः। श्री श्री राधावल्लभाय नमः। श्री नित्यानन्दाय, श्री अद्वैताय, श्री भक्तेभ्यो नमः। श्री गोपालाय, श्री श्री यशोदायै नमः। श्री रामाय, श्री लक्ष्मणाय। श्री विश्वामित्राय नमः।"

मठ के बिल्ववृक्ष के नीचे पूजा का आयोजन हो रहा है। रात के नौ बजे का समय होगा। अभी पहली पूजा होगी, साढ़े ग्यारह बजे दूसरी। चारों पहर चार पूजाएँ होंगी। नरेन्द्र, राखाल, शरद, काली, सींती के गोपाल आदि मठ के सब भाई बेल के नीचे उपस्थित हो गए। भूपति और मास्टर भी आए हुए हैं। मठ के

भाइयों में से एक व्यक्ति पूजा कर रहा है।

काली गीता-पाठ कर रहे हैं-- सैन्यदर्शन,-- सांख्ययोग, ---कर्मयोग। पाठ के साथ ही बीच बीच में नरेन्द्र के साथ विचार चल रहा है।

काली–मैं ही सब कुछ हूँ। सृष्टि, स्थिति और प्रलय मैं कर रहा हूँ।

नरेन्द्र–मैं सृष्टि कहाँ कर रहा हूँ? एक दूसरी ही शक्ति मुझसे करा रही है। ये अनेक प्रकार के कार्य---यहाँ तक कि चिन्ता भी वही करा रही है।

मास्टर–(स्वगत)–श्रीरामकृष्ण कहते थे, 'जब तक कोई यह सोचता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, तब तक वह आदिशक्ति के ही राज्य में है। शक्ति को मानना ही होगा।'

काली चुपचाप थोड़ी देर तक चिन्तन करते रहे। फिर कहने लगे, "जिन कार्यों की तुम चर्चा कर रहे हो, वे सब मिथ्या हैं-- और इतना ही नहीं, स्वयं 'चिन्तन' तक मिथ्या है। मुझे तो इन चीजों के विचार मात्र पर हँसी आती है।"

नरेन्द्र–'सोऽहम्' के कहने पर जिस 'मैं' का ज्ञान होता है, वह यह 'मैं' नहीं है। मन, देह, यह सब छोड़ देने पर जो कुछ रहता है, वही वह 'मैं' है।

गीता-पाठ हो जाने पर काली शान्ति-पाठ कर रहे हैं—'ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!'

अब नरेन्द्र आदि सब भक्त खड़े होकर नृत्य-गीत करते हुए बिल्व वृक्ष की बार बार परिक्रमा करने लगे। बीच बीच में एक स्वर से 'शिव गुरु! शिव गुरु!' इस मंत्र का उच्चारण कर रहे हैं।

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, रात्रि गम्भीर हो रही है। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है, जीव-जन्तु सब मौन हैं। गेरुआ वस्त्र पहने हुए इन आकौमारविरागी भक्तों के कण्ठ से उच्चारित 'शिव गुरु! शिव गुरु!' की महामंत्रध्वनि मेघ की तरह गम्भीर रव से अनन्त आकाश में गूँजकर अखण्ड सच्चिदानन्द में लीन होने लगी।

पूजा समाप्त हो गई। उषा की लाली फैलने ही वाली है। नरेन्द्र आदि भक्तों ने इस ब्राह्म मुहूर्त में गंगास्नान किया।

सबेरा हो गया। स्नान करके भक्तगण मठ में श्रीठाकुर-मंदिर में जाकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके 'दानवों के कमरे' में आकर एकत्र होने लगे। नरेन्द्र ने सुन्दर नया गेरुआ वस्त्र धारण किया है। वस्त्र के सौन्दर्य के साथ उनके श्रीमुख और देह से तपस्यासम्भूत अपूर्व स्वर्गीय पवित्र ज्योति एक हो रही है। वदनमण्डल तेजपूर्ण और साथ ही प्रेमरंजित हो रहा है। मानो अखण्ड सच्चिदानन्द सागर के एक स्फुट अंश ने ज्ञान और भक्ति की शिक्षा देने के लिए शरीर-धारण किया हो— अवतार-लीला की सहायता के लिए। जो देख रहा है, वह फिर आँखें नहीं फेर सकता। नरेन्द्र की आयु ठीक चौबीस वर्ष की है। ठीक इसी आयु में श्रीचैतन्य ने संसार छोड़ा था।

भक्तों के व्रत के पारण के लिए श्रीयुत बलराम ने कल ही फल और मिष्टान्न आदि भेज दिए थे। राखाल आदि दो-एक भक्तों के साथ नरेन्द्र कमरे में खड़े हुए कुछ जलपान कर रहे हैं। दो-एक फल खाते ही आनन्दपूर्वक कह रहे हैं— "धन्य हो बलराम—तुम धन्य हो!" (सब हँसते हैं)

अब नरेन्द्र बालक की तरह हँसी कर रहे हैं। रसगुल्ला मुख

में डालकर बिलकुल निःस्पन्द हो गए। नेत्र निर्निमेष हैं। एक भक्त नरेन्द्र की अवस्था देखकर हँसी में उन्हें पकड़ने चले कि कहीं वे गिर न जायँ।

कुछ देर बाद—तब भी रसगुल्ले को मुख में ही रखे हुए—नरेन्द्र पलकें खोलकर कह रहे हैं—"मेरी–अवस्था–अच्छी–है–!"

(सब लोग ठहाका मारकर हँसने लगे)

सब लोगों को अब मिठाई दी गई। मास्टर यह आनन्द की हाट देख रहे हैं। भक्तगण हर्षपूर्वक जयध्वनि कर रहे हैं—

"जय श्रीगुरुमहाराज ! जय श्रीगुरुमहाराज !"

परिच्छेद २

वराहनगर मठ

(१)

नरेन्द्रादि भक्तों की साधना। नरेन्द्र की पूर्वकथा

आज शुक्रवार है, २५ मार्च, १८८७ ई०। मास्टर मठ के भाइयों को देखने के लिए आए हैं। साथ देवेन्द्र भी हैं। मास्टर प्राय: आया करते हैं और कभी कभी रह भी जाते हैं। गत शनिवार को वे आए थे, शनि, रवि और सोम, तीन दिन रहे थे। मठ के भाइयों में, खास कर नरेन्द्र में, इस समय तीव्र वैराग्य है। इसीलिए मास्टर उत्सुकतापूर्वक उन्हें देखने के लिए आते हैं।

रात हो गई है। आज रात को मास्टर मठ में ही रहेंगे।

सन्ध्या हो जाने पर शशी ने ईश्वर के मधुर नाम का उच्चारण करते हुए ठाकुर-घर में दीपक जलाया और धूप-धूना सुलगाने लगे। धूपदान लेकर कमरे में जितने चित्र हैं, सब के पास गए और प्रणाम किया।

फिर आरती होने लगी। आरती वे ही कर रहे हैं। मठ के सब भाई, मास्टर तथा देवेन्द्र, सब लोग हाथ जोड़कर आरती देख रहे हैं, साथ ही साथ आरती गा रहे हैं—"जय शिव ओंकार, भज शिव ओंकार! ब्रह्मा विष्णु सदाशिव! हर हर हर महादेव!"

नरेन्द्र और मास्टर बातचीत कर रहे हैं। नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के पास जाने के समय की बहुत सी बातें कह रहे हैं। नरेन्द्र की उम्र इस समय २४ साल २ महीने की होगी।

नरेन्द्र—पहले-पहल जब मैं गया, तब एक दिन भावावेश में उन्होंने कहा, 'तू आया है!'

"मैंने सोचा, यह कैसा आश्चर्य है! ये मानो मुझे बहुत

दिनों से पहचानते हैं। फिर उन्होंने कहा, 'क्या तू कोई ज्योति देखता है ?'

"मैंने कहा, 'जी हाँ। सोने से पहले, दोनों भौहों के बीच की जगह के ठीक सामने एक ज्योति घूमती रहती है।'"

मास्टर– क्या अब भी देखते हो ?

नरेन्द्र– पहले बहुत देखा करता था। यदु मल्लिक के भोजनागार में मुझे छूकर न जाने उन्होंने मन ही मन क्या कहा, मैं अचेत हो गया था। उसी नशे में मैं एक महीने तक रहा था।

"मेरे विवाह की बात सुनकर माँ काली के पैर पकड़कर वे रोए थे। रोते हुए कहा था, 'माँ, वह सब फेर दे—माँ, नरेन्द्र कहीं डूब न जाय!'

"जब पिताजी का देहान्त हो गया, और माँ और भाइयों को भोजन तक की कठिनाई हो गई तब मैं एक दिन अन्नदा गुहा के साथ उनके पास गया था।

"उन्होंने अन्नदा गुहा से कहा, 'नरेन्द्र के पिताजी का देहान्त हो गया है, घरवालों को बड़ा कष्ट हो रहा है, इस समय अगर इष्टमित्र उसकी सहायता करें तो बड़ा अच्छा हो।'

"अन्नदा गुहा के चले जाने पर मैं उनसे कुछ रुष्टता से कहने लगा, 'क्यों आपने उनसे ये सब बातें कहीं ?' यह सुनकर वे रोने लगे थे। कहा, 'अरे! तेरे लिए मैं द्वार-द्वार भीख भी माँग सकता हूँ!'

"उन्होंने प्यार करके हम लोगों को वशीभूत कर लिया था। आप क्या कहते हैं ?"

मास्टर– इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उनके स्नेह का कोई कारण नहीं था।

नरेन्द्र– मुझसे एक दिन अकेले में उन्होंने एक बात कही। उस समय और कोई न था। यह बात आप और किसी से न कहिएगा।

मास्टर– नहीं। हाँ, क्या कहा था ?

नरेन्द्र– उन्होंने कहा, ' सिद्धियों के प्रयोग करने का अधिकार मैंने तो छोड़ दिया है, परन्तु तेरे भीतर से उनका प्रयोग करूँगा— क्यों, तेरा क्या कहना है ?' मैंने कहा, ' नहीं, ऐसा तो न होगा।'

" उनकी बात मैं उड़ा देता था। आपने उनसे सुना होगा। वे ईश्वर के रूपों के दर्शन करते थे, इस बात पर मैंने कहा था, ' यह सब मन की भूल है।'

" उन्होंने कहा, ' अरे, मैं कोठी पर चढ़कर ज़ोर ज़ोर से पुकार कर कहा करता था— अरे, कहाँ है कौन भक्त, चले आओ, तुम्हें न देखकर मेरे प्राण निकल रहे हैं। माँ ने कहा था,— ' अब भक्त आएँगे,' अब देख, सब बातें मिल रही हैं।'

" तब मैं और क्या कहता, चुप हो रहा।

नरेन्द्र की उच्च अवस्था

" एक दिन कमरे के दरवाजे बन्द करके उन्होंने देवेन्द्र बाबू और गिरीश बाबू से मेरे सम्बन्ध में कहा था, ' उसके घर का पता अगर उसे बता दिया जाएगा, तो फिर वह देह नहीं रख सकता।' "

मास्टर– हाँ, यह तो हमने सुना है। हम लोगों से भी यह बात उन्होंने कई बार कही है। काशीपुर में रहते हुए एक बार तुम्हारी वही अवस्था हुई थी, क्यों ?

नरेन्द्र– उस अवस्था में मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरे शरीर है ही नहीं; केवल मुँह देख रहा हूँ। श्रीरामकृष्ण ऊपर के कमरे में थे। मुझे नीचे यह अवस्था हुई। उस अवस्था के होते ही

मैं रोने लगा—यह मुझे क्या हो गया ? बूढ़े गोपाल ने ऊपर आकर उनसे कहा, 'नरेन्द्र रो रहा है।'

"जब उनसे मेरी मुलाकात हुई तब उन्होंने कहा, 'अब तेरी समझ में आया। पर कुंजी मेरे पास रहेगी।' मैंने कहा, 'मुझे यह क्या हुआ ?'

"दूसरे भक्तों की ओर देखकर उन्होंने कहा, 'जब वह अपने को जान लेगा, तब देह नहीं रखेगा। मैंने उसे भुला रखा है।' एक दिन उन्होंने कहा था, 'तू अगर चाहे तो हृदय में तुझे कृष्ण दिखाई दें।' मैंने कहा, 'मैं कृष्ण-विष्ण नहीं मानता।'

(नरेन्द्र और मास्टर हँसते हैं)

"एक अनुभव मुझे और हुआ है। किसी किसी स्थान पर वस्तु या मनुष्य को देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे पहले मैंने उन्हें कभी देखा हो, पहचाने हुए-से दीख पड़ते हैं। अमहर्स्ट स्ट्रीट में जब मैं शरद के घर गया, शरद से मैंने कहा, उस घर का सर्वांश जैसे मैं पहचानता हूँ, ऐसा भाव पैदा हो रहा है। घर के भीतर के रास्ते, कमरे, जैसे बहुत दिनों के पहचाने हुए हैं।

"मैं अपनी इच्छानुसार काम करता था, वे कुछ कहते न थे। मैं साधारण ब्राह्मसमाज का मेम्बर बना था, आप जानते हैं न?"

मास्टर—हाँ, मैं जानता हूँ।

नरेन्द्र - वे जानते थे कि वहाँ स्त्रियाँ भी जाया करती हैं। स्त्रियों को सामने रखकर ध्यान हो नहीं सकता। इसलिए इस प्रथा की वे निन्दा किया करते थे। परन्तु मुझे वे कुछ न कहते थे। एक दिन सिर्फ इतना ही कहा कि राखाल से ये सब बातें न कहना कि तू मेम्बर बन गया है, नहीं तो फिर उसे भी जाने की इच्छा होगी।

मास्टर– तुम्हारा मन ज्यादा ज़ोरदार है, इसीलिए उन्होंने तुम्हें मना नहीं किया।

नरेन्द्र– बड़े दु:ख और कष्टों के झेलने के बाद यह अवस्था हुई है। मास्टर महाशय, आपको दु:ख-कष्ट नहीं मिला— मैं मानता हूँ कि बिना दु:ख-कष्ट के हुए कोई ईश्वर को आत्म-समर्पण नहीं करता—

"अच्छा, अमुक व्यक्ति कितना नम्र और निरहंकार है! उसमें कितनी विनय है! क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मुझमें किस तरह विनय आए ?"

मास्टर– उन्होंने तुम्हारे अहंकार के सम्बन्ध में बतलाया था कि यह किसका अहंकार है।

नरेन्द्र– इसका क्या अर्थ है ?

मास्टर– राधिका से एक सखी कह रही थी, 'तुझे अहंकार हो गया है, इसीलिए तूने कृष्ण का अपमान किया है।' इसका उत्तर एक दूसरी सखी ने दिया। उसने कहा, "हाँ, राधिका को अहंकार तो हुआ है परन्तु यह अहंकार है किसका?'— अर्थात्, श्रीकृष्ण मेरे पति हैं— यह अहंकार है,— इस 'अहं' भाव को श्रीकृष्ण ने ही उसमें रखा है। श्रीरामकृष्ण के कहने का अर्थ यह है कि ईश्वर ने ही तुम्हारे भीतर यह अहंकार भर रखा है, अपना बहुत सा कार्य कराएँगे, इसलिए।

नरेन्द्र– परन्तु मेरा 'अहं' पुकारकर कहता है कि मुझे कोई क्लेश नहीं है।

मास्टर– (सहास्य)– हाँ, तुम्हारी इच्छा की बात है।

(दोनों हँसते हैं)

अब दूसरे दूसरे भक्तों की बात होने लगी— विजय गोस्वामी

आदि की।

नरेन्द्र– विजय गोस्वामी की बात पर उन्होंने कहा था, 'यह दरवाजा ठेल रहा है।'

मास्टर– अर्थात् अभी तक घर के भीतर घुस नहीं सके।

"परन्तु श्यामपुकुरवाले घर में विजय गोस्वामी ने श्रीरामकृष्ण से कहा था, 'मैंने आपको ढाके में इसी तरह देखा था, इसी शरीर में।' उस समय तुम भी वहाँ थे।

नरेन्द्र– देवेन्द्र बाबू, रामबाबू ये लोग भी संसार छोड़ेंगे। बड़ी चेष्टा कर रहे हैं। रामबाबू ने छिपे तौर पर कहा है, दो साल बाद संसार छोड़ेंगे।

मास्टर– दो साल बाद? शायद लड़के-बच्चों का बन्दोबस्त हो जाने पर?

नरेन्द्र– और यह भी है कि घर भाड़े से उठा देंगे और एक छोटा सा मकान खरीद लेंगे। उनकी लड़की के विवाह की व्यवस्था अन्य सम्बन्धी कर लेंगे।

मास्टर– नित्यगोपाल की अच्छी अवस्था है–– क्यों?

नरेन्द्र– क्या अवस्था है?

मास्टर– कितना भाव होता है!–– ईश्वर का नाम लेते ही आँसू बह चलते हैं–– रोमाँच होने लगता है!

नरेन्द्र– क्या भाव होने से ही बड़ा आदमी हो गया?

"काली, शरद, शशी, शारदा–– ये सब नित्यगोपाल से बहुत बड़े आदमी हैं। इनमें कितना त्याग है! नित्यगोपाल उनको (श्रीरामकृष्ण को) मानता कहाँ है?"

मास्टर– उन्होंने कहा भी है कि वह यहाँ का आदमी नहीं है। परन्तु श्रीरामकृष्ण पर भक्ति तो वह खूब करता था, मैंने अपनी

आँखों से देखा है ।

नरेन्द्र– क्या देखा है आपने ?

मास्टर– जब मैं पहले-पहल दक्षिणेश्वर जाने लगा था, तब श्रीरामकृष्ण के कमरे से भक्तों का दरबार उठ जाने पर, एक दिन बाहर आकर मैंने देखा–– नित्यगोपाल घुटने टेककर बगीचे की लाल सुरखीवाली राह पर श्रीरामकृष्ण के सामने हाथ जोड़े हुए था, श्रीरामकृष्ण खड़े थे । चाँदनी बड़ी साफ थी । श्रीरामकृष्ण के कमरे के ठीक उत्तर तरफ जो बरामदा है उसी के उत्तर ओर लाल सुरखीवाला रास्ता है । उस समय वहाँ और कोई न था । जान पड़ा, नित्यगोपाल शरणागत हुआ है, और श्रीरामकृष्ण उसे आश्वासन दे रहे हैं ।

नरेन्द्र– मैंने नहीं देखा ।

मास्टर– और बीच बीच में श्रीरामकृष्ण कहते थे, उसकी परमहंस अवस्था है । परन्तु यह भी मुझे खूब याद है, श्रीरामकृष्ण ने उसे स्त्रीभक्तों के पास जाने की मनाही की थी । बहुत बार उसे सावधान कर दिया था ।

नरेन्द्र– और उन्होंने मुझसे कहा था, 'उसकी अगर परमहंस अवस्था है तो धन के पीछे क्यों भटकता है ?' और उन्होंने यह भी कहा था, 'वह यहाँ का आदमी नहीं है । जो हमारे अपने आदमी हैं, वे यहाँ सदा आते रहेंगे ।'

"इसीलिए तो वे × बाबू पर नाराज़ होते थे । इसलिए कि वह सदा नित्यगोपाल के साथ रहता था, और उनके पास ज्यादा आता न था ।

"मुझसे उन्होंने कहा था, 'नित्यगोपाल सिद्ध है–– वह एकाएक सिद्ध हो गया है–– आवश्यक तैयारी के बिना । वह यहाँ का

आदमी नहीं है; अगर अपना होता तो उसे देखने के लिए मैं कुछ भी तो रोता, परन्तु उसके लिए मैं नहीं रोया।'

"कोई-कोई उसे नित्यानन्द कहकर प्रचार कर रहे हैं। परन्तु उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) कितनी ही बार कहा है, 'मैं ही अद्वैत चैतन्य और नित्यानन्द हूँ। एक ही आधार में मैं उन तीनों का समष्टि-रूप हूँ।'"

(२)

नरेन्द्र की पूर्वकथा

मठ में काली तपस्वी के कमरे में दो भक्त बैठे हैं। उनमें एक त्यागी हैं, एक गृही। दोनों २४-२४, २५-२५ साल की उम्र के हैं। दोनों में बातचीत हो रही है, इसी समय मास्टर भी आ गए। वे मठ में तीन दिन रहेंगे।

आज 'गुड फ्रायडे' है, ८ अप्रैल १८८७, शुक्रवार। इस समय दिन के आठ वजे होंगे। मास्टर ने आते ही ठाकुर-घर में जाकर श्रीरामकृष्ण के चित्र को प्रणाम किया। फिर नरेन्द्र और राखाल आदि भक्तों से मिलकर उसी कमरे में आकर बैठे, और उन दोनों भक्तों से प्रीति-सम्भाषण के अनन्तर उनकी बातचीत सुनने लगे। गृही भक्त की इच्छा संसार त्याग करने की है। मठ के भाई उन्हें समझा रहे हैं कि वे संसार न छोड़ें।

त्यागी भक्त— कर्म जो कुछ हैं, कर डालो। करने से फिर सब समाप्त हो जाएँगे।

"एक ने सुना था कि उसे नरक जाना होगा। उसने एक मित्र से पूछा कि नरक कैसा है। मित्र एक मिट्टी का ढेला लेकर नरक का नक्शा खींचने लगा। नरक का नक्शा उसने खींचा नहीं कि वह आदमी तुरन्त उस पर लोटने लगा, और बोला,

'चलो, मेरा नरक का भोग हो गया।' "

गृही भक्त– मुझे संसार अच्छा नहीं लगता। अहा! तुम लोगों की कैसी सुन्दर अवस्था है!

त्यागी भक्त– तू इतना बकता क्यों है? अगर निकलना है तो निकल आ; नहीं तो मजे से एक बार भोग कर ले।

नौ बजने के बाद शशी ने श्रीठाकुरघर में पूजा की।

ग्यारह का समय हुआ। मठ के भाई क्रमशः गंगा-स्नान करके आ गए। स्नान के पश्चात् दूसरा शुद्ध वस्त्र धारण कर, हरएक संन्यासी श्रीठाकुरघर में श्रीरामकृष्ण के चित्र को प्रणाम करके ध्यान करने लगा।

भोग के पश्चात् मठ के भाइयों ने प्रसाद पाया। साथ में मास्टर ने भी प्रसाद पाया।

सन्ध्या हो गई। धूनी देने के पश्चात् आरती हुई। 'दानवों के कमरे' में राखाल, शशी, बूढ़े गोपाल और हरीश बैठे हुए हैं। मास्टर भी हैं। राखाल श्रीरामकृष्ण का भोग सावधानी से रखने के लिए कह रहे हैं।

राखाल– (शशी आदि से)– एक दिन मैंने उनके जलपान करने से पहले कुछ खा लिया था। उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—'तेरी ओर मुझसे देखा नहीं जाता। क्यों तूने ऐसा काम किया?'—मैं रोने लगा।

बूढ़े गोपाल– मैंने काशीपुर में उनके भोजन पर जोर से साँस छोड़ी थी, तब उन्होंने कहा, 'यह भोजन रहने दो।'

बरामदे में मास्टर नरेन्द्र के साथ टहल रहे हैं। दोनों में तरह तरह की बातचीत हो रही है। नरेन्द्र ने कहा, 'मैं तो कुछ भी न मानता था।'

मास्टर– क्या ? ईश्वर के रूप ?

नरेन्द्र– वे जो कुछ कहते थे, पहले-पहल में बहुत सी बातें न मानता था। एक दिन उन्होंने कहा था, 'तो फिर तू आता क्यों है ?'

"मैंने कहा, 'आपको देखने के लिए, आपकी बातें सुनने के लिए नहीं।'"

मास्टर– उन्होंने क्या कहा था ?

नरेन्द्र– वे बहुत प्रसन्न हुए थे।

दूसरे दिन शनिवार था, ९ अप्रैल १८८७। श्रीरामकृष्ण के भोग के पश्चात् मठ के भाइयों ने भोजन किया, फिर वे ज़रा विश्राम करने लगे। नरेन्द्र और मास्टर, मठ से सटा हुआ पश्चिम ओर जो बगीचा है, वहीं एक पेड़ के नीचे एकान्त में बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं। नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में अपने अनुभव बता रहे हैं। नरेन्द्र की आयु २४ वर्ष की है और मास्टर की ३२ वर्ष की।

मास्टर– पहले-पहल जिस दिन उनसे तुम्हारी मुलाकात हुई थी, वह दिन तुम्हें अच्छी तरह याद है ?

नरेन्द्र– मुलाकात दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में हुई थी, उन्हीं के कमरे में। उस दिन मैंने दो गाने गाए थे।

गाना– (भावार्थ)– ऐ मन, अपने स्थान में लौट चलो। संसार में विदेशी की तरह अकारण क्यों घूम रहे हो ?...

गाना– (भावार्थ)– क्या मेरे दिन व्यर्थ ही बीत जाएँगे ? हे नाथ, मैं दिन-रात आशा-पथ पर आँख गड़ाए हुए हूँ।...

मास्टर– गाना सुनकर उन्होंने क्या कहा ?

नरेन्द्र– उन्हें भावावेश हो गया था। रामबाबू आदि और

और लोगों से उन्होंने पूछा, 'यह लड़का कौन है? अहा, कितना सुन्दर गाता है!' मुझसे उन्होंने फिर आने के लिए कहा।

मास्टर– फिर कहाँ मुलाकात हुई?

नरेन्द्र– फिर राजमोहन के यहाँ मुलाकात हुई थी। इसके बाद दक्षिणेश्वर में; उस समय मुझे देखकर भावावेश में मेरी स्तुति करने लगे थे। स्तुति करते हुए कहने लगे, 'नारायण! तुम मेरे लिए शरीर धारण करके आए हो।'

"परन्तु ये बातें किसी से कहिऐगा नहीं।"

मास्टर– और उन्होंने क्या कहा?

नरेन्द्र– उन्होंने कहा, "तुम मेरे लिए ही शरीर धारण करके आए हो। मैंने माँ से कहा था, 'माँ, काम-कांचन का त्याग करनेवाले शुद्धात्मा भक्तों के बिना संसार में कैसे रहूँगा!'" उन्होंने फिर मुझसे कहा, "तूने रात को मुझे आकर उठाया, और कहा, 'मैं आ गया।'" परन्तु मैं यह सब कुछ नहीं जानता था, मैं तो कलकत्ते के मकान में खूब खर्राटे ले रहा था।

मास्टर– अर्थात्, तुम एक ही समय present (हाजिर) भी हो और absent (गैर हाज़िर) भी हो, जैसे ईश्वर साकार भी है और निराकार भी।

नरेन्द्र के प्रति लोक-शिक्षा का आदेश

नरेन्द्र– परन्तु यह बात किसी दूसरे से न कहिएगा।

"काशीपुर में उन्होंने मेरे भीतर शक्ति का संचार किया।"

मास्टर– जिस समय तुम काशीपुर में पेड़ के नीचे धूनी जलाकर बैठते थे, क्यों?

नरेन्द्र–हाँ। काली से मैंने कहा, 'ज़रा मेरा हाथ पकड़ तो सही।' क़ाली ने कहा, 'न जाने तुम्हारी देह छूते ही कैसा एक

धक्का मुझे लगा।'

"यह बात हम लोगों में किसी से आप न कहेंगे-- प्रतिज्ञा कीजिए।"

मास्टर– तुम्हारे भीतर शक्ति-संचार करने का उनका खास मतलब है। तुम्हारे द्वारा उनके बहुत से कार्य होंगे। एक दिन एक कागज़ में लिखकर उन्होंने कहा था, 'नरेन्द्र शिक्षा देगा।'

नरेन्द्र– परन्तु मैंने कहा था, 'यह सब मुझसे न होगा।'

"इस पर उन्होंने कहा, 'तेरे हाड़ करेंगे।' शरद का भार उन्होंने मुझे सौंपा है। वह व्याकुल है। उसकी कुण्डलिनी जाग्रत हो गई है।"

मास्टर– इस समय चाहिए कि सड़े पत्ते न जमने पाएँ। श्रीरामकृष्ण कहते थे, शायद तुम्हें याद हो, कि तालाब में मछलियों के बिल रहते हैं, वहाँ मछलियाँ आकर विश्राम करती हैं। जिस बिल में सड़े पत्ते आकर जम जाते हैं, उसमें फिर मछली नहीं आती।

नरेन्द्र– मुझे नारायण कहते थे।

मास्टर– तुम्हें नारायण कहते थे, यह मैं जानता हूँ।

नरेन्द्र– जब वे बीमार थे, तब शौच का पानी मुझसे नहीं लेते थे।

"काशीपुर में उन्होंने कहा था, 'अब कुंजी मेरे हाथों में है। वह अपने को जान लेगा तो देह छोड़ देगा।'"

मास्टर– जिस दिन तुम्हारी निर्विकल्प समाधि की अवस्था हुई थी— क्यों?

नरेन्द्र– हाँ। उस समय मुझे जान पड़ा था कि मेरे शरीर नहीं है, केवल मुँह भर है। घर में मैं कानून पढ़ रहा था, परीक्षा

देने के लिए । तब एकाएक याद आया कि यह मैं क्या कर रहा हूँ !

मास्टर– जब श्रीरामकृष्ण काशीपुर में थे ?

नरेन्द्र– हाँ । पागल की तरह मैं घर से निकल आया । उन्होंने पूछा, 'तू क्या चाहता है ?' मैंने कहा, 'मैं समाधिमग्न होकर रहूँगा ।' उन्होंने कहा, 'तेरी बुद्धी तो बड़ी हीन है । समाधि के पार जा, समाधि तो तुच्छ चीज़ है ।'

मास्टर– हाँ, वे कहते थे, ज्ञान के बाद विज्ञान है । छत पर चढ़कर सीढ़ियों से फिर आना-जाना ।

नरेन्द्र– काली ज्ञान-ज्ञान चिल्लाता है । मैं उसे डाँटता हूँ । ज्ञान क्या इतना सहज है ? पहले भक्ति तो पके ।

"उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) तारक बाबू से दक्षिणेश्वर में कहा था, 'भाव और भक्ति को ही इति न समझ लेना ।' "

मास्टर– तुम्हारे सम्बन्ध में उन्होंने और क्या क्या कहा था, बताओ तो ।

नरेन्द्र– मेरी बात पर वे इतना विश्वास करते थे कि जब मैंने कहा, 'आप रूप आदि जो कुछ देखते हैं, यह सब मन की भूल है,' तब माँ (जगन्माता काली) के पास जाकर उन्होंने पूछा, 'माँ, नरेन्द्र इस तरह कह रहा है, तो क्या यह सब भूल है ?' फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'माँ ने कहा है, यह सब सत्य है ।'

"वे कहते थे, शायद आपको याद हो, 'तेरा गाना सुनने पर (छाती पर हाथ रखकर) इसके भीतर जो हैं, वे साँप की तरह फन खोलकर स्थिर भाव से सुनते रहते हैं ।'

"परन्तु मास्टर महाशय, उन्होंने इतना तो कहा, परन्तु मेरा बतलाइए क्या हुआ ? "

मास्टर– इस समय तुम शिव बने हुए हो, पैसे लेने का अधिकार तो है ही नहीं। श्रीरामकृष्ण की कहानी याद है न?

नरेन्द्र– कौनसी कहानी? ज़रा कहिए।

मास्टर– कोई बहुरूपिया शिव बना था। जिनके यहाँ वह गया था, वे एक रुपया देने लगे। उसने रुपया नहीं लिया, घर लौटकर हाथ-पैर धोकर उसने बाबू के यहाँ आकर रुपया माँगा। बाबू के घरवालों ने कहा, 'उस समय तुमने रुपया क्यों नहीं लिया?' उसने कहा, 'तब तो मैं शिव बना था–– संन्यासी था–– रुपया कैसे छूता?'

यह बात सुनकर नरेन्द्र खूब हँसे।

मास्टर– इस समय तुम मानो एक वैद्य हो। सब भार तुम्हीं पर है। मठ के भाइयों को तुम मनुष्य बनाओगे।

नरेन्द्र– हम लोग जो साधन-भजन कर रहे हैं, यह उन्हीं की आज्ञा से। परन्तु आश्चर्य है, राम बाबू साधना की बात पर हम लोगों को ताना मारते हैं। वे कहते हैं, 'जब उनके प्रत्यक्ष दर्शन कर लिए तब साधना कैसी?'

मास्टर– जिसका जैसा विश्वास, वह वैसा ही करे।

नरेन्द्र– हम लोगों को तो उन्होंने साधना करने की आज्ञा दी है।

नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के प्यार की बातें करने लगे।

नरेन्द्र– मेरे लिए माँ काली से उन्होंने न जाने कितनी बातें कहीं। जब मुझे खाने को नहीं मिल रहा था, पिताजी का देहान्त हो गया था–– घरवाले बड़े कष्ट में थे, तब मेरे लिए माँ काली से उन्होंने रुपयों की प्रार्थना की थी।

मास्टर– यह मुझे मालूम है।

नरेन्द्र– रुपये नहीं मिले। उन्होंने कहा, ‘माँ ने कहा है, मोटा कपड़ा और रूखा-सूखा भोजन मिल सकता है–– रोटी-दाल मिल सकती है।’

“मुझे इतना प्यार तो करते थे, परन्तु जब कोई अपवित्र भाव मुझमें आता था तब उसे वे तुरन्त ताड़ जाते थे। जब मैं अन्नदा के साथ घूमता था–– कभी कभी बुरे आदमियों के साथ पड़ जाता था–– और तब यदि उनके पास मैं आता था तो मेरे हाथ का वे कुछ न खाते थे। मुझे स्मरण है, एक बार उनका हाथ कुछ उठा था, परन्तु फिर आगे न बढ़ा। उनकी बीमारी के समय एक दिन ऐसा होने पर उनका हाथ मुँह तक गया और फिर रुक गया। उन्होंने कहा, ‘अब भी तेरा समय नहीं आया।’

“कभी-कभी मुझे बड़ा अविश्वास होता है। राम बाबू के यहाँ मुझे जान पड़ा कि कहीं कुछ नहीं है। मानो ईश्वर-फीश्वर कहीं कुछ नहीं।”

मास्टर- वे कहते थे कि कभी कभी उन्हें भी ऐसा ही होता था।

दोनों चुप हैं। मास्टर कहने लगे–– “तुम लोग धन्य हो! दिन-रात उनके चिन्तन में रहते हो।” नरेन्द्र ने कहा––“कहाँ? हममें इतनी व्याकुलता कहाँ कि ईश्वरदर्शन न होने के दुःख से शरीर-त्याग कर सकें?”

रात हो गई है। निरंजन को पुरीधाम से लौटे कुछ ही समय हुआ है। उन्हें देखकर मठ के भाई और मास्टर प्रसन्न हो रहे हैं। वे पुरीयात्रा का हाल कहने लगे। निरंजन की उम्र इस समय २५-२६ साल की होगी। सन्ध्याआरती के हो जाने पर कोई ध्यान करने लगे। निरंजन के लौटने पर बहुत से भाई बड़े

घर में आकर बैठे। सत्प्रसंग होने लगा। रात के नौ बजे के बाद शशी ने श्रीरामकृष्ण को भोगार्पण करके उन्हें शयन कराया।

मठ के भाई निरंजन को साथ लेकर भोजन करने बैठे। उस दिन भोजन में रोटियाँ थीं, एक तरकारी, ज़रा सा गुड़ और श्रीरामकृष्ण के नैवेद्य की थोड़ी सी खीर।

परिच्छेद ३

भक्तों के हृदय में श्रीरामकृष्ण

(१)

नरेन्द्रादि का तीव्र वैराग्य

आज वैशाखी पूर्णिमा है। शनिवार, ७ मई १८८७।

गुरुप्रसाद चौधरी लेन, कलकत्ता के एक मकान में नरेन्द्र और मास्टर बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं। यह मास्टर के पढ़ने का कमरा है। नरेन्द्र के आने के पहले वे Merchant of Venice, Comus, Blackie's Self-culture, यही सब पुस्तकें पढ़ रहे थे। स्कूल में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए पाठ तैयार कर रहे थे।

नरेन्द्र और मठ के सब गुरुभाइयों के हृदय में तीव्र वैराग्य झलक रहा है। ईश्वर-दर्शन के लिए सब के सब व्याकुल हो रहे हैं।

नरेन्द्र–(मास्टर से)– मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। आपके साथ बातचीत तो कर रहा हूँ, परन्तु जी चाहता है कि उठकर अभी चला जाऊँ।

नरेन्द्र कुछ देर तक चुप रहे। कुछ समय बाद कहने लगे, "ईश्वर-दर्शन के लिए मैं अनशन कर डालूँगा––प्राण तक दे दूँगा।"

मास्टर– अच्छा तो है, ईश्वर के लिए सब कुछ किया जा सकता है।

नरेन्द्र– अगर भूख न संभाल सका तो ?

मास्टर– तो कुछ खा लेना, और फिर से शुरू करना।

नरेन्द्र कुछ देर तक चुप रहे।

नरेन्द्र– जान पड़ता है, ईश्वर नहीं है। इतनी प्रार्थनाएँ मैंने कीं, उत्तर एक बार भी नहीं मिला।

"सोने के अक्षरों में लिखे हुए न जाने कितने मंत्र चमकते हुए मैंने देखे!

"न जाने कितने काली रूप, और दूसरे दूसरे रूप देखे, फिर भी शान्ति नहीं मिल रही है!

"छः पैसे दीजिएगा?"

नरेन्द्र शोभा बाजार से गाड़ी में वराहनगर मठ जानेवाले हैं, इसीलिए किराए के छः पैसे चाहिए थे।

देखते ही देखते सातू (सातकौड़ी) गाड़ी से आ पहुँचे। सातू नरेन्द्र के ही उम्र के हैं, मठ के किशोर भक्तों को बड़ा प्यार करते हैं, मठ में सदा आते-जाते भी हैं। उनका घर वराहनगर मठ के पास ही है, कलकत्ते के किसी आफिस में काम करते हैं। उनके घर की गाड़ी है। उसी गाड़ी से आफिस होकर आ रहे हैं।

नरेन्द्र ने मास्टर को पैसे वापस कर दिए, कहा, 'अब क्या है, अब सातू के साथ चला जाऊँगा। आप कुछ खिलाइये।' मास्टर ने कुछ जलपान कराया।

उसी गाड़ी पर मास्टर भी बैठे। उनके साथ वे भी मठ जाएँगे। सब लोग शामको मठ पहुँचे। मठ के भाई किस तरह दिन बिताते और साधना करते हैं, यह देखने की उनकी इच्छा है। श्रीरामकृष्ण किस तरह अपने पार्षदों के हृदय में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं यह देखने के लिए कभी कभी मास्टर मठ हो आया करते हैं। निरंजन मठ में नहीं हैं। घर में एकमात्र उनकी माँ बच रही हैं, उन्हें देखने के लिए वे घर चले गए हैं। बाबूराम,

शरद और काली पुरी गए हुए हैं—कुछ दिन वहाँ रहेंगे,—उत्सव देखेंगे।

मठ के भाइयों की देख-रेख नरेन्द्र ही कर रहे हैं। प्रसन्न कुछ दिनों से कठोर साधना कर रहे थे। उनसे भी नरेन्द्र ने प्रायोपवेशन की बात कही थी। नरेन्द्र को कलकत्ता जाते हुए देख, वे भी कहीं अज्ञात स्थान के लिए चले गए। कलकत्ते से लौटकर नरेन्द्र ने सब कुछ सुना। उन्होंने दूसरे गुरुभाइयों से कहा, 'राजा (राखाल) ने क्यों उसे जाने दिया ?' परन्तु राखाल उस समय मठ में नहीं थे, वे मठ से दक्षिणेश्वर के बगीचें में टहलने चले गए थे। राखाल को सब भाई राजा कहकर पुकारते थे। 'राखाल राज' श्रीकृष्ण का एक दूसरा नाम था।

नरेन्द्र– राजा को आने दो, मैं उसे एक बार फटकारूँगा कि क्यों उसे जाने दिया। (हरीश से) तुम तो पैर फैलाए लेक्चर दे रहे थे, उसे मना क्यों नहीं कर सके ?

हरीश– (मधुर स्वर से)– तारक दादा ने कहा तो, पर वह चला ही गया।

नरेन्द्र– (मास्टर से)– देखिए, मेरे लिए बड़ी मुश्किल है। यहाँ भी मैं एक माया के संसार में आ फँसा हूँ ! न मालूम वह लड़का कहाँ चला गया !

राखाल दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर से लौट आए हैं। भवनाथ भी उनके साथ गए थे।

राखाल से नरेन्द्र ने प्रसन्न की बात कही। प्रसन्न ने नरेन्द्र को एक पत्र लिखा है, वह पत्र पढ़ा जा रहा है। पत्र इस आशय का है —— "मैं पैदल ही वृन्दावन चला। मेरे लिए यहाँ रहना अच्छा नहीं है। यहाँ भाव का परिवर्तन हो रहा है। पहले तो

में माता-पिता और घर के दूसरे मनुष्यों का स्वप्न देखा करता था, इसके पश्चात् मैंने माया की मूर्ति देखी। दो बार मुझे बड़ा कष्ट मिला, घर लौट जाना पड़ा था। इसीलिए अब की बार दूर जा रहा हूँ। श्रीरामकृष्णदेव ने मुझसे कहा था—'तेरे वे घरवाले सब कुछ कर सकते हैं, उनका विश्वास न करना।' "

राखाल कह रहे हैं, "वह इन्हीं अनेक कारणों से चला गया है। और उसने यह भी कहा है, 'नरेन्द्र अपनी माँ और भाइयों की खबर लेने और मुकदमा आदि करने के लिए घर चला जाया करता है। मुझे भय है कि उसकी देखा-देखी कहीं मुझे भी घर जाने की इच्छा न हो।' "

यह सुनकर नरेन्द्र चुप हो रहे।

राखाल तीर्थ जाने की बातचीत कर रहे हैं। कह रहे हैं, 'यहाँ रहकर तो कहीं कुछ न हुआ। उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) जो कहा है—ईश्वरदर्शन, वह कहाँ हुआ?' राखाल लेटे हुए हैं। पास ही भक्तों में कोई लेटे हुए हैं, कोई बैठे।

राखाल– चलो नर्मदा की ओर निकल चलें।

नरेन्द्र– निकलकर क्या होगा? ज्ञान इससे थोड़े ही होता है, जिसके सम्बन्ध में तूने इतनी रट लगा दी है।

एक भक्त– तो फिर संसार का त्याग तुमने क्यों किया?

नरेन्द्र– राम को नहीं पाया, इसलिए क्या श्याम के साथ रहना चाहिए? ईश्वर-लाभ नहीं हुआ, इसलिए क्या बच्चे पैदा करते रहना चाहिए? यह कैसी बात है?

यह कहकर नरेन्द्र ज़रा उठ गए। राखाल लेटे हुए हैं।

कुछ देर बाद नरेन्द्र फिर लौटे और आसन ग्रहण किया।

मठ के एक भाई लेटे ही लेटे हास्य में कह रहे हैं मानो

ईश्वर-दर्शन के बिना उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा हो—"अरे, कोई है ?—मुझे एक छुरी तो दो, प्राणान्त कर लूँ—बस अब तो कष्ट सहा नहीं जाता !"

नरेन्द्र–(मानो गम्भीर होकर)–वहीं है, हाथ बढ़ाकर उठा लो ! (सब हँसते हैं)

फिर प्रसन्न की बात होने लगी ।

नरेन्द्र–यहाँ भी माया ! फिर हम लोगों ने संन्यास क्यों लिया ?

राखाल–'मुक्ति और उसकी साधना' नामक पुस्तक में है कि संन्यासियों को एक जगह नहीं रहना चाहिए । 'संन्यासी-नगर' की कथा उसमें है ।

शशी–मैं संन्यास-फन्यास नहीं मानता । मेरे लिए ऐसा कोई स्थान नहीं है, जो अगम्य हो । ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ मैं न रह सकूँ ।

भवनाथ की बात चलने लगी । भवनाथ की स्त्री को कठिन पीड़ा हुई थी ।

नरेन्द्र–(राखाल से)–जान पड़ता है, भवनाथ की बीबी बच गई; इसीलिए मारे खुशी के दक्षिणेश्वर घूमने गया था ।

काँकुड़गाची के बगीचे की बातचीत होने लगी । रामबाबू वहाँ मन्दिर बनवाने का विचार कर रहे हैं ।

नरेन्द्र–(राखाल से)–राम बाबू ने मास्टर महाशय को एक 'ट्रस्टी' (trustee) बनाया है ।

मास्टर–(राखाल से)–परन्तु मुझे तो इसकी कोई खबर नहीं ।

शाम हो गई । शशी श्रीरामकृष्ण के कमरे में धूप देने लगे । दूसरे कमरों में श्रीरामकृष्ण के जितने चित्र थे, वहाँ भी धूप-

धूना दिया गया। फिर मधुर कण्ठ से उनका नामोच्चारण करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

अब आरती हो रही है। मठ के गुरु-भाई और दूसरे भक्त हाथ जोड़कर खड़े हुए आरती देख रहे हैं। झाँझ और घण्टे बज रहे हैं। भक्तवृन्द एकस्वर से आरती गा रहे हैं——

"जय शिव ओंकार, भज शिव ओंकार।

ब्रह्मा विष्णु सदाशिव, हर हर हर महादेव।"

नरेन्द्र पहले गाते हैं, पीछे से उनके दूसरे गुरु-भाई। यही गायन श्रीकाशीधाम में विश्वेश्वर-मन्दिर में हुआ करता है।

भोजन आदि समाप्त करते हुए रात के ग्यारह बज गए। भक्तों ने मास्टर के लिए एक बिछौना बिछा दिया और वे स्वयं भी सो गए।

आधी रात का समय है। मास्टर की आँख नहीं लगी। वे सोच रहे हैं—— 'सब तो है,—— अयोध्या तो वही है, परन्तु बस राम नहीं हैं।' मास्टर चुपचाप उठ गए। आज वैशाख की पूर्णिमा है। मास्टर अकेले गंगाजी के तट पर टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण की बातें सोच रहे हैं।

योगवासिष्ठ-पाठ। संकीर्तनानन्द तथा नृत्य

आज रविवार है। मास्टर शनिवार को आए हैं। बुध तक अर्थात् पाँच दिन मठ में रहेंगे। गृही भक्त प्रायः रविवार को ही मठ में दर्शन करने के लिए आया करते हैं। आजकल बहुधा योगवासिष्ठ का पाठ हुआ करता है। मास्टर ने श्रीरामकृष्ण से योगवासिष्ठ की कुछ बातें सुनी थीं। देह-बुद्धि के रहते योगवासिष्ठ के 'सोऽहम्' भाव के अनुसार साधना करने की श्रीरामकृष्ण ने मनाही की थी और कहा था, 'सेव्यसेवक-भाव ही

अच्छा है।'

मास्टर– अच्छा, योगवासिष्ठ में ब्रह्मज्ञान की कैसी बातें हैं ?

राखाल– भूख-प्यास, सुख-दुःख, यह सब माया है, मन का नाश ही एकमात्र उपाय है।

मास्टर– मन के नाश के पश्चात् जो कुछ बच रहता है, वही ब्रह्म है, क्यों ?

राखाल– हाँ।

मास्टर– श्रीरामकृष्ण भी ऐसा ही कहते थे। न्यांगटा ने उनसे यही बात कही थी। अच्छा, राम को वशिष्ठजी ने संसार में रहने के लिए कहा है, क्या ऐसी कोई बात तुम्हें उस ग्रन्थ में मिली ?

राखाल– नहीं, अभी तक तो नहीं मिली। इसमें तो राम को कहीं अवतार ही नहीं लिखा है।

यही बातचीत चल रही है, इसी समय नरेन्द्र, तारक तथा एक और भक्त गंगातट से टहलकर आ गए। उनकी इच्छा सैर करते हुए कोन्नगर तक जाने की थी, परन्तु नाव नहीं मिली। सब के सब आकर बैठे। योगवासिष्ठ का प्रसंग फिर चलने लगा।

नरेन्द्र– (मास्टर से)– बड़ी अच्छी कहानियाँ हैं। लीला की कथा आप जानते हैं ?

मास्टर– हाँ, योगवासिष्ठ में है, मैंने कुछ पढ़ा है। लीला को ब्रह्मज्ञान हुआ था न ?

नरेन्द्र– हाँ, और इन्द्र-अहल्या-संवाद, तथा विदूरथ राजा चाण्डाल हुए— वह कथा ?

मास्टर– हाँ, याद आ रही है।

नरेन्द्र– वन का वर्णन भी कितना मनोहर है !

नरेन्द्र आदि भक्तगण गंगा-स्नान को जा रहे हैं। मास्टर भी जाएँगे। धूप देखकर मास्टर ने छाता ले लिया। वराहनगर के श्रीयुत शरच्चन्द्र भी साथ ही गंगा नहाने जा रहे हैं। ये सदाचारी ब्राह्मण युवक हैं। मठ में सदा आते रहते हैं। कुछ दिन पहले वैराग्य धारण करके ये तीर्थाटन भी कर चुके हैं।

मास्टर– (शरद से)– धूप बड़ी तेज है।

नरेन्द्र– तो यह कहो कि छाता ले लूं।

(मास्टर हँसते हैं)

भक्तगण कन्धे पर अँगौछा डाले हुए मठ का रास्ता पार कर परामाणिक घाट के उत्तर तरफवाले घाट में नहा रहे हैं। सब के सब गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए हैं। आज ८ मई, १८८७ है। धूप बड़ी तेज है।

मास्टर– (नरेन्द्र से)– कहीं लू न लग जाय।

नरेन्द्र– आप लोगों का शरीर भी तो वैराग्य में बाधक है–– है न ? मेरा मतलब है आपका, देवेन्द्र बाबू का––

मास्टर हँसने लगे और सोचने लगे––'क्या केवल शरीर ही बाधक है ?'

स्नान करके भक्तगण मठ लौटे और हाथ-पैर धोकर श्रीरामकृष्ण के कमरे में (जहाँ श्रीरामकृष्ण की पूजा होती थी) गए। प्रणाम करके श्रीरामकृष्ण के पादपद्मों में प्रत्येक भक्त ने पुष्पांजलि चढ़ाई।

पूजा-घर में नरेन्द्र को जाने में कुछ देर हो गई। श्रीगुरु महाराज को प्रणाम करके नरेन्द्र फूल लेने को बढ़े तो देखा, पुष्प-पात्र में फूल एक भी नहीं था। उन्होंने पूछा––'फूल नहीं हैं ?' पुष्प-पात्र में दो-एक बिल्वदल बच रहे थे, चन्दन में उन्हें

ही डुबाकर अर्पण किया। फिर एक बार घण्टाध्वनि की। अन्त में प्रणाम करके 'दानवों के कमरे' में जाकर बैठे।

मठ के गुरुभाई अपने आपको भूत तथा दानव कहते थे, क्योंकि भूत-दानव शिवजी के अनुयायी हैं। और जिस कमरे में सब एक साथ बैठते थे, उसे 'दानवों का कमरा' कहते थे। जो लोग एकान्त में ध्यान-धारणा और पाठ आदि करते थे, वे लोग दक्षिण ओर के कमरे में रहते थे। काली द्वार बन्द करके अधिकतर उसी कमरे में रहते थे, इसलिए मठ के गुरुभाई उस कमरे को काली तपस्वी का कमरा कहते थे। काली तपस्वी के कमरे के उत्तर तरफ पूजा-घर था। उसके उत्तर ओर जो कमरा था, उसमें नैवेद्य रखा जाता था। उसी कमरे में खड़े होकर लोग आरती देखते और वहीं से भगवान श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करते थे। नैवेद्यवाले कमरे के उत्तर में 'दानवों का कमरा' था। यह कमरा खूब लम्बा था। बाहर के भक्तों के आने पर इसी कमरे में उनका स्वागत किया जाता था। 'दानवों के कमरे' के उत्तर तरफ एक और छोटासा कमरा था। यह 'पान-घर' के नाम से पुकारा जाता था। यहाँ भक्तगण भोजन करते थे।

'दानवों के कमरे' के पूर्व कोने में दालान थी। उत्सव होने पर भोजन आदि की व्यवस्था इसी कमरे में की जाती थी। दालान के ठीक उत्तर तरफ रसोईघर था।

पूजा-घर और काली तपस्वी के कमरे के पूर्व ओर बरामदा था। बरामदे के दक्षिण-पश्चिम कोने में वराहनगर की एक समिति का पुस्तकालय था। ये सब कमरे दुमंज़ले पर थे। जीने दो थे। एक तो पुस्तकालय और काली तपस्वी के कमरे के बीच से, और दूसरा, भक्तों के भोजन करनेवाले कमरे के उत्तर तरफ।

नरेन्द्र आदि भक्तगण इसी जीने से शाम को कभी कभी छत पर जाते थे। वहाँ बैठकर वे लोग ईश्वर-सम्बधी अनेक विषयों की चर्चा किया करते थे। कभी भगवान श्रीरामकृष्ण की बातें, कभी शंकराचार्य की, कभी रामानुज की और कभी ईसा मसीह की बातें होती थीं। कभी हिन्दू-दर्शन की बातें होती थीं तो कभी यूरोपीय दर्शन का प्रसंग चलता था, कभी वेदों, कभी पुराणों और कभी तंत्रों की कथाएँ हुआ करती थीं।

'दानवों के कमरे' में बैठकर नरेन्द्र अपने दैवी कण्ठ से परमात्मा के नामों और उनके गुणों का कीर्तन किया करते थे। शरद अपने दूसरे भाइयों को गाना सिखलाते थे। काली वाद्य सीखते थे। इस कमरे में नरेन्द्र कितनी ही बार कीर्तन करते हुए आनन्द करते और आनन्दपूर्वक नृत्य किया करते थे।

नरेन्द्र तथा धर्मप्रचार। ध्यानयोग और कर्मयोग

नरेन्द्र 'दानवों के कमरे' में बैठे हुए हैं। चुन्नीलाल, मास्टर तथा मठ के और भाई भी बैठे हुए हैं। धर्म-प्रचार की बातें होने लगीं।

मास्टर– (नरेन्द्र से)– विद्यासागर कहते हैं, 'मैं तो बेंतों की मार खाने के डर से ईश्वर की बात किसी दूसरे से नहीं कहता।'

नरेन्द्र– बेंतों की मार खाने का क्या मतलब ?

मास्टर– विद्यासागर कहते हैं, 'सोचो मरने के बाद हम सब ईश्वर के पास गए। सोचो कि केशव सेन को यमदूत ईश्वर के पास ले गए। केशव ने संसार में पाप भी किया है। जब यह सप्रमाण सिद्ध हुआ, तब बहुत सम्भव है, ईश्वर कहें कि इसे पच्चीस बेंत लगाओ। इसके बाद, सोचो, मुझे ले गए। मैं भी अगर केशव सेन के समाज में जाता हूँ, अन्याय करता हूँ, तो

इसके लिए सम्भव है, आदेश हो कि इसको भी बेंत लगाओ। तब, अगर मैं कहूँ कि केशव सेन ने ही मुझे इस तरह समझाया था, तो सम्भव है कि ईश्वर दूत से कहें, "केशव सेन को फिर ले आओ।" केशव के आने पर सम्भव है, उससे वे पूछें—"क्या तूने इसे उपदेश दिया था? खुद तो तू ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ जानता नहीं और दूसरे को उपदेश दे रहा था? है कोई—इसको पच्चीस बेंत और लगाओ।"' (सब हँसते हैं)

"इसीलिए विद्यासागर कहते हैं, 'मैं खुद तो संभल सकता ही नहीं, फिर दूसरों के लिए बेंत क्यों सहूँ? (सब हँसते हैं) मैं खुद तो ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ जानता नहीं, फिर दूसरे को क्या लेक्चर देकर समझाऊँ?'"

नरेन्द्र— जिसने इस विषय को (ईश्वर को) नहीं समझा, उसने और दस-पाँच विषयों को कैसे समझ लिया?

मास्टर— और दस-पाँच विषय कैसे?

नरेन्द्र— जिसने इस विषय को नहीं समझा, उसने दया और उपकार कैसे समझ लिया? —स्कूल कैसे समझ लिया? स्कूल खोलकर बच्चों को विद्या पढ़ानी चाहिए और संसार में प्रवेश करके, विवाह करके, लड़कों और लड़कियों का बाप बनना ही ठीक है, यही कैसे समझ लिया?

"जो एक बात को अच्छी तरह समझता है, वह सब बातों की समझ रखता है।"

मास्टर— (स्वगत)— सच है, श्रीरामकृष्ण भी तो कहते थे—"जिसने ईश्वर को समझा है, वह सब कुछ समझता है।" और संसार में रहना, स्कूल करना, इन सब बातों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, "ये सब रजोगुण से होते हैं।" विद्यासागर

में दया है, इस प्रसंग में उन्होंने कहा था, "यह रजोगुणी सत्त्व है, इसमें दोष नहीं।"

भोजन आदि के पश्चात् मठ के सब गुरुभाई विश्राम कर रहे हैं। मास्टर और चुन्नीलाल नैवेद्यवाले कमरे के पूर्व ओर अन्दर से महल की जो सीढ़ी है, उसके पटाव पर बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं। चुन्नीलाल बतला रहे हैं किस तरह उन्होंने दक्षिणेश्वर में पहले-पहले श्रीरामकृष्ण के दर्शन किए। संसार में जी नहीं लग रहा था, इसलिए एक बार वे पहले संसार छोड़कर चले गए थे और तीर्थों में भ्रमण किया करते थे। वही सब बातें हो रही हैं। कुछ देर में नरेन्द्र भी पास आकर बैठे। फिर योगवासिष्ठ की बातें होने लगीं।

नरेन्द्र– (मास्टर से)– और विदूरथ का चाण्डाल होना ?

मास्टर– क्या तुम लवण की बात कह रहे हो ?

नरेन्द्र– अच्छा, क्या आपने योगवासिष्ठ पढ़ा है ?

मास्टर– हाँ, कुछ पढ़ा है।

नरेन्द्र– क्या यहीं की पुस्तक पढ़ी है ?

मास्टर– नहीं, मैंने घर में कुछ पढ़ा था।

* * *

मठ की इमारत से मिली हुई पीछे कुछ जमीन है। वहाँ बहुत से पेड़-पौधे हैं। मास्टर पेड़ के नीचे अकेले बैठे हुए हैं, इसी समय प्रसन्न आ पहुँचे। दिन के तीन बजे का समय होगा।

मास्टर– इधर कुछ दिनों से कहाँ थे तुम ? तुम्हारे लिए सब के सब बड़े सोच में पड़े हुए हैं। उनसे मुलाकात हुई ? तुम कब आए ?

प्रसन्न– मैं अभी आया, आकर मिल चुका हूँ।

मास्टर– तुमने चिट्ठी लिखी थी कि मैं वृन्दावन चला। हम लोग बड़ी चिन्ता में पड़े थे। तुम कितनी दूर गए थे?

प्रसन्न– कोन्नगर तक गया था।

(दोनों हँसते हैं)

मास्टर– बैठो, ज़रा कुछ कहो, सुनूँ। पहले तुम कहाँ गए थे?

प्रसन्न– दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर––एक रात वहीं रहा।

मास्टर– (सहास्य)– हाजरा महाशय अब किस भाव में हैं?

प्रसन्न– हाजरा ने कहा, 'मुझे भला क्या समझते हो?'

(दोनों हँसते हैं)

मास्टर– (सहास्य)– तुमने क्या कहा?

प्रसन्न– मैं चुप हो रहा।

मास्टर– फिर?

प्रसन्न– फिर उसने कहा, 'मेरे लिए तम्बाकू ले आए हो?' (दोनों हँसते हैं) मेहनत पूरी करा लेना चाहता है। (हास्य)

मास्टर– फिर तुम कहाँ गए?

प्रसन्न– फिर कोन्नगर गया। रात को एक जगह पड़ा रहा। और भी आगे चले जाने के लिए सोचा। पश्चिम जाने के लिए किराए के लिए भलेमानसों से पूछा कि यहाँ किराया मिल सकता है या नहीं।

मास्टर– उन लोगों ने क्या कहा?

प्रसन्न– कहा, 'धेली-रुपया कोई चाहे दे दे, पर इतना किराया अकेला कौन देगा?' (दोनों हँसे.)

मास्टर– तुम्हारे साथ क्या था?

प्रसन्न—दो-एक कपड़े और श्रीरामकृष्णदेव की तस्वीर। तस्वीर मैंने किसी को नहीं दिखलाई।

पिता-पुत्र संवाद। पहले माँ-बाप या पहले ईश्वर?

श्रीयुत शशी के पिता आए हुऐ हैं। उनके पिता अपने लड़के को मठ से ले जाना चाहते हैं। श्रीरामकृष्ण की बीमारी के समय प्रायः नौ महीने तक लगातार शशी ने उनकी सेवा की थी। उन्होंने कालेज में बी. ए. तक अध्ययन किया था। प्रवेशिका में इन्हें छात्रवृत्ति मिली थी। इनके पिता गरीब होने पर भी निष्ठावान् ब्राह्मण हैं और साधना भी करते हैं। शशी अपने माता-पिता के सबसे बड़े लड़के हैं। उनके माता-पिता को बड़ी आशा थी कि ये लिख-पढ़कर रोजगार करके उनका दुःख दूर करेंगे; परन्तु इन्होंने ईश्वर-प्राप्ति के लिए सबको छोड़ दिया था। अपने मित्रों से ये रो-रोकर कहा करते थे, 'क्या करूँ, मेरी समझ में कुछ नहीं आता! हाय! माता-पिता की मैं कुछ भी सेवा न कर सका! उन्होंने न जाने कितनी आशाएँ की थीं! मेरी माता को अलंकार-आभूषण पहनने को नहीं मिले। मेरी कितनी साध थी कि उन्हें गहने पहनाऊँगा! कहीं कुछ भी न हुआ। घर लौट जाना मुझे भार-सा जान पड़ता है। उधर श्रीगुरुमहाराज ने कामिनी-कांचन का त्याग करने के लिए कहा है। अब तो जाने की जगह रही ही नहीं!'

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात् शशी के पिता ने सोचा, बहुत सम्भव है, अब वह घर लौटे; परन्तु कुछ दिन घर रहने के पश्चात् जब मठ स्थापित हुआ तब मठ में आते-जाते ही शशी सदा के लिए मठ में रह गए। जब से यह परिस्थिति हुई तब से उनके पिता उन्हें ले जाने के लिए प्रायः आया करते

हैं। परन्तु शशी घर जाने का नाम भी नहीं लेते। आज जब उन्होंने यह सुना कि पिताजी आए हुए हैं, वे एक दूसरे रास्ते से नौ दो ग्यारह हो गए ताकि उनसे भेंट न हो।

उनके पिता मास्टर को पहचानते थे। वे मास्टर के साथ ऊपरवाले बरामदे में टहलते हुए उनसे बातचीत करने लगे।

पिता– यहाँ कर्ता कौन है ? यही नरेन्द्र सारे अनर्थों का कारण जान पड़ता है। सब लड़के राजी-खुशी घर लौट गए थे। फिर से स्कूल-कालेज जाने लगे थे।

मास्टर– यहाँ कर्ता (मालिक) कोई नहीं है। सब बराबर हैं। नरेन्द्र क्या करें ? बिना अपनी इच्छा के क्या कोई आ सकता है ? क्या हम लोग सदा के लिए घर छोड़कर आ सके हैं ?

पिता– अजी, तुम लोगों ने तो अच्छा किया, क्योंकि दोनों तरफ की रक्षा कर रहे हो, तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, इसमें धर्म नहीं है क्या ? हम लोगों की भी तो यही इच्छा है कि शशी यहाँ भी रहे और वहाँ भी रहे। देखो तो ज़रा, उसकी माँ कितना रो रही है !

मास्टर दुःखित होकर चुप हो गए।

पिता– और साधुओं की तलाश में इतना क्यों मारा-मारा फिरता है ? वह कहे तो मैं उसे एक अच्छे महात्मा के पास ले जाऊँ। इन्द्रनारायण के पास एक महात्मा आए हुए हैं, बहुत सुन्दर स्वभाव है। चले, देखे न ऐसे महात्मा को !

राखाल और मास्टर काली तपस्वी के घर के पूर्व ओर के बरामदे में टहल रहे हैं। श्रीरामकृष्ण और उनके भक्तों के सम्बन्ध में वार्तालाप हो रहा है।

राखाल– (व्यस्त भाव से)– मास्टर महाशय, आइए सब

एक साथ साधना करें।

"देखिए न, अब घर भी सदा के लिए छोड़ दिया है। अगर कोई कहता है, 'ईश्वर तो मिले ही नहीं, फिर क्यों अब यह सब हो रहा है ?'—तो इसका उत्तर नरेन्द्र बड़ा सुन्दर देता है। कहता है, 'राम नहीं मिले तो क्या इसलिए हमें श्याम (अमुक किसी भी) के साथ रहकर लड़के-बच्चों का बाप बनना ही होगा ?' अहा! एक एक बात नरेन्द्र बड़े मार्के की कह देता है। ज़रा आप भी पूछिएगा।"

मास्टर– ठीक तो है। राखाल भाई, देखता हूँ, तुम्हारा मन भी खूब व्याकुल हो रहा है।

राखाल– मास्टर महाशय, क्या कहूँ, दोपहर को नर्मदा जाने के लिए जी में कैसी विकलता थी। मास्टर महाशय, साधना कीजिए, नहीं तो कहीं कुछ न होगा। देखिए न, शुकदेव भी डरते थे। जन्मग्रहण करते ही भगे। व्यासदेव ने खड़े होने के लिए कहा, परन्तु वे खड़े भी नहीं होते थे।

मास्टर– योगोपनिषद् की कथा है। माया के राज्य से शुकदेव भाग रहे थे। हाँ, व्यास और शुकदेव की कथा बड़ी ही रोचक है। व्यास संसार में रहकर धर्म करने के लिए कह रहे थे। शुकदेव ने कहा, 'ईश्वर के पादपद्मों में ही सार है।' और संसारियों के विवाह तथा स्त्री के साथ रहने पर उन्होंने घृणा प्रकट की।

राखाल– बहुतेरे सोचते हैं, स्त्री को न देखा तो बस फतह है। स्त्री को देखकर सिर झुका लेने से क्या होगा ? कल रात को नरेन्द्र ने खूब कहा, 'जब तक अपने भीतर काम है, तभी तक स्त्री की सत्ता है; अन्यथा स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं

रह जाता।'

मास्टर– ठीक है। बालक और बालिकाओं में यह भेद-बुद्धि नहीं रहती।

राखाल– इसलिए तो कहता हूँ, हम लोगों को चाहिए कि साधना करें। माया के पार गए बिना ज्ञान कैसे होगा? चलिए, बड़े कमरे में चलें। वराहनगर से कुछ शिक्षित मनुष्य आए हुए हैं। नरेन्द्र से उनकी क्या बातचीत हो रही है, चलिए सुनें।

नरेन्द्र तथा शरणागति

नरेन्द्र वार्तालाप कर रहे हैं। मास्टर भीतर नहीं गए। बड़े घर के पूर्व ओरवाले दालान में टहलते रहे, कुछ अंश सुनाई पड़ रहा था।

नरेन्द्र कह रहे हैं, 'सन्ध्यादि कर्मों के लिए न तो अब स्थान ही है, न समय ही।'

एक सज्जन– क्यों महाशय, साधना करने से क्या वे मिलेंगे?

नरेन्द्र– उनकी कृपा। गीता में कहा है—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥"

"उनकी कृपा के बिना हुए साधन-भजन कहीं कुछ नहीं होता। इसलिए उनकी शरण में जाना चाहिए।"

सज्जन– हम लोग यदा-कदा यहाँ आकर आपको कष्ट देंगे।

नरेन्द्र– ज़रूर, जब जी चाहे, आया कीजिए।

"आप लोगों के वहाँ, गंगा घाट में हम लोग नहाने के लिए जाया करते हैं।"

सज्जन– इसके लिए हमारी ओर से कोई रोक-टोक नहीं। हाँ, कोई और न जाया करे।

नरेन्द्र– नहीं, अगर आप कहें तो हम भी न जाया करें।

सज्जन– नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं; परन्तु हाँ, अगर आप देखें कि कुछ और लोग भी जा रहे हैं तो आप न जाइएगा।

सन्ध्या के बाद फिर आरती हुई। भक्तगण फिर हाथ जोड़कर एकस्वर से 'जय शिव ओंकार' गाते हुए श्रीरामकृष्ण की स्तुति करने लगे। आरती हो जाने पर भक्तगण दानवों के कमरे में जाकर बैठे। मास्टर बैठे हुए हैं। प्रसन्न गुरुगीता का पाठ करके सुनाने लगे। नरेन्द्र स्वयं आकर सस्वर पाठ करने लगे। नरेन्द्र गा रहे हैं––

"ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलममलं सर्वदा साक्षिभूतम्
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि।"

फिर गाते हैं ––

"न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्। शिवशासनतः शिवशासनतः॥
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं वदामि। श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं भजामि॥
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं स्मरामि। श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं नमामि॥"

नरेन्द्र सस्वर गीता का पाठ कर रहे हैं और भक्तों का मन उसे सुनते हुए निर्वात निष्कम्प दीप-शिखा की भाँति स्थिर हो गया। श्रीरामकृष्ण सत्य कहते थे कि 'बंसी की मधुर ध्वनि सुनकर सर्प जिस तरह फन खोलकर स्थिर भाव से खड़ा रहता है, उसी प्रकार नरेन्द्र का गाना सुनकर हृदय के भीतर जो हैं, वे भी चुपचाप सुनते रहते हैं।' अहा! मठ के भाइयों की गुरु

के प्रति कैसी तीव्र भक्ति है !

श्रीरामकृष्ण का प्रेम तथा राखाल

राखाल काली तपस्वी के कमरे में बैठे हुए हैं। पास ही प्रसन्न हैं। उसी कमरे में मास्टर भी हैं।

राखाल अपनी स्त्री और लड़के को छोड़कर आए हैं। उनके हृदय में वैराग्य की गति तीव्र हो रही है। उन्हें एक यही इच्छा है कि अकेले नर्मदा के तट पर या कहीं अन्यत्र चले जायँ। फिर भी वे प्रसन्न को बाहर भागने से समझा रहे हैं।

राखाल– (प्रसन्न से)– कहाँ तू बाहर भागता फिरता है ? यहाँ साधुओं का संग—– क्या इसे छोड़कर कहीं जाना होता है?—– तिस पर नरेन्द्र जैसे व्यक्ति का साथ छोड़कर ? यह सब छोड़कर तू कहाँ जाएगा ?

प्रसन्न– कलकत्ते में माँ-बाप हैं। मुझे भय होता है कि कहीं उनका स्नेह मुझे खींच न ले। इसीलिए कहीं दूर भग जाना चाहता हूँ।

राखाल– श्रीगुरु महाराज जितना प्यार करते थे, क्या माँ-बाप उतना प्यार कर सकते हैं ? हम लोगों ने उनके लिए क्या किया है, जो वे हमें उतना चाहते थे ? क्यों वे हमारे शरीर, मन और आत्मा के कल्याण के लिए इतने तत्पर रहा करते थे ? हम लोगोंने उनके लिए क्या किया है ?

मास्टर– (स्वगत)– अहा ? राखाल ठीक ही तो कह रहे हैं, इसीलिए उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) अहेतुक कृपासिन्धु कहते हैं।

प्रसन्न– क्या बाहर चले जाने के लिए तुम्हारी इच्छा नहीं होती ?

राखाल– जी तो चाहता है कि नर्मदा के तट पर जाकर

रहूँ। कभी कभी सोचता हूँ कि वहीं किसी बगीचे में जाकर रहूँ और कुछ साधना करूँ। कभी यह तरंग उठती है कि तीन दिन के लिए पंचतप करूँ; परन्तु संसारी मनुष्यों के बगीचे में जाने से हृदय इनकार भी करता है।

क्या ईश्वर हैं ?

'दानवों के कमरे' में तारक और प्रसन्न दोनों वार्तालाप कर रहे हैं। तारक की माँ नहीं है। उनके पिता ने राखाल के पिता की तरह दूसरा विवाह कर लिया है। तारक ने भी विवाह किया था, परन्तु पत्नी-वियोग हो गया है। मठ ही तारक का घर हो रहा है। प्रसन्न को वे भी समझा रहे हैं।

प्रसन्न– न तो ज्ञान ही हुआ और न प्रेम ही, बताओ क्या लेकर रहा जाय ?

तारक– ज्ञान होना अवश्य कठिन है, परन्तु यह कैसे कहते हो कि प्रेम नहीं हुआ ?

प्रसन्न– रोना तो आया ही नहीं, फिर कैसे कहूँ कि प्रेम हुआ? और इतने दिनों में हुआ भी क्या ?

तारक– क्यों ? तुमने श्रीरामकृष्णदेव को देखा है या नहीं ? फिर यह क्यों कहें कि तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ ?

प्रसन्न– क्या खाक होगा ज्ञान ? ज्ञान का अर्थ है जानना। क्या जाना ? ईश्वर हैं या नहीं इसी का पता नहीं चलता ––

तारक– हाँ, ठीक है, ज्ञानियों के मत से ईश्वर हैं ही नहीं।

मास्टर– (स्वगत)– अहा ! प्रसन्न की कैसी अवस्था है ! श्रीरामकृष्ण कहते थे, 'जो लोग ईश्वर को चाहते हैं, उनकी ऐसी अवस्था हुआ करती है। कभी कभी ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह होता है।' जान पड़ता है, तारक इस समय बौद्ध मत का

विवेचन कर रहे हैं, इसीलिए शायद उन्होंने कहा—'ज्ञानियों के मत से ईश्वर हैं ही नहीं।' परन्तु श्रीरामकृष्ण कहते थे—'ज्ञानी और भक्त, दोनों एक ही जगह पहुँचेंगे।'

गुरुभाइयों के साथ नरेन्द्र

ध्यानवाले कमरे में अर्थात् काली तपस्वीवाले कमरे में नरेन्द्र और प्रसन्न आपस में बातचीत कर रहे हैं। कमरे में एक दूसरी तरफ राखाल, हरीश और छोटे गोपाल हैं। बाद में बूढ़े गोपाल भी आ गये।

नरेन्द्र गीतापाठ करके प्रसन्न को सुना रहे हैं:—

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत् प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥"

नरेन्द्र— देखा?—'यंत्रारूढ'! 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।' इस पर भी ईश्वर को जानने की चेष्टा! तू कीट से भी गया-बीता है, तू उन्हें जान सकता है? ज़रा सोच तो सही आदमी क्या है। ये जो अगणित नक्षत्र देख रहा है, इनके सम्बन्ध में सुना है, ये एक एक Solar system (सौरजगत्) हैं। हम लोगों के लिए जो यह एक ही Solar system है, इसी में आफत है। जिस पृथ्वी की सूर्य के साथ तुलना करने पर वह एक भटे की तरह जान पड़ती है, उस उतनी ही पृथ्वी में मनुष्य चल-फिर रहा है।

नरेन्द्र गा रहे हैं।

गाने का भाव :—

"तुम पिता हो, हम तुम्हारे नन्हे-से बच्चे हैं। पृथ्वी की धूलि से हमारा जन्म हुआ है और पृथ्वी की धूलि से हमारी आँखें भी ढँकी हुई हैं। हम शिशु होकर पैदा हुए हैं और धूलि में ही हमारी क्रीड़ाएँ हो रही हैं, दुर्बलों को अपनी शरण में ग्रहण करनेवाले हमें अभय प्रदान करो। एक बार हमें भ्रम हो गया है, क्या इसीलिए तुम हमें गोद में न लोगे ?—क्या इसीलिए एकाएक तुम हमसे दूर चले जाओगे ? अगर ऐसा करोगे तो, हे प्रभु, हम फिर कभी उठ न सकेंगे, चिरकाल तक भूमि में ही अचेत होकर पड़े रहेंगे। हम बिलकुल शिशु हैं, हमारा मन बहुत ही क्षुद्र है। हे पिता, पग-पग पर हमारे पैर फिसल जाते हैं। इसलिए तुम हमें अपना रुद्रमुख क्यों दिखलाते हो ?—क्यों हम कभी कभी तुम्हारी भौंहों को कुटिल देखते हैं ? हम क्षुद्र जीवों पर क्रोध न करो। हे पिता, स्नेह-शब्दों में हमें समझाओ—हमसे कौनसा दोष हो गया है ? यदि हमसे सैकड़ों बार भी भूल हो जाय, तो सैकड़ों ही बार हमें गोद में उठा लो। जो दुर्बल हैं, वे भला कर क्या सकते हैं ?"

"तू पड़ा रह। उनकी शरण में पड़ा रह।"

नरेन्द्र भावावेश में आए हुए-से फिर गा रहे हैं— (भावार्थ)—

"हे प्रभु, मैं तुम्हारा गुलाम हूँ। मेरे स्वामी तुम्हीं हो। तुम्हीं से मुझे दो रोटियाँ और एक लंगोटी मिल रही है।"

"उनकी (श्रीरामकृष्णदेव की) बात क्या याद नहीं है ? ईश्वर शक्कर के पहाड़ हैं, और तू चींटी, बस एक ही दाने से तो तेरा पेट भरता है, और तू सोच रहा है कि मैं यह पहाड़ का पहाड़ उठा ले जाऊँगा। उन्होंने कहा है, याद नहीं ?—'शुक-

देव अधिक से अधिक एक बड़ी चींटी समझे जा सकते हैं।' इसीलिए तो मैं काली से कहा करता था, 'क्यों रे, तू गज़ और फीता लेकर ईश्वर को नापना चाहता है ?'

"ईश्वर दया के सागर हैं। उनकी शरण में तू पड़ा रह। वे कृपा अवश्य करेंगे। उनसे प्रार्थना कर--'यत्ते दक्षिणं मुखं तेन माँ पाहि नित्यम्।'--

"असतो मा सद् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।
आविराविर्मं एधि।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखम्।
तेन मां पाहि नित्यम् ।।"

प्रसन्न--कौनसी साधना की जाय ?

नरेन्द्र--सिर्फ उनका नाम लो। श्रीरामकृष्ण का गाना याद है या नहीं ?

नरेन्द्र श्रीरामकृष्णदेव का वह गाना गा रहे हैं, जिसका भाव है--

"ऐ श्यामा, मुझे तुम्हारे नाम का ही भरोसा है। पूजन-सामग्री, लोकाचार और दाँत निकालकर हँसने से मुझे क्या काम? तुम्हारे नाम के प्रताप से काल के कुल पाश छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, शिव ने इसका प्रचार भी खूब कर दिया है, मैंने तो अब इसे ही अपना आधार समझ लिया है। नाम लेता जा रहा हूँ; जो कुछ होने का है, होता रहेगा। क्यों मैं अकारण सोचकर जीवन नष्ट करूँ ? ऐ शिवे, मैंने शिव के वाक्य को सर्वसार समझ लिया है।"

प्रसन्न– तुम अभी तो कह रहे हो, ईश्वर हैं। फिर तुम्हीं बदलकर कहते हो, 'चार्वाक और अन्य दूसरे दर्शनाचार्य कह गए हैं, यह संसार आप ही आप हुआ है।'

नरेन्द्र– तूने Chemistry (रसायन-शास्त्र) नहीं पढ़ा? अरे यह तो बता, Combination (समवाय-- संयोग) कौन करता है? पानी तैयार करने के लिए आक्सीजन, हाइड्रोजन और इलेक्ट्रिसिटी, इन सब चीज़ों को मनुष्य का हाथ इकट्ठा करता है।

"Intelligent Force (ज्ञानपूर्वक शक्तिचालना) तो सब लोग मानते हैं। ज्ञानस्वरूप एक ही है, जो इन सब पदार्थों को चला रहा है।"

प्रसन्न– दया उनमें है, यह हम कैसे जानें?

नरेन्द्र– 'यत्ते दक्षिणं मुखं' वेदों में कहा है।

"जॉन स्टुअर्ट मिल भी यही कहते हैं। जिन्होंने मनुष्य के भीतर दया दी, उनमें न जाने कितनी दया है! वे (श्रीरामकृष्ण) भी तो कहते थे-- 'विश्वास ही सार है।' वे तो पास ही हैं। विश्वास करने से ही सिद्धि होती है।"

इतना कहकर नरेन्द्र मधुर कण्ठ से गाने लगे:--

"मो को कहाँ ढूँढ़ो बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना रहता मैं खाल रोम में, ना हड्डी ना माँस में॥
ना देवल में ना मसजिद में, ना काशी-कैलास में।
ना रहता मैं अवध-द्वारका, मेरी भेंट विश्वास में॥
न रहता मैं क्रिया करम में, ना योग संन्यास में।
खोजोगे तो आन मिलूँगा, पल भर के तलाश में॥
शहर से बाहर डेरा मेरा, कुटिया मेरी मवास में।
कहत कबीर सुनो भइ साधो, सब सन्तन के साथ में॥"

वासना के रहते ईश्वर में अविश्वास होता है

प्रसन्न– कभी तो तुम कहते हो, भगवान हैं ही नहीं और अब ये सब बातें सुना रहे हो। तुम्हारी बातों का कुछ ठीक ही नहीं। तुम प्राय: मत बदलते रहते हो। (सब हँसते हैं)

नरेन्द्र– यह बात अब कभी न बदलूँगा–– जब तक वासनाएँ रहती हैं तब तक ईश्वर पर अविश्वास रहता है। कोई न कोई कामना रहती ही है। कुछ नहीं तो भीतर ही भीतर पढ़ने की इच्छा रह गई। पास करूँगा, पण्डित होऊँगा, इस तरह की वासना।

नरेन्द्र भक्ति से गद्‌गद होकर गाने लगे।

'वे शरणागतवत्सल हैं, पिता और माता हैं।...'

'जय देव, जय देव, जय मंगलदाता, जय जय मंगलदाता।
संकटभयदु:खत्राता, विश्वभुवनपाता, जय देव, जय देव ।।'

नरेन्द्र फिर गा रहे हैं। भाइयों से हरिरस का प्याला पीने के लिए कह रहे हैं। कहते हैं, ईश्वर पास ही हैं, जैसे मृग के पास कस्तूरी।

"पीले अवधूत, हो मतवाला, प्याला प्रेम हरिरस का रे।
बाल अवस्था खेलि गँवायो, तरुण भयो नारीबस का रे।
वृद्ध भयो कफ वायु ने घेरा, खाट पड़ो रह्यो शाम-सकारे।
नाभि-कमल में है कस्तूरी, कैसे भरम मिटै पशु का रे;
बिन सद्‌गुरु नर ऐसहि ढूंढ़ै, जैसे मिरिग फिरै वन का रे ।।"

मास्टर बरामदे से ये सब बातें और संगीत सुन रहे हैं।

नरेन्द्र उठे। कमरे में आते समय कह रहे हैं–– 'इन युवकों से बातचीत करते करते मेरा सिर गरम हो गया।' बरामदे में मास्टर को देखकर उन्होंने कहा, 'मास्टर महाशय, आइए,

पानी पियें।'

मठ के एक भाई नरेन्द्र से कह रहे हैं, 'इतने पर भी तुम क्यों कहते हो कि ईश्वर नहीं हैं ?' नरेन्द्र हँसने लगे।

नरेन्द्र का तीव्र वैराग्य। गृहस्थाश्रम

दूसरे दिन सोमवार है। ९ मई १८८७। सबेरे मास्टर मठ के बगीचे में एक पेड़ के नीचे बैठे हुए हैं। मास्टर सोच रहे हैं— "श्रीरामकृष्ण ने मठ के भाइयों का काम-कांचन छुड़ा दिया। अहा ! ईश्वर के लिए ये लोग कैसे व्याकुल हो रहे हैं ! यह स्थान मानो साक्षात् वैकुण्ठ है ! मठ के भाई मानो साक्षात् नारायण हैं ! श्रीरामकृष्ण को गए अभी अधिक दिन नहीं हुए। इसलिए वे सब भाव अब भी ज्यों के त्यों बने हैं।

" 'अयोध्या तो वही है, परन्तु राम नहीं हैं।'

"इनसे तो उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) गृहत्याग करा लिया, फिर कुछ और जो हैं, उन्हें ही क्यों घर में रखा है, उनके लिए क्या कोई उपाय नहीं है ?"

नरेन्द्र ऊपर के कमरे से देख रहे हैं। मास्टर अकेले पेड़ के नीचे बैठे हैं। उतरकर हँसते हुए वे कह रहे हैं—'क्यों मास्टर महाशय, क्या हो रहा है ?' कुछ बातें हो जाने पर मास्टर ने कहा—'अहा ! तुम्हारा स्वर बड़ा मधुर है ! कोई श्लोक कहो।'

नरेन्द्र स्वर से अपराध-भंजन स्तव कहने लगे। गृहस्थगण ईश्वर को भूले हुए हैं,— बाल्य, प्रौढ़ और वार्धक्य तक वे न जाने कितने अपराध करते हैं ! क्यों वे मनसा, वाचा और कर्मणा ईश्वर की सेवा नहीं करते ?—

"बाल्ये दुःखातिरेको मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा,
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिताः जन्तवो मां तुदन्ति ।
नानारोगादिदुःखाद्रुदनपरवशः शंकरं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शंभो ।।
प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैपंचभिर्मर्मसन्धौ,
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादुसौख्ये निषण्णः ।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढ़म्,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शंभो ।।
वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवादितापैः,
पापैः रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढ़िहीनं च दीनम् ।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यम्,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शंभो ।।
स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गांगतोयं,
पूजार्थं वा कदाचित् बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदलानि ।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धधूपौ त्वदर्थं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शंभो ।।
गात्रं भस्मसितं सितं च हसितं हस्ते कपालं सितं,
खट्वांगं च सितं सितश्च वृषभः कर्णे सिते कुण्डले ।
गंगाफेनसिता जटा पशुपतेश्चन्द्रः सितो मूर्धनि,
सोऽयं सर्वसितो ददातु विभवं पापक्षयं सर्वदा ।।..."

स्तवपाठ हो गया । फिर बातचीत होने लगी ।

नरेन्द्र– निर्लिप्त संसार कहिए या चाहे जो कहिए, काम-कांचन का त्याग बिना किए न होगा । स्त्री के साथ सहवास करते हुए घृणा नहीं होती ? जहाँ कृमि, कफ, मेध, दुर्गंध––

"अमेध्यपूर्णे कृमिजालसंकुले स्वभावदुर्गन्धिविनिन्दितान्तरे।
कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते रमन्ति मूढ़ा विरमन्ति पण्डिता:॥

"वेदान्त-वाक्यों में जो रमण नहीं करता, हरिरस का जो पान नहीं करता, उसका जीवन ही वृथा है।

"ओंकारमूलं परमं पदान्तरं गायत्रीसावित्रीसुभाषितान्तरम्।
वेदान्तरं य: पुरुषो न सेवते वृथान्तरं तस्य नरस्य जीवनम्॥

"एक गाना सुनिए— (भावार्थ)—

"मोह और कुमंत्रणा को छोड़ो, उन्हें जानो, तब सम्पूर्ण कष्ट छूट जाएँगे। चार दिन के सुख के लिए अपने जीवन-सखा को भूल गए, यह कैसा?

"कौपीन धारण बिना किए दूसरा उपाय नहीं— संसार-त्याग।" यह कहकर नरेन्द्र सस्वर गाने लगे—

"वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्त:।
अशोकमन्त:करणे चरन्त: कौपीनवन्त: खलु भाग्यवन्त:॥"

नरेन्द्र फिर कह रहे हैं— "मनुष्य संसार में बँधा क्यों रहेगा? क्यों वह माया में पड़े? मनुष्य का स्वरूप क्या है? 'चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहं।' मैं ही वह सच्चिदानन्द हूँ।"

फिर स्वरसहित नरेन्द्र शंकराचार्य-कृत स्तव पढ़ने लगे—

ॐ मनो बुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

एक दूसरा स्तव वासुदेवाष्टक भी नरेन्द्र सस्वर पढ़ रहे हैं। "हे मधुसूदन! मैं तुम्हारे शरणागत हूँ, मुझ पर कृपा करके काम, निद्रा, पाप, मोह, स्त्री-पुत्र का मोहजाल, विषय-तृष्णा, इन सबसे मेरा परित्राण करो और अपने पाद-पद्मों में भक्ति दो।"

"ॐ इति ज्ञानरूपेण रागाजीर्णेन जीर्यतः ।
कामनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥
न गतिर्विद्यते नाथ त्वमेकः शरणं प्रभो ।
पापपंके निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥
मोहितो मोहजालेन पुत्रदारगृहादिषु ।
तृष्णया पीड्यमानोऽहं त्राहि मां मधुसूदन ॥
भक्तिहीनं च दीनं च दुःखशोकातुरं प्रभो ।
अनाश्रयमनाथं च त्राहि मां मधुसूदन ॥
गतागतेन श्रान्तोऽहं दीर्घसंसारवर्त्मसु ।
येन भूयो न गच्छामि त्राहि मां मधुसूदन ॥
बहुधाऽपि मया दृष्टं योनिद्वारं पृथक् पृथक् ।
गर्भवासे महद्दुःखं त्राहि मां मधुसूदन ॥
तेन देव प्रपन्नोऽस्मि नारायणपरायणः ।
जगत्संसारमोक्षार्थं त्राहि मां मधुसूदन ॥
वाचयामि यथोत्पन्नं प्रणमामि तवाग्रतः ।
जरामरणभीतोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥
सुकृतं न कृतं किंचित् दुष्कृतं च कृतं मया ।
संसारे पापपंकेऽस्मिन् त्राहि मां मधुसूदन ॥
देहान्तरसहस्राणामन्योन्यं च कृतं मया ।
कर्तृत्वं च मनुष्याणां त्राहि मां मधुसूदन ॥
वाक्येन यत्प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ।
सोऽहं देव दुराचारस्त्राहि मां मधुसूदन ॥
यत्र यत्र हि जातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु वा ।
तत्र तत्राचला भक्तिस्त्राहि मां मधूसूदन ॥"

मास्टर–(स्वगत)– नरेन्द्र को तीव्र वैराग्य है । इसलिए मठ

के अन्य भाइयों की भी यही अवस्था है। इन लोगों को देखते ही श्रीरामकृष्ण के उन भक्तों में, जो संसार में अब भी हैं, कामिनी-कांचन-त्याग की इच्छा प्रबल हो जाती है। अहा! इनकी यह कैसी अवस्था है! दूसरे कुछ भक्तों को उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) अब भी संसार में क्यों रखा है? क्या वे कोई उपाय करेंगे? क्या वे तीव्र वैराग्य देंगे या संसार में ही भुलाकर रख छोड़ेंगे?

नरेन्द्र तथा और दो-एक अन्य भाई भोजन करके कलकत्ता गए। नरेन्द्र रात को फिर लौटेंगे। नरेन्द्र के घरसम्बन्धी मुकदमे का अब भी फैसला नहीं हुआ। मठ के भाइयों को नरेन्द्र की अनुपस्थिति सह्य नहीं होती। सब सोच रहे हैं कि नरेन्द्र कब लौटें।

परिच्छेद ४

वराहनगर मठ

(१)

रवीन्द्र का पूर्वजीवन

आज सोमवार है, ९ मई, १८८७, ज्येष्ठ कृष्ण की द्वितीया। नरेन्द्र आदि भक्तगण मठ में हैं। शरद, बाबूराम और काली पुरी गए हुए हैं और निरंजन माता को देखने के लिए। मास्टर आए हैं।

भोजन आदि के पश्चात् मठ के भाई ज़रा देर विश्राम कर रहे हैं। गोपाल (बूढ़े गोपाल) गाने की कापी में गाना उतार रहे हैं।

दिन ढल रहा है। रवीन्द्र पागल की तरह आकर उपस्थित हुए, नंगे पैर, काली धारी की सिर्फ आधी धोती पहने हुए हैं, पागल की तरह आँखों की पुतलियाँ घूम रही हैं। लोगों ने पूछा, 'क्या हुआ?' रवीन्द्र ने कहा, 'ज़रा देर बाद बतलाता हूँ, मैं अब और घर न लौटूँगा, यहीं आप लोगों के साथ रहूँगा। उसने विश्वासघात किया, ज़रा देखिए तो साहब, पूरे पाँच साल की आदत,—सो शराब पीना तक मैंने उसके लिए छोड़ दिया—आज आठ महीनें हुए मुझें शराब छोड़ें, इसका फल यह कि वह पूरी धोखेबाज़ निकली।' मठ के भाइयों नें कहा—'तुम जरा ठंडे हो लो, तुम आए किस सवारी से?'

रवीन्द्र– मैं कलकत्ते से बराबर नंगे पैर पैदल चला आ रहा हूँ।

भक्तों ने पूछा, 'तुम्हारी आधी धोती क्या हो गई?' रवीन्द्र ने कहा, 'आते समय उसने धर-पकड़ की, इसी में आधी धोती

फट गई।' भक्तों ने कहा, 'तुम गंगा-स्नान करके आओ, आकर ठंडे होओ, फिर बातचीत होगी।'

रवीन्द्र का जन्म कलकत्ते के एक बहुत ही प्रतिष्ठित कायस्थ वंश में हुआ है। उम्र २०-२२ साल की होगी। श्रीरामकृष्ण को उन्होंने दक्षिणेश्वर-कालीमन्दिर में देखा था और उनकी कृपा प्राप्त की थी। एक बार तीन रात लगातार वहाँ रह भी चुके थे। स्वभाव के बड़े मधुर और कोमल हैं। श्रीरामकृष्ण इन पर बड़ा स्नेह करते थे। परन्तु उन्होंने कहा था, "तेरे लिए अभी देर है अभी तेरे लिए कुछ भोग बाकी है। अभी कुछ न होगा। जब डाकू छापा मारते हैं, तब ठीक उसी समय पुलिस कुछ कर नहीं सकती। जब हलचल कुछ शान्त हो जाती है तब पुलिस आकर गिरफ्तार करती है।" आज रवीन्द्र वारांगना के जाल में पड़ गए हैं; परन्तु और सब गुण उनमें हैं। गरीबों के प्रति दया, ईश्वर-चिन्तन, यह सब उनमें है। वेश्या को विश्वासघातक जानकर आधी धोती पहने हुए मठ में आए हैं। संसार में अब नहीं लौटेंगे, इसका उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया है।

रवीन्द्र गंगा-स्नान के लिए जा रहे हैं। परामाणिक घाट पर जाएँगे। एक भक्त भी साथ जा रहे हैं।

उनकी हार्दिक इच्छा है कि साधुओं के साथ इस युवक में चेतना का संचार हो। गंगा-स्नान के पश्चात् रवीन्द्र को वे घाट ही के पासवाले एक स्मशान में ले गए। वहाँ उसे लाशें दिखलाने लगे। कहा—"यहाँ कभी कभी रात को मठ के भाई आकर ध्यान करते हैं। यहाँ हम लोगों के लिए ध्यान करना अच्छा है। संसार की अनित्यता खूब समझ में आती है।" उनकी यह बात सुनकर रवीन्द्र ध्यान करने के लिए बैठे, परन्तु

ज्यादा देर तक ध्यान नहीं कर सके। मन चंचल हो रहा था।

दोनों मठ लौटे। पूजा-घर में आकर दोनों ने श्रीरामकृष्ण के चित्र को प्रणाम किया। भक्त ने कहा, मठ के भाई इसी कमरे में ध्यान करते हैं। रवीन्द्र ज़रा देर के लिए ध्यान करने बैठे। परन्तु ध्यान अधिक देर तक न हो सका।

मास्टर– क्या मन बहुत चंचल हो रहा है ? शायद इसीलिए तुम इतनी जल्दी उठ पड़े ? शायद ध्यान अच्छी तरह जमा नहीं ?

रवीन्द्र– यह निश्चय है कि अब घर न लौटूँगा; परन्तु मन चंचल ज़रूर है।

मास्टर और रवीन्द्र मठ में एकान्त स्थान पर खड़े हैं। मास्टर बुद्ध की बातें कर रहे हैं। देवकन्याओं का एक गाना सुनकर बुद्ध को पहले-पहल चैतन्य हुआ था। आजकल मठ में बुद्धचरित्र और चैतन्यचरित्र की चर्चा प्रायः हुआ करती है। मास्टर वही गाना गा रहे हैं।

रात को नरेन्द्र, तारक और हरीश कलकत्ते से लौटे। आते ही उन्होंने कहा– ' ओह खूब खाया ! ' कलकत्ते में किसी भक्त के यहाँ उनकी दावत थी।

नरेन्द्र और मठ के दूसरे भाई, मास्टर तथा रवीन्द्र आदि भी, ' दानवों के कमरे ' में बैठे हुए हैं। मठ में नरेन्द्र को रवीन्द्र का सब हाल मिल चुका है।

दुःखी जीव तथा नरेन्द्र का उपदेश

नरेन्द्र गा रहे हैं। गाते हुए रवीन्द्र को मानो उपदेश दे रहे हैं।

गाने का भाव–– " तुम मोह और कुमंत्रणाएँ छोड़ उन्हें समझो, तुम्हारी सम्पूर्ण व्यथा इस तरह दूर हो जाएगी। " नरेन्द्र फिर गा रहे हैं––

"पी ले अवधूत, हो मतवाला, प्याला प्रेम हरिरस का रे।
बाल अवस्था खेलि गँवायो, तरुण भयो नारीबस का रे;
वृद्ध भयो कफ वायु ने घेरा, खाट पड़ो रह्यो शाम-सकारे॥
नाभि-कमल में है कस्तूरी, कैसे भरम मिटै पशु का रे;
बिन सद्गुरु नर ऐसहि ढूंढ़ै, जैसे मिरिग फिरै वन का रे॥"

कुछ देर बाद सब गुरुभाई काली तपस्वी के कमरे में आकर बैठे। गिरीश का बुद्धचरित्र और चैतन्यचरित्र, ये दो नई पुस्तकें आई हैं। नरेन्द्र, शशी, राखाल, प्रसन्न, मास्टर आदि बैठे हैं। नए मठ में जब से आना हुआ है, तब से शशी श्रीरामकृष्ण की पूजा और उन्हीं की सेवा में दिनरात लगे रहते हैं। उनकी सेवा देखकर दूसरों को आश्चर्य हो रहा है। श्रीरामकृष्ण की बीमारी के समय वे दिनरात जिस तरह उनकी सेवा किया करते थे, आज भी उसी तरह अन्यन्यचित्त होकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा किया करते हैं।

मठ के एक भाई बुद्धचरित्र और चैतन्यचरित्र पढ़ रहे हैं। स्वरसहित ज़रा व्यंग के भाव से चैतन्यचरित्र पढ़ रहे हैं। नरेन्द्र ने उनसे पुस्तक छीन ली और कहा—'इस तरह कोई अच्छी चीज़ को भी मिट्टी में मिलाता है?' नरेन्द्र स्वयं चैतन्य देव के 'प्रेम-विरतण' की कथा पढ़ रहे हैं।

मठ के एक भाई– मैं कहता हूँ, कोई किसी को प्रेम दे नहीं सकता।

नरेन्द्र– मुझे तो श्रीरामकृष्णदेव ने प्रेम दिया है।

मठ के भाई—अच्छा, क्या सचमुच ही तुम्हें प्रेम दिया है?

नरेन्द्र– तू क्या समझेगा? तू (ईश्वर के) नौकरों के दर्जे का है। मेरे सब पैर दाबेंगे,—शरता मित्तर और देसो भी।

(सब हँसते हैं) तू शायद यह सोच रहा है कि तूने सब कुछ समझ लिया ? (हास्य)

मास्टर—(स्वगत)— श्रीरामकृष्ण ने मठ के सभी भाइयों के भीतर शक्ति का संचार किया है, केवल नरेन्द्र के भीतर ही नहीं। बिना इस शक्ति के क्या कभी कामिनी और कांचन का त्याग हो सकता है ?

दूसरे दिन मंगल है, १० मई। आज महामाया की पूजन-तिथि है। नरेन्द्र तथा मठ के सब भाई आज विशेष रूप से जगन्माता की पूजा कर रहे हैं। पूजा-घर के सामने त्रिकोण यंत्र की रचना की गई; होम होगा। नरेन्द्र गीता-पाठ कर रहे हैं।

मणि गंगा-स्नान को गए। रवीन्द्र छत पर अकेले टहल रहे हैं। स्वरसमेत नरेन्द्र स्तवन पढ़ रहे हैं, रवीन्द्र वहीं से सुन रहे हैं:—

ॐ मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं, न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न च प्राणसंज्ञो न वै पंचवायुर्नवा सप्तधातुर्नवा पंचकोश: ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभाव: ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खं, न मंत्रो न तीर्थो न वेदा न यज्ञा: ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता, चिदानन्दरूप:शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

रवीन्द्र गंगा-स्नान करके आ गए, धोती भीगी हुई है।

नरेन्द्र—(मणि के प्रति, एकान्त में)— यह देखो, नहाकर आ गया, अब इसे संन्यास दे दिया जाय तो बहुत अच्छा हो !

(नरेन्द्र और मणि हँसते हैं)

प्रसन्न ने रवीन्द्र से भीगी धोती उतारने के लिए कहा, साथ ही उन्होंने उन्हें एक गेरुआ वस्त्र भी दिया।

नरेन्द्र–(मणि से)– अब वह त्यागियों का वस्त्र पहनेगा।

मणि–(हँसकर)–किस चीज़ का त्याग ?

नरेन्द्र–काम-कांचन का त्याग।

गेरुआ वस्त्र पहनकर रवीन्द्र एकान्त में काली तपस्वी के कमरे में जाकर बैठे। जान पड़ता है कि कुछ ध्यान करेंगे।

...

(घ)

परिच्छेद १

भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

एक पत्र

(श्री अश्विनी दत्त द्वारा श्री 'म' को लिखित)

प्रिय प्राणों के भाई श्री 'म', तुम्हारा भेजा हुआ श्रीरामकृष्ण वचनामृत, चतुर्थ खण्ड, शरद पूर्णिमा के दिन मिला। आज द्वितीया को मैंने उसे पढ़कर समाप्त किया। तुम धन्य हो, इतना अमृत तुमने देश भर में सींचा! ...खैर, बहुत दिन हुए, तुमने यह जानना चाहा था कि श्रीरामकृष्ण के साथ मेरी क्या बात-चीत हुई थी। इसलिए तुम्हें उस सम्बन्ध में कुछ लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। मुझे कुछ श्री 'म' की तरह भाग्य तो मिला नहीं कि उन श्रीचरणों के दर्शन का दिन, तारीख, मुहूर्त, और उनके श्रीमुख से निकली हुई सब बातें बिलकुल ठीक ठीक लिख रखता; जहाँ तक मुझे याद है, लिख रहा हूँ; सम्भव है एक दिन की बात को दूसरे दिन की कहकर लिख डालूं। और बहुत सी बातें तो भूल ही गया हूँ।

शायद सन् १८८१ की पूजा की छुट्टियों के समय पहले-पहल मुझे उनके दर्शन हुए थे। उस दिन केशव बाबू के आने की बात थी। नाव से दक्षिणेश्वर पहुँच, घाट से चढ़कर मैंने एक आदमी से पूछा—"परमहंस कहाँ हैं?" उस मनुष्य ने उत्तर की ओर के बरामदे में तकिये के सहारे बैठे हुए एक व्यक्ति की ओर इशारा करके

बतलाया—"ये ही परमहंस हैं।" परन्तु मैंने देखा, दोनों पैर ऊपर उठाये और उन्हें अपने हाथों से घेरकर बाँधे हुए अध-चित होकर वे तकिये का सहारा लिए बैठे हैं। मेरे मन में आया, इन्हें कभी बाबुओं की तरह तकिये के सहारे बैठने या लेटने की आदत नहीं है; संभव है, ये ही परमहंस हों। तकिये के बिलकुल पास ही उनके दाहिनी ओर एक बाबू बैठे थे। मैंने सुना, वे राजेन्द्र मित्र हैं। बंगाल सरकार के सहायक सेक्रेटरी रह चुके हैं। उनके दाहिनी ओर कुछ और सज्जन बैठे हुए थे। परमहंस-देव ने कुछ देर बाद राजेन्द्र बाबू से कहा—'ज़रा देखो तो सही, केशव आया है या नहीं।' एक ने ज़रा बढ़कर देखा, लौटकर उसने कहा—"नहीं आए।" थोड़ी देर में कुछ शब्द हुआ तब उन्होंने फिर कहा—'देखो, ज़रा फिर तो देखो।' इस बार भी एक ने देखकर कहा—'नहीं आए।' साथ ही परमहंसदेव ने हँसते हुए कहा—"पत्तों के झड़ने का शब्द हो रहा था, राधा सोचती थी—मेरे प्राणनाथ तो नहीं आ रहे हैं! क्यों जी, क्या केशव की सदा की यही रीति है? आते ही आते रुक जाता है।" कुछ देर बाद, सन्ध्या हो ही रही थी कि दलबल समेत केशव आ गए।

आते ही जब केशव ने भूमिष्ठ होकर उन्हें प्रणाम किया, तब उन्होंने भी ठीक वैसे ही भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और कुछ देर बाद सिर उठाया। उस समय वे समाधिमग्न थे—कह रहे थे—

"कलकत्ते भर के आदमी इकट्ठे कर लाए हो, इसलिए कि मैं व्याख्यान दूँगा! व्याख्यान-आख्यान मैं कुछ न दे सकूँगा। देना हो तो तुम दो। यह सब मुझसे न होगा।"

उसी अवस्था में दिव्य भाव से ज़रा मुस्कराकर कह रहे हैं—

"मैं बस भोजन-पान करूँगा और पड़ा रहूँगा। मैं भोजन करूँगा और सोऊँगा—बस। यह सब मैं न कर सकूँगा। करना हो तो तुम करो। मुझसे यह सब न होगा।"

केशव बाबू देख रहे हैं और श्रीरामकृष्ण भाव से भरपूर हो रहे हैं। एक-एक बार भावावेश में 'अः अः' कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण की उस अवस्था को देखकर मैं सोच रहा था—'यह ढोंग तो नहीं है? ऐसा तो मैंने और कभी देखा ही नहीं।' और मैं जैसा विश्वासी हूँ, यह तो तुम जानते ही हो।

समाधि-भंग के पश्चात् केशव बाबू से उन्होंने कहा—"केशव, एक दिन मैं तुम्हारे यहाँ गया था, मैंने सुना, तुम कह रहे हो, 'भक्ति की नदी में गोता लगाकर हम लोग सच्चिदानन्द-सागर में जाकर गिरेंगे।' तब मैंने ऊपर देखा, (जहाँ केशव बाबू और ब्राह्म समाज की स्त्रियाँ बैठी थीं) और सोचा, तो फिर इनकी क्या दशा होगी? तुम लोग गृहस्थ हो, एकदम किस तरह सच्चिदानन्द सागर में जाकर गिरोगे? तुम लोग तो उस न्योले की तरह हो जिसकी दुम में कंकड़ बाँध दिया गया हो; कुछ हुआ नहीं कि झट वह ताक पर जा बैठता है; परन्तु वहाँ रहे किस तरह? कंकड़ नीचे की ओर खींचता है और उसे कूदकर नीचे आना पड़ता है। तुम लोग इसी तरह कुछ काल के लिए जप-ध्यान कर सकते हो, परन्तु दारा और सुतरूपी कंकड़ जो पीछे लटका हुआ नीचे की ओर खींच रहा है, वह नीचे उतार-कर ही छोड़ता है। तुम लोगों को तो चाहिए भक्ति की नदी में एक बार डुबकी लगाकर निकलो, फिर डुबकी लगाओ और फिर निकलो। इसी तरह करते रहो। एकदम तुम लोग कैसे

डूब सकते हो ?"

केशव बाबू ने कहा—"क्या गृहस्थों के लिए यह बात असम्भव है ? महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ?"

परमहंसदेव ने दो-तीन बार 'देवेन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्र, देवेन्द्र' कहकर उन्हें लक्ष्य करके कई बार प्रणाम किया, फिर कहा—

"सुनो, एक के यहाँ देवी-पूजा के समय उत्सव मनाया जाता था, सूर्योदय के समय भी बलि चढ़ती थी और अस्त के समय भी। कई साल बाद फिर वह धूम न रह गई। एक दूसरे ने पूछा—'क्यों महाशय, आजकल आपके यहाँ वैसी बलि क्यों नहीं चढ़ाई जाती ?' उसने कहा, 'अजी, अब तो दाँत ही गिर गए !' देवेन्द्र भी अब ध्यान-धारणा करता है—करेगा ही ! परन्तु बड़ी शान का आदमी है—खूब मनुष्यता है उसमें।

"देखो, जितने दिन माया रहती है, उतने दिन आदमी कच्चे नारियल की तरह रहता है। नारियल जब तक कच्चा रहता है, तब तक यदि उसका गूदा निकालना चाहो तो गूदे के साथ खोपड़े का कुछ अंश छिलकर जरूर निकल आएगा। और जब माया निकल जाती है तब वह सूख जाता है,—नारियल का गोला खोपड़े से छूट जाता है, तब वह भीतर खड़खड़ाता रहता है, आत्मा अलग और शरीर अलग हो जाता है, फिर शरीर के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

"यह जो 'मैं' है, यह बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ लाकर खड़ी कर देता है। क्या यह 'मैं' दूर होगा ही नहीं ? देखा कि उस टूटे हुए मकान पर पीपल का पेड़ पनप रहा है, उसे काट दो, फिर दूसरे दिन देखो, उसमें कोंपल निकल रही है,—यह 'मैं' भी इसी

तरह का है। प्याज का कटोरा सात बार धोओ, परन्तु उसकी बू जाती ही नहीं!"

न जाने क्या कहते हुए उन्होंने केशव बाबू से कहा-- "क्यों केशव, तुम्हारे कलकत्ते में, सुना, बाबू लोग कहते हैं, 'ईश्वर नहीं है।' क्या यह सच है? बाबू साहब जीने पर चढ़ रहे हैं, एक सीढ़ी पर पैर रखा नहीं कि 'इधर क्या हुआ' कहकर गिरे अचेत, फिर पड़ी डाक्टर की पुकार, जब तक डाक्टर आवे-आवे तब तक बन्दे कूच कर गये! और ये ही लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं हैं!"

घण्टे-डेढ़-घण्टे बाद कीर्तन शुरू हुआ। उस समय मैंने जो कुछ देखा, वह शायद जन्म-जन्मान्तर में भी न भूलूँगा। सब के सब नाचने लगे। केशव को भी मैंने नाचते हुए देखा, बीच में थे श्रीरामकृष्ण, और बाकी सब लोग उन्हें घेरकर नाच रहे थे। नाचते ही नाचते बिल्कुल स्थिर हो गए-- समाधिमग्न। बड़ी देर तक उनकी यह अवस्था रही। इस तरह देखते और सुनते हुए मैं समझा, ये यथार्थ ही परमहंस हैं।

एक दिन और, शायद १८८३ ई० में, श्रीरामपुर के कई युवकों को मैं साथ लेकर गया था। उस दिन उन युवकों को देखकर परमहंसदेव ने कहा था, 'ये लोग क्यों आए हैं?'

मैंने कहा, 'आपको देखने के लिए।'

श्रीरामकृष्ण-- मुझे ये क्या देखेंगे? ये सब लोग बिल्डिंग (इमारत) क्यों नहीं देखते जाकर?

मैं-- ये लोग यह सब देखने नहीं आए। ये आपको देखने के लिए आए हैं।

श्रीरामकृष्ण-- तो शायद ये चकमक पत्थर हैं। आग भीतर

है। हजार साल तक चाहे उसे पानी में डाल रखो, परन्तु घिसने के साथ ही उससे आग निकलेगी। ये लोग शायद उसी जाति के कोई जीव हैं? हम लोगों को घिसने पर आग कहाँ निकलती है?

यह अन्त की बात सुनकर हम लोग हँसे। उसके बाद और भी कौन-कौन सी बातें हुईं, मुझे याद नहीं। परन्तु जहाँ तक स्मरण है, शायद 'कामिनी-कांचन-त्याग' और 'मैं की बू नहीं जाती' इन पर भी बातचीत हुई थी।

मैं एक दिन और गया, प्रणाम करके बैठा कि उन्होंने कहा—"वही जिसकी डाट खोलने पर जोर से 'फस्-फस्' करने लगता है, कुछ खट्टा कुछ मीठा होता है—एक वही ले आओगे?" मैंने पूछा—'लेमोनेड?' श्रीरामकृष्ण ने कहा—"ले न आओ।" जहाँ तक मुझे याद है शायद मैं एक लेमोनेड ले आया। इस दिन शायद और कोई न था। मैंने कई प्रश्न किए थे—"आपमें क्या जाति-भेद है?"

श्रीरामकृष्ण– कहाँ है अब? केशव सेन के यहाँ की तरकारी खाई। अच्छा, एक दिन की बात कहता हूँ। एक आदमी बर्फ ले आया, उसकी दाढ़ी खूब लम्बी थी, पहले तो खाने की इच्छा न जाने क्यों नहीं हुई, फिर कुछ देर बाद एक दूसरा आदमी उसी के पास से बर्फ ले आया तो मैं दाँतों से चबाकर सब बर्फ खा गया। यह समझो कि जाति-भेद आप ही छूट जाता है। जैसे, नारियल और ताड़ के पेड़ जब बड़े होते हैं तब उनके बड़े बड़े डंठलदार पत्ते पेड़ से आप ही टूटकर गिर जाते हैं। इसी तरह जाति-भेद आप ही छूट जाता है। झटका मारकर न छुड़ाना, उन सालों की तरह!

मैंने पूछा– केशव बाबू कैसे आदमी हैं ?

श्रीरामकृष्ण– अजी, वह दैवी आदमी है ?

मैं– और त्रैलोक्य बाबू ?

श्रीरामकृष्ण– अच्छा आदमी है, बहुत सुन्दर गाता है ।

मैं– और शिवनाथ बाबू ?

श्रीरामकृष्ण– आदमी अच्छा है, परन्तु तर्क जो करता है––?

मैं– हिन्दू और ब्राह्म में अन्तर क्या है ?

श्रीरामकृष्ण– अन्तर और क्या है ? यहाँ शहनाई बजती है। एक आदमी स्वर साधे रहता है, और दूसरा तरह तरह की रागिनियों की करामात दिखाता है। ब्राह्म समाजवाले ब्रह्म का स्वर साधे हुए हैं और हिन्दू उसी स्वर के अन्दर तरह तरह की रागिनियों की करामात दिखाते हैं ।

"पानी और बर्फ । निराकार और साकार । जो चीज़ पानी है, वही जमकर बर्फ बनती है । भक्ति की शीतलता से पानी बर्फ बन जाता है !

"वस्तु एक ही है, अनेक मनुष्य उसे अनेक नाम देते हैं । जैसे तालाब के चारों ओर चार घाट हों । इस घाट में जो लोग पानी भर रहे हैं, उनसे पूछो तो कहेंगे, जल है । उधर के घाट में जो लोग हैं वे पानी कहेंगे । तीसरे घाटवाले कहेंगे, वाटर और चौथे घाट के लोग कहेंगे, एकुआ । परन्तु पानी एक ही है ।"

मेरे यह कहने पर कि बरीशाल में अचलानन्द अवधूत के साथ मेरी मुलाकात हुई थी, उन्होंने कहा–– "वही कोतरंग का रामकुमार न ?" मैंने कहा, 'जी हाँ ।'

श्रीरामकृष्ण– उसे तुम क्या समझे ?

मैं– जी, वे बहुत अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण– अच्छा, देह अच्छा है या मैं ?

मैं– आपकी तुलना उनके साथ ? वे पण्डित हैं, विद्वान् हैं, आप पण्डित और ज्ञानी थोड़े ही हैं ?

उत्तर सुनकर कुछ आश्चर्य में आकर वे चुप हो गए। एक मिनट बाद मैंने कहा— "हाँ, वे पण्डित हो सकते हैं, परन्तु आप बड़े मजेदार आदमी हैं। आपके पास मौज खूब है।"

अब हँसकर उन्होंने कहा—"खूब कहा, अच्छा कहा।"

मुझसे उन्होंने पूछा— "क्या मेरी पंचवटी तुमने देखी है ?"

मैंने कहा, "जी हाँ।" वहाँ वे क्या करते थे, यह भी कहा— अनेक तरह की साधनाओं की बातें। मैंने पूछा— "उन्हें किस तरह हम पाएँ ?"

श्रीरामकृष्ण– अजी, चुम्बक जिस तरह लोहे को खींचता है, उसी तरह वे हम लोगों को खींच ही रहे हैं। लोहे में कीच लगा रहने से चुम्बक से वह चिपक नहीं सकता। रोते रोते जब कीच धुल जाता है, तब लोहा आप ही चुम्बक के साथ जुड़ जाता है।

मैं श्रीरामकृष्ण की उक्तियों को सुनकर लिख रहा था, उन्होंने कहा— "हाँ देखो, भंग-भंग रट लगाने से कुछ न होगा। भंग ले आओ, उसे घोटो और पीओ।" इसके बाद उन्होंने मुझसे कहा— "तुम्हें तो संसार में रहना है, अतएव ऐसा करो कि नशे का गुलाबी रंग रहा करे। काम-काज भी करते रहो और इधर ज़रा सुखी भी रहो। तुम लोग शुकदेव की तरह तो कुछ हो नहीं सकोगे कि नशा पीते ही पीते अन्त में अपने तन की खबर भी न रहे— जहाँ-तहाँ बेहोश पड़े रहो।

"संसार में रहोगे तो एक आम-मुख्त्यारनामा लिख दो।

उनकी जो इच्छा, करें। तुम बस बड़े आदमियों के घर की नौकरानी की तरह रहो। बाबू के लड़के-बच्चों का वह आदर तो खूब करती है, नहलाती-धुलाती है, खिलाती-पिलाती है मानो वह उसी का लड़का हो, परन्तु मन ही मन खूब समझती है कि यह मेरा नहीं है। वहाँ से उसकी नौकरी छूटी नहीं कि बस फिर कोई सम्बन्ध नहीं।

"जैसे कटहल काटते समय हाथ में तेल लगा लिया जाता है, उसी तरह (भक्तिरूपी) तेल लगा लेने से संसार में फिर न फँसोगे, लिप्त न होओगे।"

अब तक जमीन पर बैठे हुए बातें हो रही थीं। अब उन्होंने खाट पर चढ़कर लेटे लेटे मुझसे कहा—"पंखा झलो।" मैं पंखा झलने लगा। वे चुपचाप लेटे रहे। कुछ देर बाद कहा, "अजी, बड़ी गरमी है, पंखा ज़रा पानी में भिगा लो।" मैंने कहा, "इधर शौक भी देखता हूँ कम नहीं है!" हँसकर उन्होंने कहा, "क्यों शौक नहीं रहेगा?—शौक रहेगा क्यों नहीं?" मैंने कहा—"अच्छा, तो रहे, रहे, खूब रहे।" उस दिन पास बैठकर मुझे जो सुख मिला वह अकथनीय है।

अन्तिम बार—जिस समय की बात तुमने तीसरे खण्ड में लिखी है*— मैं अपने स्कूल के हेडमास्टर को ले गया था, उनके बी. ए. पास करने के कुछ ही समय बाद। अभी थोड़े ही दिन हुए उनसे तुम्हारी मुलाकात हुई थी।

उन्हें देखते ही श्रीरामकृष्णदेव ने मुझसे कहा—"क्यों जी, तुम इन्हें कहाँ पा गए? ये तो बड़े सुन्दर व्यक्ति हैं।

"क्यों जी, तुम तो वकील हो। बड़ी तेज़ बुद्धि है! मुझे

* ता. २३ मई १८८५ देखिए।

कुछ बुद्धि दे सकते हो ? तुम्हारे पिताजी अभी उस दिन यहाँ आए थे, आकर तीन दिन रह भी गए हैं।"

मैंने पूछा— "उन्हें आपने कैसा देखा ?"

उन्होंने कहा— "बहुत अच्छा आदमी है, परन्तु बीच बीच में बहुत ऊल-जलूल भी बकता है।"

मैंने कहा— "अबकी बार मुलाकात हो तो ऊल-जलूल बकना छुडा दीजिएगा।"

वे इस पर ज़रा मुस्कराए। मैंने कहा— "मुझे कुछ बातें सुनाइए।"

उन्होंने कहा— "हृदय को पहचानते हो ?"

मैंने कहा—"आपका भाँजा न ? मुझसे उनका परिचय नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण— हृदय कहता था, 'मामा, तुम अपनी बातें सब एक साथ न कह डाला करो। हर बार उन्हीं उन्हीं बातों को क्यों कहते हो ?' इस पर मैं कहता था, 'तो तेरा क्या, बोल मेरा है, मैं लाख बार अपना एक ही बोल सुनाऊँगा।'

मैंने हँसते हुए कहा, 'बेशक, आपने ठीक ही तो कहा है।'

कुछ देर बाद बैठे ही बैठे ॐ ॐ कहकर वे गाने लगे— 'ऐ मन, तू रूप के समुद्र में डूब जा।. . .'

दो-एक पद गाते ही गाते सचमुच वे डूब गए। —समाधि के सागर में निमग्न हो गए।

समाधि छूटी। वे टहलने लगे। जो धोती पहने हुए थे, उसे दोनों हाथों से समेटते समेटते बिलकुल कमर के ऊपर चढ़ा ले गए। एक तरफ से लटकती हुई धोती जमीन को बुहारती जा रही थी। मैं और मेरे मित्र, दोनों एक दूसरे को टोंच रहे थे

और धीरे धीरे कह रहे थे, 'देखो, धोती सुन्दर ढंग से पहनी गई है।' कुछ देर बाद ही 'हत्तेरे की धोती' कहकर, उसे उन्होंने फेंक दिया। फिर दिगम्बर होकर टहलने लगे। उत्तर तरफ से न जाने किसका छाता और छड़ी हमारे सामने लाकर उन्होंने पूछा, 'क्या यह छाता और छड़ी तुम्हारी है?' मैंने कहा, 'नहीं।' साथ ही उन्होंने कहा, "मैं पहले ही समझ गया था कि यह छाता और छड़ी तुम्हारी नहीं है। मैं छाता और छड़ी देखकर ही आदमी को पहचान लेता हूँ। अभी जो एक आदमी आया था, ऊल-जलूल बहुत कुछ बक गया, ये चीजें निस्सन्देह उसी की हैं।"

कुछ देर बाद उसी हालत में चारपाई पर वायव्य की तरफ मुँह करके बैठ गए। बैठे ही बैठे उन्होंने पूछा, "क्यों जी, क्या तुम मुझे असभ्य समझ रहे हो?"

मैंने कहा "नहीं, आप बड़े सभ्य हैं। इस विषय का प्रश्न आप करते ही क्यों हैं?"

श्रीरामकृष्ण– अजी, शिवनाथ आदि मुझे असभ्य समझते हैं। उनके आने पर धोती किसी न किसी तरह लपेटकर बैठना ही पड़ता है। क्या गिरीश घोष से तुम्हारी पहचान है?

मैं– कौन गिरीश घोष? वही जो थियेटर करता है?

श्रीरामकृष्ण– हाँ।

मैं– कभी देखा तो नहीं, पर नाम सुना है।

श्रीरामकृष्ण– वह अच्छा आदमी है।

मैं– सुना है, वह शराब भी पीता है!

श्रीरामकृष्ण– पिये, पिये न, कितने दिन पियेगा?

फिर उन्होंने कहा, 'क्या तुम नरेन्द्र को पहचानते हो?'

मैं– जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण– मेरी बड़ी इच्छा है कि उसके साथ तुम्हारी जान-पहचान हो जाय। वह बी. ए. पास कर चुका है, विवाह नहीं किया।

मैं– जी, तो उनसे परिचय अवश्य करूँगा।

श्रीरामकृष्ण– आज राम दत्त के यहाँ कीर्तन होगा। वहाँ मुलाकत हो जाएगी। शाम को वहाँ जाना।

मैं– जी हाँ, जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण– हाँ, जाना, ज़रूर जाना।

मैं– आपका आदेश मिला और मैं न जाऊँ!—अवश्य जाऊँगा।

फिर वे कमरे की तस्वीरें दिखाते रहे। पूछा— "क्या बुद्धदेव की तस्वीर बाजार में मिलती है?"

मैं– सुना है कि मिलती है।

श्रीरामकृष्ण– एक तस्वीर मेरे लिए ले आना।

मैं– जी हाँ, अबकी बार जब आऊँगा, साथ लेता आऊँगा।

फिर दक्षिणेश्वर में उन श्रीचरणों के समीप बैठने का सौभाग्य मुझे कभी नहीं मिला।

उस दिन शाम को रामबाबू के यहाँ गया। नरेन्द्र को देखा। श्रीरामकृष्ण एक कमरे में तकिये के सहारे बैठे हुए थे, उनके दाहिनी ओर नरेन्द्र थे। मैं सामने था। उन्होंने नरेन्द्र से मेरे साथ बातचीत करने के लिए कहा।

नरेन्द्र ने कहा, 'आज मेरे सिर में बड़ा दर्द हो रहा है। बोलने की इच्छा ही नहीं होती।'

मैं– रहने दीजिए, किसी दूसरे दिन बातचीत होगी।

उसके बाद उनसे बातचीत हुई थी, अल्मोड़े में, शायद १८९१ की मई या जून के महीने में।

श्रीरामकृष्ण की इच्छा पूरी तो होने की ही थी, इसीलिए बारह साल बाद वह इच्छा पूरी हुई। अहा! स्वामी विवेकानन्दजी के साथ अल्मोड़े में वे उतने दिन कैसे आनन्द में कटे थे! कभी उनके यहाँ, कभी मेरे यहाँ, और कभी निर्जन में पहाड़ की चोटी पर! उसके बाद फिर उनसे मुलाकात नहीं हुई। श्रीरामकृष्ण की इच्छा-पूर्ति के लिए ही उस बार उनसे मुलाकात हुई थी।

श्रीरामकृष्ण के साथ भी सिर्फ चार-पाँच दिन की मुलाकात है, परन्तु उतने ही समय में ऐसा हो गया था कि उन्हें देखकर जी में आता था जैसे हम दोनों एक ही दर्जे के पढ़े हुए विद्यार्थी हों। उनके पास हो आने पर जब दिमाग ठिकाने आता था, तब जान पड़ता था कि बाप रे! किसके सामने गए थे! उतने ही दिनों में जो कुछ मैंने देखा है—जो कुछ मुझे मिला है, उसी से जी मधुमय हो रहा है। उस दिव्यामृतवर्षी हास्य को यत्नपूर्वक मैंने हृदय में बन्द कर रखा है। अजी, वह आश्रयहीनों का आश्रय है। और उसी हास्य से बिखरे हुए अमृत-कणों के द्वारा अमरीका तक में संजीवनी का संचार हो रहा है और यही सोचकर 'हृष्यामि च मुहुर्मुहुः, हृष्यामि च पुनः पुनः'—मुझे रह-रहकर आनन्द हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द स्मृतिग्रन्थमाला—

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१-३. श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का सुविस्तृत जीवनचरित)–तीन खण्डों में; भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य स्वामी सारदानन्दजी द्वारा मूल बँगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत जीवनी का हिन्दी अनुवाद। डबल डिमाई आकार; आर्टपेपर के नयनाभिराम जैकेट सहित।

प्रथम खंड:–('पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन' एवं 'साधकभाव')— १४ चित्रों से सुशोभित, पृष्ठसंख्या ४७६; मूल्य रु. ९।

द्वितीय खंड:–('गुरुभाव–पूर्वार्ध' एवं 'गुरुभाव—उत्तरार्ध')— चित्रसंख्या ७; पृष्ठसंख्या ५१०; मूल्य १०।

तृतीय खंड:–('श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और नरेन्द्रनाथ')– चित्रसंख्या ७; पृष्ठसंख्या २९६; मूल्य ७।

"ईश्वरावतार एक दैवी विभूति की जीवनी, जो लाखों करोड़ों लोगों का उपास्य हो, स्वयं उन्हीं के किसी शिष्य द्वारा इस ढंग से शायद कहीं भी लिखी नहीं गई है। पाठकों को इस ग्रन्थ में एक विशेषता यह भी प्रतीत होगी कि ओजपूर्ण तथा हृदयग्राही होने के साथ ही इसकी शैली आधुनिक तथा इसका सम्पूर्ण कलेवर वैज्ञानिक रूप से संजोया हुआ है।

"प्रस्तुत पुस्तक विश्व के नवीनतम ईश्वरावतार भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की केवल जीवन-आख्यायिका ही नहीं वरन् इस दिव्य जीवन के आलोक में किया हुआ संसार के विभिन्न धर्मसम्प्रदायों तथा मतमतान्तरों का एक अध्ययन भी है।"

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत—(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का जीवन-चरित)–दो भागों में; चतुर्थ संस्करण, पं. द्वारकानाथ तिवारीकृत, महात्मा गांधी द्वारा लिखी हुई भूमिकासहित, आकर्षक जैकेट सहित;

प्रथम भाग, पृष्ठसंख्या ३७१+१६, मूल्य ५ रु; द्वितीय भाग, पृष्ठसंख्या ४३०, मूल्य ५ रु.।

६-८. श्रीरामकृष्णवचनामृत—तीन भागों में; 'म' कृत; संसार की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं में प्रकाशित; अनुवादक—पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; सचित्र, सजिल्द, नयनाभिराम जैकेटसहित, प्रथम भाग (चतुर्थ संस्करण) पृ. सं. ५९८+१६, मूल्य रु. ६.५०; द्वितीय भाग (तृतीय संस्करण) पृ. सं. ६३२, मूल्य रु. ६·५०; तृतीय भाग (द्वितीय संस्करण) पृ. सं. ६७०, मूल्य ७ रु.।

९. माँ सारदा—(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी का विस्तृत जीवन-चरित)—स्वामी अपूर्वानन्दकृत, सजिल्द, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, ८ चित्रों से सुशोभित, पृष्ठसंख्या ४०९+१४ मूल्य रु. ४·५० /-

१०. श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ—(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव एवं श्रीमाँ सारदादेवी की एकत्र रूप में अत्यन्त आकर्षक ढंग से लिखी हुई जीवनी) स्वामी अपूर्वानन्दकृत; सचित्र, आकर्षक जैकेट सहित, पृष्ठसंख्या २७७, मूल्य रु. ३ ४०।

११. विवेकानन्द-चरित—(हिन्दी में स्वामी विवेकानन्दजी की एकमात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी)—सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदारकृत, तृतीय संस्करण, सजिल्द, सचित्र, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेट सहित, पृष्ठसंख्या ५५४, मूल्य ६ रुपये।

१२. धर्म-प्रसग में स्वामी शिवानन्द—स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा संकलित, (द्वितीय संस्करण) मूल्य रु. ५·००

१३. परमार्थ-प्रसंग—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई) सजिल्द, मूल्य रु. ३·२५

स्वामी विवेकानंदकृत पुस्तकें

१४. भारत में विवेकानन्द—भारतीय व्याख्यान (तृतीय संस्करण) ५·००

१५. विवेकानन्दजी के संग में—(वार्तालाप)—शिष्य शरच्चन्द्र चक्रवर्ती द्वारा संकलित, सचित्र, सजिल्द आर्टपेपर के सुन्दर जैकेटसहित, तृतीय संस्करण, मूल्य रु. ५·२५

१६. राजयोग—पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्या सहित (तृ. सं.) ३·००

पॉकेट साईज पुस्तकें

५३. शक्तिदायी विचार (पं. सं.) ०·६५

५४. मेरी समरनीति (तृ. सं.) ०·६५

५५. विवेकानन्दजी के उद्‌गार (तृ. सं.) ०·६५

५६. मेरा जीवन तथा ध्येय (च. सं.) ०·६०

५७. श्रीरामकृष्ण-उपदेश—स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा संकलित, (पं. सं.) ०·७५

५८. रामकृष्ण संघ—आदर्श और इतिहास—स्वामी तेजसानन्द, (द्वि. सं.) ०·७५

५९. साधु नागमहाशय—भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग गृही शिष्य का जीवन-चरित १·५०

६०. गीतातत्त्व—स्वामी सारदानन्द (द्वि. सं.) २·८०

६१. भारत में शक्ति-पूजा——स्वामी सारदानन्द, १·२५

६२. वेदान्त—सिद्धान्त और व्यवहार, स्वामी सारदानन्द, (द्वि. सं.) ०·५०

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धंतोली, नागपुर–१